देव ग्रंथावली

लक्षण-ग्रंथ

प्रथम खण्ड

लक्ष्मीधर मालवीय
एम० ए०, डी० फिल्०

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७

प्रथम संस्करण :
सितम्बर, १९६७

मूल्य : रु० २०.००

पूज्य पितामह
स्वर्गीय पंडित मदनमोहन मालवीय
की
पावन स्मृति को
समर्पित

आभार

'देव ग्रंथावली—लक्षण ग्रंथ—प्रथम खंड' प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिये स्वीकृत मेरे शोध-प्रबन्ध का अर्ध भाग है। वृहदाकार होने के कारण प्रकाशन की सुविधा से देवकृत सात लक्षण ग्रंथों—भाव विलास, रस विलास, सुमिल विनोद, काव्य रसायन, भवानी विलास, कुशल विलास तथा सुजान विनोद—में से केवल प्रथम तीन इस खंड में प्रकाशित हो रहे हैं। अन्य ग्रंथ एवं छंदों की तुलनात्मक प्रतीक सूची अगले खंडों में प्रकाशित करने का विचार है। इनमें से 'सुमिल विनोद' सपादित होकर प्रथम बार प्रकाश में आ रहा है। इन ग्रंथों के संपादन के व्याज से देव की जीवनी तथा उनकी रचना-प्रक्रिया एवं उनके कतिपय ग्रंथों की प्रामाणिकता पर नई दृष्टि से विचार किया गया है।

मैंने यह शोध-कार्य डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सचालक, के० एम० इन्स्टीट्यूट, आगरा, के निर्देशन में, जब वह प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में थे, किया था, उनके निर्देशन के लिये मैं उनका अत्यंत आभारी हूँ। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ० रामकुमार वर्मा तथा अन्य प्राध्यापकों का, विशेष रूप से पंडित उमाशंकर शुक्ल, डॉ० जगदीश गुप्त एवं डॉ० पारसनाथ तिवारी का, जो मेरे कार्य में निरंतर रुचि लेते रहे हैं, मैं कृतज्ञ हूँ। केवल धन्यवाद देकर ऋषि-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, इसे मैं भली भाँति जानता हूँ, अतः यह रस्म-अदायगी नहीं करता।

मेरे लिये हस्तलिखित पोथियाँ सुलभ कराने में विशेष रूप से डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० राजबली पांडेय ने जो सहायता की है उसके लिये मैं चिरकाल तक उनका ऋणी रहूँगा। यदाकदा मार्ग में कठिनाइयाँ भले ही आयी हों, सभी ने मेरे लिये सामग्री सुलभ कराने में यथासम्भव सहयोग दिया है। एतदर्थ काशिराज श्री विभूतिनारायण सिंह, नीलगाँव के राजकुमार श्री भानुप्रतापसिंह, गंधौली के पंडित कृष्णबिहारी मिश्र, पंडित विपिनबिहारी मिश्र, डॉ० ब्रजकिशोर मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी के डॉ० सत्यव्रत सिन्हा, बीकानेर के श्री अगरचंद नाहटा, काशी के पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, इलाहाबाद के श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव कुसमरा के पंडित मातादीन दुबे, इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय तथा प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय के अधिकारियों का आभारी हूँ। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य व्यक्तियों ने अनेक रूपों में मेरी सहायता की है, मैं उन सबका उपकृत हूँ।

इस कार्य को वर्तमान रूप देने में मेरे मित्र डॉ० बालकृष्ण मालवीय, मेरे बाल्यकाल के

साथी श्री ईश्वरचद्र व्यास तथा नेशनल टाइपराइटिंग इस्टीट्यूट, इलाहाबाद के श्री जगदीश-नारायण अग्रवाल ने जो व्यावहारिक सहायता दी है उसके लिये वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

आज से लगभग सात वर्ष पूर्व एक दिन डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने यह कार्य-भार मुझे सौपा था। मैं उनके दिये उत्तरदायित्व का अपनी सीमा भर वहन कर सका, मैं इतने मे ही सतुष्ट हूँ। इतना निस्सकोच कहूँगा कि आज हिंदी को इस प्रकार के कार्य की बहुत अधिक आवश्यकता है। कवि देव समृद्ध व्रजभाषा साहित्य के एक समर्थ कवि थे, अत देश-काल के असीम विस्तार मे यदि मेरे इस कार्य को एक रेणुका कण का भी स्थान प्राप्त हो सका तो मैं अपना श्रम सफल समझूँगा।

३ अप्रैल, १९६४ —लक्ष्मीधर मालवीय

प्रवास के कारण मैं ग्रथ पर मुद्रण के दौरान निगाह नही रख पाया हूँ, अत सभव है कि प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हो। मैं उनके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

३० ७ ६६

ओसाका गाइकोकुगो दाइगाकु, —ल ध मा.

ओसाका, जापान

विषयानुक्रमणिका

विषय-प्रवेश

सीमा और उपलब्ध सामग्री

सुमधुर ब्रजभाषा के कवियों मे देव का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। हमने प्रस्तुत अध्ययन मे उनके लक्षण-ग्रथों के पाठ तथा उनसे सम्बद्ध पाठ-समस्याओं पर विचार किया है अत कवि के अन्य ग्रथों का उपयोग केवल सहायक सामग्री के रूप मे हुआ है। इन अन्य ग्रथों के सम्बन्ध मे अपने विचार हम यहाँ नहीं प्रकट कर रहे हैं।

हमने कवि के केवल उन्हीं ग्रथों को लक्षण-ग्रथ की सीमा के अन्तर्गत माना है जिनमे रस, अलकार, पिंगल अथवा नायिका-भेद का निरूपण तथा वर्णन मिलता है। कवि देव ने समकालीन अन्य कवियों की भाँति अपने किसी एक ग्रथ मे उपरोक्त विषयों मे से एकाधिक पर एक साथ विचार किया है, जैसे कि 'भाव विलास' मे शृगार रस, नायक-नायिका भेद तथा अलकारों का वर्णन है, 'रस विलास' मुख्य रूप से नायिका-भेद का ग्रथ है परन्तु 'काव्य रसायन' म कवि ने इन विषयों के अतिरिक्त शब्द-शक्ति, रीति तथा पिंगल आदि का भी विवेचन किया है। इस आधार पर हमने देवकृत निम्नलिखित सात ग्रथों को लक्षण ग्रथ मानते हुए उनका पाठ-सपादन किया है —

१	काव्य रसायन	—६६३ छद
२	कुशल विलास	—२०६ छद
३	भवानी विलास	—३८४ छद
४	भाव विलास	—४१७ छद
५	रस विलास	—४६६ छद
६	सुजान विनोद	—३५६ छद
७	सुमिल विनोद	—२७७ छद
		कुल २८९९ छद

इन ग्रथों के देवकृत होने मे हमे सदेह नहीं है क्योंकि इनमे से एक भी ग्रथ ऐसा नहीं है जिसमे देवकृत दूसरे ग्रथों के समान दोहे अथवा उदाहरण छद न मिलते हों। देव के एक दूसरे ग्रथ मे समान छद मिलने की यह विशेषता इतनी व्यापक है कि हमने इस भाषा अथवा शैली की अपेक्षा ग्रथ के देवकृत होने का अधिक पुष्ट प्रमाण माना है। भाषा अथवा शैली को निश्चित प्रमाण न मानने का कारण स्पष्ट है। रीतिकाल तक आते-आते साहित्यिक ब्रजभाषा इस सीमा तक विभिन्न प्रादेशिक विशेषताओं से युक्त हो चुकी थी और प्रत्येक क्षेत्र के अनेक कवियों ने

परस्पर प्रभावित होते हुए अथवा प्रभावित करते हुए काव्य-रचना की थी कि केवल भाषा अथवा शैली के आधार पर किसी ग्रथ को एक कवि की रचना मान बैठना खतरे से खाली नहीं। देव तथा देवकीनन्दन की भाषा बहुत कुछ समान है—यहाँ तक कि देव कवि के पश्चात् किसी ने इस ओर लक्ष्य करते हुए कहा था "देव गए भए देवकीनन्दन"। इस काल मे मुख्य रूप से कवित्त तथा सवैया छदो मे रचना हुई है, दो छदो मे पूर्वापर सम्बन्ध भी नही है इस कारण भी भाषा-शैली का साक्ष्य निर्णायक नही हो सकता। 'सुदरी सुदर' जैसे किसी सग्रह मे कवि-छाप रहित छदो के रचयिता का नाम केवल भाषा के आधार पर निश्चित करने पर उपरोक्त कथन की सारवत्ता प्रमाणित होगी। अत भाषा का प्रमाण केवल सहायक प्रमाण माना जा सकता है। उदाहरण के लिए केवल भाषा के आधार पर 'राग रत्नाकर' को देवकृत ग्रथ मानने के कारण ही डा० नगेन्द्र भ्रान्ति के शिकार हुए हे। 'राग रत्नाकर' म देव के किसी अन्य ग्रथ के छद नही है, न किसी अन्य ग्रथ मे 'राग रत्नाकर' के छद हैं। देव के अन्य सर्वमान्य ग्रथो की तुलना म यह इस ग्रथ की असाधारण विशेषता है। डा० नगेन्द्र ने 'देव और उनकी कविता' मे पृ० १३ पर प्रसिद्ध कवि देव से भिन्न देव नामधारी एक अन्य कवि का उल्लेख किया है, और उनका केवल एक ही ग्रथ ज्ञात बताया है 'रागमाला'। सन् १९०६-८ की खोज रिपोर्ट मे भी देव नामधारी कवि के नाम से इसी ग्रथ की सूचना है, सन् १९०५ की खोज रिपोर्ट म 'रागरत्न प्रकाश नामक एक ग्रथ की भी सूचना दी है, इसी प्रति को मैंने सभा के सग्रह म (सभा-सग्रह १९१-१११) देखा है, यह 'राग रत्नाकर की ही प्रति है। अत सभव है कि 'रागमाला' तथा यह 'राग रत्नाकर', जिसे डा० नगेन्द्र हमारे आलोच्य कवि की रचना समझ बैठे है, किसी अन्य देव कवि द्वारा रचित एक ही ग्रथ के दो नाम हो।

सभा की खोज रिपोट म हम ऐसे ही कुछ अन्य 'नवीन' ग्रथ मिल है। हम सक्षेप मे उनका उल्लेख कर रह है।

सभा-सग्रह म १०८० सख्या पर 'सकुन आर्या' नामक 'ग्रथ' इसी प्रकार का है। यह किसी ग्रथ का केवल अतिम ६०वाँ पत्र है। विषय शकुन-विचार है, दोहा छद म निबद्ध होने के कारण इसे आर्या सज्ञा दी गई है। इसके साथ देव का नाम आने का भ्रम इस अश के कारण सभव है ' इति देवकृत सकुन आर्या सपुणम्—।" इसका एक अश इस प्रकार है—'इतवार के दिन तबोल खाज। सोमवार के दिन काच दरसे। बुधवार के दिन दही खाजे।"

दूसरा ग्रथ 'वैद्यक' है। १९२०-२३ की खोज रिपोट (पृष्ठ ४७७) के अनुसार यह भिनगा राजपुस्तकालय म है। इस ग्रथ के सम्बन्ध म लोग बहुत लम्बे समय से उलझन है। खोज रिपोर्ट म दिया 'देवकृत' इस ग्रन्थ का परिचय देखें —"अलख अमूरत अलख गति जिनहि न पायो पार। जारि जुगल कर कवि कहै देव देव मत सार॥ अथ वैद्यक लिख्यते तत्र प्रथम पित्तज्वर को काढा। प्रमाण सज्ञा रसो का विचार, जलधर रोग, भगदर चिकित्सा, गुल्म, कृमि—मदाग्नि, अड रोग, अपस्मार—"

मेरे विचार मे उपर्युक्त उद्धरण से पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि 'रस विलास' के रचयिता तथा वैद्यक के प्रणेता एक ही देव नहीं है।

तीसरा 'इद्रजाल नामक ग्रथ प्रयाग म्युनिसिपल सग्रहालय मे ३४।१५७ सख्या पर है।

अप्रकाशित खोज रिपोर्ट (१९४१-४३) में भी इसका उल्लेख है। इसकी प्रतियाँ हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, तथा नागरी प्रचारिणी सभा के आर्य भाषा पुस्तकालय में भी हैं। सम्भवतः एकेडमी की प्रति सभा वाली प्रति की प्रतिलिपि है। ग्रंथ का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है —
"जब तारे के पात्र में लिखि के ममान में गाड़े तो शत्रु दिमाना होय—"

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समान छन्दों के प्राप्त होने के आधार पर देव के ग्रंथों की प्रामाणिकता का सिद्धान्त विशेष रूप से केवल देव के ग्रंथों पर लागू होता है अतः इसे व्यापक सिद्धान्त नहीं मानना चाहिए।

हमने देवकृत लक्षण-ग्रंथों की सूची में 'जाति विलास', 'प्रेम तरंग', 'प्रेम चंद्रिका' तथा 'सुख सागर तरंग' जैसे ग्रंथ नहीं सम्मिलित किए हैं क्योंकि इनमें से कुछ नाम किसी स्वीकृत ग्रंथ के प्रथम संस्करण अथवा प्रथम संस्करण की खंडित प्रतिलिपि तथा कुछ केवल संग्रह ग्रंथ हैं।

'जाति विलास' अब तक देव के स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में स्वीकृत होता रहा है परन्तु वर्तमान अनुसंधान के अनुसार यह 'रस विलास' के प्रथम संस्करण की पंचम विलास तक खंडित प्रतिलिपि है। इस कारण इसका उपयोग 'रस विलास' की खंडित प्रति के रूप में किया गया है। हमने इस प्रश्न पर विस्तार से 'जाति विलास' की प्रामाणिकता शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया है।

इसी प्रकार 'प्रेम तरंग' 'कुशल विलास' का अविकृत प्रथम संस्करण है। देव ने इसी 'प्रेम तरंग' के आधार पर कुशलसिंह को समर्पित करने के हेतु 'कुशल विलास' की रचना की थी अतः इस दूसरे ग्रंथ में 'प्रेम तरंग' का संपूर्ण आकार समाविष्ट होने के कारण इसका पृथक संपादन करना अनावश्यक है। 'कुशल विलास' तथा 'प्रेम तरंग' शीर्षक के अन्तर्गत हमने इन दोनों ग्रंथों के परस्पर-सम्बन्ध की परीक्षा की है।

'प्रेम चंद्रिका' तथा 'सुख सागर तरंग' ग्रंथ इनसे भिन्न कारणों से इस कार्य की परिधि से बाहर माने गए हैं। 'प्रेम चंद्रिका' शुद्ध प्रेम-काव्य है। यत्र-तत्र मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा का नामोल्लेख इसके शीर्षकों में भले ही हो परन्तु कवि का मुख्य लक्ष्य इनका भेद-प्रभेद करना न होकर केवल इन नायिकाओं के प्रेम का वर्णन है।

'सुख सागर तरंग' संग्रह-ग्रंथ होने के कारण अस्वीकृत हुआ है। इसमें नख-शिख तथा अष्टयाम के छंद होते हुए भी प्रकृति से यह संग्रह-ग्रंथ ही है। इसमें नायिका-भेद के केवल उदाहरण होने से यह लक्षण-ग्रंथ नहीं हो सकता—वैसे ही जैसे बिहारी 'सतसई' के अनेक दोहों का विषय नायक-नायिका-भेद होने के कारण उसे लक्षण-ग्रंथ नहीं माना जाएगा। 'सुख सागर तरंग' में केवल उदाहरण छंद संकलित हैं एवं प्रायः सभी उदाहरण अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं। इन कारणों से हमने इस ग्रंथ के पाठ पर विचार करना अनावश्यक समझा है।

खोज रिपोर्ट में देव के नाम से प्राप्त 'गण-विचार' तथा 'रस रत्नाकर' ग्रंथ ऐसे हैं जो लक्षण-ग्रंथ की सीमा के अन्तर्गत आ सकते हैं। अतः हम खोज रिपोर्ट का इन ग्रंथों से सम्बद्ध अंश नीचे दे रहे हैं —

"८९ के गण विचार—सब्जेक्ट—रहीमेड पेपर। लीव्स—८। साइज—१२-८ इंचेज

लाइन्स पर पेज—७२। एक्सटेंट—२१६ अनुष्टुप श्लोकाज। एपियरेंस—ओल्ड। कैरेक्टर—नागरी। डेट आव मेन्युस्क्रिप्ट—सवत् १६१७-१८६० ए० डी०। प्लेस आव डिपाजिट—ठाकुर अनरुद्धसिहजी, एसिस्टेंट मैनेजर आव राज्य नीलगाव, पोस्टआफिस नीलगाव, डिस्ट्रिक्ट सीतापुर।

बिगिनिग—श्रीगणेशाय नम। अथ गण विचार लिख्यते। छप्पै॥ सूर अनल रजनी निसा विप शिव लोचन सजिये। तितिहि प्रगट गुरु तीनि सकल मिलि मगन उपजिये। वहुरि यगन रस नगन जगन अरु मगन मगन पुनि। क्रम ही अष्ट प्रकार एक तह येक उदित गुनि॥ नृप सिंह सुरुप सुजान मुनि पढि सरस सोहित करिये॥ तुव कीरति विमल कवि कुल बरनि सुछद वृंद भूतल भरिये॥ मगन जानि गुरु तीनि यगन लघु आदि वखानिय। रगन मध्य लघु सचि सगन गुर दृष्टि नगन लघु सकल निरतर॥ गण अष्ट स्वरूप सुजान मुनि इमि छद बहु ग्रथन भरिये। तुव कीरति विदित अलक मो भाँति-भाँति सुरपुर चढ़िये॥

एण्ड—अथ शिशिर॥अरुणनीलममीलित सदल प्रचुर फुल्ल समुल्ल सर्नेथिय वाहति कचन काचनकाननवतरानि तरा शिसिरागमे॥ अपटु तिग्म मरीचिभिर्नहि तथा शिशिरे सिशिर क्षिति॥ निमिजर्थोप्पलपीन घनस्तनी॥ भुजन पीडनत स्वपतानृणा॥इति शिशिर पूर्ण॥ सवैया भेद॥ सैल पगा वसु भा मुनि भाग गसात भगोल लमैल भगा॥ लै मुनि भाग गही ललमत्त भगोल लमत्त भगम पगा॥ पी मदिरा ब्रजनारि करी सुभ मालति चित्र पदम्र मगा॥ मल्लिक माधवि दुर्मिलिका कमला ससवे पय शुभ्र मगा॥ ललसत्त भगाय सुनि कै धुनि चात्रिक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों। अनुराग भरे हरि बागनि मे सखि रागति राग अचूकनि सो। कवि देव घटा जु नई उनई वन भूमि भई जल दूकनि सो। रगराती हरी हहराती लता भुकि जाती समीर की भूकनि सो॥ जाहि जोह निपटहि भटू लटू भयो नदनद। मुख मयक तेरो सखी बिनु कलक को चद॥ इति श्री गण विचार ग्रथ कवि देव कृत सम्पूर्णम् शुभमस्तु लिपितं गिरधारी-लाल वैश्य चुग्हट लखनऊ निवासी सवत १६१७

सब्जेक्ट—गणो का विचार तथा उनके भेद।"

'खोज रिपोर्ट' १९२३-२५, पृष्ठ ४५०-५१

रेखाकित अश से ज्ञात होता है कि देव ने सुजानसिंह के लिए इस ग्रथ की रचना की थी।

'रस रत्नाकर' के सम्बन्ध मे खोज रिपोर्ट की सूचना इस प्रकार है—

"८९ वी रस रत्नाकर बाइ देव। सब्सटेंस—कट्रीमेड पेपर। लीव्स—४८। साइज—८-३½२ इच। लाइन्स पर पेज ९। एक्सटेंट—३७२ अनुष्टुप श्लोक। एपियरेंस—आर्डिनरी। कैरेक्टर—नागरी। डेट आव मैन्युस्क्रिप्ट—सवत् १८८१—ए० डी० १८२४। प्लेस आव डिपाजिट—मातेश्वर बख्श प्रमोद, विलेज नुनरा, लम्हा, डिस्ट्रिक्ट सुल्तानपुर अौध।

बिगिनिग—श्रीगणेशायनम॥ दोहा हो यह कीजियु रस रतनाकर ग्रथ॥ जाके जानें जानिये रस ग्रथन के पथ॥१॥ प्रीति सदा निज पतिहि सो स्वीया की यह रीति। परकीया पर पुरुष सों दुरै जो राखै प्रीति॥२॥ स्वकीया को उदाहरण। कैंसे धौं या वदन की बदन जानि सग जोति। जासी मुगवयनी नही ओठन बाहिर होति॥३॥ परकीया के उदाहरण॥ कौन रहत वन रोवि तुम कौन गेन यह आहि। चलत देह सो देह छुवै मेरु कहूँ डर नाहि॥४॥ सामान्या लक्षणम्

॥प्रीति जो रावै सवनि सों धन धनहीं के काज। तासौं सामान्या कहै सुरविन के सिरताज ॥५॥ यथा ॥ अथ प्यारे सों बोलिहौ कहु वरपाइय कवार। कनक जँभीरल मौ जरित लैं हीरन का हार ॥६॥

एण्ड—अथ वितर्क जह सदेह तें तरजनी भौहै सीस नवाद। कीजे कछू विचार तहँ वितरक दियौ वताइ ॥ यथा—कौन न फूलत रैनि दिन चदन जाति सराहि। जगमगातु दिन रैनि यह ताते तिय मुख आहि ॥ इति सचारिन। अथ सात्विक—थभ भेद रोमाच सुरभगो वेपथु मानि। विवरनता असुया प्रलय आठौ सात्विक जानि ॥ आठहू को उदाहरण—विवरण असुया मूरछा थभ कटकित अग। देवत भये दुहुन के कप सेद सुर भग ॥ इति सात्विक ॥ इति रस रत्नाकर ग्रथ समाप्त ॥ शुभम्भूयात ॥ ईश्वरी दस्तेनालेखि वखु हेलवे पुस्तकमिदम् ॥

सब्जेक्ट—१ पृ० १ से १८ तक—नायिका-भेद, स्वकीया, परकीया, सामान्या, मुग्धा, अज्ञान तथा ज्ञात यौवना, विश्रब्ध नवोढा, प्रगल्भा, धीरा, अधीरा, धीराधीरा, मध्या धीरा, प्रौढ़ा धीरा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, परकीया—ऊढा, अनूढा, भूत सुरतगोपना, भविष्य सुरतगोपना, क्रिया विदग्धा, वाक्य विदग्धा, कुलटा, मुदिता, लक्षिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, लघु मान, मध्य-मान, अष्ट नायिका।

२ पृ० १९ से २४ तक—नायक लक्षण, त्रिविधि नायक, पति, उपपति वैसिक, दक्षिण नायक, धृष्ट, सठ, वैसिक, मानी, वचन चतुर, क्रिया चतुर, प्रोषितपति नायकाभास।

३ पृ० २५ से २६ तक—सखा वर्णन, पीठमर्द, विट, चेट, विदूषक।

४ पृ० २७ से ३१ तक—तीन प्रकार के दर्शन, स्वप्न, चित्र, दरस। सखिया के चार कार्य, उपालभ, मडन, शिक्षा, परिहास। उत्तम, मध्यम और अधम दूती वर्णन। दासी दूती, सखी दूती, चुरिहारिन, मालिन, नाइन, तमालिन, धाई धाई सुता, शिल्पिनी, भगतिन।

५ पृ० ३२ से ३५ तक—हाव वर्णन।

६ पृ० ३६ से ४२ तक—रस वर्णन, चारा अगा समेत।

नोट—इस 'रस रत्नाकर' नामक ग्रथ म देवजी ने दोहो मे नायिका-नायक, दूती, सखी सखादि का वर्णन करके नवरसा का सूक्ष्म वर्णन किया है। साथ ही विभाव, अनुभाव, सचारी भाव तथा स्थायी भावा का भी वर्णन किया है। यह पुस्तक १८८१ म अपने भ्राता के लिए ईश्वरी प्रसाद ने लिखी है। पुस्तक मे कवि ने अपना अपने कुटुम्ब तथा ग्रथ निर्माण काल के सबध म कुछ भी कथन नहीं किया है। पुस्तक के अत मे निम्नलिखित दोहा है जिससे उसका सवत् १८८१ मे लिखा जाना सिद्ध होता है —

'इदु नाग वसु वसुमति माम दया गुरवार।
असित पक्ष तिथि पचमी रस सागर लिखि पार ॥'"

—खोज रिपोर्ट १९२३-२५, पृष्ठ ८६९-७०

खेद है कि इन स्थाना पर जाने पर भी हम य प्रतियाँ उपलब्ध न हो सकीं अत इनकी प्रामाणिकता के विषय म कुछ कहना सभव नहीं।

ग्रन्थो का क्रम

'रस विलास' के द्वितीय सस्करण को छोडकर कवि देव ने अपने किसी ग्रथ म उनका

रचनाकाल नही दिया है अत देव के ग्रथो का रचनाक्रम निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। डा० नगेन्द्र ने अपने ढग से देव के ग्रथो का क्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है परन्तु अप्रामाणिक सामग्री तथा कल्पना पर आश्रित होने के कारण उनके अनेक निष्कर्ष भ्रमात्मक है। उदाहरण के लिए, 'भाव विलास' के जिस 'सवत सत्रह सै' दोहे के आधार पर उन्होने सवत् १७४६ मे इस ग्रथ की रचना, १७३० मे कवि का जन्म तथा देवकृत ग्रथो का क्रम निश्चित किया है वह इस दोहे के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के कारण अशुद्ध है। हम अभी कह आए है कि 'जाति विलास' देवकृत 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि है परन्तु पडितो मे प्रचलित मत को विस्तार देते हुए डा० नगेन्द्र ने अपनी ओर से कल्पना कर ली है कि देव को देशव्यापी अपनी यात्रा मे १०-१५ वर्ष लगे होगे, जिसके उपरात उन्होने 'जाति विलास' की रचना की होगी। ('देव और उनकी कविता'—डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६) अत इस पद्धति से निर्धारित क्रम अवैज्ञानिक होने के कारण अमान्य है। वास्तव मे देव के ग्रथो का रचनाक्रम निश्चित करना यदि असभव नही तो कठिन अवश्य है। केवल समस्त ग्रथो के प्रामाणिक पाठ के आधार पर इन छदो की तुलनात्मक प्रतीक-सूची निर्मित कर, ऐसी दो प्रतियो का युग्म निर्धारित करते हुए, जिन दो ग्रथो मे समान छद मिलते है, ग्रथो का रचनाक्रम निश्चित किया जा सकता है। कहना न होगा कि इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण कडी 'सुख सागर तरग' ग्रथ के दोनो सस्करण है। यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न अपने-आप मे अध्ययन का स्वतन्त्र एव विस्तृत विषय है तथा देव के समस्त ग्रथो का पाठ सम्पादन किये बिना इसका अध्ययन नही हो सकता अत हम इस प्रश्न को भविष्य के लिए छोड रहे है।

'सुख सागर तरग' से सम्बद्ध एक भिन्न सभावना कवि की रचना-पद्धति से सम्बन्धित होने के कारण यहाँ उल्लेखनीय है।

यह तो निश्चित है कि देव ने अपने विभिन्न ग्रथो से छद-सकलन करते हुए 'सुख सागर तरग' का निर्माण किया है। 'सुख सागर तरग' के सम्बन्ध मे क्या यह सभव नही है कि कवि स्फुट छदो की रचना करने के पश्चात उन्हे किसी लक्षण ग्रथ मे रखने के बजाय किसी एक ग्रथ मे सकलित करता गया हो एव इसी सग्रह से स्वय उसने अथवा उसके आदेश पर उसके किसी शिष्य या प्रतिलिपिकार ने अन्य ग्रथो मे छन्द सकलित किये हो—तथा 'सुखसागर तरग' के दो सस्करण इसी सग्रह के सुनियोजित सग्रह हो ? कवि के विभिन्न ग्रथो मे इतनी अधिक सख्या मे समान छन्द मिलने पर सुगम तथा व्यावहारिक होने के कारण, यह सभावना हमे अधिक उचित मालूम देती है। इस सभावना के पक्ष मे निम्नलिखित तर्क है —

(१) 'ईठि रस वानिनि" छन्द 'काव्य रसायन' मे ७.४३, 'प्रेम चन्द्रिका' मे ४ ४७ तथा 'सुख सागर तरग' मे ४०५ सख्या पर आया है। इस छन्द के तृतीय चरण का स्वीकृत पाठ इस प्रकार है—

गैयन गाहन प्रेम गुन के गाहन देव मोहन अनूप रूप रचि के रावन चोर।"

इन तीनो ही ग्रथो की सभी प्राचीन प्रतियो मे 'के' त्रुटित है, यद्यपि अर्थ तथा पिंगल के विचार से के का होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। ये सभी प्रतियाँ इतनी दूरस्थ है कि इनमे परस्पर पाठ-मिश्रण सम्भव नही है और तीन-तीन ग्रथो की सभी प्रतियो मे एक शब्द

का न्यून होना पाठ-मिश्रण की अपेक्षा इन प्रतियों में किसी प्रकार के प्रतिलिपि-सम्बन्ध के कारण अधिक सम्भव है। इससे भी हमारी उपरोक्त धारणा पुष्ट होती है कि इन ग्रंथों में छन्द के आगम का आधार कोई केन्द्रीय संग्रह रहा होगा, जिससे कवि के आदेश पर उसके किसी शिष्य अथवा प्रतिलिपिकार ने छन्दों को समाविष्ट किया होगा।

(२) यदि देव का एक छन्द उनके तीन ग्रंथों में भी आया है तो इन तीनों ग्रंथों में छन्द के एक ही स्थल पर पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं। यह भी केवल पाठ-मिश्रण के कारण सम्भव नहीं हो सकता। यदि विभिन्न ग्रंथों के समान छन्द किसी निश्चित संग्रह से न लिये जाकर सर्वथा स्वतन्त्र रूप से आये होते तो एक ही निरर्थक विकृति एकाधिक ग्रंथों की अनेक प्रतियों में क्यों मिलती अथवा इन प्रतियों में एक ही स्थल पर विकृति क्यों उत्पन्न होती। स्थान-संकोच के कारण मैं ऐसा केवल एक उदाहरण दे रहा हूँ—

'मन भावन के' छन्द का अन्तिम चरण है 'नित्य वारहि वार सँवारहि के निरवारनि वार विचार दिये।' छन्द में 'न नित' के संक्षिप्त रूप में 'के' आया है परन्तु 'भाव विलास (४ ३१) की दा० मा० प्रतियों एवं 'रस विलास' (८ १४) की क० प्रति में 'सँवारहि की' पाठ है, 'भाव विलास' की भा० एवं 'रस विलास' की मा० प्रति में 'सँवारति ही' पाठ है, भाव विलास' की न० प्रति में 'सँवारहि केश' तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति में 'सँवारति वार पाठ है। यह सम्भव नहीं है कि इन सभी प्रतियों में एक ही स्थल पर एक-दूसरे से पाठ-मिश्रण हुआ हो। पाठ मिश्रण की एक सीमा होती है। इस उदाहरण से यह प्रगट होता है कि यह छन्द जिस प्रति में था या तो उसमें इस स्थल पर कवि द्वारा पाठ-संशोधन हुआ था अथवा अपठ होने के कारण या लिपि में भ्रम की सम्भावना होने के कारण यहाँ प्रतिलिपिकार का भ्रम हो सकता था। दोनों ही प्रकार से छन्द के आगम के केन्द्रीय आधार की सम्भावना पुष्ट होती है।

'सुख सागर तरंग' में समान छन्दों की तुलनात्मक सूची देखते हुए हमें यह ग्रंथ भी इसी संग्रह ग्रंथ का सर्वकलित-सुसंयोजित संस्करण लगता है। जो भी हो, किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए इस पर और अधिक गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

इन सभी प्रश्नों का समाधान 'सुख सागर तरंग' के दोनों संस्करणों के सम्पादन के बाद ही मिल सकता है क्योंकि यह महत्वपूर्ण ग्रंथ कवि की रचनाओं में एक रहस्य बनकर पड़ी है।

छन्दों का परस्पर आदान-प्रदान

मध्य युग के अनेक कवियों में अपने एक ग्रंथ के छन्दों को दूसरे ग्रंथ में सम्मिलित करने की विशेषता पायी जाती है। तुलसीकृत 'दोहावली' के दोहे इस कवि की अन्य कृतियों में भी मिलते हैं, कवि केशवदास के अनेक छन्द उनके दो-दो ग्रंथों में मिलते हैं और मतिराम के 'ललित ललाम' के अनेक दोहे उनकी 'सतसई' में पाए जाते हैं। इस प्रकार अपने ही छन्दों को एकाधिक ग्रंथों में रखने की प्रवृत्ति अकेले देव में नहीं अन्य कवियों में भी पायी जाती है। नवीन ग्रंथ तैयार करने की आवश्यकता भी इस प्रवृत्ति के मूल में विद्यमान एक कारण हो सकता है परन्तु इसके अतिरिक्त एक कारण सम्भवतः यह था कि एक ही छन्द एकाधिक लक्षणों का उदाहरण हो सकता था। देव ने इन दोनों ही कारणों से अपने छन्दों को एकाधिक

ग्रंथों में स्थान दिया है। परन्तु इसमें कदापि सन्देह नहीं कि देव में यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर है। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कम से कम सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में किसी अन्य कवि ने अपने छन्दों को हेरफेर कर इतने अधिक स्थलों पर नहीं रखा है, अन्य भाषाओं के किसी कवि ने भी ऐसा किया होगा, कहा नहीं जा सकता। देव के कुल छन्दों में से प्राय आधे एक से अधिक स्थलों पर आये हैं। एक ही छन्द तीन-चार स्थलों पर तो साधारणत मिल जाता है, 'आपुस मैं रस' छन्द पाँच स्थलों पर, 'देव मैं सीस' एवं 'बालम बिरह' जैसे छन्द, सात स्थलों पर मिलते हैं। कुछ छन्द इनसे भी अधिक स्थलों पर आए हैं। छन्द-प्रतीकों की सूची का इस दृष्टि से विश्लेषण करने पर रोचक निष्कर्ष निकलते हैं। देव के आलोच्य ग्रंथों में छन्दों की तुलनात्मक स्थिति निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट होती है —

ग्रंथ	दोहे जो केवल इस ग्रंथ में हैं	अन्य छंद जो केवल इस ग्रंथ में हैं	योग	दोहे जो अन्यत्र भी आए हैं	अन्य छंद जो अन्यत्र भी आए हैं	योग	कुल योग
१ 'सुमिल विनोद'	८८	७४	१६२	२७	८८	११५	२७७
२ 'सुजान विनोद'	२०१	६५	१६६	९	१८१	१९०	३५६
३ 'काव्य रसायन'	३७३	२०३	५७६	१	११६	११७	६९३
४ 'रस विलास'	१३२	१११	२४३	३७	१८६	२२३	४६६
५ 'भाव विलास'	—	१७६	१७६	१९६	४५	२४१	४१७
६ 'भवानी विलास'	७०	६५	१३५	७६	१७३	२४९	३८४
७ 'कुशल विलास'	४५	५१	९६	७६	१३४	२१०	३०६
	८०९	७४५	१५५४	४२२	९२३	१३४५	२८९९

—अर्थात् इन सात ग्रंथों के कुल २८९९ छंदों में से १५५४ छंद अन्यत्र नहीं मिलते तथा १३४५ छंद एक से अधिक स्थलों पर आये हैं। यह संख्या अभूतपूर्व है।

पाठ-मिश्रण—देव के ग्रंथों के अधिकतर छंद अन्यत्र भी मिलने से जहाँ पाठ-संपादन में पर्याप्त सहायता मिलती है, इसी सामर्थ्य पर जहाँ कुछ ग्रंथों का केवल एक प्रति से पाठ से संपादन संभव हुआ है, वहाँ इन छंदों में परस्पर पाठ-मिश्रण भी धड़ल्ले से होने के कारण कठिनाई भी कम नहीं होती। किसी भी संग्रह की प्रतियों में जहाँ देव के एक से अधिक ग्रंथ हों, उनमें परस्पर पाठ-मिश्रण की संभावना पर निगाह रखना आवश्यक हो जाता है। वैसे पाठ-मिश्रण के लिए आधार-रूप में केवल 'सुख सागर तरंग' की एक प्रति का होना पर्याप्त है।

विभिन्न ग्रंथों की प्रतियों में हुए पाठ-मिश्रण की संपूर्ण सूची यहाँ देना असंभव है इस कारण केवल थोड़े से उदाहरण दिये जा रहे हैं —

१ "आवत ही रस लपटी सी लपटी सी नील पटी झपटी सी बाम केहरी।"

—'सुजान विनोद' ४ २३ ८

'नील पटी' पाठ 'नीलपृष्ठी' अर्थात् अग्नि के अर्थ में सगत है परन्तु 'सुजान विनोद' की

केवल ग० प्रति एवं 'सुख सागर तरंग' में ६८२ पर 'लाल परी' पाठ है।

२ "आइ हुती अन्हवावन नाइन सोंधो लिए वहु सूधे सुभाइन।
कंचुकी छोरत ठाढ़ी ठगी सी हँसै कर ठोडी घरे ठकुराइन॥"

—'काव्य रसायन' ५.३४

'वहु' के स्थान पर 'कर' पाठान्तर ग० हि० प्रतियों में मिलता है। 'अष्टयाम' में २२ पर विभिन्न प्रतियों में 'कर' तथा 'वहु' दोनों पाठ हैं। 'काव्य रसायन' की ग० प्रति तथा हि० प्रति का आदर्श एक ही संग्रह की प्रतियाँ हैं अतः इनमें पाठ मिश्रण हुआ है। 'काव्य रसायन' की नी० प्रति तथा 'सुख सागर तरंग' की नी० प्रति में 'वह' पाठ मिलता है। 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियों में 'वह' तथा 'वहु' पर्याय हैं। 'घरे' के स्थान पर 'अष्टयाम' की कुछ प्रतियों में 'दिये' पर्याय भी मिलता है। 'काव्य रसायन' की हि० प्रति में 'दिये' पाठ है।

३ "कमल मुनैन जोर जब तें सुनैन तुम तब तें सुनै न स्यामा सखिन के सोरए।"

—'रस विलास' ७.८७

'रस विलास' की केवल व्र० प्रति तथा 'सुजान विनोद' की का० प्रति में 'स्यामा' के स्थान पर 'स्याम' पाठ है।

४ "जगर-मगर होत सहज जवाहिर में अति ही उज्यारे जब नैनिक उघटियत।"

— 'रस विलास' १.४८

'सहज' के स्थान पर 'सहत' विकृत पाठ 'सुजान विनोद' (३.३१) की का० प्रति में एवं 'रस विलास' की नी० प्रति में मिलता है। 'अति ही' के स्थान पर 'नग में' पाठ 'रस विलास' की नी० ग० सजा० प्रतियों में एवं 'सुजान विनोद' की ग० प्रति में है।

५ "भोर में भूले भए मदिर में जब तें जदुराइ की ओर कियो रुख।"

—'भाव विलास' २.२८

'ओर' के स्थान पर 'राइ' विकृत पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में एवं 'सुख सागर तरंग' (५४२) की नी० प्रति में मिलता है।

६ "नैंकु विनीत नहीं चित दै रस हास कियेहू हियेहू न खोले।"

—'भाव विलास' ३.३२

'हियेहू न' के स्थान पर 'हियो नहिं' पाठ 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में तथा 'सुजान विनोद' की ग० ज० प्रतियों में है।

देव के ग्रंथों में परस्पर पाठ-मिश्रण की समस्या सबसे जटिल है। सामान्यतया यदि कोई एक छंद एक से अधिक स्थलों पर आया है तो दोनों स्थलों पर प्राप्त पाठ, ग्रंथों के मूल स्रोत का पाठ होने के कारण कवि कृत माना जा सकता है परन्तु देव की प्रतियों में प्रत्येक स्थल पर पाठ-मिश्रण होने के कारण दो ग्रंथों की प्रतियों में प्राप्त छंद का समान पाठ भी स्वीकृत करने हुए सतर्क रहने की आवश्यकता है। इस पाठ मिश्रण का पता पाना भी प्रायः कठिन है क्योंकि अधिकतर पाठ-मिश्रण प्रतियों के विकृत पाठों के न होकर सगत तथा सार्थक पर्यायों के हुए हैं। इसी कारण हमने 'देव पीयूष' तथा 'सुन्दरी सिन्दूर' जैसे संग्रहों का उपयोग करना उचित नहीं समझा है।

सहायक संपादन सामग्री

इन आलोच्य ग्रंथों के अतिरिक्त हमने देवकृत निम्नलिखित ग्रंथों का उपयोग सहायक संपादन-सामग्री के रूप में किया है —

१ सुख सागर तरंग —श्री बालदत्त मिश्र द्वारा संपादित तथा सन् १८९८ में अयोध्या से प्रकाशित संस्करण जिसका आधार ब्रजराज पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति है। इस प्रति में अत्यधिक पाठ मिश्रण हुआ है अत संपादित संस्करण के अनुसार छंद-संख्या देते हुए हमने नीम गाव राजपुस्तकालय की संवत १९३२ की हस्तलिखित प्रति का उपयोग भी किया है।

२ सुख सागर तरंग के कवि कृत द्वितीय संस्करण की नागरी प्रचारिणी सभा की प्रति (संख्या ५७३।१२) का उपयोग भी हुआ है।

३ प्रेम चंद्रिका —श्री मिश्र बंधुओं द्वारा संपादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा देव ग्रंथावली के अन्तर्गत प्रकाशित संस्करण। इस संस्करण के अनुसार छंद-संख्या देते हुए बाद में उपलब्ध कांकरोली सरस्वती भंडार की संवत १८५७ की प्रति के पाठ का हमने उपयोग किया है।

४ देव शतक —श्री गोविन्दशरण द्वारा संपादित एवं भाव विलास के साथ बालचंद्र यंत्रालय जयपुर से प्रकाशित ग्रंथ का संस्करण।

५ देव चरित्र —हिंदी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय प्रयाग में मिश्रबंधु की प्रति से सन् १९९९ में तैयार प्रतिलिपि।

६ अष्टयाम —भारत जीवन प्रेस का संस्करण तथा स्फारिक हस्तलिखित प्रतियों का पाठ।

उपरोक्त सहायक सामग्री के अतिरिक्त श्री अगरचंद नाहटा के संग्रह में शृंगारसंग्रह श्री रायकृष्णदासजी के संग्रह में देव पीयूष तथा कवित्त सवैया के कतिपय अन्य छोटे-बड़े संग्रह संपादक के देखने में आए हैं परन्तु इनके देवकृत छंदों का आगम-स्रोत ज्ञात न होने के कारण पाठ-मिश्रण के भय से हमने इन ग्रंथों का उपयोग नहीं किया है। इसी कारण सुंदरी सिंदूर को भी छोड़ दिया गया है।

संपादन प्रणाली

देवकृत उपर्युक्त लक्षण ग्रंथों में से सभी ग्रंथों का संपादन अवली प्रति के पाठ के आधार पर तथा अन्य का संपादन प्रकाशित प्रतियों के आधार पर किया गया है।

सुमिल विनोद तथा भवानी विलास के संपादन का आधार अवली प्रतियाँ हैं। डा० मातादप्रसाद गुप्त ने बनारसीदास कृत अर्धकथानक का पाठ अवली प्रति के आधार पर संपादित करते हुए इस प्रकार के संपादन की जो प्रणाली निर्धारित की है संपादन में उससे हमें प्रयाप्त से सहायता में पर्याप्त सहायता ली है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने प्राप्त प्रति के पाठ में बहुत अपनी ओर से [illegible] किया है जो पाठ निश्चित रूप से त्रुटित है। उन्होंने [illegible] पाठ को कवि के अन्य प्रयोग उसकी शैली तथा उसकी प्रकृति के आधार पर लिए हैं। [illegible] ग्रंथ में स्थिति इससे थोड़ी भिन्न है क्योंकि [illegible] अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं कारण [illegible]

छंद का संगत पाठ देवकृत किसी अन्य ग्रंथ में मिलता है। अतः देव के अन्य ग्रंथों में प्राप्त पाठ का उपयोग अकेली प्रति के आधार पर संपादित ग्रंथों के संपादन में किया गया है परन्तु यहाँ भी आलोच्य ग्रंथ में केवल ऐसे ही स्थलों पर अन्य ग्रंथ के पाठ की सहायता ली गई है जहाँ पहली प्रति का पाठ निश्चित रूप से विकृत है। यदि वह छंद किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलता तभी कवि की शैली का ध्यान रखते हुए अपनी ओर से विशेष संशोधन किया गया है। दूसरे ग्रंथों के सभी पाठ पर्याय दो कारणों से आलोच्य ग्रंथ में नहीं स्वीकृत हुए हैं। एक तो, संभव है कि कवि ने दूसरे ग्रंथ में स्वतः पाठ-परिवर्तन किया हो अतः सभी पर्यायों का संमिश्रण करने से बाद में कविकृत-पाठ-संशोधन का अध्ययन करना असंभव होगा। दूसरे, अन्य एकाकी प्रति का पाठ-पर्याय, कविकृत न होकर प्रतिलिपिकार कृत संशोधन भी हो सकता है अतः सभी पाठ-पर्यायों का संपादित प्रति में समाविष्ट कर लेना हमारे विचार से अवैज्ञानिक है।

जिन ग्रंथों का संपादन एकाधिक प्रतियों के आधार पर हुआ है उनकी संपादन-विधि का विस्तार से वर्णन सम्बद्ध भूमिका में है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि जिन दो प्रतियों में पर्याप्त संख्या में पाठ विकृतियाँ समान हैं, उनमें ये समान विकृतियाँ इन दो प्रतियों के एक ही आदर्श से प्रतिलिपि होने के कारण आई हैं। अतः ऐसी प्रतियों की परंपरा, जिसमें इन प्रतियों से समान पाठ विकृतियाँ नहीं मिलतीं, इन समान विकृतियों वाली प्रतियों की परंपरा से स्वतंत्र होगी। इन्हीं समान पाठ-विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियों के समुच्चय निर्मित करते हुए हमने प्रतियों के वंश-वृक्ष का निर्माण किया है। इस वंश-वृक्ष की दो स्वतंत्र शाखाओं में उपलब्ध पाठ को हमने मूल प्रति का माना है।

इन ग्रंथों के संपादन में देवकृत अन्य ग्रंथों के पाठ का उपयोग व्यापक रूप में परन्तु केवल सहायक सामग्री के साक्ष्य के रूप में हुआ है। यहाँ भी अन्य ग्रंथों के समस्त पाठ-पर्याय उपरोक्त कारणों से मिश्रित नहीं किये गए हैं। यदि इन पर्यायों को एक स्थल पर रखा जाता तो अत्युत्तम था परन्तु ऐसा विस्तारभय से नहीं किया गया है। जिज्ञासु सहृदय छंद प्रतीक की सहायता से अन्य ग्रंथों में आए छंद के पाठ की तुलना कर इन पाठ-पर्यायों का अध्ययन कर सकते हैं।

हमने इस संपूर्ण संपादन-कार्य में अपनी ओर से किसी स्थल पर संशोधन किया है तो उसका उल्लेख ग्रंथ की भूमिका में भी कर दिया है।

इधर आधुनिक वैज्ञानिक विधि से हिन्दी के अनेक ग्रंथों का पाठ-संपादन हो चुका है अतः इस प्रणाली एवं इसमें व्यवहृत अधिकतर शब्दावली से पाठक परिचित हो चले हैं। फिर भी प्रस्तुत संपादन के संदर्भ में हमने जिन शब्दों का प्रयोग विशेष अर्थ में किया है उनका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है। स्मरण रहे कि हमारा उद्देश्य परिभाषा देना नहीं, केवल अपने मंतव्य का स्पष्टीकरण है।

विकृत पाठ—सामान्यरूप से हम उस पाठ को विकृत मानते हैं जो मूल पाठ से प्रतिलिपिकार के दृष्टि भ्रम के कारण, लिपि-भ्रम के कारण अथवा अनेक अन्य संभव कारणों में से किसी कारण से विकृत हुआ हो तथा जिसे निश्चित रूप से अशुद्ध कहा जा सके। प्रस्तुत कवि की रचनाओं में विकृत पाठों की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट नहीं है क्योंकि विभिन्न प्रतियों में पाठान्तरों की संख्या-बहुलता के कारण निश्चित रूप से विकृत अथवा असंगत पाठ बहुत कम मिलते हैं।

अत एक पाठान्तर को सहसा सुविधा से विकृत सिद्ध कर सकना कठिन है। इसका एक कारण प्रतिलिपिकार की सजगता है। ब्रजभाषा काव्य मे सामान्यतया परिचित होने के कारण यदि प्रतिलिपिकार की आदर्श प्रति मे किसी स्थल पर अशुद्ध पाठ भी है तो उसने उसके स्थान पर अपनी ओर से दूसरा सार्थक तथा यथासभव सगत पाठ रख दिया है। प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त इस पाठ को हम केवल शब्दार्थ अथवा प्रसग की सगति-असगति के आधार पर मूल प्रति का अथवा विकृत नही सिद्ध कर सकते। ध्यान रहे कि रीतिकाल तक आते-आते ब्रजभाषा इतनी विकसित हो चुकी है, उसका शब्द-समूह इतना सवर्द्धित होकर सूक्ष्म से सूक्ष्म भावो को अनोखी रीति से अभिव्यक्त करने मे समर्थ है कि केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृतियो का निर्धारण करना कठिन है। कुछ उदाहरण ले। स्वीकृत पाठ है "केसर केसु कदब कुरौ बचनारनि की रचना उर मूली।" —सुजान विनोद' ४ १४ १। इस ग्रथ की केवल का० प्रति मे 'करौ' पाठ मिलता है, जो वास्तव म 'क' के प्राचीन रूप म भ्रम होने के कारण सभव है। परन्तु 'करौ' शब्द की व्युत्पत्ति एक फलदार वृक्ष के अर्थ मे 'करु' से मानी जा सकती है अत का० प्रति का पाठ केवल अर्थ के आधार पर असगत नही कहा जा सकता। 'कुरौ' पाठ प्रतियो क पाठ-साक्ष्य पर तथा कवि म अनुप्रास का आग्रह होने क आधार पर अनुप्रास-युक्त होन के कारण मूल प्रति का माना गया है। ऐसा ही दूसरा उदाहरण है— गुलगुली गोल मखमल कैसो गेंडुआ गडै न गडी जी मे जऊ करत ढिठाई सी।" —रस विलास' ८ ११। रस विलास की कुछ प्रतियो म प्राप्त 'गेंडुआ पाठ 'दु' म 'ड' का भ्रम होने से सभव है परन्तु तकिया के अर्थ मे सस्कृत के 'गन्डक' शब्द से इन दोनो शब्दो की व्युत्पत्ति होने के कारण दूसरा पाठ केवल शब्दार्थ के आधार पर विकृत नही सिद्ध हो सकता। यहाँ हमने प्रतियो के साक्ष्य पर 'गेंदुआ, पाठ स्वीकृत माना है।

उपर्युक्त कारणो से हमने किसी पाठ को विकृत मानने के लिए शब्दार्थ के साथ-साथ प्रसग मे उसकी सगति-असगति पर भी विचार किया है क्योकि बहुधा अर्थ के विचार से सगत पाठ भी उस प्रसग म असगत होता है।

पर्याय—प्रतिलिपिकार बहुधा अपनी प्रति म कठिन शब्द के स्थान पर उसका सरल पर्याय रख देते है। एक शब्द के स्थान पर किन्ही दो प्रतियो म समान पर्याय मिलने से भी उनके बीच प्रतिलिपि सम्बन्ध सभावित माना जाता है। छद म चमत्कार लाने के लिए, अथवा अनेक अन्य कारणो म बहुधा प्रतिलिपिकार एक पाठ के स्थान पर समानार्थी दूसरा पाठ रख देता है। उदाहरण क लिए घाघरो घनेरो लाँबी लटैं लटे लाँक पर' ('रस विलास ७ ५२) के स्थान पर कुछ प्रतियो म लक पातरे पै पाठ मिलता है। दोनो पाठो का भाव एक ही है। प्रतियो मे शब्द-पर्याय के अभाव मे समान पाठ पर्यायो मे भी प्रतियो का सम्बन्ध समझने म सहायता मिलती है अत हमने पाठ पर्यायो के कुछ स्थलो का भी पर्याय के साथ रखा है।

लिपिजन्य विकृति—सत कबीर, जायसी तथा गोस्वामी तुलसीदास के ग्रथो की प्रतिलिपि-परपरा म नागरी लिपि के अतिरिक्त कैथी, गुरुमुखी तथा फारसी लिपियो का योग होने के कारण लिपिजन्य अनेक विकृतियाँ पायी जाती है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने जायसी तथा तुलसीदास की रचनाओ के सपादन म तथा डा० पारसनाथ तिवारी ने कबीर ग्रन्थावली के सपादन मे विस्तार से इन विकृतियो का विश्लेषण किया है। कवि देव का यह सौभाग्य नही रहा कि उनकी

रचनाएँ नागरी के अतिरिक्त किसी अन्य लिपि मे प्रतिलिपि हो अत प्रस्तुत सपादन मे हमे निरपवाद रूप से केवल नागरी लिपि से उत्पन्न विकृतियाँ मिलती है। ये विकृतियाँ वर्ण के किसी अपरिचित प्राचीन रूप-रूपान्तर मे प्रतिलिपिकार को किसी अन्य वर्ण का भ्रम होने के कारण हुई है। 'झ' के अनेक रूप विभिन्न प्रतियो मे पाये जाते है अत इसमे 'ह' तथा 'क' का भ्रम प्रतिलिपिकारो को हुआ है। ("झिलमिली झालरनि हिलमिली हालरनि"—'सुजान विनोद' ७ ३८, "सूझै-सूहै"—वही ७ ३६) इसी प्रकार 'र' के प्राचीन रूप मे 'नू' का भ्रम एव प्राचीन 'ओ' मे 'ड' का भ्रम भी सम्भव है। यद्यपि प्रतिलिपिकार का दृष्टि-भ्रम प्रत्यक्ष मे इन पाठ-विकृतियो का कारण जान पडता है परन्तु इस भ्रम का मूल वर्ण के रूपान्तर मे निहित है अत हमने उस प्रकार की विकृतियो को लिपिजन्य विकृति शीर्षक के अन्तर्गत माना है।

प्रतियाँ : सामान्य परिचय : देवकृत लक्षण-ग्रथो की विभिन्न प्रतियाँ मुख्य रूप से केवल कुछ सग्रहो मे प्राप्त हुई हैं एव एक तथा दूसरे सग्रह की प्रतियो मे निश्चित सम्बन्ध मिलता है अत यहाँ इन सग्रहो के परस्पर-सम्बन्ध तथा उनकी विश्वसनीयता पर विहगम दृष्टि डालने से आगे के विस्तृत विवेचन को समझने मे सहायता प्राप्त होगी।

१ **का०—काशिराज सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, काशी,** की जितनी प्रतियो का हमने उपयोग किया है वे सभी प्राचीन, सवत् १८५७ के आस-पास की तथा विश्वसनीय है। पाठ-विकृतियो की परीक्षा करने पर ये अपने ग्रन्थ के मूल आदर्श से कुछ ही पीढी आगे की प्रतियाँ मालूम देती है।

२ **नी०—नीलगाँव राजपुस्तकालय, नीलगाँव, जिला सीतापुर,** की प्रतियाँ भी अत्यन्त प्राचीन तथा कवि की उन पोथियो की परपरा मे है, जिनमे कवि के पश्चात् किसी अन्य व्यक्ति ने छदो का प्रक्षेप तथा पाठ-सशोधन किया था। इस सग्रह की प्रतियाँ सवत् १९४२ के लगभग की है। इस सग्रह की प्रतियो मे गं० सग्रह की प्रतियो के समान परस्पर पाठ-मिश्रण नही हुआ है।

३ **गं०—ब्रजराज पुस्तकालय, गधोली, सीतापुर,** की प्रतियो मे पाठ-मिश्रण खूब हुआ है अत ये प्रतियाँ पाठ के विचार से विश्वसनीय नही है। ये प्रतियाँ नीलगाँव सग्रह की प्रतियो की समकालीन—सभवत उनकी प्रतिलिपियाँ है।

४ **नागरी प्रचारिणी सभा, याज्ञिक सग्रह** की प्रतियाँ प्राचीन, १८७५ के लगभग की तथा सामान्य रूप मे विश्वसनीय है। ये सभी प्रतियाँ भरतपुर के आसपास से प्राप्त हुई है अत राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियो के साथ इस सग्रह की प्रतियो का सम्बन्ध पाया जाता है।

५. **नागरी प्रचारिणी सभा, आर्य भाषा पुस्तकालय,** की हस्तलिखित प्रतियाँ आधुनिक समय मे सवत् १९७७ के लगभग गं० सग्रह की प्रतियो से तैयार प्रतिलिपियाँ है।

६ **हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,** की प्रतियाँ आर्य भाषा पुस्तकालय की प्रतियो से प्रतिलिपि की गई है। गं० प्रति से प्रतिलिपि होने के कारण इन दोनो सग्रहो की प्रतियाँ विश्वसनीय नही है।

७ **हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, इलाहाबाद,** की प्रतियाँ राजस्थान से प्राप्त हुई है, सवत् १८७५-८० के आसपास की है एव विश्वसनीय है। राजस्थान से प्राप्त अन्य प्रतियो के साथ इन प्रतियो का सम्बन्ध मिलता है।

कवि-प्रवृत्ति—किसी भी कवि के ग्रंथों का संपादन उसकी प्रवृत्तियों को समझे बिना नहीं हो सकता अतएव सुविधा के लिए हम कवि देव की भाषा-शैलीगत कुछ विशेषताओं की ओर इंगित कर रहे हैं।

अनुप्रास—कवि देव पर भाषा का स्वरूप विकृत करने का आरोप अनेक समालोचकों ने लगाया है तथा शब्दों की तोड़-मरोड़ का लाञ्छन भी उन पर है। वास्तव में देव ने यह सब केवल अनुप्रास तथा यमक के प्रबल आकर्षण के कारण किया है। "देव दुति गात नव जोबन जगमगात लरजि लजात जलजात परभात के" जैसी ध्वनि-योजना देव के छंदों में पग-पग पर मिलेगी। और ध्यान दें, इसमें केवल अनुप्रास का निर्जीव आग्रह नहीं, समान ध्वनियों का बारम्बार प्रतिध्वनित होना नाद-सौंदर्य है, जो परम सुन्दर-सुकुमार भावों के आयतन-रूप में कवित्त-सवैया छंद की परमोपलब्धि है। डा० नगेन्द्र ने ध्वनि-योजना के इस प्रश्न को बड़े ही सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। ('देव और उनकी कविता'—पृष्ठ २४३-४६)। इसी आकर्षण के कारण देव ने यत्र-तत्र-सर्वत्र शब्दों के प्रचलित रूप को छंद की ध्वनि-योजना के अनुरूप ढाल कर रखा है। उचित-अनुचित का निर्णय करना विज्ञ समालोचकों का कार्य है, कवि से परिचित होना हमारा कर्त्तव्य है। देव की रचनाओं में 'फीके' के साथ 'नेकु में' के लिए 'नीके' ("नीके मैं फीके ह्वै"—'काव्य रसायन' २ ५७), 'इठाइ' के साथ 'बढ़ाइ' के लिए 'बठाई' ('देव दुहूँ सों इठाइ बठाइ'—'कुशल विलास' ६ ६) जैसे प्रयोग अनेक मिलेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि देव ने शब्दों का रूप परिवर्तित करने में अन्य कवियों से अधिक स्वतन्त्रता दिखलायी है। उनकी रचनाओं में 'लीला सहित' के लिए 'सलील' ("पति निसि अनत सलील"—'कुशल विलास' ७ २) तथा 'पूरने' के अर्थ में 'पूर्जै' ("देवतहू दिनसाध न पूर्जै"—'सुजान विनोद' १ ५६) जैसे प्रयोग भी कम नहीं हैं। देव के "भाग भरे भाल पै सुहाग बरसत है" प्रयोग पर कवि दूलह ने आपत्ति की थी कि "भाग भरे मुख" पाठ होना चाहिए। "ऐसी रंगीली अहीरी अहो कहो क्यों न लगै मन मोहनै मीठी" पर अभी तक विवाद समाप्त नहीं हुआ है। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का कहना है कि 'मन मोहनै' के स्थान पर 'री गोपालहिं' पाठ होना चाहिए। ('बिहारी'—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र—पृष्ठ ६६-७०) असंभव नहीं जो केवल अनुप्रास के मोह से देव ने यह पाठ रखा हो।

संक्षेप—वर्ण-लोप तथा शब्द-लोप के द्वारा संक्षेप कवि की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। "सके ग्वार रन" ('कुशल विलास' ५ १३) में 'सग के' का एक वर्ण लुप्त है। "सब लागनि के हीरा वाके हाथ ह्वै बिकात है' ('रस विलास' १.३२) में 'हियरा' का एक वर्ण नहीं है—'हीरा' में श्लेष भी है। "वाही के जैये बलाइ ल्यो बालम" ('भाव विलास' ४ ५७) में 'जाइये' का एक वर्ण लुप्त है। "आजु मिले बहुतै दिन भावते" ('काव्य रसायन' २ ५५) अर्थात् बहुत दिन बाद—'बाद' लुप्त है। "सग के न जाने गए डगर डराने देव" ('काव्य रसायन' २ ४०) अर्थात् न जान कहाँ गए—परन्तु 'कहाँ' प्रच्छन्न है। 'के लिए' के लिए केवल 'के' आया है 'कुंजन केलि के बेली नवेली—' ('सुजान विनोद' ६ ५)—यहाँ 'वाले' के अर्थ में 'के' नहीं आया है।

दूरान्वय—कवि देव के छंदों में दूरान्वय की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। कदाचित् यह

भी ध्वनि-सयोजन पर अधिक बल देने के कारण है। अनेक स्थलो पर अर्थ की सगति बैठाने के लिए पदो को असाधारण रूप मे भग करना होता है। "कोटिक मार कुमारनि" का अर्थ मिश्र बधुओ ने "कामदेव के कुमार" किया है परन्तु हमारे विचार मे इनका अन्वय इस प्रकार करना उचित है "कोटिक कुमार मारनि" अर्थात् 'नि' सबधकारक का चिह्न न होकर बहुवचन का सूचक है। इसी प्रकार "कोविद काम कला सकलानि" ('रस विलास' ५ ३८) मे भी अर्थ की सगति के लिए 'नि' को 'कला' मे मिलाकर 'कलानि' बहुवचन का रूप बनाना होगा।

इन प्रवृत्तियो को समझे बिना कवि के अभीष्ट भाव तक पहुँच सकना सभव नही है। आश्चर्य है कि देव मे अनुप्रास का यह आग्रह स्वीकार करने पर भी डा० नगेन्द्र ने 'दुहुप' जैसे शब्दो को निरर्थक शब्दो की श्रेणी मे डाल दिया है —"देव के काव्य मे ऐसे शब्द भी सैकडो है जिनका कोई अर्थ ही नही मिलता। तीभ धील, वावस, हुद्र, सीजो, वसीकन, गमार्‌या दुहुव तरावक, हूप आदि आदि।"

—'देव और उनकी कविता', पृ० २०६

इनम से न जाने कितने शब्द उन प्रतिलिपिकारो अथवा सपादको के है, जिनकी सामग्री के आधार पर डा० नगेन्द्र ने यह निर्णय दे दिया है। 'वावस' यदि 'वायस' का विकृत रूप है तो यह 'कौवे' के अर्थ मे 'काव्य रसायन' मे आया है—"वायस चामु चवात"। 'दुहुव' विकृति 'दुहुप' मे हुई है जो 'पुहुप' के अत्यानुप्रास पर 'रहुप' तथा 'सुहुप' शब्दो के साथ 'दुहू' के लिए आया है। ('कुशल विलास' ५ २१) 'तरावक' विकृति 'रति मानत रावक' का अशुद्ध रूप से पद-भग करने के कारण हुई है। इसी प्रकार 'हूप' भी "निरगुनहू पुहै" ('रस विलास' ४ १७) का अशुद्ध रूप मे भग करने के कारण हुई विकृति है।

शब्द-रूप—अनेक वर्ष हुए 'माधुरी' मे एक हस्तलिखित पत्र देव के हस्तलेख के नाम से छपा था। हमने यह प्रतिकृति गधौली मे देखी थी। इस लेख मे छोटी-छोटी अशुद्धियाँ होने के कारण यह देव के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का हस्तलेख हो सकता है—यद्यपि इसमे भी शब्दो के औकारान्त की अपेक्षा ओकारान्त तथा उकारान्त की अपेक्षा अकारान्त रूप अधिक हैं। कुसमरा के देव वशजो के पास सग्रहीत प्रतियाँ भी देव का स्वहस्तलेख नही हैं। यद्यपि इसमे भी ओकारान्त तथा अकारान्त रूप अधिक है। फिर भी हमने समस्त शब्दो को एक ही रूप मे ढालने की अपेक्षा ग्रथ की अनेक हस्तलिखित प्रतियो मे प्राप्त रूप अथवा ग्रथ की प्राचीनतम प्रतियो मे प्राप्त रूप सपादित पाठ मे दिया है। हमारे विचार से एक ही कवि मे शब्दो का एक ही रूप सर्वत्र मिले, यह अनिवार्य रूप मे आवश्यक नही है।

शब्द-रूपो को निश्चित करना अत्यत आवश्यक है। एक ही काल के अनेक कवियो की भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से प्राप्त एकाधिक प्रतियो से एकत्रित सभी शब्द-रूपो के तुलनात्मक अध्ययन आधार पर उस काल मे शब्द रूपो की स्थिति निश्चित की जा सकती है। परन्तु यह प्रस्तुत ...य से स्वतन्त्र कार्य है।

भाव विलास

भूमिका

प्रतियाँ : प्रतियो की बहिरग परीक्षा—'भाव विलास' के पाठ-सपादन मे प्रयुक्त विभिन्न प्रतियो का विवरण इस प्रकार है —

१ **ज०—अर्थात् जयपुर से प्रकाशित 'भाव विलास' का सस्करण।** जयपुर के श्री गोविंद-दारण ने सन् १९१६ ई० मे अपने निजी पुस्तकालय की सवत् १९१३ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर यह सस्करण प्रकाशित किया था। सपादक ने प्रतिलिपि-सवत् के अतिरिक्त प्रति के सवध मे अन्य सूचनाएँ नही दी है। इस सस्करण मे पचम विलास, जिसमे अलकारो का विवेचन है, नही है।

सामान्य लेखन-प्रमादो के होते हुए भी प्रति का पाठ अत्यत विश्वसनीय है।

२ **भा०—अर्थात् भारत जीवन प्रेस का संस्करण।** 'भाव विलास' का एक अन्य सस्करण भारत जीवन प्रेस, काशी, के सचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने सन् १८९३ ई० मे सपादित कर प्रकाशित किया था। ग्रथ के मुख-पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना से ज्ञात होता है कि सपादक ने इसे "रियासत सूर्यपुरा से हाथ की लिखी प्रति पाकर अत्यत परिश्रम से शुद्ध कर छपवाया है।" आदर्श प्रति के विषय मे अन्य सूचनाओ का यहाँ भी अभाव है। सपादक की ओर से काफी शुद्धीकरण होने के कारण प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नही है।

३ **सा०—अर्थात् हिंदी साहित्य सम्मेलन सग्रहालय, प्रयाग, की सवत् १८७१ की हस्तलिखित पोथी।** सग्रहालय मे यह पोथी १९५७। २०९५ सख्या पर है। इस प्रति मे ११६ पत्र तथा प्रति पृष्ठ १८ पक्तियाँ है। लेखन मे काली तथा लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। प्रति की चौडाई ६ इच तथा लबाई ११ इच है। कुछ स्थलो पर किसी अन्य व्यक्ति ने प्रति का पाठ शुद्ध किया है, ऐसे सशोधन दूसरी कलम से पार्श्व पर अकित है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"भाव विलासे—पचमो विलास ॥ सवत् १८७१ मिति द्वितीय भाद्रपद वदि मिति आसाढ पचमी। दीतवाण सवत् १९१३ ॥" यह प्रति सग्रहालय को बूदी के श्री राव मुकुन्दसिंह से प्राप्त हुई है। प्रति का पाठ सामान्य रूप मे विश्वसनीय है।

४ **हि०—अर्थात्, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, के सग्रह की संवत् १९७७ की हस्तलिखित प्रतिलिपि।** काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने गथौली के श्री ब्रजराज पुस्तकालय की 'भाव विलास' की प्रति से यह प्रतिलिपि एकेडमी के निमित्त तैयार कराई थी। यह प्रति सफेद लाइनदार कागज पर लिखी है तथा इसमे ७२ पत्र एव प्रति पृष्ठ पर ३० पक्तियाँ है। प्रति की लबाई १३ इच तथा चौडाई ६ इच है। प्रति की अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—'बद्रीप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी मे नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण सात सवत्

१६७७।"

यद्यपि हि० प्रति नी० समूह की ही एक आधुनिक प्रति है परन्तु नी० प्रति अत्यधिक जर्जर एवं स्थान-स्थान पर अपठ है इसलिए हमने इस प्रति का उपयोग किया है।

इस प्रति का पाठ अधिक विश्वसनीय नहीं है।

५ नी०—अर्थात् नीलगाँव राजपुस्तकालय, जिला सीतापुर, की 'भाव विलास' की अपूर्ण प्रति। इस प्रति की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि इसके आदि में तथा प्रत्येक विलास के अंत की पुष्पिका में ग्रंथ-नाम 'भाव प्रकाश' मिलता है। यह अत्यंत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था में मुझे प्राप्त हुई थी। अनेक स्थलों पर पाठ दीमकों द्वारा नष्ट हो गया है। पत्रों की सख्या ४२ एवं प्रति पृष्ठ पंक्तियों की सख्या १६ है। यह प्रति 'जाति विलास', 'उमराउ कोप' आदि ग्रंथों के साथ एक जिल्द में बँधी है। इनमें से अंतिम ग्रंथ, अर्थात् 'उमराउ कोप' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि गौरीशंकर दुबे ने सवत् १६४३ में इन ग्रंथों की प्रतिलिपि की थी। 'भाव विलास' की प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है "इति श्री देवदत्त विरचिते भाव प्रकासे पचमो विलास ॥५॥ जदपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन। ताहू को पुनि सोधिहैं सज्जन महा प्रवीन॥"

प्रति में केवल श्लेष लक्षण दोह ५ ४२ तक ही पाठ है। यह प्रति 'बहु सुद्ध कीन' होने के कारण अधिक विश्वसनीय नहीं है, ऊपर से दीमकों द्वारा पुन साधने के कारण अनेक स्थलों का पाठ अपठ भी है।

६ का०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भडार, रामनगर दुर्ग, काशी, की सवत् १८५७ की हस्तलिखित प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र सख्या साहित्य १२-३६ है। पत्र-सख्या ६६ तथा प्रति पृष्ठ पंक्तियों की सख्या १० है। प्रति की चौडाई लगभग ६ इंच तथा लबाई ८ इंच है। प्रति अपनी चौडाई में खुले पत्रों पर लिखी है। लेखन में काली तथा लाल स्याही का उपयोग हुआ है। कागज पुराना तथा मटमैला है। पाठ "—लो अकुर होइ' १ ५ से प्रारभ होता है, इसके पूर्व एक पत्र सादा छूटा है। प्रति में कुछ स्थलों पर उसी हस्ताक्षर से पार्श्व पर पाठान्तर सकलित है। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"सवत् १८५७ मिति पौषे १ मासे शुक्ल पक्षे रवि वासर लिखित श्री काशी जी मध्य ईश्वरीप्रसाद गौड ब्राह्मण अपने पठनार्थ॥"

प्रति का पाठ विश्वसनीय है।

अन्य प्रतियाँ—'भाव विलास' की उपर्युक्त प्रतियों के अतिरिक्त मुझे इस ग्रंथ की अन्य प्रतियाँ भी प्राप्त हुई हैं किंतु उसी शाखा की एक अन्य प्रति सपादन-कार्य के निमित्त स्वीकृत हो चुकने के कारण इन प्रतियों का उपयोग नहीं किया गया है। इन प्रतियों का विवरण इस प्रकार है —

७ का०अ०—अर्थात् काशिराज सरस्वती भडार की दूसरी प्रति। यह प्रति भडार के साहित्य १३-४० विडा में है। प्रति की चौडाई ८ इंच तथा लम्बाई लगभग १० इंच है। पत्रों की सख्या ५२ तथा प्रति पृष्ठ पंक्तियों की सख्या १७ है। प्रति बगल में जिल्दबन्द है। कागज मोटा तथा सफेद है। इस सुलिखित प्रति के लेखन में काली लाल स्याही प्रयुक्त हुई है। प्रतिलिपिकार का नाम-स्थान, प्रतिलिपि-सवत् आदि प्रति में नहीं दिये हैं। प्रति का पाठ का० प्रति के समान आदि में खंडित है एवं "जो नव रस के आदि में पहिलो अकुर होइ"—१ ५ से प्रारम्भ होता है।

इसी शाखा की का० प्रति प्राप्त होने तथा इन प्रतियो मे समान विकृतियाँ मिलने के कारण हमने इस प्रति का उपयोग नही किया है।

८ गं०—अर्थात् श्री ब्रजराज पुस्तकालय, गधौली, जिला सीतापुर की संवत् १६३५ की हस्तलिखित प्रति। लगभग १२ इंच लम्बाई तथा ८ इंच चौडाई वाले रजिस्टर मे यह प्रति अन्य ग्रन्थो के साथ जिल्दबन्द है। ग्रन्थ का नाम आदि मे तथा विलास के अन्त की पुष्पिकाओ मे पहले 'भाव प्रकाश' था परन्तु प्रतिलिपिकार ने बाद मे 'प्रकाश' को काली स्याही मे संशोधित कर 'विलास' बनाया है। केवल ग्रन्थ की अन्तिम पुष्पिका के 'भाव विलास' पर काली स्याही मे संशोधन नही हुआ है।

इस प्रति मे "श्लेष लक्षण—बरनत मत बिहत"—५ ४२ तक का पाठ एक हस्तलेख मे है, इससे आगे ग्रन्थ के अन्त तक का पाठ दूसरे हस्तलेख मे है। ५ ४० तक का लेखक सादे कागज पर पेंसिल मे शिरारेखा खीचे बिना लिखता था परन्तु दूसरे लेखक ने "—बरनत मन बिहत" पाठ (जो पंक्ति के मध्य मे समाप्त होता है) से आगे, यही अधूरी पंक्ति मे पहले पेंसिल मे शिरोरेखा खीचकर लिखना प्रारम्भ कर दिया है। इसी स्थल पर नी० प्रति के भी खडित होने के संदर्भ मे यह तथ्य विशेष रूप से स्मरणीय है।

इस प्रसंग मे श्री ब्रजराज पुस्तकालय मे संग्रहीत 'टिकैत राय प्रकाश' की अपूर्ण प्रति के अन्त मे प्रतिलिपिकार की निम्नलिखित टिप्पणी द्रष्टव्य है "यतना ही ग्रन्थ मिला सो लिखा गया और जब मिलेगा तब लिखेंगे—जुगल किशोर।" ऐसा मालूम देता है कि 'भाव विलास' की आलोच्य प्रति का आदर्श भी ५ ४२ से आगे खडित था अत प्रति के स्वामी ने ग्रन्थ का शेषांश किसी अन्य प्रति मे पूर्ण किया है। गं० प्रति मे "मालती सो" ५ २०छंद "जानि है सुजानि' छंद के पहले, पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे है। इस प्रति मे तथा का० प्रति मे "जानि है सुजानि" छंद के केवल प्रथम तीन चरण ही मिलते है। समय लक्षण ५ ११ दोहा भी, जो नी० प्रति मे प्रमादवश त्रुटित है, इस प्रति मे पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख मे है।

हमने उपर्युक्त तथ्यो पर विचार करते हुए इसी शाखा की नी० हि० प्रतियाँ प्राप्य होने के कारण गं० प्रति का उपयोग संपूर्ण रूप से न करके हि० प्रति मे इसके पाठान्तर का मिलान कर लिया है।

९ दा०—अर्थात्, तरुण भारत ग्रंथावली, दारागंज, प्रयाग से प्रकाशित संस्करण। श्री लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी ने संवत् १९९१ मे 'भाव विलास' का यह सटीक संपादन प्रकाशित किया है। संपादकीय भूमिका मे पाठ के आदर्श का कोई उल्लेख नहीं है परन्तु भा० प्रति मे इसके पाठ की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दा० प्रति का आधार यह भा० मुद्रित संस्करण ही है। विस्तारभय से हम केवल थोडे से प्रमाण दे रहे हैं —

४ १० दोहा केवल भा० दा० प्रतियों मे त्रुटित है। केवल इन्ही प्रतियों मे उत्कंठिता नायिका लक्षण दोहा ४ ८६ के पश्चात् स्थान विपर्यय से कलहंतरिता नायिका का उदाहरण मिलता है, जो असंगत है। ४ १११ का सामान्य पाठ है "नाह सो नेह को नाता न नेकु जऊ पर नाह प्रतीति बढावै।" भा० प्रति मे अशुद्ध पद-भंग करने से 'ज ऊपर' पाठ मिलता है एवं यही अशुद्ध रूप दा० प्रति मे भी है। ५ २६ सामान्य पाठ है "कौन के होंद न ही मैं दुगान।" भा० प्रति

मे 'नहीं' पाठ है तथा पाठ का यही रूप दा० प्रति मे भी मिलता है।

भा० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण दा० प्रति का उपयोग हमने नही किया है।

१० ना०—अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के आर्य भाषा पुस्तकालय की सवत् १६७७ की प्रति। इस प्रति की सूचीपत्र सख्या ११८ है तथा यह लम्बाई-चौडाई मे ६॥ इच एव ७ इच है। पत्र-सख्या ११८ तथा प्रति पृष्ठ पक्तियो की सख्या १६ है। प्रति बगल से जिल्दबन्द है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है "हस्ताक्षर वटुकप्रसाद कायस्थ श्री काशी जी मे नागरी प्रचारिणी सभा के निमित्त लिखा। मार्गशीर्ष कृष्ण ७ सवत् १६७७।'

यह प्रति बिलकुल आधुनिक है। श्री मिश्र बन्धुओ ने सभा के अपने मन्त्रित्वकाल मे गधौली वाली प्रति से सभा के लिए यह प्रतिलिपि तैयार कराई थी। ग० तथा ना० प्रति मे समान पाठान्तर एव पाठ-विकृतियाँ मिलने से भी यही सिद्ध होता है। इस प्रति की पूर्वज ग० एव वशज हि० प्रति उपलब्ध होने के कारण हमने इस प्रति का परिहार्य माना है।

११ इ०—अर्थात् इडिया आफिस लाइब्रेरी, लदन, की प्रति। सपादक को उक्त पुस्तकालय के सौजन्य से 'भाव विलास' की एक प्रति की माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि प्राप्त हुई है। माइक्रोफिल्म प्रतिलिपि होने के कारण इसकी आदर्श प्रति का आकार-प्रकार ज्ञात नही हो सका है। प्रति मे कुल १०६ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ११ पक्तियाँ है। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-सवत् प्रति के अन्त म नही है।

इ० तथा का० प्रति मे समान पाठ-विकृतियाँ मिलने के कारण इस प्रति से पाठान्तर केवल प्रथम विलास तक दिये गए हैं।

प्रतियो की अंतरग परीक्षा : नी० हि० प्रतियाँ : प्रक्षेप :

'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे अन्य प्रतियो की अपेक्षा लगभग ६० छद अधिक हैं। कवि देव ने बहुधा अपने ग्रथो का आकार परिवर्धन कर एक नवीन ग्रथ अथवा उसका नया सस्करण तैयार किया है, इस सभावना के सदर्भ मे नी० हि० प्रतियो के इन अधिक छदो की परीक्षा होना आवश्यक है। इन छदो की प्रतीक सूची इस परिच्छेद के अत म दे दी गई है।

जहाँ 'भाव विलास' की अन्य प्रतियो मे एक लक्षण का एक उदाहरण है, वहाँ नी० हि० प्रतियो मे इस उदाहरण के पश्चात् पुनर्यथा शीर्षक से दूसरा उदाहरण-छद भी मिलता है। इन अधिक छदो के देवकृत न होने का सदेह इसलिए नही हो सकता क्योकि इनमे से अधिकतर छद देवकृत अन्य ग्रथो मे भी मिलते हैं तथा इनम से कुछ ऐसे छद भी, जो अन्य ग्रथो मे नही आए है, देवकृत है क्योकि ऐसे अनेक छन्दो मे भी देव की छाप है।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि ये अधिक छद नी० हि० प्रतियो मे निरपवाद रूप से लक्षण के द्वितीय उदाहरण होकर आए है, जैसे कुट्टमित हाव का उदाहरण "नाह सो नाही' २ ३४वा छद नी० हि० प्रतियो सहित सभी प्रतियो मे मिलता है किंतु इसके पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियो मे पुनर्यथा शीर्षक से 'छतिया छुवत' छद भी है। यह छद देवकृत किसी अन्य ग्रथ म नही आया है। कही-कही सभी प्रतियो मे समान रूप से मिलने वाले उदाहरण छद के बाद नी० हि० प्रतियो म एकाधिक अधिक छद आए है, जैसे प्रथम विलास के अत मे नी० हि० प्रतियो

में पन्द्रह छंद एक साथ अधिक हैं। कहीं-कहीं इन अधिक छंदों के द्वारा नी० हि० प्रतियों में विषय के किसी भेद अथवा उपभेद को सम्मिलित करने का प्रयास हुआ है, जैसे रोमाच सचारी उदाहरण के साथ इन प्रतियों में उसके एक उपभेद स्मरण रोमाच का उदाहरण अधिक है। यह सत्य है कि कवि ने हाव-भाव के परस्पर सयोग से अनेक सचारियों की उद्भावना मानी है। 'रस विलास' के सप्तम विलास में विस्तार से इनका विभाजन तथा वर्णन मिलता है। उदाहरण के लिए देव ने स्मरण सात्विक भाव के ही स्वेद स्मरण, स्तम स्मरण, प्रलय स्मरण आदि नौ भेद किये हैं। किंतु नी० हि० प्रतियों में अधिक छंद के द्वारा केवल एक रोमाच स्मरण को 'भाव विलास' में सम्मिलित किया गया है। कहीं-कहीं अधिक छन्दों मे किसी नवीन विषय का भी प्रवर्तन हुआ है, जैसे प्रथम विलास के अत मे वैभव का लक्षण-उदाहरण, भूषण का उदाहरण, अष्टागवती नायिका का उदाहरण आदि।

इन अधिक छंदों की परीक्षा करने पर यह भी ज्ञात होता है कि ये छंद सभी प्रतियों में प्राप्त उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा उसके अनुपयुक्त उदाहरण हैं। जैसे १२६ के पश्चात् चल चितवन के दूसरे उदाहरण के रूप में नी० हि० प्रतियों में निम्नलिखित छंद अधिक है —

"ग्वालि गई इक ह्याँ कि उहाँ मति रोकि सु तौ मिसु कै दधिदान कौ।
कौ तो भटू बहि भेंटी भुजा भरि नाखो निकासि कछू पहिचानि कौ।
जाई निछावरि कै मन मानिक गो रस दै रस लै अधरानि कौ।
वाहि दिना ते हिये मैं गडो वह ढीठ बडो री बडी अँखियानि कौ।।"

परन्तु चल चितवन अथवा नेत्र सचालन की ओर छंद में कहीं सकेत भी नहीं मिलता। नेत्रों से सबधित शब्द केवल अंतिम चरण के "ढीठ बडो री बडी अँखियानि कौ" पदाश में है परन्तु वह भी ढीठ नायक का विशेषण है, उसमें नेत्रों का कोई कार्य-व्यापार नहीं है।

इस अधिक छंद की तुलना में चल चितवन का सभी प्रतियों में प्राप्त उदाहरण द्रष्टव्य है :—

"हरि को इन हेरन हेरि उनै उर आलिन के उर सो परसै।
तन तोरि कै जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि कै बैन कहै सरसै।
मिस सौं मुसक्याइ चितै सकुचै कवि देव दरादर सो दरसै।
दृगकोर कटाछ लगे मरमान मनो मर सान धरे बरसै।।" १२६

—परस्पर हेरने में, मुख मोडने में, अंतिम चरण में—सपूर्ण छंद में नेत्र सचालन की प्रमुखता स्पष्ट है।

इसी प्रकार वैवर्ण्य सात्विक भाव के दूसरे उदाहरण के रूप में नी० हि० प्रतियों में आये निम्नलिखित अधिक छंद की सगति भी चिन्त्य है —

"धाई के अक मे सोई निसक ह्वै पकज सी अँखियानि भकासरी।
त्यों सपने में सख्यो अपने पिय प्रेमपगे छवि ही सों छकाछरी।
ठाढे ही ठाढे भगी भुज गाढे सु वाढी दुहू के हिये में गकागकी।
देव जगी गतियाइ गई न तिया की गई छतिया की धकाधकी।।"

इस छंद में कहीं वैवर्ण्य का संकेत नहीं है। इसके विपरीत द्वितीय चरण में स्वप्न दर्शन का वर्णन स्पष्ट है अतः यह छंद स्वप्न दर्शन का उदाहरण हो सकता है। 'सुजान विनोद' तथा 'भवानी विलास' में यह छंद इसी शीर्षक के अंतर्गत आया भी है।

अब इस छंद की तुलना में सभी प्रतियों में मिलने वाला २१६वां छंद देखें—

"सुंदरि सोवति मंदिर मैं कहुँ सापने मैं निरख्यो नंदनंद सो।
त्यो पुलक्यो जल सो झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कंदु सो।
तौ लगि चौंकि परी कहि देव सु जानि पर्यो अभिलाष अमंद सो।
आलिन को मुख देखत ही मुख भावती को भयो भोर को चंद सो॥"

छंद वैवर्ण्य सात्विक भाव का संगत उदाहरण है।

सभी प्रतियों में प्राप्त उद्वेग उदाहरण के पश्चात् केवल नी० हि० प्रतियों में निम्नलिखित छंद अधिक है—

'इभ से भिरत पहूँघाई मे घिरत घन आवत झिरत झीन झुर सो झपकि झपकि।
सोरन मचावैं नचै मोरन की पाँति चहुँ ओरन तें कौंधि जाति चपला लपकि लपकि।
बिन प्रान प्यारे प्रान न्यारे होत देव कहै नैननि तें रहै असुवा टपकि टपकि।
रतिया अँधेरी धीर न तिया धरति मुख बतिया कढ़त उठै छतिया तपकि तपकि॥"

यह छन्द उद्वेग कामदशा का अनुपयुक्त उदाहरण है। छन्द में पावस का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट है एवं इसी शीर्षक के अन्तर्गत यह 'सुजान विनोद' तथा 'सुखसागर तरंग' में मिलता है। अब इस उदाहरण के साथ सभी प्रतियों में प्राप्त निम्नलिखित उदाहरण की तुलना करें—

'बिरह के घाम ताई बाम तजि धाम पाई प्रतिकूल कूल कालिंदी की लहरी।
माते न अन्हाइ जरै जोवत जुन्हाई तातें चितै चहुँ ओर देव कहै यहै हहरी॥
बारिज बरत बिन बारे बारि बारु बीच बीच बीच बीचिका मरीचिका सी छहरी।
चंड मारतंड कैं अखंड बिधु मंडल है कातिक की राति किधौं जेठ की दुपहरी॥" ३५८

कवि द्वारा निरूपित लक्षण "भली वस्तु लागा लगै सो उद्वेग बखान" के अनुसार कालिंदी की धार, जुन्हाई, बारिज तथा कार्तिक की रात्रि जैसी सुखदायिनी वस्तुएँ भी विरह के कारण दुःखद हो रही हैं।

इस विश्लेषण से यह प्रगट होता है कि नी० हि० प्रतियों म प्राप्त अधिक उदाहरण छंद स्वीकृत लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण है।

नी० हि० प्रतियों में जहाँ भी अधिक छंदों के द्वारा आलोच्य विषय के किसी उपभेद का वर्णन हुआ है वहाँ उसके सभी उपभेदों को नहीं वरन् उसके कुछ भेदों को ही सम्मिलित किया गया है। स्मरण के केवल स्मरण रोमांच भेद को सम्मिलित करने से यह स्पष्ट है। इसी प्रकार 'रस विलास' में वर्णित दूती के दस कर्मों में से विरहास्वासन आदि केवल तीन कर्मों को ही नी० हि० प्रतियों में अधिक छंदों के द्वारा सम्मिलित करने से भी यही प्रगट होता है।

कहीं-कहीं इन अधिक छंदों के द्वारा किसी नवीन विषय को ग्रंथ में सम्मिलित करने का भी प्रयास हुआ है परन्तु इस नवीन विषय का संदर्भ अनुपयुक्त है। जैसे ग्रंथ के द्वितीय विलास में संचारी भावों के विवेचन के मध्य अष्टांगवती नायिका का उदाहरण तथा दूती-भेद का विस्तार

हुआ है। वास्तव मे इनके विवेचन का उपयुक्त स्थान चतुर्थ विलास है, जहाँ नायक-नायिका भेद विस्तार से वर्णित है, द्वितीय विलास नही।

इन प्रतियो मे अधिक छदो की उपस्थिति केवल तीन प्रकार से सभव है (१) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के प्रथम सस्करण की प्रतियाँ हैं, इस कारण ये छद कवि की अप्रौढ रचनाएँ हैं, (२) ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के आकार-परिवर्धित सस्करण की प्रतियाँ हैं, तथा (३) ये छन्द इन प्रतियो मे प्रक्षिप्त हैं। हम इन सभावनाओं पर इसी क्रम से विचार करेंगे।

(१) कवि देव ने अपने ग्रथों का एकाधिक सस्करण किया है अत असभव नही जो उन्होंने 'भाव विलास' ग्रथ के भी दो सस्करण किये हो तथा आलोच्य प्रतियाँ इनमे से प्रथम सस्करण की वशज प्रतियाँ हो। 'भाव विलास' की प्रौढता देखते हुए श्री मिश्र बधुओं ने अनुमान लगाया है कि देव ने सोलह वर्ष की अल्पायु मे रचित अपने इस ग्रथ का परिष्कार वय प्राप्त करने पर किया होगा तो "उन्होंने इसके निकम्मे छद निकालकर उनके स्थान पर पीछे से बने हुए उत्कृष्ट छद रख दिये होंगे।" ('हिंदी नवरत्न' पृ० २७६) और डा० नगेन्द्र का भी ऐसा ही मत है ('देव और उनकी कविता' पृ० ३६-३६)। इन प्रतियो के ये अधिक छद ही, जो लक्षण के मध्यम कोटि के अथवा अनुपयुक्त उदाहरण सिद्ध हुए हैं, तथा जो अन्य प्रतियो मे नही मिलते हैं, 'निकम्मे' छद हो सकते हैं।

इस सम्भावना पर मेरी निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं। सर्वप्रथम तो 'भाव विलास' के सोलह वर्ष की अवस्था मे रचे जाने का कोई प्रमाण नही मिलता। 'चढत सोरही वर्ष' दोहा प्रक्षिप्त है। (देखें ' 'भाव विलास' के अन्तिम दोहो की प्रामाणिकता' शीर्षक। यह कल्पना इस दोह को प्रामाणिक मानने तथा 'भाव विलास' के छदो की उत्कृष्टता को देखते हुए की गई है अत उपर्युक्त दोहा के प्रक्षिप्त सिद्ध होने के बाद कवि के वय तथा अनुभव प्राप्त करने पर इसके निकम्मे छन्द निकालने की सम्भावना भी केवल कल्पना पर आधारित रह जाती है। कोई भी कवि अपनी अल्पायु मे रचित कृति का परिमार्जन करेगा तो वह केवल हलके छन्दो को ही निकालकर सन्तुष्ट नही होगा, वरन् वह स्वीकृत छन्दो के पाठ मे भी सशोधन-परिवर्तन करेगा क्योंकि अल्पवय के प्रभाव से ग्रथ के केवल कुछ ही छन्द ग्रसित नही होते अपितु ग्रथ के लक्षण दोह तथा सभी उदाहरण छन्द इससे समान रूप से प्रभावित होते हैं। यदि कवि ने छन्दो को अस्वीकृत करने के साथ-साथ पाठ-सशोधन भी किया होता तो वह 'भाव विलास' की अन्य प्रतियो मे अवश्य दृष्टिगोचर होता। परन्तु 'भाव विलास' की इन तथाकथित दो कोटि की प्रतियो मे पाठ के स्तर के आधार पर ऐसा कोई अन्तर नही मिलता।

हम देख चुके हैं कि अधिक छन्दो मे अनेक अपने लक्षण के अनुपयुक्त उदाहरण हैं, अनेक उदाहरण सदर्भ-भ्रष्ट हैं तथा अनेक स्थलो पर नवीन विषय का विवेचन भी अधूरा है। सस्करण चाहे प्रथम हो अथवा द्वितीय, चाहे कवि की अल्पायु मे रचित हो अथवा प्रौढता प्राप्त करने पर, सोलह वर्ष की आयु मे ही अल्पागवती नायिका के शास्त्रीय लक्षण मे विज्ञ कवि अल्पागवती नायिका तथा दूती का उदाहरण छन्द सचारियो के मध्य नही रख देगा, ना ही वह दूती-कर्म के दस भेदो मे से केवल दो-तीन भेदो का ही उदाहरण देकर रह जाएगा। इस प्रकार भी ये छन्द कवि द्वारा इस ग्रथ मे समाविष्ट हुए नही लगते।

(२) पहली सम्भावना के विपरीत दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि जैसे कवि देव ने 'रस विलास' आदि अपने अनेक ग्रंथों के आकार में छन्दों को समाविष्ट कर ग्रंथ का नया संस्करण तैयार किया है उसी प्रकार उसने 'भाव विलास' के भी दो संस्करण किये हों। अत. ये प्रतियाँ 'भाव विलास' के ऐसे ही आकार-सवंधित संस्करण की प्रतियाँ हो सकती हैं।

हम इस सम्भावना को निम्नलिखित कारणों से अमान्य समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'रस विलास', 'कुशल विलास', 'सुजान विनोद' तथा 'सुख सागर तरंग' आदि ग्रंथों के आकार संवधित द्वितीय संस्करण भी हुए हैं परन्तु कवि ने इन सभी ग्रंथों का आकार-परिवर्धन किसी आश्रयदाता को समर्पित करने के हेतु किया है। 'भाव विलास' की स्थिति इन ग्रंथों से भिन्न है क्योंकि यह तथाकथित आकार-संवधित संस्करण किसी आश्रयदाता को समर्पित नहीं है—आज़मशाह को भी नहीं क्योंकि आज़मशाह से सम्बन्धित प्रक्षिप्त दोहे (देखें, ' 'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता' शीर्षक में भी केवल आज़मशाह को 'भाव विलास' सुनाने का उल्लेख है, उन्हें यह ग्रंथ समर्पित करने का नहीं। अत इस ग्रंथ की पाठ-वृद्धि करने का कोई कारण नहीं है। कवि देव ने अकारण अपने ग्रंथों का पाठ-परिवर्धन कभी नहीं किया है—कोई कवि नहीं करेगा। फिर, यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि इन प्रतियों में कवि-कृत पाठ-परिवर्धन के कारण अधिक छन्द मिलते हैं तो भी असगत उदाहरणों, भ्रष्ट-संदर्भ तथा अपूर्ण विषय-विवेचन का कोई संतोषप्रद कारण नहीं है। पाठ-वृद्धि करते समय देव-जैसा समर्थ कवि उन्हीं छन्दों को ग्रंथ के मूल आकार में सम्मिलित करेगा जो छन्द ग्रंथ में विद्यमान उदाहरणों की तुलना में उत्कृष्ट होंगे, वह उसी नवीन भेदोपभेद का विवेचन इस संस्करण में करेगा जिनसे ग्रंथ में निरूपित विषय पूर्ण होता हो। केवल कुछ-एक भेदों की चर्चा कर वह पहले ही सम्पूर्ण ग्रंथ का विषय-विवेचन अपूर्ण तथा खंडित नहीं करेगा। एक बार ग्रंथ के आकार-परिवर्धन में प्रवृत्त होने पर वह पुन संयम द्वारा भी बाधित न होगा।

इस प्रकार इन प्रतियों में ये अधिक छन्द 'भाव विलास' के किसी संस्करण की प्रति में कवि द्वारा समाविष्ट सिद्ध नहीं होते अत. हम इन छन्दों को नी० हि० प्रतियों में प्रक्षिप्त मानते हैं।

(३) इन अधिक छन्दों की असंगति तथा लक्षण के अनुपयुक्त उदाहरण होने आदि की जिन विशेषताओं का हमने ऊपर वर्णन किया है वे सभी विशेषताएँ इन छन्दों के प्रक्षिप्त होने का प्रमाण हैं। अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की तुलनात्मक स्थिति से भी ये छन्द प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं क्योंकि 'भाव विलास' की सभी प्रतियों में मिलने वाले नी० हि० प्रतियों के छन्दों में अत्यधिक पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ मिलती हैं परन्तु इन अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की संख्या अत्यन्त अल्प है। अनेक अधिक छन्दों में तो केवल सामान्य पाठान्तर मिलते हैं। स्मरण रहे कि यदि ये अधिक छन्द प्रतिलिपि परम्परा में कहीं प्रक्षिप्त न होकर सभी प्रतियों में मिलने वाले नी० हि० प्रतियों के अन्य छन्दों की भाँति ग्रंथ की मूल पाठ-परम्परा में चले आए 'भाव विलास' के किसी भी संस्करण के मौलिक छन्द होते तो अन्य छन्दों में तथा इन अधिक छन्दों में पाठ-विकृतियों की संख्या में इतना अन्तर कदापि नहीं हो सकता था। एक ग्रंथ की एक ही पाठ-परम्परा में चली आई नी० हि० प्रतियों में छन्दों के इन दो समूहों के मध्य पाठ-विकृतियों

का यह असाधारण अन्तर पाठ-वैज्ञानिक मान्यता के अनुसार असामान्य तथा इस कारण अविश्वसनीय है।

हमने ऊपर यह भी देखा है कि अधिक छन्द लक्षण के निरपवाद रूप मे द्वितीय अथवा तृतीय उदाहरण के रूप मे नी० हि० प्रतियो मे मिलते है। इन अधिक छन्दो मे ऐसे भी एक-दो छन्द हैं जो प्रथम उदाहरण की अपेक्षा लक्षण के अधिक उपयुक्त उदाहरण कहे जा सकते हैं। अत यह भी नही माना जा सकता कि कवि ने छन्दों को उत्कृष्टता के क्रम से रखा है। इस प्रकार अधिक छन्दो का सर्वदा द्वितीय उदाहरण के रूप मे सम्मिलित किया जाना भी प्रक्षेप की सम्भावना को पुष्ट करता है।

कवि प्रत्येक नये विषय का निरूपण करने के पूर्व एक दोहे मे उसका विस्तार तथा उसकी रूपरेखा स्पष्ट करता आया है परन्तु नी० हि० प्रतियो मे इन अधिक छन्दो के द्वारा जिन नये विषयो का समावेश किया गया है, ग्रथ मे पहले उनका कही किसी प्रसग में उल्लेख नहीं मिलता अत इस प्रकार भी इन प्रतियो की पूर्व परम्परा मे ये अधिक छन्द किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

बहुत सभव है कि काव्य-शास्त्र का अध्ययन करते हुए किसी योग्य व्यक्ति ने अभ्यास कौतुकवश 'भाव-विलास' मे देवकृत अन्य ग्रथो मे समान लक्षण के उदाहरण छद खोज-खोजकर प्रति के पार्श्व पर एकत्र किये हो तथा यह पाठ-वृद्धि प्रतिलिपि परपरा मे मूल पाठ के साथ मिल गई हो। हमारा अनुमान है कि यह कार्य सभवत देव के पौत्र तथा कवि, 'बखतेस विलास' के रचयिता श्री भोगीलाल द्वारा सपन्न हुआ है। भोगीलाल समर्थ कवि थे, देवकृत प्राय सभी ग्रथ उन्हें सुलभ थे तथा उन्होंने इन सभी ग्रथों का गभीरता से अध्ययन किया होगा अत इन ग्रथों मे लक्षण के समान उदाहरण खोज-खोजकर एक स्थान पर सग्रहीत करना भी उन्ही के वश की बात थी। कोई सामान्य प्रतिलिपिकार तो यह दुस्तर कार्य करने म समर्थ भी नही हो सकता। अधिक छदो वाली नी० हि० प्रतियो की पाठ-परम्परा अन्य प्रतियो की अपेक्षा प्राचीनतर भी है, तथा सवत् १८५७ मे प्रतिलिपि हुई का० (तथा इसी समय की इडिया आफिस की प्रति) मे य विवादास्पद छद नही हैं अत यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि का० प्रति अथवा उसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपि होने तक अधिक छद प्रक्षिप्त नही हुए थे। सवत् १८५७ तक प्रक्षेप न होने तथा भोगीलाल द्वारा इस वर्ष 'बखतेस विलास' की रचना होने के आधार पर भी उन्ही के द्वारा इन अधिक छदो के प्रक्षेप की सभावना मानी गई है।

प्रक्षेप का एक और कारण सभव है। नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त पाठ की परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि ग्रथ का मूल आदर्श प्रतिलिपि के समय अत्यत नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे था। इसी कारण अन्य उपलब्ध प्रतियो मे भी ग्रथ के अतिम अश मे पाठ-विकृतियो तथा पाठान्तरो की सख्या उत्तरोत्तर बढती जाती है। नी० प्रति तो अत म खडित ही है। इस प्रति के अत मे आया "जदपि बहुत असुद्ध प्रति तदपि सुद्ध बहु कीन' दोहा भी आदर्श प्रति के अत्यत नष्ट भ्रष्ट होने पर किसी प्रतिलिपिकार का साक्ष्य है। स्मरण रहे कि इस सग्रह की न केवल 'भाव विलास' की प्रति वरन् 'जाति विलास', 'प्रेम तरग' आदि ग्रथो की प्रतियाँ भी मूल आदर्श के नष्ट-भ्रष्ट होने का प्रमाण देती हैं। कहना न होगा कि ये सभी प्रतियाँ अपने ग्रथ की प्राचीनतम शाखा

की प्रतियाँ हैं। मेरा ऐसा अनुमान है कि 'भाव-विलास' में अधिक छंदों के प्रक्षेप का एक कारण इसके मूल आदर्श का स्थल-स्थल पर खंडित तथा जर्जरित अवस्था में होना भी है। प्रतिलिपिकार ने अपने ग्रंथ का खंडित रूप छिपाने के लिए अथवा उसकी क्षतिपूर्ति करने के हेतु अन्य ग्रंथों से छंद लेकर सम्मिलित किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

ऊपर उद्धृत दोहे के शब्द इसी संभावना की ओर इंगित करते प्रतीत होते हैं। स्पष्ट है कि प्रक्षेपकार ने प्रक्षेप के लिए देवकृत एक से अधिक ग्रंथों का आश्रय ग्रहण किया है। संभव है कि इन ग्रंथों में कोई ऐसा भी ग्रंथ रहा हो जो आज उपलब्ध नहीं है तथा अन्य ग्रंथों में न मिलने वाले छंद इसी ग्रंथ से आये हों। देवकृत एक नवीन ग्रंथ 'सुमिल विनोद' इन पंक्तियों के लेखक को मिला है। संभव है कि भविष्य में नवीन ग्रंथों के प्रकाश में आने पर सभी अधिक छंदों का आगम-स्रोत ज्ञात हो सके। इन अधिक छंदों वाली प्रतियों में ग्रंथ का 'भाव प्रकाश' नाम भी इसी प्रक्षेपकार का दिया हुआ है।

प्रक्षिप्त छंदों की सूची नीचे दी जा रही है। छंद के पूर्व दी हुई संख्या इस संपादित संस्करण के अनुसार उस स्थल का निर्देश करती है जिसके अनन्तर नी० हि० प्रतियों में प्रक्षेप हुआ है —

१ ३० "ग्वालि गई"। १ ३२ "जहाँ साज", "पावरिन पाउड़े", "फटिक सिलान", "गोरे मुख गोल", "थोरियै वैस", "जगमगे जोवन", "काहू की कर", "नद कुमार उतै", "मील के सागर", "कानन कुंडल", "ऐपन की ओप', "बरनी बघम्बर", 'लेटु लली", "देव तजौ गुन", "बारियै बैस"। २ १० "हरषि हरषि", "इगुर सो मिलि"। २ १६ 'धाइ के अंक"। २.१७ "आइ नही तन"। २.४० "कछु और उपाय", "बैरी बसत के", "खोरि मैं सेजन"। २ ६० "मानमई अबही"। २ ८१ "घाघरो घनेरो", "मोरे तें भूरिक"। २ ८२ "देह तज्यो"। २ ८८ "ना यहु नद को","धुनि धुनि सीस"। २ १०३ "मुख दु ख मैं","रीझि रीझि", "ठकुराइन नव", "उज्ज्वल अखंड"। ३ १४ "आई हौं देव"। ३ २४ "सहर सहर सोंधो", "आली झुनावत"। ३ ३४ "छतिया छुवत"। ३ ३८ "परम सलोनी", "बरसाने की ओर"। ३ ५२ "मूरति जो मन"। ३ ५४ "गूजरी ऊजरे", "कैसेऊ कोऊ करौ", "देव मैं सीस", "नागिन टरत"। ३ ५६ "देखे अनदेखे", "प्रेम की पीर", "कान्ह मई"। ३ ५८ "इभ से भिरत", "रूत बिन बासर"। ४ ७ "झूलनहारि अनोखी"। ४ ११ "भोरही श्री वृषभान"। ४ १६ "बैठी कहा धरि"। ४ १८ "मोसो कहो सो"। ४ २२ "भौन भरे सिगरे"। ४ २७ "वलि बाम लोचन"। ४ २९ "रँग लाल जरी"। ४ ३० "बैरिनि मेरि"। ४ ३२ "बालापन को मेटि", "लहलही बैस"। ४ ३३ "सावन मास नवीन"। ४ ३८ "हाथी दे सिमक", "होरी मैं आजु", "लोग लोगायन होरी"। ४ ४२ "ब्रुज म ह्वै"। ४ ४९ "जत्र झमकावति", "महल तें आई", "द्वै दिन नाहिं"। ४ ६० "खेलत आँख मिहीचनि'। ४ ६५ "बार दुवारन"। ४ ६७ "बृदावन बारन को'। ४ ६९ "ऐंहो भरे रस"। ४ ८२ "आजु गई हुती"। ४ ८३ "देखु री दरपन दौरि", "कुदन से अंग", "जोवन लौ जुवतीन", "आँखिन मैं पुतरी", "बूझो बडेन को", "गौत गुमान उतै"। ४ ८८ "रूप चुवै चपि"। ४ ९४ "सखी के सोच'। ४ १०० "बालम विरह", "पीछे पैंवा चौर"। ४ १०२ "सूझत न", "बात कही सो", "कत न परति' "नोल वधू नव", "हाँसी करी स्याम",

'आवन सुन्यो है" । ४ १०७ "रावरे पायन ओट" । ४ १०६ "कौन भयो दिन" ।

जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं, नी० हि० शाखा की आदर्श प्रति का पाठ अत्यत भ्रष्ट अवस्था मे था अत प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से स्थल-स्थल पर पाठ सशोधन तथा प्रक्षेप किया है। यही कारण है कि नी० हि० प्रतियो मे सगत तथा असगत दोनो प्रकार के पाठान्तर बडी सख्या मे मिलते है परन्तु प्रतिलिपिकार द्वारा सशोधित होने के कारण स्पष्ट पाठ-विकृतियाँ बहुत कम मिलती हैं। यहाँ हम यथासम्भव केवल ऐसे ही उदाहरण दे रहे हैं जो अर्थ अथवा प्रसग के विचार से असगत तथा अग्राह्य है।

त्रुटित पाठ :

१ ३१ अग भग उदाहरण।

"जानति ही भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत।"

अग भग के प्रस्तुत प्रसग मे उपरोक्त चरण सगत है तथा 'भवानी विलास' मे २ ४४ एव 'सुख सागर तरग' मे ७८६ पर इसी छन्द मे भी मिलता है। कदाचित् नी० हि० प्रतियो के समान आदर्श मे यह चरण त्रुटित होने के कारण इन प्रतियो म इसके स्थान पर निम्नलिखित पाठ है "ता रस सिंधु गई बुधि बूडि न बोहित धीरज कैसे बचैयत।" स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर यह पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है।

२ १०

"अचल भीन भकै भलकै पुलकै कुच कुद कदब कली सी।"

नी० हि० प्रतियो मे 'कदब' शब्द त्रुटित होने के कारण मत्तगयद सवैया के प्रस्तुत चरण म २३ के स्थान पर २० वर्ण ही रह जाते हैं और छन्दोभग होता है।

२ ३०

"गोकुल गाँव की गोपवधू बनि कै निकसी दुरि दै दै बुलायो।"

नी० प्रति म "गाँव की गोपवध बनि कै दुरि कै सबदै दै बुलायो" तथा हि० प्रति मे "गाँव की गापवधू निकसी बनिकै दुरि कै सब दै दै बुलायो" पाठ है। तीन वर्णों का 'गोकुल' शब्द इन दोनो ही प्रतिया म त्रुटित है तथा दोनो ही प्रतियो मे चरण की गति शुद्ध करने के हेतु "कै सब" पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हुआ है। यह पाठ प्रस्तुत प्रसग मे असगत होने के कारण प्रक्षिप्त माना गया है।

२ ३२

"आजुही भाजि गई सब लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै।"

नी० हि० प्रतियो मे इसके स्थान पर पाठ है "भाजि गई सब लाज हँसै अरु—रूप कै— नी०, राय कै—हि०—मोहन को मुख जावै।" इन दोनो ही प्रतियो मे तीन वर्णों का 'आजु ही' शब्द त्रुटित है तथा इसके स्थान पर प्रतिलिपिकार द्वारा "रोय कै" असगत पाठ-प्रक्षेप हुआ है।

३ १७ प्रच्छन्न सयोग का उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियो मे नही है। इसके पूर्व शृगार रस के भेदो का वर्णन करत हुए कवि ने स्वय कहा है "द्वै प्रकार सिगार रस है सयोग वियोग। सो प्रच्छन्न प्रकास करि कहत कवि विधि लोग॥"—३ १५। ३ १८ सख्या पर

प्रकाश सयोग का उदाहरण नी० हि० प्रतियो मे भी मिलता है अत इन प्रतियो मे प्रच्छन्न सयोग का उदाहरण प्रतिलिपिकार की भूल से छूट गया मालूम देता है।

४ ४५ रतिकोविदा उदाहरण छन्द केवल नी० हि० प्रतियो मे नही है। ४ ४३ सख्या के दोहे मे कवि ने प्रौढा नायिका के निम्नलिखित भेद माने हैं "लब्धापति रति कोविदा क्रान्त नाइका सोइ।" रतिकोविदा के अतिरिक्त अन्य भेदो के उदाहरण नी० हि० प्रतियों मे भी मिलते है अत यह स्पष्ट है कि यह छन्द भी इन प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गया है।

४ ८१

"सीरी बयार छिदै अधरा उरझै उर भाँगर झार मझाइ कै।"

'झार' का 'र' वर्ण त्रुटित होने के कारण नी० हि० प्रतियो मे 'झाम झाई के' पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक है तथा इससे छन्दोभग भी होता है अत यह पाठ विकृत माना गया है।

५ ४२ से आगे नी० प्रति खडित है तथा हि० प्रति मे इस स्थल से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख मे है। जैसा कि हमने अन्यत्र कहा है, यह प्रति भी नी० प्रति के समान ५ ४२ पर खडित थी परन्तु किसी दूसरी प्रति के पाठ की सहायता से इसे पूर्ण किया गया है।

स्थान विपर्यय

१ ७

'नेक जु प्रियजन देखि सुनि आन भाव चित होइ।
अति कोविद पति कविन के सुमति कहत रति सोइ ॥'

नी० हि० प्रतिया म प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से दोहे के द्वितीय पद के स्थान पर १ ५ दोहे का द्वितीय पद "सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब कोइ आ जाने से रति लक्षण के स्थान पर भाव का लक्षण दूसरी बार वर्णित होता है।

१ १६वे छन्द के पश्चात् छन्दो का स्वीकृत क्रम नी० हि० प्रतियो मे इस प्रकार है—२२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, १७, १८, १९, २०, २१, ३१, ३२। इस क्रम के अनुसार छन्दो की विषय-सूची इस प्रकार होगी—उद्दीपन के अन्तगत नृत्य-उदाहरण के पश्चात् वन-केलि उदाहरण, अनुभाव लक्षण, अनुभाव के आनन नयन प्रसन्नता आदि उदाहरण, पुन उद्दीपन के अतर्गत उपवन गमन-उदाहरण। उद्दीपन वर्णन के मध्य अनुभाव का वर्णन तथा पुन उद्दीपन की पूर्वोल्लिखित वस्तुओ का वर्णन छन्दो के स्थान-विपर्यय के कारण हुआ है। इसे दुष्क्रम मानते हुए हमने नी० हि० प्रतियो मे प्राप्त क्रम को अग्राह्य माना है।

२ ४०

'मोही सो रुठि के बैठि रहै किधौं कोऊ कहूँ कछू सोध न पावै।"

केवल नी० हि० प्रतियो मे शब्दो के क्रम विपर्यय से पाठ इस प्रकार मिलता है "कोउ कछू कहूँ सोध न पावै।"

३ ६

'मोइ गई अभिलाख भरी तिय सामने मे निरखे नँदनदन।"

'ल' में 'न' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों में 'नूतन तान' पाठ मिलता है। यह पाठ असंगत है क्योंकि प्रथम तो नवीन के अर्थ में 'नूतन' शब्द पहले ही आ चुका है अतः इसी शब्द की आवृत्ति अनावश्यक है। दूसरे, नूतन तान में मधु भार से भरे भ्रमरों का गुंजन करना और भी असंगत अर्थ है। संगत पाठ "नूतन नूत लतान" ही है।

आश्चर्य है कि 'नूत' शब्द का अर्थ समझने में अनेक विद्वानों ने भूल की है। पंडित कृष्ण-बिहारी मिश्र ने इसे 'नवीन' का पर्याय माना है—

'देवजी ने टेसू के लिए किंसु और नवीन के लिए 'नूत' शब्द का प्रयोग किया है। इस पर आक्षेप यह है कि देवजी को 'किंशुक' का 'क' उड़ाकर 'किंसु' रूप रखने का कोई अधिकार न था। इसी प्रकार 'नूतन' के 'न' को हटाकर 'नूत' रखना भी अनुचित हुआ है।......संस्कृत में 'नूतन' और 'नूल' ये दो शब्द हैं। हिन्दी में ये दोनों शब्द क्रम से 'नूतन' और 'नूत' रूप में व्यवहृत होते हैं। "अरुन नूत पल्लव धरे रँग भीजी ग्वालिनी" और "दूत विधि नूत कहूँ उर आनही" इन दो पद्यांशों में क्रम से सूरदास और कदादास ने 'नूत' शब्द का प्रयोग किया है। "

—'देव और बिहारी'—पृ० २७४-७५।

(डा० जानकीनाथ सिंह 'मनोज' भी 'नूत' का अर्थ 'नवीन' मानते हैं—'शब्द रसायन' पृ० क।)

परन्तु 'नूत' नवीन का पर्याय नहीं है। हम इस शब्द के देव कृत जो प्रयोग नीचे दे रहे हैं उनमें अनेक स्थलों पर 'नूतन नूतन' प्रयोग मिलता है। हमारे विचार से यह पुनरुक्तिप्रकाश के रूप में न आकर 'नूत' का सबधकारक रूप है।

श्री मिश्र बंधुओं के मत से 'नूत' का अर्थ नवीन होने के अतिरिक्त 'आम' भी होता है— 'नूत न नूत—जो नए नहीं अर्थात् पुराने हैं, और जो नए हैं, या दोनों दावानल से जले हुए दिखाई देते हैं। नूत आम को भी कहते हैं।" —'देव सुधा', पृ० १२८।

कदाचित् श्री मिश्रबंधुओं ने संस्कृत के 'च्युत' शब्द से भ्रान्त होकर 'नूत' का अर्थ 'आम' माना है। "आम्रश्चूत रसालश्च"। परन्तु संस्कृत के इस शब्द से हिन्दी में जो शब्द निर्मित हुआ है उसमें भी 'न' के स्थान पर 'च' वर्ण है। स्मरण रहे कि ब्रज-प्रदेश में आम्र-वृक्षों का वर्णन ब्रज वाणी में प्रायः नहीं हुआ है, इस कारण भी 'नूत' का आम्रवाची होना संभव नहीं लगता।

काशी के प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि 'नूत' आम को ही कहते हैं और यह संस्कृत के 'चूत' शब्द से ही व्युत्पन्न है परन्तु इस शब्द के अश्लील अर्थ होने के कारण चकार का नकार कर दिया गया है। प० विश्वनाथ प्रसादजी के अनुसार राजस्थान के संस्कृत के पंडित संस्कृत में भी इस शब्द का चकार सहित नहीं, नकार सहित ही उच्चारण करते हैं। राजस्थान में कई पुराने पंडितों से पूछने पर इस मत की पुष्टि नहीं हुई अतः यह मान्य नहीं प्रतीत होता। वैसे यह व्याख्या अटपटी सी लगती है।

मेरे विचार से 'नूत' शब्द वृक्षवाची है। देवकृत ग्रंथों में यह शब्द निम्नलिखित स्थलों पर आया है —

"आजु गुपाल जू बाल बधू संग नूतन नूत निकुंज बसे निसि।"
—'भवानी विलास'—८ ३४

"नतन गुलाल नूत मजरी की मालनि सो कीजे गजमुख सनमुख सनमान को।"
—'भाव विलास'—५ ३६

"कोकिल रागनि नूत परागनि देखु री बागनि फागु मची है।"
—'सुजान विनोद'—६ २२

"चपक दाडिम नूत महाडर पाडर डार डरावनी फूली।"
"तैसिय नूतन नूत नतान मे गुजत भौंर भरे मधु भारनि।"
—'भाव विलास'—१ १७

"नूतन महल नूत पल्लवनि छ्वै छ्वै स्वेद लवनि सुखावत पवन उपवनसार।"
"देनकी हेत न नून सो नेह नदव न कुद न लौंग सो लेख्यो।"
—'सुमिल विनोद'—२ २०

"घोर लगै घर बाहिरहू डर नूत पलास लगै पजरे मे।"
—'रस विलास'—७ ६२

"नूतन नूतन के वन वेप न देखन जानो तो हौं दुरि दौरी।"
—'भाव विलास'—३ ७३

इन सभी उदाहरणो मे 'नूत' शब्द किसी वृक्ष के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। मॉनियर विलियम्स कृत संस्कृत कोष मे एक शब्द मिलता है 'नुत्त', अर्थ है 'एक पौधे का नाम।' इसी शब्दकोष मे दूसरा शब्द है 'नूद', अर्थ है 'शहतूत के वृक्ष का एक प्रकार'। हिंदी मे शहतूत के लिए 'तूत' शब्द प्रयोग मे आता ही है अत मेरे विचार से यह 'नूत' शब्द की व्युत्पत्ति 'नुत्त' अथवा 'नूद' शब्द से है तथा यह शहतूत के किसी प्रकार के वृक्ष के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है।

१ १६

"न्हान पमारी सो प्यारी के ओठ तें छूटो मजीठ निहारि नजीक सों।"

नी० हि० प्रतियो मे 'ज' 'न' का भ्रम होने से 'ननीक' पाठ हो गया है। निहारने के साथ निकट अथवा नजदीक के अर्थ मे 'नजीक' पाठ ही सगत है।

२ ७

"क्रोध हर्ष सताप श्रम घातादिक भय लाज।
इनतें सजल शरीर सो स्वेद कहत कविराज॥"

'य' मे 'म' का भ्रम होने के कारण 'भम' तथा इसे सशोधित करने के कारण 'भ्रम' पाठ नी० हि० प्रतियो मे मिलता है। 'भ्रम' के कारण शरीर का सजल होना असगत है अत हमने इस पाठ को लिपिजन्य विकृति माना है।

२ ३८

"मैन गर जोर मारे पवन झकोरनि सो आई है उमगि छिति छानी नीर भरिये।"

'मारे' मे दृष्टि-भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों मे 'मोर' पाठ मिलता है। यह पाठ इस प्रसग मे असगत है।

२ ५८

"देव हुवै पथ आइ भरो चढ़ि चाई गलीन्ह के रस उत्तर।"

'हू' से 'हु' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियों में "देव हुवै" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ निरर्थक है।

२ ६८

"कोकिलऊ कल कोमल बोल बिसारि कै आजु अलोप कढ़े हैं।"

'प' से 'य' का भ्रम होने के कारण नी० हि० प्रतियों में 'अलोय कढ़े हैं' पाठ मिलता है। कोकिला की मधुर वाणी ही प्राय सुनाई देती है परन्तु स्वयं पक्षी पत्तों के झुरमुट में बैठे के कारण बहुधा दिखलायी नहीं देता, इसकी मधुर वाणी ही सुनाई देती है। दूसरे, आम्र मंजरियों के बीच में छिपी कोकिला की वाणी सुनाई देती है—यह भी ग्रीष्म ऋतु में ही। अन्य ऋतुओं में यह पक्षी अदृश्य हो जाता है। इस अर्थ में 'अलोप' पाठ सर्वथा संगत है एवं उपर्युक्त प्रतियों का 'अलोय' पाठ निरर्थक है।

३ ६१ गुरु मान उदाहरण।

"सौति की माल गुपाल गरे लखि बाल कियो गुरु रोष उग्यारो।"

कवि ने इस उदाहरण से पूर्व मान भेद दोहे में गुरु मान का लक्षण इस प्रकार दिया है —

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम लखें नाम सुनि सो दरसन लघु जान।"

—३ ६०

तदनुसार उपर्युक्त उदाहरण छन्द में नायिका के रोष का कारण गोपाल के कंठ में सौत की पहनाई माला को देखना है अतः 'सौति की माल' पाठ संगत है परन्तु 'स' से 'म' का भ्रम होने से नी० हि० प्रतियों में "मोती की माल" पाठ है। हमने इस पाठ को इसलिए असंगत माना है क्योंकि गोपाल के कंठ में मोती की माल देखकर नायिका के कुपित होने का कोई कारण नहीं रह जाता।

पर्याय .

१ १७

"तैसिय नूतन नूत लतान मैं गुंजत भौंर भरे मधु भारनि।"

नी० हि० प्रतियों में "रस भारनि" पाठ मिलता है।

१ १६

"न्हात पमारी सों प्यारी के ओठ तें छूट्यो मजीठ निहारि नजीर सों।"

नी० हि० प्रतियों में 'तमोर' पाठ है। स्नान करते समय किसी रेशमी वस्त्र से ओठ मलने पर उसमें लगी लाल मंजिष्ठा का छूटना भी संगत पाठ है तथा ओठ में लगे पान की लाली का निकलना भी संगत है।

१ २०

"कवि देव सखी के सिखाये मरू कै नह्यो हिय नाह को नेह नयो।"

नी० हि० प्रतियो मे 'नह्यो' के स्थान पर पाठ का सरलीकृत रूप दिया हुआ है "भयो हिय नाह के ··।"

२ ८

'हेलिन खेलन के मिस सुदरि केलि के मदिर पेलि पठाई।"

नी० हि० प्रतियो मे 'केलि के भौन मैं" पर्याय है।

२ ५२

"नूपुर पाँइ उठे भननाइ सु जाइ लगी घन धाइ झरोखे।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ का पर्याय है "जाइ लगी अतुराइ झरोखे।"

३ २०

"एहि भाँति विविध विधि विबुधवर।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ मिलता है "विविध विधि कविराज वर।"

३ ३२

"स्याम के अग सो अग लगावै न ··।"

नी० हि० प्रतियो मे पाठ है "अग छुआवै न।"

३ ४२

"वियोग चौविधि जान।"

नी० हि० प्रतियों मे पाठ-पर्याय है "विप्रलभ यों जान।"

४ ६२ परकीया भेद।

"ताहि परोढा कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन।
गुपित चेष्टा परोढा कन्या पितु आधीन॥"

नी० हि० प्रतियो मे 'परोढा' का पर्याय है "ताही ऊढा'। 'परोढा' का अर्थ भी 'ऊढा' होता है, निम्नलिखित उदाहरण से यह प्रमाणित है —

"तासो परऊढा कहत और अनूढा नारि।
मात पिता आधीन जो तरनि सु काम कुमारि॥"

—'सुमिल विनोद'—२ २५

पाठ-विकृति :

१ ८

'देव मुरझाइ उरमाल उरझाइ कह्यो दीजो सुरझाइ बात पूछो छल छेम की।"

उलझी हुई उरमाल को सुलझाना तो श्रीकृष्ण से वार्तालाप करने का केवल एक व्याज है। परन्तु नी० हि० प्रतियो की परम्परा की किसी आदर्श प्रति मे 'मुरझाय' शब्द पार्श्व पर होने के कारण 'उरझाय' के पश्चात् दृष्टि-भ्रम से 'मुरझाय' होकर आया है अत इन प्रतियो मे चरण का पाठ है "देव उरमाल उरझाय मुरझाय कह्यो ·।" लेकिन यदि नायिका ने अपनी

उलझी हुई माला राय की गुत्थी सी तो फिर शून्य से पहले को यह क्या गया ?

१ ६

"गोरी में धार चली दुलही गुरु लोगन भूषन भेष बनावै।"

'चली' के सान्निध्य के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियों में "गोरी की धार चली" पाठ हो गया है। गोरी की धार कोई विशिष्ट प्रकार की गन्ध अथवा शोभा नहीं होती अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार की असावधानता पाठ-विकृति माना है। यहाँ 'धार' शब्द गोरि के अर्थ में 'आधार' का संक्षिप्त रूप है।

१ १६

"कालिंदी कूल कदंब के कुंज करें तम तोम तमासो को तामें।"

'तम तोम' का अर्थ है 'अन्धकार', देखें "दूरि करो दीपक निरंतर भीनी सेज के समीप छिपायो तम तोम को।"—'शृंगार विलास'—२ १४१। कदाचित् 'तोम' (महत्त्व तोम) का अर्थ ठीक अथवा समझ न सकने के कारण नी० हि० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति में पाठ-परिवर्तन किया है 'करत मनोज तमासो को तामें।" यहाँ रति-प्रसंग की चर्चा अप्रासंगिक है अतः हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है।

२ २३ निर्वेद लक्षण।

"चिंता अश्रु प्रकास करि अपनोई अपमान।
उपजहि मत्सर जहँ सो निर्वेद बखान॥'

नी० हि० प्रतियों में दोहे का पाठ विकृत रूप में इस प्रकार मिलता है 'चिंता अश्रु प्रकास करि अति आग उर आन। उपजहि मानिक भाव जहँ सो निर्वेद बखान॥" अर्थात् हृदय में कामदेव की स्थापित कर ऊपर से चिंता करना एवं आँखों में आँसू भरना निर्वेद का असंगत लक्षण है अतः हमने इस पाठ को भी प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त माना है।

२ २८ तृतीय-चतुर्थ चरण।

"और में भूले भए गति मैं जब तें जदुराई की ओर चितो रत।
मोहि भट्ट तब तें निसि दौस चितौनहीं जात चवाइन को सुत॥"

प्रस्तुत प्रसंग में 'ओर' पाठ संगत है परन्तु प्रतिलिपिकार की दृष्टि भूल से 'जदुराइ' के अंतिम दो वर्णों पर पड़ने से नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर 'राइ' पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण असंगत है।

२ ३१ मद लक्षण।

"सो मद जहँ आसव पिये हरष होय हिय बीच।
नींद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच॥"

नी० हि० प्रतियों में प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त पाठ मिलता है "सो मद जहँ आसक्त पिय।" यह पाठ मद संचारी का असंगत लक्षण होने के कारण विकृत माना गया है। अगले उदाहरण छंद में भी इन प्रतियों का पाठ असंगत तथा स्वीकृत पाठ पुष्ट होता है —

"आसव सेइ सिखाये सखीन के सुंदरि मंदिर मैं सुख सोवै।
सापने मैं बिछुरे हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै।

देव कहै उठि कै विरहानल आनँद के अँसुवान समोवै।
आजुही भाजि गई सब लाज हँसै अरु मोहन को मुख जोवै ॥"

२३३ श्रम लक्षण।

"अति रति अति गति तें जहाँ उपजै अति तन खेद।
सो श्रम जामें जानिये निस्सहता प्रस्वेद ॥"

नी० हि० प्रतियो मे 'गति' के स्थान पर पुन 'रति' पाठ होने से उसी शब्द की असगत पुनरुक्ति होती है।

२३८

"खरी दुपहरी बीच तरुन तरु नगीच सही परे तरनि के करनि की जोति है।"

दोपहर के समय सूर्यातप इतना तीव्र हो चला है कि केवल हरे-भरे वृक्षो के नीचे ही किसी प्रकार ठहरा जा सकता है परन्तु ऐसे भीषण आतप मे भी नायिका केवल श्याम के अनुराग से आकृष्ट होकर अपने घर से निकल पडती हैं। नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य-स्थल पर "तरुन तरुन गावै" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि अर्थ के विचार से यह पाठ प्रस्तुत प्रसग मे सर्वथा असगत तथा अग्राह्य है। इन प्रतियो की आदर्श प्रति मे इस स्थल पर पाठ भ्रष्ट होने के कारण यह विकृति उत्पन्न हुई है।

२३९ चिंता लक्षण।

"इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ।
स्वाँस ताप वैवरन जहँ चिंता कहिये सोइ ॥"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियों मे पाठ है "स्याम ताप ह्वै रैन दिन"। 'स्याम ताप' का सगत अर्थ नही बैठता तथा यह विकृति 'स्वाँस ताप' से ही समव है अत यहाँ भी प्रतिलिपिकार ने अपने आदर्श प्रति के खडित होने के कारण यह पाठ-प्रक्षेप किया है।

२५५ दुख लक्षण।

"उत्तम मध्यम नीच श्रम लघु चिंता अप्रसाद।
महा सोक ये धन गये हित समों सु विषाद ॥"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर "वनुग को" पाठ मिलता है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण विकृत माना गया है।

२७२

"मानति नाहि निरौछेहि तानति बान सी आँगै कमान सी भौंहैं।"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर असगत पाठ है "तान औ।"

२९२ त्रास लक्षण।

"घोर स्रवन दरसन सुमृनि तन पुलक भय गात।
होइ छोम जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात ॥"

अर्थात् भयावनी वस्तु देखने से, उसकी आवाज सुनने से अथवा उसका स्मरण होने से जब मन विचलित हो जाय तो उसे त्रास कहते हैं। इस लक्षण के उदाहरण छद मे भी ऐसा ही वर्णन है। परन्तु नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर असगत पाठ मिलता है "वैर सब"।

२ ६८

"काम कमान तें बान उतारिहैं देव नही मधु माधव रैहै।"

अर्थात् कामदेव भी सर्वदा इसी प्रकार मन-मथन न करते रहेगे और यह मधुऋतु भी सदा नही बनी रहेगी, इसका भी कभी अत होगा ही। स्मरण रहे कि 'मधुऋतु' के अर्थ मे केवल 'मधु' शब्द का प्रयोग कवि ने अन्यत्र भी किया है। केवल एक स्थल उदाहरण के लिए प्रस्तुत है —

"केतकी रजनि अरगजनि मधुर मधु राका की रजनि राजे रजित चहूँ कोदनि।"

—'कुशल विलास'—५ १५

नी० हि० प्रतियो मे "मधु माधव रैंहैं" के स्थान पर विकृत पाठ मिलता है "मधु ध्याधव रैंहै।" अर्थ के विचार से यह पाठ असगत है।

२ १०३

"देव कहै दुरि दौरि कुटीर मैं आपनो बैर बधू उहि लीन्हो।"

"उहि लेने' का अर्थ है उगाह लेना, वसूल कर लेना। परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रदेश की बोली मे 'वहि' का रूपांतर है अत नी० हि० प्रतियो मे 'वहि लीनो' पाठ मिलता है। 'वहि' शब्द 'बधू' के साथ सलग्न मानने पर भी अर्थ की सगति नहीं बैठती है।

३ ३७

"मन प्रसाद पति बस करन चमतकार अति होइ।
सकल अग रचना ललित ललित बखानै सोइ॥"

आदर्श प्रति का पाठ इस स्थल पर अपठ होने के कारण प्रतिलिपिकार ने अपनी ओर से पाठ सशोधित किया है—"अति वास कर" परन्तु यह ललित हाव का असगत उदाहरण है अत यह पाठ अग्राह्य माना गया है।

३ ५६ मान लक्षण।

पति परपतिनी रति करत पतिनी करति जु मान।
गुरु मध्यम लघु भेद करि ताहू त्रिविधि बखान॥"

अर्थात् अपने पति के शरीर पर पररति के चिह्न देखकर पत्नी जो मान करती है उसके गुरु, मध्यम तथा लघु, ये तीन भेद होते हैं। अत उपर्युक्त दोहे का पाठ सगत है परन्तु नी०हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर विकृत पाठ इस प्रकार मिलता है "ताहि अवध्य बखान"। यह पाठ मानभेद के प्रसग मे अर्थ के विचार से असगत है अत हमने इस पाठ को प्रतिलिपिकारकृत प्रक्षेप माना है।

४ ६१ परकीया लक्षण।

"जाकी गति उपपति सदा पति सो रति मति नाहिं।
सो परकीया जानिये ढकी प्रीति जग माहिं॥"

नी० हि० प्रतियो में आलोच्य स्थल पर 'उपजैं' पाठ होने से परकीया का लक्षण स्पष्ट नही हो पाता। पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से अनुरक्त होना परकीया की मुख्य विशेषता है अत 'उपपति' पाठ सगत एव 'उपजैं' पाठ प्रस्तुत प्रसग मे असगत माना गया है।

४ ६५

"झँझरी के झरोखनि ह्वै कै झकोरति रावटीहू मैं न जाति सही।"

परकीया गुप्ता नायिका अपना परपुरुष प्रसग छिपाने के हेतु अपने हार टूटने तथा अधर के क्षत-विक्षत होने का कारण तीव्र गति मे बहती बयार को बताती है। यह बयार रँग रावटी मे बने वातायन से सीधे नहीं आती, वातायन मे लगी झँझरी से अशत अवरुद्ध होकर उसका वेग कुछ मन्द पड जाता है परन्तु फिर भी उसकी गति असहनीय है। इस प्रकार "झँझरी वाले झरोखे" के अर्थ मे "झँझरी के झरोखनि" पाठ सगत है परन्तु निकट के 'झकोरनि' शब्द के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से नी० हि० प्रतियो मे "झँझरी के झकोरन ह्वै कै झकोरति" पाठ मिलता है। इसका अर्थ "झँझरी की झकोर" करने पर दूसरे 'झकोरति' के साथ इस अर्थ की सगति नहीं बैठती अत हमने इस पाठ को विकृत माना है।

४ ७५

"चित्र स्वप्न परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु।
देस काल भंगीनु करि श्रवन तीनि विधि जानु॥"

कवि देव ने श्रवण तथा दर्शन के उपर्युक्त तीन-तीन भेद अपने 'कुशल विलास' आदि अन्य ग्रथो मे भी माने हैं किंतु नी० हि० प्रतियो में सम्भवत 'भगीन' के वर्णों मे विपर्यय होने से 'गभीन' तथा इससे 'गभीर' पाठ हो गया है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अग्राह्य है। इसी प्रकार इन प्रतियो मे 'तीन' के स्थान पर 'चारि' पाठ मिलता है। जब कवि न श्रवण के केवल तीन ही भेद किये हैं तो पाठ भी 'तीनि' होना चाहिए। 'चारि' पाठ प्रतिलिपिकार द्वारा लेखन-प्रमाद से हो गया मालूम देता है।

४ ७७

"ऊँची अटा चढ़ि सेज सजी तो कहा हरि जो न यहाँ निसि जागे।"

चरण का अर्थ तथा प्रसग दोनो स्पष्ट हैं परन्तु प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुआ नी० हि० प्रतिया का 'सेज चढ़ी' पाठ 'चढ़ी' शब्द की अनावश्यक पुनरावृत्ति होने के कारण अनुचित है। अर्थ के विचार से भी 'सेज चढने' से प्राय सुरति का भाव लिया जाता है परन्तु यहाँ सुरति का कोई प्रसग नहीं है। प्रतिलिपिकार द्वारा यह प्रमाद इसके पहले "अटा चढि" पाठ होन के कारण सम्भव है।

४ ११० अधमा लक्षण।

"बिनु दोषहि रूठं तजै बिना मनाये मानु।
जाको रिस रस <u>हेतु</u> बिनु अधमा ताहि बखानु॥"

अर्थात् जो नायिका अकारण बैर प्रीति मान ले उसे अधमा कहते हैं। रेखाकित स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से 'होत' असगत पाठ मिलता है। इस पाठ मे अर्थ की असगति है अत हमने इसे अग्राह्य माना है।

भा० सा० प्रतियाँ : त्रुटित पाठ ·

५ १-२

"कविता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलकार पहिरे निकट अद्भुत रूप लखाति॥

ताही तें कवि देव कहि अलकार की भाँति।
मुनि मत के अनुसार तें लै कछु लच्छन जाति ॥"

केवल भा० सा० प्रतियो मे उपर्युक्त दोहे नही हैं, ज० प्रति मे पचम विलास न होने के कारण इस प्रति की स्थिति अनिश्चित है। कवि ने अन्य विलासो के प्रारम्भ मे प्रत्येक नवीन विषय का समारम्भ करते हुए प्राक्कथन के रूप मे दोहे दिये हैं तथा उपर्युक्त दोहो मे से प्रथम 'काव्य रसायन' मे अलकार सम्बन्धी नवम विलास का भी प्रथम दोहा है अत हमने माना है कि ये दोहे भा० सा० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के प्रमाद से छूट गये हैं।

५, १८ "राधे के रूप" अतिशयोक्ति उदाहरण छद केवल भा० सा० प्रतियो मे त्रुटित है। इसके पूर्व कवि ने ५ १६-१७ सख्या के दोहो मे रूपक तथा अतिशयोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है —

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यों मानों तूल।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल॥
जहँ उपमा मैं ये न पद सोई रूपक जान।
सीमा तें अति वरनिये अतिसै ताहि बखान ॥"

अन्य प्रतियो मे इन दोनो अलकारो के उदाहरण पृथक्-पृथक् छद मे दिये है परन्तु केवल भा० सा० प्रतियो मे अतिशयोक्ति का उदाहरण नहीं है। रूपक उदाहरण से अतिशयोक्ति अलकार का लक्षण स्पष्ट नही होता अत यह नही कहा जा सकता कि कवि ने एक ही उदाहरण मे दोनो अलकारो का उदाहरण समाविष्ट कर लिया होगा।

प्रक्षेप

१ १ वदना के पूर्व केवल भा० सा० प्रतियो में निम्नलिखित दोहा अधिक है —

"राधाकृष्ण किसोर जुग पग बदौं जगबद।
मूरति रति शृगार की शुद्ध सच्चिदानन्द॥"

यही दोहा 'प्रेम चन्द्रिका मे १ ३ तथा 'कुशल विलास' मे १ २ सख्या पर भी आया है। आलोच्य ग्रथ मे "श्री वृदावन चन्द" १ १ छप्पय मे भी कवि के आराध्य श्रीकृष्णचद्र की वन्दना होने से यह दोहा अनिवार्य रूप से आवश्यक नही है। भा० सा० प्रतियो के अतिरिक्त अन्य सभी प्रतियो मे प्रक्षेप अथवा प्रतिलिपि-सबन्ध न मिलने के कारण हमने भा० सा० प्रतियो म इस दोहे को देव कृत उपरोक्त अन्य ग्रथो से प्रक्षिप्त माना है।

स्थान-विपर्यय .

२ ४०

"जानति नाहि रहे हरि कौन के ऐसी धौं कौन वधू मन भावै॥"

चरण मे 'रहे' शब्द का प्रयोग कुछ विचित्र अवश्य है क्योकि इसे नायिका के लिए प्रयुक्त मानने पर पदान्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहि रहे' परन्तु इसमे लिंग सम्बन्धी असगति है। इसके विपरीत इसे हरि के साथ जोडने पर अन्वय इस प्रकार होगा "हौं जानति नाहि

त हरि कौन के ह्वं रहे हैं" । इस प्रकार अर्थ करने मे निश्चय ही शब्दो की खींचतान होती है रन्तु कवि मे दूरान्वय की विशेषता अन्य स्थलो पर भी मिलने के कारण हम चरण का अर्थ सी प्रकार करना उचित समझते हैं। सभवत अर्थ करने में कठिनाई होने के कारण भा० सा० नियो मे प्रतिलिपिकार के सचेष्ट प्रक्षेप से अथवा प्रमादवश 'रहे' के स्थान पर 'हरे' पाठ मलता है। 'हरि' के साथ उसके सबोधन कारक का रूप 'हरे' असगत है।

३५ बिब्बोक लक्षण।

"प्रिय अपराध धनादि मद उपजै गर्व विकार।
कुटिल डीठि अवयव चलन सो बिब्बोक विचार॥"

यहाँ 'विकार' शब्द गर्व की दूषित वृत्ति के अर्थ म सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो म प्रतिलिपिकार के लेखन-प्रमाद से वर्णो का विपर्यय हो गया है 'किवार'। हमने इस पाठ को प्रस्तुत प्रसग मे अर्थ के विचार से असगत होने के कारण विकृत माना है।

पाठ-विकृति :

२ १०० प्रथम-द्वितीय चरण।

"कहु कौन की चपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए तामैं कहा बिलसैं विधि श्रीफल से धरि धूलि रहे॥

कवि ने नायिका के रूप का साग रूपक मे वर्णन किया है। यह छद तर्क-वितर्क का उदाहरण है अत द्वितीय चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "इस स्वर्ण लता मे यह कौन सी वस्तु शोभायमान हो रही है जो आकार एव कठोरता मे श्रीफल को भी लज्जित करने वाली है।" अत "उस चारु चपक लता मे" के अर्थ मे 'तामैं' पाठ सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'तीमैं' पाठ होने से असगति उत्पन्न होती है। 'तीमैं' को 'तिय मैं' का रूपान्तर भी नही स्वीकृत किया जा सकता क्योकि तब छद मे रूपक का चमत्कार नष्ट हो जाता है।

३ २७ विभ्रम लक्षण।

"उलटै जहँ भूषन बसन भेष हँसै जन जाहि।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम बरनहु ताहि॥"

भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर प्रतिलिपिकार के प्रमाद से 'वचन' असगत पाठ मिलता है। विभ्रम हाव मे 'वचन' नही बदलते वरन् हडबडी मे बसन ही बदल जाते हैं, यह इस लक्षण के निम्नलिखित उदाहरण से भी प्रगट होता है —

"स्याम सो केलि करी सिगरी निसि सोत तें प्रात उठी यहराइ कै।
आपने चीर के धोखे बधू पहिर्यो पट पीत भटू भहराइ कै॥"

३ ४६

"देह दुहू की दहै बिनु देसे सु देखि दसा निसि सोवत को तौ।"

भा० सा० प्रतियों में प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप से 'देह' के स्थान पर 'देव' पाठ मिलता है। यह पाठ कविकृत नहीं हो सकता क्योंकि 'देह' के अभाव मे चरण सज्ञा पद से रहित हो जाता है और व्याकरण-दोष आता है तथा चरण का अर्थ करने मे भी असगति उत्पन्न होती

है—फिर कौन सी वस्तु दहती है ?

३ ७६ प्रथम दो चरण।

"सुधाधर से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा बरसै रदपाति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन कोमल कांति॥"

द्वितीय चरण मे उपमेय-उपमान के युग्म हैं प्रवाल पाणि, मृणाल भुजा, लता-तन। परन्तु भा० सा० प्रतियों मे आलोच्य स्थल पर 'लतान की' पाठ होने से छद मे कवि की वर्णन शैली के विपरीत "लतान की कोमल कांति" पद मृणाल भुजा का विशेषण पद हो जाता है। कवि ने नायिका के सुन्दर सुलप शरीर की तुलना लता से अनेक स्थलो पर की है, केवल 'काव्य रसायन के नवम विलास मे निम्नलिखित पाँच स्थलो पर ऐसे प्रयोग मिलते हैं — ९ ३८, ९ ४२, ९ ४७, ९ ७३ तथा ९ ७९।

४ २७ अतिम दो चरण।

"भेटि वियोग समेटि सबै सुख सा भटू भेंटि भटू जुग जीहै।
या मुख सुद्ध सुधाधर तें अधरा रस धार सुधारस पीहै॥"

सखी नायिका से कह रही है, नायक जब तुम्हें अपने हृदयालिगन मे आविष्ट करेंगे तो वह तुम्हारे समस्त दु खो को एकत्रित कर नष्ट कर देंगे। ऐसे भटू नायक युग-युग जियें। (तुलना- ' मन के न मेटे दुख सुख क्यो समेटे जाहि मदन भपेटे जो न भेंटे भुज भरि कै।"—'कुशल विलास'—८ १२।) भा० सा० प्रतिया मे प्रतिलिपिकार ने 'भटू' की आवृत्ति को अनावश्यक मान कर ' सुख सो भरि भेंटि भटू जुग जीहै" पाठ सशोधित किया है। "भर भेंटना" पाठ उपरोक्त व्याख्या की तुलना मे प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त ज्ञात होता है अत हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

४ ११४ सखी उदाहरण।

"चाइ सो चित्त प्रसन्न करै रस रग मे सग सयान सिखावै।"

'सयान' का अर्थ है 'सयानपन'—"मेरो अयान सयान तिहारो।", "देव रच्यो अग अगनि रग बढ्यो सु सयान अयान न लूझ्यो।"—'कुशल विलास'—४ ३२। आलोच्य चरण का अर्थ इस प्रकार होगा "वह चतुर सखी अपने स्नेह से नायिका का मनोरजन भी करती, उसे रस-रग की शिक्षा भी देती है और साथ ही साथ उसे सयानपन भी सिखलाती है।" भा० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'सयानि' पाठ मिलने से इसके सखी के विशेषण रूप म प्रयुक्त होने का भ्रम होता है।

लिपिजन्य विकृति

२ २९ असूया लक्षण।

"क्रोध कुबोध विरोध तैं सहै न पर अधिकार।
उपजै जहँ जिय दुष्टता सो असूया अवधार॥'

भा० सा० प्रतियो मे 'पर' के स्थान पर 'यह' असंगत पाठ मिलता है। यह पाठ विकृति 'प' मे 'य' तथा 'र' मे 'ह' का भ्रम होने से सभव है।

२ ३८

"मैन सर जोर मारे पवन झकोरनि सों आई है उमगि छिति छाती नीर भरिये ।"

'धरती' के अर्थ में 'छिति' शब्द यहाँ प्रसग-सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों में 'त में 'न' का भ्रम होने से 'छिनि' विकृत पाठ मिलता है ।

२ ५०

"तौ लगि आइ गयो उत तें सु नगीच मनो चित बीच परे च्वै ।"

वन कुज में खेलते-खेलते राधिका का हार किसी झाड़ी मे उलझ गया । तभी वहाँ रसिक कन्हाई आ पहुँचे—ऐसे जैसे हृदय मे बैठे रहे हों और वहाँ से निकल पडे हो। इस प्रसग में प्रस्तुत स्थल पर रेखांकित पाठ सगत है परन्तु भा० सा० प्रतियों के इसके स्थान पर 'छ्वै' पाठ मिलता है। यह पाठ-विकृति सयुक्ताक्षर मे भ्रम होने से सभव है। अन्तिम चरण के "छल सा छतिया छ्वै" पाठ मे भी यही शब्द होने के कारण यह शब्द यहाँ सगत नही माना गया है।

२ ६७ विप्रतिपति उदाहरण के अन्तिम दो चरण ।

"कवि देव कहैं कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मैं ध्वै ।
न सुने न पै काहू कहूँ कबहूँ कि मयक के अक मैं पकज द्वै ।।"

कवि नायिका के कमल सदृश नेत्रों को देख कर मन ही मन तर्क वितर्क कर रहा है "कमल के समान ये नेत्र युग्म चन्द्रमडल मे सुशोभित हो रहे हैं। पर नहीं, चन्द्रमा के अक मे त मृग शावक की ही स्थिति लोक प्रसिद्ध है। यह तो किसी से कहीं-कभी नही सुना कि चन्द्रमा में दो सुन्दर कमल खिले हैं। वास्तव मे नकारात्मक 'न पै' से ही कवि-कथन की विप्रतिपति सिद्ध होती है। 'न' में 'त' का भ्रम होने के कारण सा० प्रति मे 'तपै' एव इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति मे 'तवौ' पाठ मिलता है। सा० प्रति के पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है, भा प्रति का पाठ भी अर्थ के विचार से असगत है क्योंकि इस अर्थ मे यह चरण के वक्तव्य का खण्ड नही करता ।

तुलना—

"रूप के मन्दिर यों मुख मैं मनि दीपक से दृग द्वै अनुकूले ।
दर्पन मैं मनि मीन सलील सुधा सर नील सरोज से फूले ।
देव जू सूरमुखी मृदु फूल मैं भीतर भौंर मनो भ्रम भूले ।
अक मयकज के दल अकज पकज मैं मनो पकज फूले ।।"

—'काव्य रसायन'—६ ३

३ २६

"मोहनलाल को मोहन को यह पँन्हति मोहनमाल अकेली ।।"

'न्ह' सयुक्ताक्षर मे 'ध' का भ्रम होने के कारण भा० सा० प्रतियों मे आलोच्य स्थल प 'पँधति' पाठ मिलता है । यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है।

नी० हि० का० प्रतियाँ : स्थान-विपर्यय :

५ १५-१६

"सम समान जैसे जनो जिमि ज्यो मानो सूल।
और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल ।।
जहँ उपमा मैं ये न पद सोई रूपक जान।
सीमा तें अति वरनिये अतिसै ताहि बखान।"

नी० हि० का० प्रतियो मे प्रथम दोहे के बाद रूपक उदाहरण ५ १७ वा छन्द है। इस प्रकार "और सदृश कवि देव ए पद उपमा के मूल" के बाद रूपक का उदाहरण तथा उसके बाद रूपक का लक्षण आना स्पष्ट दुष्क्रम है।

पाठ-विकृति :

१ १८

"देव दुहन के देखत ही उपज्यो उर मैं अनुराग अनूनो।
डोलत हैं अभिलाख भरे सुलग्यो बिरहज्वर अग अभूनो।
ती लौं अचानक ह्वै गई भेंट इत उत ठौर निहारत सूनो।
प्रीति भरे अरु भीति भरे बन कुज मैं कपत दपति दूनो ।।"

वेपथ सात्विक भाव शीत, क्रोध, भय तथा श्रम आदि से होता है एव इसम कप अनुभाव होता है। आलोच्य स्थल पर नी० हि० प्रतियो म 'प्रीति भरे अनुराग भरे' तथा का० प्रति म 'प्रेम भरे अरु प्रीति भरे' पाठ है। प्रम, प्रीति तथा अनुराग प्राय समानार्थी शब्द हैं, इसके विपरीत अन्य प्रतियो मे प्राप्त पाठ के अनुसार कप का कारण भीति तथा अनुराग दोनो है अतः यही पाठ सगत माना गया है।

५ २६ सहोक्ति उदाहरण।

"प्यारी के प्रान समेत पिया परदेस पयान की बात चलावैं।
देव जू छोभ समेत छपा छतिया मैं छपाकर की छवि छावैं।
बोलि अली बन बीच बसत को मीचु समेत नगीच बतावैं।
काम के तीर समेत समीर सरीर मैं लागत पीर बढावैं।।"

छद सहोक्ति अलकार का उदाहरण है अत अर्थोत्कर्ष के लिए सहित शब्द अथवा उसका समानार्थी शब्द आना चाहिये। अत सहित शब्द अन्य चरणो मे भी है किन्तु नी० हि० का० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'काम के तीर समान समीर' पाठ होने से, सगत अर्थ के होने हुए भी अलकारिक चमत्कार लुप्त हो जाता है अत हमने इस पाठ को विकृत माना है।

पर्याय :

३ ४८ राधिका पूर्वानुराग।

"सांसन ही सा समीर गयो अरु आंसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि।

देव जियै मिलिनेई की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥"

पचतत्त्व निर्मित शरीर का एक-एक तत्त्व अपने मूल तत्त्व में जा मिला। एक प्राण बच रहा क्योंकि वह जिस शून्य से निर्मित हुआ है वह जड़ता के रूप में नायिका के चतुर्दिक छाया हुआ है। का० नी० हि० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर 'जीव रह्यो' पाठ पर्याय मिलता है। यह छंद 'सुखसागर तरंग', 'सुजान विनोद', 'भवानी विलास' एवं 'प्रेम चंद्रिका' ग्रंथों में आया है परन्तु अन्तिम ग्रंथ को छोड़कर सभी ग्रंथों में "देव जियै" पाठ है।

३ ७५

"व्याकुल ही विरहज्वर सौं सुभ पावन जानि जनीनु जगाई।
घोरि घनीरग केसरि को गहि गोरी गुलाल के रंग रँगाई।
त्यों तिय साँस लई गहिरी कहि री उनसों अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमैं बिनु होरी लगाई॥"

का० नी० हि० प्रतियों में तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है —

"साँस लई गहिरी कहि री उनसों हमसों अब कौन सगाई।"

४ २६

"मोरियै छाती छुवै छिवि के मुख चूमि कहै कोउ और न जानै।"

नी० हि० का० प्रतियों में आलोच्य पाठ का पर्याय मिलता है—'कोई दूजो न जानै'। दोनों ही पाठ समानार्थी हैं।

५ ७६ व्यतिरेक लक्षण दोहा।

"जहँ समान विधि वस्तु को कीजै भेद बखान।
अलकार व्यतिरेक सो देवदत्त उर आन॥"

का० प्रति में 'द्वै वस्तु' तथा हि० प्रति में 'द्वै वस्तु' पाठ मिलता है, नी० प्रति में इस स्थल का पाठ दीमकों द्वारा नष्ट हो गया है। हि० प्रति का 'द्वै' पाठ निस्सन्देह का० प्रति के 'द्वै' पाठ से संभव है। जहाँ दो समान वस्तुओं में एक को बढ़ाकर अथवा दूसरे को घटाकर वर्णन करते हैं वहाँ व्यतिरेक अलकार होता है। इस प्रकार 'विधि' तथा 'द्वै' पाठ समानार्थी होने के कारण संगत हैं परन्तु 'काव्य रसायन' में व्यतिरेक के निम्नलिखित लक्षण से 'विधि' प्रयोग की संगति सिद्ध होती है —

"बरनि वस्तु विधि सम कहै जे विशेष व्यतिरेक।"
—'काव्य रसायन'—६ ६१

५ १७ रूपक उदाहरण।

"ऐसो अदभुत रूप भावती को देख्यो देव जाके बिनु देखे छिन छाती न सिरानि है।"

आलोच्य स्थल पर नी० हि० का० प्रतियों में 'जाहि देखे कौन को न छतियाँ सिरानि है' पाठ मिलता है। ये दोनों पाठ भी प्रायः समानार्थी हैं।

५ ३०

"मोटी लगै बतियाँ मुख सोठिनी सुने सब गोतिन को दपटै सी।"

आलोच्य स्थल पर का० प्रति मे 'मु अमोठिअ बातै' नी० प्रति मे 'अनमीठिओ बातै' तथा हि० प्रति मे 'अनईठिओ बातै' पाठ मिलता है। मीठी अथवा सार रहित बातों का भी मीठा लगना अथवा गैर मीठी बातो का भी मीठा लगना प्राय समानार्थी है। हि० प्रति का "अन ईठिओ बातै" जो प्रतिलिपिकार के प्रक्षेप के कारण सम्भव है, अर्थ के विचार से असगत है।

का० सा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति

२ ५८ आवेग उदाहरण।

"देव हृदै पथ आइ मनो चढि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

श्रीकृष्ण के आगमन का समाचार सुनते ही सभी गोपागनाएँ उनके दर्शन को अत्यन्त आकुल हो उठी। आकुलता के कारण वह शीघ्रता से चल तो सकती न थी परन्तु उनके हृदय मे श्याम की मूर्ति आकर पहले से ही विराजमान हो गयी—मानो चलने मे असमर्थ होने के कारण वे अभिलाषा के रथ पर आरूढ हो हृदय मार्ग से होती हुई अपने प्रिय से मिल गयी। का० सा० प्रतियो में 'हृ' सयुक्ताक्षर में भ्रम होने के कारण 'हूदै' पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत माना गया है।

पाठ-विकृति :

१ २४

"जिनको निरखत परसपर रस को अनुभव होइ।
तिनही को अनुभाव पद कहत सयाने लोइ॥"

अर्थात् वे चेष्टाएँ जिनको देखने से रस का अनुभव होता है, अनुभाव कहलाती हैं। का० प्रति में 'परप्रति जिनको परसपर' तथा सा० प्रति में 'परसत जिनको परसपर' पाठ हैं। अनुभाव का 'स्पर्श' प्राप्त कर उसका आस्वाद लेना असगत है अत यह पाठ हमने विकृत माना है। दोनो प्रतियो में 'जिनको' का समान स्थान-विपर्यय भी द्रष्टव्य है।

४ ४७

"तैसी चद्रमुखी के वा चद्रमुख चद्रमा सो होड परै चाँदनी औ चाँदनी से चीर सो।"

चरण का अर्थ स्पष्ट है परन्तु 'होड परै' के स्थान पर का० प्रति में 'होय परै' पाठ है तथा यही पाठ सा० प्रति में पार्श्व पर मिलता है। 'होय परै' पाठ प्रस्तुत प्रसग में सर्वथा असगत है।

५ २६

"याही ते प्यारी तिहारी मुखद्युति चद समान बखानत हैं कवि।"

इसके स्थान पर का० सा० प्रतियो में "बखानत सो कवि" पाठ होने से असगति होती है क्योकि 'मुखद्युति' के लिए 'सो' तथा 'तिहारी' दो सम्बन्धवाचक सर्वनाम अनावश्यक हैं।

पर्याय :

१ २०

"चित चावते चैत की चद्रिका ओर चितै पति को चित चोरि लयो।"

का० सा० प्रतियों में 'चाँदनी' पर्याय मिलता है।

४ १०६

"सापराध पति देखि कै ···"

केवल का० सा० प्रतियों में "सापराध पति पेखि कै···" पाठ है।

नी० हि० सा० प्रतियाँ पाठ-विकृति :

१.२१

"हेरत ही हरि लीनो हियो इन आल रसाल सिरीष जम्हीरनि।"

नी० हि० प्रतियों में स्थान विपर्यय तथा लिपिभ्रम से 'इन आली सिदाप रसाल' पाठ मिलता है। 'सिदाप' पाठ अर्थहीन होने के कारण असगत है परन्तु सा० प्रति के आदर्श मे 'सिदाप' पाठ कदाचित् पार्श्व पर अंकित होने के कारण सा० प्रति मे इस प्रकार आ गया है 'आली सिदाप सिरीष'। नी० हि० प्रतियों का 'सिदाप' विकृत पाठ 'सिरीष' मे भ्रम होने से सम्भव है।

२ १०५

"आलस ग्लानि निर्वेद श्रम उतकठा जड जोग।
सकापसुमृति अवबोघोन्माद वियोग॥"

कवि के मतानुसार विप्रलम्भ शृगार मे उपर्युक्त सचारियो का वर्णन होना चाहिये। ध्यान रहे कि दोहे के तृतीय चतुर्थ चरण मे दोहे के तथाकथित लक्षण के अनुसार मात्राएँ नहीं हैं—पाठ को भग करके पढ़ने पर भी मात्राएँ पूर्ण नही होती। इस प्रसग म यह भी स्मरण दिलाना अनुचित न होगा कि यह पाठ कथ्य के विचार से पूर्ण है, अर्थात् किसी शब्द के त्रुटित होने के कारण मात्राएँ कम नहीं हुई हैं। अत यही पाठ कविकृत होगा। नी० हि० प्रतियो मे मात्रा पूर्ति के हेतु पाठ सशोधन हुआ है 'सका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद वियोग'। इस पाठ से दोहे मे वाछित मात्राएँ तो पूर्ण हो जाती हैं किन्तु इसमे स्वास, औ, यो आदि निरर्थक शब्द होने के कारण इसे प्रतिलिपिकार कृत प्रक्षेप माना जाएगा। मा० प्रति मे नी० हि० प्रतियों की सहायता से पाठ-सशोधन हुआ है—'सका सुमृति सुस्वास औ बोघोन्माद वियोग'। इस पाठ की असगति भी उसी प्रकार स्पष्ट है। हमने 'काव्य रसायन' तथा 'रस विलास' आदि ग्रथो मे प्राप्त न्यून मात्रा वाले प्रामाणिक दोहों की चर्चा यथास्थान की है, 'भाव विलास' में प्राप्त केवल एक ऐसा उदाहरण हम यहाँ दे रहे हैं :—

"प्रिय दर्शन सुमिरन श्रवन होत अचल गति गात।
सवल चेष्टा रवि रहै प्रलय कहैं कवि तात॥" २ १६

तृतीय चरण मे एक मात्रा कम है परन्तु लक्षण इसी रूप मे पूर्ण तथा स्पष्ट है।

स्थान-विपर्यय :

२ ५७

"प्रिय अप्रिय देखे सुने गात पात संवेग।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो बरनहु आवेग॥"

नी० हि० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'तेन ताप सवेग' तथा सा० प्रति में 'तेन तपे स
पाठ है। दोनों ही पाठ अशुद्ध हैं। इन पाठों की 'ताप' विकृति 'पात' के वर्णों मे विपर्यय ह
से सभव है।

लिपिजन्य विकृति :

४ १६

"जाहि जपै त्रिपुरारि मुरारि सब असुरारि सुरारि हनै है।"

'म' मे 'स' का भ्रम होने के कारण नी० हि० सा० प्रतियो मे 'त्रिपुरारि सुरारि' प
मिलता है। आगे भी 'सुरारि' पाठ होने से यहाँ यह पाठ असगत है।

४ ३६

"झिल्लिन सो झहनाइ के किंकिनि बोलै सुकी सुक लौं सुख दैनी।"

'न' मे 'र' का भ्रम होने से नी० हि० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'झहरा
पाठ प्राप्त होता है। 'झहरने' का अर्थ "आग की लपट अथवा तेज वायु का शब्द" होने
कारण किंकिणी बोलने के प्रस्तुत प्रसग मे यह पाठ यहाँ असगत है। तुलना—"भहर भहर भु
झीनो झर लायो देव छहर छहर छोटी बुदनि छहरिया।"—सुजान विनोद'—४८, "कक
झनित अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।"—'भाव विलास'—३ १

नी० हि० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३ १८ द्वितीय-तृतीय चरण।

"ककन झनित अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले मनित सुहात है।
कुडल हलत मुखमण्डल झलमलात झूलत दुकूल भुजमूल भहरात है।"

यह पाठ 'भवानी विलास' मे ५४० तथा 'सुख सागर तरग' मे ५०० सख्या पर
मिलता है परन्तु केवल नी० हि० ज० प्रतियो मे द्वितीय चरण मे 'झनक' तथा तृतीय चरण
'झलक' पाठ मिलता है। नायिका के झूमने अथवा हिलने के कारण उसका दुपट्टा कधे पर से गि
जाता है अत 'झूलत' पाठ ही सगत है। 'झनित' पाठ 'रनित' तथा 'मनित' के अनुप्रास से त
'झूलत' पाठ 'हलत' के अनुप्रास से पुष्ट भी है।

३ ७९

"व्याकुल ह्वै बिरहानल सो तचि घूमि गिरि गुनगौरि गलो पर।"

नी० हि० प्रतियों म लिपिभ्रम से 'तव' पाठ मिलता है। यह छन्द 'भवानी विलास'
६ ३१ पर भी है परन्तु यहाँ 'जरि' पर्याय मिलता है। कहना न होगा कि प्रस्तुत प्रसग
"तचि" पाठ सगत तथा 'तव' पाठ विकृत है।

भा० सा० ज० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

३ २६

"श्रम मद भय अभिलाष अरु सुमृति गर्व इक बार।"

भा० सा० ज० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से असगत पाठ मिलता है "अभिलाप रख।"

३ ४६

"न मानति और कछू तव तें मन माँहि वहीये रही छवि छाई।"

'य' मे 'प' का भ्रम होने से भा० सा० ज० प्रतियो मे 'वही पे' विकृत पाठ मिलता है। यह पाठ अर्थ के विचार से असगत है।

४ ८६ उत्कठिता नायिका लक्षण।

"हेतु विचारै चित्त मे उत्कठिता कहु ताहि।"

'उत्कठिता' पाठ से चरण मे एक वर्ण की नियम विरुद्ध वृद्धि होती थी अत केवल भा० सा० ज० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रतियो मे 'उत्कठा' पाठ रखा है। दोहे मे उत्कठिता नायिका का लक्षण होने के कारण यह पाठ असगत तथा 'उत्कठिता' पाठ ही सगत है।

प्रतियो का प्रतिलिपि सम्बन्ध :

'भाव विलास' की उपलब्ध प्रतियो मे पाठ-मिश्रण होने के कारण इनका परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है। विकृतियो के आधार पर प्रतियो का सूक्ष्म अध्ययन करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते है :—

नी० हि० प्रतियाँ एक ही प्राचीन आदर्श की दो प्रतियाँ हैं। यह आदर्श मूल प्रति के निकट की कोई ऐसी प्रति थी जिसका पाठ भ्रष्ट एव खडित अवस्था मे था। इन प्रतियो मे अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ भी मिलती हैं अत ये प्रतियाँ एक-दूसरे की प्रतिलिपि नही हो सकती।

भा० सा० प्रतियाँ एक आदर्श की दो प्रतियाँ हैं। इन प्रतियो मे भी अपनी-अपनी स्वतन्त्र विशेषताएँ मिलती है अत ये प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतियाँ नही हो सकती।

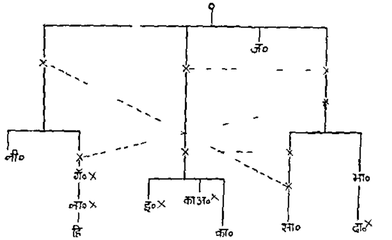
प्रतियो के उपरोक्त समुच्चय के अतिरिक्त शेष समुच्चय प्रतियो मे पाठ मिश्रण के कारण निर्मित होते हैं अथवा इनमे सदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध हैं।

का० प्रति तथा नी० हि० प्रतियो मे परस्पर पाठ मिश्रण हुआ है। इन दो शाखाओ की प्रतियो मे परस्पर स्वतत्र विशेषताएँ भी मिलने के कारण ये पाठ-परपरा मे निम्न स्तर से सम्बन्धित प्रतियाँ नही हैं।

इसी प्रकार सा० प्रति मे का० प्रति एव नी० हि० प्रतियो की पूर्व-परपरा की प्रतियो से पृथक्-पृथक् पाठ-मिश्रण हुआ है।

ज० प्रति तथा नी० हि० प्रतियो मे केवल दो स्थलो पर पाठ विकृतियाँ समान हैं एव भा० सा० ज० प्रतियो मे भी दो ही स्थलो पर समान विकृतियाँ मिलती हैं अत हम नी० हि० ज० तथा भा० सा० ज० प्रतियो को विकृति-सम्बन्ध से सम्बन्धित प्रतियाँ नहीं मानते हैं।

'भाव विलास' की समस्त प्रतियो के अतर्सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है



* अंकित प्रतियों का उपयोग आंशिक रूप में हुआ है अथवा इन्हे छोड दिया गया है।

संपादन-सिद्धान्त :

प्रतियो के निम्नलिखित परस्पर स्वतंत्र समुच्चयो मे प्राप्त पाठ प्रामाणिक होगा —

सभी प्रतियो मे प्राप्त संगत पाठ,

नी०, हि० तथा ज० प्रतियो मे प्राप्त पाठ, भा०, ज० तथा का० प्रति मे प्राप्त पाठ, भा० सा० ज० प्रतियो के शीर्षक के अतर्गत आए कुछ स्थलो को छोड कर इन प्रतियो तथा नी०, हि०, का० प्रतियो मे प्राप्त समान संगत पाठ।

अन्य ग्रंथो की तुलना मे 'भाव विलास' मे दूसरे ग्रंथ के समान छंद कम मिलते हैं तथा सहायक सामग्री के रूप मे अन्य ग्रंथो के पाठ का उपयोग भी कम हुआ है, यदि हुआ है तो भूमिका मे उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है।

अपवाद

निम्नलिखित स्थलो पर केवल एक प्रति का पाठ अन्य प्रतियो के पाठ के स्थान पर स्वीकृत हुआ है

केवल नी० हि० प्रतियों में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

५ ९ उपमेयोपमा लक्षण।

"उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम तें एकै होइ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि सब कोइ॥"

ऊपर स्वीकृत पाठ केवल नी० हि० प्रतियो में मिलता है। का० सा० प्रतियो में इसके स्थान पर "उपमा अरु उपमेय जहँ जहँ क्रम एकै होइ" तथा भा० प्रति मे 'उपमा अरु उपमेय को जहँ क्रम एकै होइ" पाठ है। इन दोनों ही पाठों के अनुसार दोहा उपमेयोपमा अलंकार के बजाय क्रमालंकार का लक्षण हो जाता है। उपमेयोपमा में उपमेय की समता जिस उपमान से की जाती है वह उपमान तुरन्त ही उपमेय होकर प्रथम को अपना उपमान बना लेता है।

जैसे, "पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उज्यारी है पूरनमासी।" परन्तु क्रमालकार में जिस क्रम से उपमेयो का वर्णन किया जाता है, उपमेय के अनन्तर उसी क्रम से उपमानो का भी वर्णन होता है। जैसे 'भाव विलास' के ५ ६४ छद में पहले केश, भाल, भृकुटी, नयन आदि के बाद उसी क्रम से उनके उपमान कुहू-तम, चद-चाप, मजन आदि का वर्णन हुआ है। इस प्रकार किंचित भ्रम होने से दोहे मे उपमेयोपमा के स्थान पर क्रमालकार का लक्षण वर्णित हो गया है। भा० सा० मा० प्रतियो का पाठ उपमेयोपमा अलकार का अनुपयुक्त लक्षण होने के कारण अग्राह्य है अत केवल नी० हि० प्रतिया मे प्राप्त पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल ज० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

२ ३६ चिंता लक्षण दोहा।

"इष्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ।"

रेखाकित पाठ केवल ज० प्रति मे मिलता है, अन्य प्रतियो मे पाठ की स्थिति इस प्रकार है "एक अग्र चित होइ"—सा०का० प्रतियाँ, "बहु व्याकुल चित होइ"—नी०हि० प्रतियाँ, "एक आस चित होइ"—भा० प्रति। का० सा० प्रतियो का 'अग्र' पाठ दृष्टि-भ्रम से 'व्यग्र' से सभव है, इसी प्रकार नी० हि० प्रतियो का पाठ भी 'व्यग्र' का पर्याय है एव भा० प्रति का पाठ प्रसग के विचार से असगत है अत केवल ज० प्रति मे प्राप्त पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ ५८

"देव हुदें पय आइ मनो चढि धाई मनोरथ के रथ ऊपर।"

रेखाकित पाठ केवल ज० प्रति मे तथा भा० प्रति मे 'सुदें', का० सा० प्रतियो में 'हुदें' एव नी० हि० प्रतियो मे 'ह्वं दें' पाठ है। ज० प्रति के अतिरिक्त सभी पाठ असगत हैं तथा ज० प्रति के पाठ से ये विकृत पाठ सभव हैं अत केवल ज० प्रति मे प्राप्त पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

केवल सा० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

३'७६

"व्याकुल ह्वै विरहानल सो तचि घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।"

रेखाकित पाठ केवल सा० प्रति मे है। ज० नी० हि० प्रतियो मे इसी पाठ मे भ्रम होने के कारण 'तव', का० प्रति मे 'बरि' पर्याय तथा भा० प्रति मे 'तजि' पाठ मिलता है। 'भवानी विलास' मे इस छद मे 'जरि' पर्याय मिलता है। प्रसग पर विचार करते हुए भा० प्रति का 'तजि' पाठ असगत तथा नी० हि० ज० प्रतियो का 'तव' पाठ भी अग्राह्य मालूम देता है एव ये दोनो ही पाठ मूल मे 'तचि' पाठ होने की सभावना पुष्ट करते हैं अत प्रस्तुत स्थल पर केवल सा० प्रति मे प्राप्त 'तचि' सगत पाठ स्वीकृत हुआ है।

केवल का० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

५ ७८-७९-८० सख्या के दोहे, जो केवल का० प्रति मे प्राप्त होते हैं, मूल प्रति के माने गये हैं। कारणो के लिए देखें "'भाव विलास' के अतिम दोहों की प्रामाणिकता" शीर्षक पृ० ५४। इन दोहो का पाठ इस प्रकार है —

"अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
तातें मो पर करि कृपा लैहैं सुमति सुधार॥

या साहित्य समुद्र को वडेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार।।
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास।।"

विशेष संशोधन :

निम्नलिखित स्थलों पर सभी उपलब्ध प्रतियों का पाठ अग्राह्य होने के कारण संपादक ने अपनी ओर से पाठ संशोधन किया है

४ १८

"ऊक सो ह्वै रहिहै अबै इन्दु बिलोकत भूमि पै घूमि गिरौगी।"

संदिग्ध स्थल के पाठान्तर विभिन्न प्रतियों मे इस प्रकार मिलते हैं—"ऊक सो है वै रहो है"—ज० प्रति, "ऊक सो वो रहि है"—सा० प्रति, "इक सो विरहै रहिहै"—का० प्रति, "ऊक सो वै रहिहै"—नी० हि० प्रतियाँ, "ऊँक सो वो रहि है"—भा० प्रति। 'सुख सागर तरंग' मे ८२६ पर नी० हि० प्रतियों के समान आदर्श से पाठ मिश्रण होने के कारण "ऊक सो वो रहि है" पाठ मिलता है। कहना न होगा कि यह पाठ 'ह्वै' का विकृत रूप है तथा अर्थ के विचार से असंगत है। अन्य प्रतियों के विभिन्न पाठान्तर भी इसी 'ह्वै' से संभव हैं तथा नायक से अलग रहकर उल्का के समान प्रज्वलित हो उठने के प्रसंग में यह पाठ संगत है अतः संपादक ने 'ह्वै' पाठ संशोधन अपनी ओर से किया है।

४ ३१ मध्या सुरतान्त।

"मन भावन के ढिग तें उठि भामिनि भोरही भूषन हाथ लिये।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनीजन तें दुरि कै कवि देव निहारति हार विहार किये।
तिय वारहिवार सँवारहि कै निरवारति वार केवार दिये।।"

आलोच्य स्थल पर विभिन्न प्रतियों के पाठान्तर इस प्रकार हैं—निरवारहि के—नी० हि० प्रतियाँ, सँवारहि को—का० सा० प्रतियाँ सँवारति हो—भा० प्रति, सँवारहि केश—ज० प्रति। 'सुजान विनोद' मे ३ ३८ पर इसी छंद में "सँवारहि के" पाठ मूल में एवं "सँवारहि वार" पाठान्तर का० प्रति में है। 'रस विलास' में ८ १४ पर केवल ग० प्रति में प्राप्त "सँवारहि के" पाठ मूल का माना गया है, यहाँ सा० प्रति में "सँवारति हो" एवं का० प्रति में "सँवारहि को" पाठान्तर मिलते हैं।

कवि का आशय स्पष्ट है, नायिका सुरति में उलझे हुए अपने हार आदि आभूषणों को सँवारने अर्थात् सजा कर पहनने के हेतु उन्हें अलग-अलग करके सुलझा रही है। सखियाँ उसे देख न लें इसलिए उसने दरवाजे के किवाड़ दे दिये हैं। अतः "निरवारति वार" पाठ बिलकुल संगत है। तुलना—"कबहूँ कान्ह आपने कर सों केसपास निरवारत—" सूर।

ऊपर 'भाव विलास' की विभिन्न प्रतियों में पाठान्तर होने का कारण 'के' शब्द से उत्पन्न भ्रांति है। वास्तव में कवि ने 'के लिए' के संक्षिप्त रूप में 'के' का प्रयोग किया है।

ऐसे प्रयोग उसकी रचनाओ मे अन्यत्र भी मिलते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

"कुजनि केलि के वेली नवेली बुलावति वालम लाल हनतहि।"

—'सुजान विनोद'—६ ५

"मूँदि मंदि लोचन चितोति नीद मोचन के मोचत सकोच सोच सकल वढत है।"

—'रस विलास'—७ ४६

ज० प्रति के प्रतिलिपिकार ने यह समझ कर कि उसके आदर्श मे 'केश' का 'श' वर्ण प्रमादवश छूट गया है, 'केश' पाठ अपनी ओर से बना दिया है। नी० हि० प्रतियो के 'निरवारहि के निरवारति वार विचार दिये" पाठ म "निरवारहि" की आवृत्ति असगत है। द्वितीय "निरवारहि" की प्रतिध्वनि प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क म होने क कारण भी यह विकृति समव है। का० अथवा सा० प्रति मे सामान्य लेखन प्रमाद से 'के' का 'की' पाठ हो गया है। स्मरण रहे कि 'रस विलास' की का० प्रति मे भी इन दोनो ग्रथो की प्रतियो म परस्पर पाठ मिश्रण होने के कारण 'की' पाठ मिलता है। यह पाठ असगत है।

आठ सगण वाले दुर्मिल सवैया के लक्षण तथा छद के प्रसग को ध्यान मे रखते हुए अन्य ग्रथो मे प्राप्त पाठ की सहायता से 'संवारहि के" पाठ सशोधन सपादक ने अपनी ओर से किया है।

'भाव विलास' के अंतिम दोहों की प्रामाणिकता

'भाव विलास' की कुछ प्रतियो मे मिलने वाले "सवत् सत्रह सै' आदि दोहो के आधार पर अब तक देव का जन्म सवत्, 'भाव विलास' का रचनाकाल तथा आजमशाह के साथ कवि का सम्बन्ध निश्चित होता आया है। इस ग्रथ की कुछ प्राचीन प्रतियो मे इन दोहो के स्थान पर अन्य दोहे मिलने के कारण हम इस प्रश्न पर यहाँ पृथक् रूप से विचार कर रहे हैं।

'भाव विलास' के अतिम दोहो का पाठ प्रतियो के उल्लेख सहित नीचे दिया जा रहा है —

अलकार ये मुख्य हैं इनके भेद अनत।
आन ग्रथ ते पथ लखि जानि लेहु मतिमन्त॥७३॥

यहाँ तक हि० भा० सा० का० प्रतियो म पाठ समान है। इसके पश्चात् हि० भा० सा० प्रतियो मे निम्नलिखित दोहे मिलते हैं —

सुभ सत्रह सै छियालिस चढत सोरही वर्ष।
कढी हर्ष मुख देवता भाव विलास सहर्ष॥
दिल्लीपति अवरग के आजमशाहि सपूत।
सुन्यो सराह्यो ग्रथ यह अष्टयाम सयूत॥

परन्तु सवत् १८५७ की का० प्रति तथा प्राय इतनी ही प्राचीन इडिया आफिस लाइब्रेरी की इ० प्रति मे उपर्युक्त दोनो दोहे नहीं मिलते। इन प्रतियो म इन दोहो क स्थान पर निम्नलिखित तीन दोहे हैं —

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते मो पर करि कृपा लैहै सुमति सुधार।।७८।।
या साहित्य समुद्र को कढेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार।।७९।।
द्यौसरिया कवि देव को नगर इटाए वास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास।।८०।।

अर्थात् इन प्रतियो मे जन्म सवत् तथा आजमशाह वाले दोहे नही है। सपादन कार्य मे व्यवहृत उपर्युक्त प्रतियो के अतिरिक्त नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट से प्राप्त 'भाव विलास' की अन्यान्य प्रतियो के विवरण के आधार पर अन्तिम दोहो की स्थिति इस प्रकार है —

१ खो० रि० १९०६-११, पृ० ११०—महाराज बलरामपुर की सवत् १९०५ की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव प्रकास' है तथा यह प्रति भी नी० प्रति के समान श्लेष लक्षण दोहे पर खण्डित है अत आलोच्य दोहे इस प्रति मे नही है।

२ खो० रि० १९२३-२५ पृ० ४४६—मुन्नू मिश्र, नीलगाव, जिला सीतापुर की प्रति। यह प्रति भी उपरोक्त प्रति के समान श्लेष लक्षण पर खण्डित है तथा इसमे भी ग्रथ-नाम 'भाव प्रकास' है। नी० प्रति तथा इस प्रति के प्रतिलिपिकार भी एक ही व्यक्ति, गौरी शकर दुबे हैं। अन्त मे खण्डित होने के कारण अन्तिम दोहे इस प्रति मे भी नही हैं।

३ खो० रि० १९२३-२५, पृ० ४४६—महराजदीन चौबे, कसराया, जिला रायबरेली, की प्रति। इस प्रति मे यद्यपि ग्रन्थ-नाम 'भाव विलास' है परन्तु यह प्रति भी श्लेष लक्षण पर खडित है अत अन्तिम दोहे इस प्रति मे भी नही हैं।

४ खो० रि० १९२३-२५, पृ० ४४४—श्री मिश्रबन्धुओ की गोलागज की प्रति। ग्रन्थ का नाम 'भाव विलास' है तथा यह प्रति पूर्ण भी है अत केवल इस प्रति मे भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त 'सुभ सबह सै' तथा 'दिल्लीपति अवरग के' दोहे मिलते है।

इन प्रतियो की केवल बहिरग परीक्षा से प्रगट है कि उपरोक्त प्रतियो मे प्रथम तीन प्रतियाँ तथा नी० प्रति एक ही शाखा की प्रतियाँ है। प्रक्षिप्त छदो वाली ग० प्रति पूर्ण है, एव ग० तथा मिश्रबन्धुओ की प्रति मे अन्तिम दोहे भी मिलते हैं। स्मरण रहे कि मिश्रबन्धुओ की अधिकाश हस्तलिखित सामग्री उनके परिवार के गन्धौली स्थित ब्रजराज पुस्तकालय के ग्रथो से तैयार प्रतिलिपियाँ हैं। अत मिश्रबन्धुओ की प्रति की पूर्णता तथा उस प्रति मे प्राप्य अन्तिम दोहे, किसी स्वतन्त्र शाखा की प्रति म प्राप्त न होने के कारण, महत्त्वपूर्ण नही हैं। गन्धौली की ग० प्रति की पूर्णता भी सदिग्ध है क्योकि इस प्रति मे श्लेष लक्षण दोहे, जहाँ से इस समूह की अन्य सभी प्रतियाँ खण्डित हैं, से आगे का पाठ भिन्न हस्तलेख मे मिलता है। ग० प्रति का विवरण देते हुए हमने यह स्पष्ट किया है कि ग० प्रति मे इस स्थल से आगे का पाठ किसी अन्य प्रति से लेकर पूर्ण किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि ग० प्रति म प्राप्य ग्रन्थ के अन्तिम दोहे इस दूसरी प्रति के पाठ के साथ आए है। ग० मे हि० प्रति की प्रतिलिपि होने के कारण हि० प्रति मे भी यही दोहे मिलते हैं। नी० हि० प्रतियो मे बडी सख्या मे प्राप्त समान पाठ-विकृतियाँ तथा

प्रक्षेपो से यह प्रगट होता है कि नी० तथा गं० हि० प्रतियाँ एक ही आदर्श से प्रतिलिपि हुई हैं। इस स्थिति मे जब नी० प्रति श्लेप लक्षण पर खडित है, ग० प्रति मे ग्रथ के अन्त तक का पूर्ण पाठ मिलना, ग० प्रति मे पाठ मिश्रण के बिना सम्भव नही हो सकता। हमने यहाँ ग० प्रति की पूर्णता की परीक्षा इसलिए विस्तार से की है क्योकि नी० ग० हि० प्रतियाँ भा० मा० प्रतियो की शाखा मे स्वतन्त्र शाखा की प्रतियाँ हैं,और यदि एक स्वतन्त्र शाखा की हि० प्रति मे तथा दूसरी स्वतन्त्र शाखा की भा० मा० प्रतियो मे भी आलोच्य दोहे मिलते हैं तो पाठ सपादन के मान्य सिद्धान्तो के अनुसार ये दोहे मूल प्रति के होने चाहिये। ग० हि० प्रतियो के उपरोक्त विवेचन से यह प्रगट है कि वस्तुस्थिति इसमे भिन्न है अन्य प्रति मे पाठ मिश्रण के फलस्वरूप हि० प्रति मे ग्रथ का पूर्ण पाठ मिलता है। अब यह देखना है कि ग० प्रति मे श्लेप लक्षण से आगे का पाठ किस शाखा की प्रति से पूर्ण किया गया है।

'भाव विलास' का "मालती सो" ५ २०वा छद नी० हि० का० प्रतियो मे नही है, इन प्रतियो मे इस छन्द के स्थान पर "जानि है सुजानि" छन्द मिलता है—नी० हि० प्रतियो मे "जानि है" छन्द के केवल तीन ही चरण हैं। केवल ग० प्रति मे "मालती सो" छन्द "जानि है सुजानि" छन्द के पूर्व प्रति के पार्श्व पर उसी दूसरे हस्तलेख मे लिखा मिलता है, जिस हस्तलेख मे श्लेप लक्षण से आगे का पाठ पूर्ण किया गया है। ग० प्रति की हि० प्रतिलिपि मे ये दोनो ही छन्द मिलते हैं। हमारे विचार से इस स्थल पर समासोक्ति अलकार के दो उदाहरण अपेक्षित नही हैं अत इन दोनो उदाहरणो को मूल प्रति का नही माना जा सकता। इस प्रति मे यह छद निस्सन्देह भा० सा० समूह की किसी प्रति से प्रक्षिप्त हुआ है—ग० प्रति सवत् १९३५ की है, भा० प्रति सवत् १९५० मे प्रकाशित हुई है अत यह भी सम्भव है कि भा० प्रति के प्रकाशित होने पर उसी के पाठ मे ग० प्रति का पाठ पूरा किया गया हो और "मालती सो" छन्द ग० प्रति के पार्श्व पर लिखा गया हो।

जो भी हो, ग० हि० प्रतियो मे भा० सा० प्रतियो से पाठ-मिश्रण के इस स्पष्ट प्रमाण की उपस्थिति मे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ग० प्रति का अपूर्ण पाठ भा० सा० शाखा की किसी प्रति की सहायता से पूर्ण किया गया है। इस पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप ही "सुभ सत्रह मैं", "दिल्लीपति अवरग के" दोहे ग० तथा हि० प्रतियो मे मिलते हैं। इस प्रकार ग० हि० प्रतियो के साक्ष्य का महत्व समाप्त हो जाता है। भा० सा० प्रतियाँ विकृति-सम्बन्ध द्वारा सम्बन्धित प्रतियाँ हैं। अत केवल इन दो प्रतियो मे प्राप्त दोहा प्रतिलिपि की पूर्व परपरा मे किसी प्रक्षेपकार द्वारा प्रक्षिप्त भी हो सकता है।

इन दोहो मे निहित तथ्यो पर पृथक् पृथक् रूप से विचार करना अप्रासगिक न होगा।

भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त "सवत् सत्रह सैं" दोहा सोलह वर्ष की अवस्था मे कवि द्वारा 'भाव विलास' के प्रणयन की स्पष्ट घोषणा करता है। परन्तु इस ग्रथ की प्रौढता तथा विषय-निरूपण की स्पष्टता देव कृत अन्यान्य ग्रथो मे भी दुर्लभ है। अत इतनी कम आयु मे कवि द्वारा इसकी रचना होना कठिन जान पडता है। इस अवस्था मे किसी व्यक्ति को सासारिक ज्ञान भले ही हो जाए परन्तु इस अल्पायु मे उसे कवि विशारद कर किसी लक्षण-ग्रथ म सुगठित रूप मे अलकृत कर उतना प्राय असम्भव है। श्री मिश्रबन्धुओ ने इस प्रश्न पर अपनी ओर से यह कल्पना

की है कि कवि ने प्रौढता प्राप्त करने पर इस ग्रथ के निकम्मे छन्द निकाल दिये होंगे। ('हिन्दी नवरत्न'—पृ० २७६) नी० हि० प्रतियो मे प्रक्षिप्त छन्दो का विश्लेषण करते हुए हमने इस सम्भावना की विस्तार से परीक्षा की है एव यह सम्भावना निराधार सिद्ध हुई है। इस प्रकार "चढत सोरही वर्ष" मे 'भाव विलास' की रचना होने का उल्लेख स्वय कवि द्वारा ग्रथ-रचना के वर्षों पश्चात् किया आत्मोल्लेख न होकर कवि को महिमामडित करने के लिए उसके किसी प्रशसक द्वारा किया गया प्रक्षेप है। बहुत सभव है कि मूल प्रति म विद्यमान शब्दावली "जोवन नवल सुभाव बर कीनो भाव विलास" के आधार पर प्रक्षेपकार ने "चढत सोरही वर्ष" का निश्चित वर्ष अपनी ओर से दे दिया हो।

अपने ग्रथो मे ग्रथ का रचनाकाल देने की देव कवि की प्रवृत्ति भी नही रही है। केवल एक 'रस विलास' के अन्त मे इस ग्रथ का रचनाकाल दिया है—यह भी उस सस्करण की प्रतियो मे मिलता है जो सस्करण सुल्तानपुर के राजा भोगीलाल को समर्पित है।

इस सदर्भ मे 'सुजान विनोद' तथा 'कुशल विलास' ग्रथो के निम्नलिखित दोहे देखे —

"परम सुजान सुजान की कृपा देव कवि हर्पि।
कियो सुजान विनोद को रचन वचन वसु वर्पि॥'

—'सुजान विनोद —१ १५

"देव विभव रस भाव रस भव रस नव रस सार।
सुख रस वसु वर वरस सुभ वरस रच्चो सिंगार॥"

—'कुशल विलास'—१ ११

इन दोनो दोहो म सख्यावाचक शब्दो की बहुलता से सहसा यही भ्रम होता है कि कवि ने इनमे ग्रथ का रचनाकाल दिया होगा परन्तु इनमे दिये हुए सख्यावाचक साकेतिक शब्द केवल ग्रथ के प्रतिपाद्य विषय तथा अध्यायो (वर्ष अर्थात् खड) की सख्या के द्योतक है। यहाँ इन दोहो की चर्चा चलाने से भी हमारा अभिप्राय यह स्पष्ट करना है कि यदि इन ग्रथो मे अथवा 'भाव विलास' म ग्रंथ का रचनाकाल देने मे कवि की किंचित भी रुचि होती तो वह इन दोहो मे सुविधा से तिथि दे सकता था।

अब आज़मशाह से सम्बन्धित दूसरे दोहे को लें। इसके अनुसार देव ने आजमशाह के सम्मुख कभी 'भाव विलास' तथा 'अष्टयाम' ग्रथो का पाठ किया था तो उसने इन ग्रथो की सराहना की थी। कवि ने इस तथ्य को प्रशसापत्र के रूप म 'भाव विलास' के अन्त म नत्थी करना आवश्यक समझा। परन्तु इस पर भी गम्भीरता से विचार करना चाहिये। देव जब 'भाव विलास' लेकर आज़मशाह के पास गए तो ग्रथ किसी को समर्पित नही था (और यह ग्रथ बाद मे भी किसी आश्रयदाता को समर्पित नही हुआ!), आज़मशाह काव्य रसिक होने के अतिरिक्त गुणग्राही भी था और देव को इन दोनो विशेषताओं से युक्त आश्रयदाता की सर्वदा आवश्यकता रहती थी। ऐसी स्थिति मे 'भाव विलास' ग्रथ आज़मशाह को समर्पित करना देव के लिए सबसे अधिक स्वाभाविक था। देव सुविधा से ऐसा कर सकते थे। 'सुजान विनोद' का प्रथम प्रारूप पहले किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नही था परन्तु बाद मे किंचित आकार परिवर्धन के साथ देव ने इसे दिल्ली के कायस्थकुलीन रईस सुजानमणि को समर्पित किया। 'रस विलास'

की भी ऐसी ही स्थिति है। यह ग्रंथ भी पहले किसी को समर्पित न था परन्तु बाद में भोगीलाल से भेंट होने पर देव ने उन्हें 'रस विलास' समर्पित किया। देव ने एक ही ग्रंथ के छन्दो में उलट-फेर करके उसे दो आश्रयदाताओं के नाम समर्पित किया है। 'सुख सागर तरग' पिहानी के राजा अली अकबर खान तथा महाराज जगवत सिंह को भी इसी प्रकार समर्पित है। इसकी तुलना में आजमशाह को 'भाव विलास' समर्पित करने में देव को कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी। देव उनके पास 'भाव विलास' लेकर गए तो केवल उन्हें ग्रंथ सुनाने के लिए, इस पर कठिनता से विश्वास किया जा सकता है।

अब का० प्रति तथा इडिया आफिस लाइब्रेरी की प्रति में प्राप्त "अपनी बुद्धि समान", "या साहित्य समुद्र" तथा "द्यौसरिया कवि देव" दोहो को लें।

का० प्रति के "अपनी बुद्धि समान" दोहे तथा सभी प्रतियों म प्राप्त इसके पहले के "अलकार ये मुख्य हैं' दोहे मे प्रत्यक्ष तारतम्य है—"अलकार के भेद अनन्त हैं, मैंने अपनी बुद्धि-बल के अनुसार उनमें कुछ का वर्णन किया है।" इस कथन का उत्तरार्ध भाग का० प्रति के "या साहित्य" दोहे मे प्रतिध्वनित होता है—"यह साहित्य-सागर अपार है, बड़े-वरिष्ठ कवि भी उसका ओर-छोर न पा सके, फिर मुझ जैसे तुच्छ कवि की क्या सामर्थ्य है।"

का० प्रति मे प्राप्त इन दोहो की तुलना मे भोगीलाल को समर्पित 'रस विलास' के सस्करण के अन्तिम दोहे द्रष्टव्य हैं —

"यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरै विधि हरि रुद्र।
पार लहत को बरनि कै या साहित्य समुद्र ॥८ ९०॥
अपनी बुद्धि समान मैं बरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार॥८ ९१॥"

इन दोहो की "या साहित्य समुद्र" तथा 'अपनी बुद्धि समान मैं बरनि कह्यो—" आदि शब्दावली के साथ का० प्रति के दोहो की तुलना करने पर का० प्रति के दोहे कविकृत प्रमाणित होते हैं।

इस समस्त विवेचन के आधार पर हमने केवल भा० सा० हि० प्रतियो मे प्राप्त दोहो को प्रक्षिप्त तथा का० प्रति मे प्राप्त दोहो को प्रामाणिक माना है।

भाव विलास

[मूल पाठ एव पाठान्तर]

श्री वृन्दावनचन्द[1] चरण जुग चरचि[2] चित्त धरि।
दलि मल कलिमल सक्ल कलुप दुप दोप मोप करि॥
गौरीसुत गौरीस गौरि गुरुजन गुन गाये।
भुवन[3] मातु भारती सुमिरि भरतादिक ध्याये॥
कवि देवदत्त शृगार रस सक्ल भाव सयुत सँच्यो[4]।
सब नायिकादि नायक सहित अलकार वर्णन रच्यो॥१॥

[1] वृन्दावन वन्दि—नी०। [2] चरण—नी० हि० इ०। [3] भवन—सा०। [4] रच्यो—हि०।

अरथ धम तें होइ अरु काम[1] अरथ तें जान।
ताते सुख सुख को सदा रस शृगार[2] निदान॥२॥

[1] धर्म—नी० हि० इ०। [2] ताते है सो सुख के सदा है शृगार निदान—नी० हि०।

ताके कारण भाव हैं तिनको करत विचार।
जिनहि जानि जान्यो परै सुखदायक सिंगार॥३॥
थिति विभाव अनुभाव अरु कहौ[1] सात्विक भाव।
सचारी अरु हाव ये षट विधि बरनौं हाव[2]॥४॥

[1] कहिहौ—नी० हि०। [2] भाव—ज०।

जो जा रस की उपज मैं पहिलो अकुर होइ।
सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब कोइ॥५॥
नव रस को थिति भाव नव[1] तिनको बहु विस्तार।
तिन म रति थिति भाव तें उपजत रस सिंगार॥६॥

[1] है—भा०, तव—नी० हि० सा०।

नेकु जु प्रियजन देखि सुनि[1] आन भाव[2] चित होइ।
अति कोविद पति कविन क सुमति कहत रति सोइ[3]॥७॥

[1] देखि कै—नी० हि०। [2] भाँति—का० इ०। [3] सो ताको थिति भाव है कहत सुकवि सब काई—नी० हि०।

प्रिय दर्शन उदाहरण।

सग ना सहेली केलि करन अकेली एक कोमल नवेली वर बेली जैसी[1] हेम की।
लालच भरे से लखि[2] लाल चलि आए सोधि[3] लोचन लचाय[4] रही रासि कुल नम की।
देव मुरझाइ उरमान उरझाइ[5] कह्यो दीजो गुरझाइ बात पूछी[6] छेम छेम की।

भायक[७] सुभाय भोरे स्याम के समीप आय गाँठिहि छुडाइ[८] गाँठि पारि गई प्रेम की ॥८॥

[१] मानो—नी० हि० सा०। [२] तहाँ—नी० हि०। [३] लोल—नी०। [४] ललचाय—का०। [५] उरमाल उरझाय सुरझाय— नी० हि०। [६] बूझी—हि०। [७] भायन—सा०। [८] गाँठि छुटकाइ—भा०।

प्रिय श्रवण उदाहरण।

गौने के चार[१] चली दुलही गुर लोगन[२] भूषन भेष बनाये।
सील सयान[३] सिखाय सखीन[४] सबै सुख सासुरेहू के सुनाये।
बोलिये बोल सदा हँसि[५] कोमल जे मनभावन के मन भाये।
यों सुनि ओंछे उरोजनि पै अनुराग के अंकुर से उठि आये॥९॥

[१] चाइ—का० इ०, चाल—नी० हि०। [२] गुर नारिन—नी० हि०। [३] सुभाय—सा०। [४] सबै सिखयेह—नी० हि०, सखीन सिखायो—भा०। [५] अति—नी० हि०।

विभाव लक्षण।

जे विशेष करि रसनि को उपजावत हैं भाव।
भरतादिक सतकवि सबै तिनको[१] कहत विभाव॥१०॥

[१] तिनसों—नी० हि० सा०।

ते[१] विभाव द्वै भाँति के कोविद कहत बखानि।
आलंबन कहि[२] देव अरु उद्दीपन उर आनि॥११॥

[१] है—नी० हि०। [२] कवि—का० इ०।

रस उपजै आलंबि जेहि सो आलंबन होइ।
रसहि जगावै दीप ज्यों उद्दीपन कहि सोइ[१]॥१२॥

[१] सो उद्दीपन होइ—नी० हि०।

उदाहरण।

चित दै चितऊँ जित[१] ओर[२] सखी तित नन्दकिसोर की ओर ठई।
दसहूँ दिसि दूसरो देखति[३] ना छबि मोहन की छिति माँह छई।
कवि देव कहाँ लौं कछू कहिये प्रतिमूरति हौं[४] उनही की भई।
ब्रजवासिन को ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराज मई॥१३॥

[१] चितवैं जिहि—नी० हि०। [२] ओरी—इ०। [३] दीसति—नी० हि० भा०। [४] है—इ०।

उद्दीपन भेद।

गीत नृत्य[१] उपवन गवन आभूषन जल केलि[२]।
उद्दीपन शृंगार के विधु बसन्त वन बेलि[३]॥१४॥

[१] नृत्य गान—नी० हि०, गीत नाच—का० इ०। [२] वन केलि—नी० हि० का० भा० ज० सा०। [३] वन केलि—ज०।

गीत उदाहरण।

आनी अनागी बसन मनोरम मूरतिवन्त मनोज दिखावति।
पंचम नाद निषादहि मैं[१] सुर मूरछना गन ग्राम[२] सुनावति।

देव कहै मधुरी धुनि सों वर बीन लले कर बीन बजावनि।
बावरी सी हौं भई सुनि आजु गई गड़ि जी मैं गुपाल की गावनि ॥१५॥

[१] सो—नी० हि०। [२] गुन ग्राम—नी०, गुन तान—हि०, सुति गान—का० इ०, सुति तान—सा०।

नृत्य उदाहरण।

पीरी पिछौरी के छोर छुटै छहरै छवि मोर पखान की जामैं।
गोधन की गति वेनु बजै कवि देव सवै[१] सुनि कै धुनि आमैं[२]।
लाज तजी गृहकाज तजे मन मोहि रही[३] सिगरी ब्रजवामैं।
कालिंदी कूल कदंब के कुंज करै तमतोम तमासो[४] सो तामैं ॥१६॥

[१] तजे—इ०। [२] धामैं—नी० हि० का०। [३] लई—सा०। [४] करत मनोज तमासो—नी० हि०, करै तुम मूरतिमंत—का० इ०।

उपवन उदाहरण।

बाग चली वृषभान लली सुनि कुंजनि मे पिकपुंज पुकारनि।
तैसिय नूतन नूत लतान[१] मे गुंजत भौंर भरे मधु[२] भारनि।
मोहि लई कवि देव उतै[३] अनि रूप रचे विकचे कचनारनि।
हेरत ही[४] हरिनी नयनी[५] को हरयो[६] हियरा हरि के हिय हारनि ॥१७॥

[१] नूतन तान—नी० हि०। [२] रस—नी० हि०। [३] कवि देव नते—भा०। [४] हौं—नी० हि०। [५] नयना—इ०। [६] निहरयो—सा०, रह्यो—हि०।

भूषण उदाहरण।

खोरि[१] मैं खेलन ल्याई[२] सखी सब बाल को भेष बनाइ नवीनो।
आरसी मैं निज रूप निहारि अनंग तरंगनि मैं मनु[३] भीनो।
जोति जवाहर हारन[४] की मिलि अंचल को झलक्यो[५] पट झीनो।
हेरि इतै[६] हरिनी नयनी[७] हरि हेरत हेरि हरै[८] हँसि दीन्हो ॥१८॥

[१] पौरि—नी० हि०। [२] आई—हि०। [३] मैं रस—नी० हि०। [४] हीरन—का० इ०। [५] छलक्यो—भा०। [६] उतै—नी० हि०। [७] नयना—भा० सा०। [८] हारे हरे—नी० हि०।

जल केलि उदाहरण।

सोहै सरोवर बीच वधू वर ब्याह को भेष बन्यो वर लीक सों।
लाज गहे[१] गुरु लोगन की पट गाँठ दै ठाढे करै इक ठीक सो।
न्हात पखारी सो[२] प्यारी के ओठ तें[३] छूट्यो मजीठ[४] निहारि नजीक[५] सो।
तीको रँगी अँखियाँ अनुराग सो पी की बहै[६] पिकबैनी की पीक सो ॥१९॥

[१] गई—का०। [२] एमार से—का० इ०, पमारी सो—भा०। [३] रूठ तें—का० इ०। [४] तमोर—नी० हि०। [५] ननीक—नी० हि०। [६] मनो—का० इ०।

विधु उदाहरण।

दिन द्वैक तें गागुरे आई वधू मन मैं मनु लाज को बीज बयो।

कवि देव[1] सखी के सिखाये मरु कैं नह्यो हिय नाह कौं[2] नेह नयो।
चित चाउ तें[3] चैन की चद्रिका[4] और चितै पति को चित चोरि लयो।
दुलही के विलोचन बानन[5] कौं सखि आजु को सान[6] समान भयो ॥२०॥

[1] कबहूँ—का० इ०। [2] भयो हित ताहू सों—नी० हि, रह्यो हिय नाह को—ज०। [3] चितवावत—भा०, चित पावत—नी० हि०। [4] चाँदनी—का० सा०। [5] बानक—नी० हि०। [6] सोन—नी० हि०।

वसन्त उदाहरण।

हेरत ही हरि लीनो हियो इन आल रमाल मिरीष[1] जम्हीरनि।
चपक बेली गुलाब जुही पिचुमद मधूक कदंब कुटीरनि।
खोलत[2] काम कथा[3] पिक बोलत डोलत चदन मद समीरनि।
बेमर हारसिंगारनहू करना कचनार कनैर करीरनि ॥२१॥

[1] आली रमाल मिरीष—का०, आली सी दाप रमाल—नी० हि०, आली सी दाप सेरोष—सा०। [2] खोजत—नी०। [3] कला—नी हि० मा०। [4] चन्द्रन—हि०। [5] मोरसिरी करना निरवार कुंदी—इ०।

वन वेलि उदाहरण।

सुनि कैं धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागन मैं सखि[1] रागन राग अचूकनि सों।
कवि देव घटा[2] उनई जु नई बन भूमि भई दल दूकनि[3] सों।
रँगराती रही हहराती[4] लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों ॥२२॥

[1] वन बागन मैं हरि—नी० हि०, हरि भागिन मैं सखि—इ०। [2] छटा—इ०। [3] टूकनि—का०, दूकन—नी० हि०। [4] हरा हरयानी—इ०।

जिन जिन[1] के सयोग तें रस जिय उपजन[2] होइ।
औरो विविध विभाव बहु ते बरनत कवि लोइ[3] ॥२३॥

[1] निज निज—भा०, [2] उपजन जिय—नी० हि०। [3] बरनैं कवि मत कोइ—भा०, बहु बरनहु कवि लोइ—नी० हि०।

अनुभाव लक्षण।

जिनको निरपत[1] परमपर रस को अनुभव होइ॥
तिनही कों[2] अनुभाव पद[3] बहुत सयाने लोइ ॥२४॥

[1] परसत जिनको—सा०, परप्रति जिनको—का०, जिनको परपति—इ०। [2] तिनही गा—नी० हि०, इनही को—भा०। [3] पट—का०, पटु—इ०।

आपुहि तें उपजाय रस पहिले होंहि विभाव।
रसहि जनावैं[1] जो बहुरि तो तेऊ[2] अनुभाव ॥२५॥

[1] जगावैं—भा०। [2] सो लहियें—सा०।

आनन नयन[1] प्रसन्नता चल चितौनि मुसक्यानि।
ये अभिनय[2] सिंगार के अग मग जुत[3] जानि ॥२६॥

[१] वचन—नी० हि० । [२] अभिनव—ज०, अभिन्न—नी० हि० । [३] जिय—का० इ० ।

आनन प्रसन्नता उदाहरण ।

ठाढो[१] चितौन चकोर भयो अनतैं न इतौत[२] कहूँ चित दीजतु ।
सामुहे नन्द किसोर सखी कबके मुसक्यान[३] सुधारस भीजतु ।
भाग तें आइ उवो कवि देव[४] सु देखि भटू भरि लोचन लीजतु ।
तेरेई[५] चन्दमुखी मुखचन्द पै पूरन चन्द[६] निछावर कीजतु ॥२७॥

[१] ठाढ़े—नी० हि० । [२] इनतैं—नी० हि० । [३] कब के मुसक्याइ—नी० हि० । [४] उतावलि देव—नी० हि० का० । [५] तेरे री—भा० इ० । [६] पून्यो को चन्द—इ० ।

नयन प्रसन्नता उदाहरण ।

आई हौ गाय दुहाइबे[१] को सु चुपाई[२] चली न बछाहू को[३] घेरति ।
नैंकु डराय नहीं कबकी वह[४] माइ रिसाइ अटा चढ़ि टेरति ।
यो कवि देव बड़े खन की[५] बड़रे दृग बीच बड़े[६] दृग फेरति ।
हौं मुख देखति हौं तबकी अबकी[७] यह मोहन को मुख हेरति ॥२८॥

[१] दुहावन—नी० हि० । [२] समुहाय—नी० हि०, सु चुपाय—का० । [३] न बछान को—भा०, नहि लैयुवै—का० इ० । [४] यह—नी० हि० । [५] घर की—नी० हि० । [६] बउरे—नी०, बडडे—का० । [७] हौं तबकी तबकी—नी० हि० ।

चल चितवन उदाहरण ।

हरि को इत हेरति हेरि[१] उतै उर आलिन के उर सो परसै[२] ।
तन तोरि के जोरि मरोरि भुजा मुख मोरि के बैन[३] कहै सरसै ।
मिस सो मुसक्याइ चितै समुहै कवि देव दरादर[४] सो दरसै ।
दृगकोर कटाछ लगे सरसान[५] मनो सर सान धरे[६] बरसै ॥२९॥

[१] हरी इत हेरत हेरि—नी० हि० सा० । [२] हरि को इतै हेरत हेरत हेरि उतै उर आलिन को परसै—भा० । [३] बात—सा० । [४] दरादर—नी० हि० । [५] सर सेन—नी० हि० । [६] सर सान धरे—नी० हि० ।

मुसक्यान उदाहरण ।

जबतें जदुराइ दई दुहि गाइ गए[१] मुसक्याइ पठै[२] घर कै ।
तबतें तन व्याकुल बालवधू लखि लोग लुगाई सबै घर कै ।
कवि देव न पावत वेदन बैद रहे कुलदेवन के डर[३] कै ।
नहि जानत कान्ह तिहारे कटाछ की कोरै करेजन मैं[४] करकै ॥३०॥

[१] दये—नी० हि०, गई—का० । [२] पछे—भा० । [३] के उर—ज० । [४] कोर कभेजिन मैं—ज० ।

अंग भंग उदाहरण ।

चंपक पात से गात मरोरि[१] करोरिक भाइ सुभाइ सचैयत ।
मो मिस भेंटि भटू भरि अंक मयंक से आनन ओठ[२] अचैयत ।
देव कहै बिनु बात चले नवनील सरोज से नैन नचैयत ।

जानति हौं भुजमूल उचाइ दुकूल लचाइ लला ललचैयत[२] ॥३१॥

[१] दिखात—का०। [२] हूँठ—का० इ०, ओट—ज०। [३] तारस सिंधु गई बुधि बूडि न बोहित धीरज कैसे बचैयत—नी० हि०।

औरो विविध विभाव के[१] बहु अनुभावनि जानु।
जिनतें रस जान्यो परै ते कवि देव बखानु ॥३२॥

[१] विविध सिंगार के—का० इ०, रस शृंगार के—सा०।

आवत जात गली मैं लली हरि हेरि हरे हियराहि हरैगी[१]।
बैरी बसै घर घाल घरी मैं घरै घर घेरि घरी उघरैगी[२]।
हौं कवि देव डरौं मन मैं मनमोहनी तू[३] मन मैं न डरैगी।
हाहा बलाइ ल्यो पीठ दै बैठु री वाहू अनीठ की दीठ परैगी ॥३३॥

[१] हियराह हरैगी—नी० हि० का० भा०। [२] उचरैगी—ना०। [३] पै—सा०।

इति प्रथम विलास।

सात्विक अनुभाव।

स्थिति विभाव[१] अनुभाव तें न्यारे अति अभिराम।
सकल रसनि मैं सचरै सचारी कहु[२] नाम ॥१॥

[१] स्थिति भावहु—नी० हि०। [२] कउ—भा०।

ते सारीरि अरु आतरिक द्विविधि कहत भरतादि[१]।
स्त्माविक सारीर अरु आतर निरवेदादि ॥२॥

[१] ते सारीर अतर द्विविधि कहत सबै भरतादि—सा०, ते सारीरु अतरत विविध कहत भरतादि—का०, ते सारीर अतर कहत द्वै विधि सब भरतादि—नी० हि०।

आठ भेद स्त्माविके तिनको सात्विक नाम।
तेई पहिले[१] वरनिये सरस रीति अभिराम ॥३॥

[१] तेई प्रथम अब—नी० हि०।

स्तभ स्वेद रोमाच अरु वेपथु अरु स्वर भग।
विवरनता[१] आँसू प्रलय ये सात्विक रस अग ॥४॥

[१] विवरन ते—हि०।

स्तभ लक्षण।

रिस विस्मय भय राग सुख दुख विषाद तें होइ।
गति निरोध जो[१] गात मैं तभ कहत कवि लोइ[२] ॥५॥

[१] जा—नी० हि०। [२] सोइ—सा० का०।

उदाहरण।

गोरी सी ग्वालिनि थोरी सी बैस जगी तन जोवन जोति नई है।
आवत ही अबहीं उनतें कवि देव सु नैकु इतै चितई है।
योंहि[१] कटाछनु मोहि चितौत चितौतहि मोहन मोहि लई है।
व्याध हनी हरिनी लौं वधू वह वा घर[२] लौं भटरात[३] गई है ॥६॥

[1] वेहि—ज० । [2] चितौनहि मैं हर्मैं—नी० हि० । [3] वाघ—ज० । [4] ते यहिरात—नी० हि०, लौ भिहरात—भा० ज० ।

स्वेद लक्षण ।

क्रोध हर्ष सताप श्रम घातादिक भय[1] लाज ।
इनतें सजल सरीर सो स्वेद कहत कविराज ।।७।।

[1] भ्रम—नी० हि० ।

उदाहरण ।

हेलन खेलन के मिस सुन्दरि केलि के मन्दिर[1] पेलि पठाई ।
बालवधू विधु सो मुख चूमि लला छल सो छतियाँ सों[2] लगाई ।
लाज तें लोल[3] कपोलनि मैं झलक्यो जल दीपति दीप की भाँई ।
आरसी में प्रतिबिंबित ह्वै[4] मनो देव दिवाकर देत[5] दिखाई ।।८।।

[1] भौन मे—नी० हि० । [2] छतिया मो—हि० । [3] लाल के लोल—भा०, लाज तें गोल—नी० हि० । [4] यो—हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे 'ह्वै'—सा० । [5] देव दिवाकर देव—का० ।

रोमाच लक्षण ।

आलिगन भय हर्ष अरु सीत[1] कोप तें जानु ।
उठत अग में रोम जे[2] ते रोमाच बखानु ।।९।।

[1] आलिगन अरु हर्ष भय भीति—नी० हि० । [2] अग उठत रोमाच जेहि—नी० हि० ।

उदाहरण ।

कूल चली जल केलि कै कामिनि[1] भावते के सँग[2] भाँति भली सी[3] ।
भीजे दुकूल मैं देह लसै कवि देव जू[4] चपक चारु दली सी[5] ।
वारि के बूद चुवैं[5] चिलकैं अलकैं[6] छवि की छलकैं[7] उछली सी[3] ।
अचल भीन मकै[8] झलकैं पुलकैं कुच कुंद[9] कदम्ब[10] कली सी[3] ।।१०।।

[1] खेलै की सुन्दरि—नी० हि० । [2] सब—नी० हि० । [3] से—नी० हि० । [4] कवि देव सु—सा० । [5] बन्द चुभै—नी० हि० । [6] जलि कै—ज० । [7] झलै—नी०, झलकै—हि० । [8] अचल भीन मैं यो—नी० हि०, भुकै—का० । [9] कद—भा० ज०, दोऊ—सा० । [10]—नी० हि० ।

वेपथु लक्षण ।

प्रिय[1] आलिगन हर्ष भय सीत कोप तें जानु ।
अग कप प्रस्फुरन बिनु वेपथु ताहि बखानु[2] ।।११।।

[1] हिय—नी० हि० । [2] अग स्फुरन बिनु भये एसा वेपथु मानु—नी० हि० ।

उदाहरण ।

देव दुहून के देखत ही उपज्यो उर में अनुराग अनूनो ।
डोलत हैं अभिलाष भरे सुलग्यो बिरहज्वर अग अमूनो ।
तो लौं अचानक ह्वै गई भेंट इत उत ठौर निहारत[1] सूनो ।

प्रीति भरे अरु भीति भरे[२] बन कुंज मैं कपत दम्पति दूनो ॥१२॥

[१] निहार कैं—सा०। [२] प्रेम भरे अरु प्रीति भरे—का०, प्रीति भरे अनुराग भरे—नी० हि०।

स्वरभंग-लक्षण :

जो रिस भय मद मुद भये[१] निकसै गदगद बानि[२]।
ताही सो[३] स्वरभग कहि कवि कुल कहत बखानि[४] ॥१३॥

[१] रस भय उन्माद भय— नी० हि०। [२] बैन—नी० हि०। [३] को—भा० सा०। [४] बरनत कवि कुल ऐन—नी० हि०।

उदाहरण :

परदेस तें प्रीतम आवे री ए इत[१] आइके आली सुनायी यही[२]।
कवि देव अचानक चौंकि परी सुनतैं बतियाँ[३] छतियाँ उमही।
तबलौं पिय आँगन आइ गये धन धाइ हिये लपटाइ रही।
अँसुवा ठहरान[४] गरो घहरात मरू करि आधिक बात कही ॥१४॥

[१] है री इत—ज०, रि माइके—नी० हि०, इतो इत—का०। [२] वही—नी०, जही—हि०। [३] सुनिनें बलि या—भा, सुनिकै बतिया—नी० हि०। [४] ढहरात—नी० हि० का०।

वैवर्ण्य-लक्षण :

भय[१] विमोह अरु कोप तें लाज सीत अरु धाम।
मुख दुति औरै देखिये[२] सो विवरनता नाम ॥१५॥

[१] भव—का०। [२] देखि कैं—नी० हि०।

उदाहरण :

सुंदरि सोवति[१] मंदिर मैं कहुँ सापने मे निरख्यो[२] नँद नंद को।
त्यों पुलक्यो जल सो झलक्यो उर औचक ही उचक्यो कुच कंदु[३] सो।
तौ लगि चौंकि परी कहि देव[४] सुजानि परयो[५] अभिलाप अमद सो।
आलिन को मुख देखत ही मुख भावतो को भयो भोर को चद सो ॥१६॥

[१] सोहनि—सा०। [२] सापने कहुँ भेंट भई—नी० हि०, कितहूँ सपने निरख्यो—का०। [३] कद—भा० हि०। [४] तौ लौ अचानक भेंट भई लखि—का०। [५] ज्यो जानि परी—नी० हि०।

अश्रु-लक्षण :

विपल[१] विलोकत घूम भय हर्ष अमर्ष[२] विषाद।
नैनन नीर निहारिये[३] अश्रु कहो निरवाद ॥१७॥

[१] विकल—नी० हि०, विमल—का०, विपुन—ज०। [२] समर्ष—नी० हि०। [३] चढ़ाइये—नी०, नहाइये—हि०।

उदाहरण :

बोलि उठ्यो पपीहा कहूँ[१] पीउ सु देखिये को सुनि के धुनि धाई।
मोर पुकारि उठे चहुँ ओर सु देव घटा घिरकी[२] चहुँधाई।

भलि गई तिय को तन की सुधि देखि उतै[3] बन भूमि सुहाई।
साँसनि सों भरि आयो गरो अरु आँसुन सों अँखियाँ भरि आईं ॥१८॥

[1] कहि—नी० हि०। [2] घिरकै—नी० हि० का०। [3] देखत ही—का०, देखि तहाँ—ज

प्रलय-लक्षण :

प्रिय दर्शन सुमिरन[1] श्रवन होत अचल गति गात।
सकल चेष्टा[2] रुकि रहै प्रलय कहै कवि तात[3] ॥१९॥

[1] सभ्रम—नी० हि०। [2] सुद्धि—नी० हि० सा०, सु चेष्टा—का०। [3] वान—
का०।

उदाहरण :

गोरी गुमान भरी गजगामिनि काल्हि थी कौ[1] वह कामिनि तेरे।
आई हुती[2] सु चितै[3] मुसक्याइ कै मोहि लई मन मोहन मेरे।
हाथ न पाँइ हलै न चलै अग नीरजनैन फिरै नहि फेरे।
देव सु ठौर ही ठाढी चितौति लिखी मनु चित्र,विचित्र चितेरे ॥२०॥

[1] काहि किधौं—नी० हि०, काहू किधौं—का०। [2] जुती—भा०। [3] मी चितै—नी

सचारी भाव-लक्षण :

सात्विक होत सरीर तें ताही ते[1] सारीर।
अतर उपजै आतरिक[2] ते तैंतिस कहि धीर ॥२१॥

[1] जाही तें—नी० हि०, जाहि कहत—मा०। [2] अन्तरहि—नी० हि०, आतर—का

सचारी नाम :

प्रथम होइ निर्वेद ग्लानि सका सूया कहु[1]।
मद[2] अरु श्रम आलस्य दीनता चिता बरनहु[3]।
मोह सुमृति[4] धृति लाज चपलता हर्ष बखानहु।
जडता दुख आवेग हर्ष उत्कठा जानहु।
अरु नीद अपस्मृति सुपति बोध क्रोध अवहित्थ मति[5]।
उग्रत्व व्याधि उन्माद अरु मरन त्रास अरु तर्कतति ॥२२॥

[1] सका वितर्क कहि—नी० हि०, सका वितर्क कउ—भा०। [2] मृदु—ज०। [3] बरनउ-
भा०। [4] सुमृतं—भा०। [5] अपस्मृति स्वपन कहि कोध बोध पुनि मदन गति—नी०हि

निर्वेद-लक्षण :

चिंता अश्रु प्रवास करि[1] अपनोई अपमान[2]।
उपजहि तत्व ज्ञान जँह[3] सो निर्वेद बखान[4] ॥२३॥

[1] उपजै तत्व ज्ञान कँ—का०। [2] अति अनग उर आन—नी० हि०। [3] चिता अश्रु प्रवा
जहँ—का०, उपजहि सात्विक भाव जहँ—नी० हि०। [4] अपनोई अपमान—नी० हि०

उदाहरण

सूझि परी कवि देव सबै जब जानि पर्‌यो सिगरो जग जातो।
नेसुक मो मैं जा हातो सयान तो होनो कहा करि सा हित हातो ॥२४॥

[१] मोह मढ्‌यो चित गर्व बढ्‌यो मनमोहन करि—का०। [२] गया—ज०। [३] नव जावन—का०।

ग्लानि-लक्षण :

भूप प्यास अरु सुरति श्रम[१] निरबल होत सरीर।
सिथिल होत अवयव[२] सबै ग्लानि कहत सो[४] धीर ॥२५॥

[१] सुरतादि श्रम—का०। [२] अग जब—का०। [३] सु तब—नी० हि०। [४] सु—नी हि०।

उदाहरण :

रग भरे रति मानत दपति बीति गई रतिया छिन ही छिन।
प्रीतम प्रात उठे अलसात[१] चिनै चित चाहत धाइ गह्यो धन।
गोरी के गात सबै अँगरात जु[२] बात कही न परी सु रही मन।
भौहै नचाइ लचाइ के लोचन चाहि[३] रही ललचाइ लला तन[४] ॥२६॥

[१] अगिरात—नी० हि० का०। [२] अलसात—नी० हि०। [३] चाय—भा० मा० का० [४] लना मन—भा० मा० का०।

शका-लक्षण :

अपराधादि अनीति करि कपै करै छिपाइ।
ताही को[१] सका कहैं सबै कविन के राइ ॥२७॥

[१] ताही सो—हि०।

उदाहरण :

या डर ही[१] घर ही मैं रही[२] कवि दव दुर्‌यो नहिं दूतिन[३] को दुख।
काहू की बात कही न सुनी मन माँहि बिसारि दियो सिगरो सुख।
भीर मैं भूले भय सखि मैं जबतें जदुराइ की ओर[४] कियो रुख।
मोहि भटू तबतें निसि द्यौस चितौतही जात[५] चवाइन को मुख ॥२८॥

[१] डरहीं—भा० सा०। [२] रहीं—भा० मा०। [३] दूतन—भा० सा० ज०। [४] बृजरा की राइ—नी० हि०। [५] चितौन ही जात—नी०।

असूया-लक्षण :

क्रोध कुबोध विरोध तें सहै न पर[१] अधिकार।
उपजै जहँ[२] जिय दुष्टता[३] सो असूया अवधार[४] ॥२९॥

[१] गहे न यह—भा० सा०, सहि न परै—ज०। [२] तहाँ—नी०। [३] दुख बहु—का० [४] निरधार—नी० हि० का०।

उदाहरण :

गोकुल गाँव की गोप बधू बनिकै निकसी दुरि[१] दै दै बुलायो।
सोरहो साज सिंगार सबै बन देखन को बहु भेष बनायो।

राधिका के हिय हेरि हरा हरि के हिय को पिय को पहिरायो[२]।
केती तहाँ लिय ती तिनमों तिन[३] मोतिन सो तिनको तन तायो ॥३०॥

[१] बनि के दुरि के सब—नी० हि०। [२] हरि क पहिरायो—का०। [३] ते तिन मौलिन—का०, तीनिन मालिन—नी०, नीतिन मोतिन—हि०, ती तिन मैं तिन—सा०।

मद-लक्षण :

सो मद जहँ आसव पिये[१] हरष होय हिय बीच।
नींद हास रोदन करै उत्तम मध्यम नीच ॥३१॥

[१] आसक्त पिय—नी०, आसक्त पिये—हि०।

उदाहरण :

आसव[१] सेइ सिखाये सखीन के सुन्दरि मन्दिर मैं सुख सोवै।
सापने मैं बिछुरे[२] हरि हेरि हरेई हरे हरिनीदृग रोवै।
देव कहै उठि[३] कै बिरहानल आनन्द के अँसुवान समोवै।
आजुही[४] भाजि गई सब लाज हँसैं अरु[५] मोहन को मुख जोवै ॥३२॥

[१] आसन—नी०। [२] सोवत मैं सपने—का०। [३] तहो जगि—का०। [४] ०—नी० हि०। [५] अरु रूप कै—नी० हि०।

श्रम-लक्षण

अति रति अति गति[१] तें जहाँ उपजै अति तन[२] खेद।
सो श्रम जामैं जानिये निरसहता प्रस्वेद[३] ॥३३॥

[१] रत—सा०। [२] रति—नी० हि०। [३] निद्रा सहित प्रस्वेद—नी० हि०, विरसह ताप प्रस्वेद—का०।

उदाहरण :

खरी दुपहरी बीच तरुन[१] तरु नगीच[२] सही परै[३] तरनि[४] के करनि[५] की जोति है।
तामैं तजि धाम[६] चली स्याम पै विकल बाम काम सर दाम बपु रूपहि[७] बिलोति है[८]।
बडे बडे बारन तें हारनि के भारन तें थाकी सुकुमारि अंग स्वेद[९] रस धोति है।
संग न सहेली सु अकेली केलि कुंजन मैं बैठति उठति ठाढी होति चलि होति है ॥३४॥

[१] तरुनि—सा०। [२] तरुन गावै—नी० हि०। [३] सही न परति—का०, सहि परे—सा०। [४] रवि—का०। [५] किरनि—नी० हि० का०। [६] धामै—नी० हि०। [७] रचहि—सा०। [८] चितौति है—नी० हि०। [९] सेत—नी० हि०।

आलस्य-लक्षण

बहु भूषादिक भार[१] तें कारज करयो[२] न जाइ।
सो आलस्य जहाँ[३] रहै तनहि अछमता[४] छाइ ॥३५॥

[१] भाव—भा० सा० ज०। [२] कह्यौ—भा०। [३] जामैं—नी० हि०। [४] अछमद तन—नी०, आमद तन—हि०।

उदाहरण :

ऊधो आये ऊधो आये[१] हरि[२] को सँदेसो लाये सुनि गोपी गोप धाये धीर न धरत हैं।

बौरी लगि[3] दौरी उठी भौंरी[4] लौं भ्रमति मति गनति न[5] जऊ[6] गुरु लोग निदरत हैं[7]।
ह्वै गई विकल वाम बालम वियोग भरी जोग की सुनत बात गात त्यों जरत है।
भारे भये भूषन सम्हारे न परत ग्रग आगे को धरत पग पाछे को परत है ॥३६॥

[1] गोकुल तेरे—का०। [2] स्याम—नी० हि०। [3] बौरी लगि—भा०, बौरी लरि—ज०। [4] भौरी—भा०। [5] मानति न—सा०। [6] जाउ—नी० हि०, जनो—भा०, जनऊ—सा०। [7] लोगन डरति—नी० हि०, लोगन दुरत—भा०।

दीनता-लक्षण :

दुरगति बहु विरहादि तें उपजै[1] दुख अनन्त।
दीन वचन मुख तें कढै कहैं दीनता सन्त[2] ॥३७॥

[1] होत जो—नी० हि०। [2] सग—नी०।

उदाहरण :

रैन दिन नैन दोऊ मास ऋतु पावस के[1] बरसत बडे बडे बूदनि कों[2] झरिये।
मैंन सर जोर मारे पवन[3] झकोरनि सों आई है उमगि छिति[4] छाती नीर भरिये।
टूटो नेह नाव छूटो स्याम सो सहाउ गुन[5] ताते कवि देव कहै कैसे धीर धरिये।
विरह नदी अपार बूडत है मांझ धार[6] ऊधो अब एक बार खेइ[7] पार करिये ॥३८॥

[1] पाग सब—का०। [2] सो—भा०। [3] मोर पौन की—नी० हि०। [4] छिनि—भा० सा०। [5] सनेह गुन—नी० हि०, सहाव गुनु—का०। [6] ही मांझ धार—नी० हि०। [7] फेरि—नी० हि०।

चिंता-लक्षण :

इप्ट वस्तु पाये बिना व्यग्र चित्त अति होइ[1]।
स्वांस ताप वैवरन जहँ[2] चिंता कहिये[3] सोई ॥३९॥

[1] बहु व्याकुल चित होइ—नी० हि०, एक अग्र चितु होइ—का० सा०। [2] स्याम ताप ह्वै रैन दिन—नी० हि०। [3] वर्नहु—का०।

उदाहरण :

जानति नाहिं रहे[1] हरि कौन के ऐसी धौं कौन वधू मन भावै।
मोही सो रूठि के वैठि रहे किधौं कोऊ कहूँ कछु[2] सोध न पावै।
ऐसिये[3] भाँति भटू कवहूँ अब कोहू[4] मिलै कहूँ कोउ[5] मिलावै।
आँसुनि मोचति सोचति यो सिगरो दिन कामिनि काग उडावै ॥४०॥

[1] हरे—भा० सा०। [2] कोऊ कछू कहूँ—नी० हि०। [3] वैंगिये—भा० सा०, कैसिये—का०। [4] केहू—हि०, क्योहू—भा०। [5] कोट—भा०।

मोह-लक्षण :

अदभुत दरसन वेग भय अति चिंता अति कोह।[1]
जहां[2] मूर्छा विसमरन[3] स्तभ ताहि कह मोह[4] ॥४१॥

[1] अदभुत रस आवेग भय चिंता सुमिरन कोह—नी० हि०। [2] होइ—का०। [3] मूर्छा विसमरनता—नी० हि०। [4] समतादि कह मोह—भा०।

उदाहरण :

औरो कहा कोउ बालबधू है नयो तन जोवन तोहि जनायो।
तेरेई नैन बडे ब्रज मे जिनसो बस कीनो जसोमति जायो।
डोलत है मनो[१] मोल लियो कवि देव न बोलत बोल बुलायो।
मोहन को मन मानिक सो[२] गुन सो गुहि तै उर सो उरझायो[३] ॥४२॥

[१] जनु—नी० हि०। [२] तो—नी० हि०। [३] मैं उरझायो—नी० हि०।

स्मृति-लक्षण :

ससकार[१] सपति विपति अधिक प्रीति अति त्रास।
प्रिय अप्रिय सुमिरन सुमृति इकचित मौन उसास[२] ॥४३॥

[१] ससैं करि—नी० हि०। [२] कप फेन मुख स्वाँस—का०, इकचित मानु मदास—सा०, प्राप्त समै सो देव कवि कहि तामैं उदास—नी० हि०।

उदाहरण

नीर भरे मृग कैसे बडे दृग देखति नीचे निचाइ[१] निचोलनि[२]।
लैं लै उसासैं लिखै धरिनी धरि ध्यान रहै करि दीठिअडोलनि[३]।
बैठि रहै कबहूँ चुप ह्वै[४] कवि देव कहै[५] कर चाँपि कपोलनि।
बालम के बिछुरे यह बाल सुनै नहि बोलनि बोलति[६] बोलनि ॥४४॥

[१] नचाइ—नी० हि०। [२] निचोभनि—सा०। [३] तन कप अतोलनि—का०। [४] कै—सा०। [५] रहे—नी० हि०। [६] कालन बोलनि—का०, डोलनि बोलैं सु—नी० हि०।

धृति लक्षण :

ज्ञान शक्ति उपजै जहाँ मिटै अधीरज दोष।
ताही सो धृति कहत हैं[१] जथा लाभ सतोष ॥४५॥

[१] जहँ—भा० सा०, कवि—का०।

उदाहरण.

रावरो रूप रह्यो भरि[१] नैननि बैननि के रस सो श्रुति सानो।
गात[२] मैं देखत गात तिहारोई[३] बात[४] तिहारोई[३] बात बखानो।
ऊधो हहा[५] हरि सो कहियो तुम हो न इहाँ यह हों[६] नहि मानो।
या तन तें बिछुरे तो कहा मन तें[७] अनतें जु बसो तब जानो ॥४६॥

[१] रमि—नी० हि०। [२] गाढ़—का०। [३] तुम्हारे मे—भा०। [४] रीति—का०। [५] कहा—नी० हि०। [६] तौ—नी० हि०, तै—भा०। [७] मैं—नी०।

लाज-लक्षण :

दुराचार अरु प्रथम[१] रति उपजै जिय सकोच।
लाज कहैं तासो जहाँ[२] मुख गोपन गुरु सोच ॥४७॥

[१] प्रेम—नी० हि०। [२] सुकवि—नी० हि०।

उदाहरण :

आजु सखी सुख सोई सुतो सखी साँचेहु[१] सोच[२] सँकोच पै हाते।

हातो भयो कहु कैसे मकोच बढ़े निसि नाह सो नेह के नाते।
कैसी कही रति मानि रही रति मदिर मे मदिरा मद माते।
मारि हथेरी हरे हिय देव सु दाबि रही अगुरी इक दाते ॥४८॥

[1] सौचे ह्वै—का०। [2] मांच—नी० हि०।

चपलता-लक्षण :

रागरु क्रोध[1] विरोध तें चपल जु चेष्टा होय।
कारज की[2] उत्तालता कहत चपलता सोय ॥४६॥

[1] राग क्रोध सु—नी० हि० मा०। [2] की जु—नी० हि०।

उदाहरण :

खेलत मे वृषभानु सुता[1] कहुँ धाइ[2] धँसी वन कुजन मे ह्वै।
डार मो हार तहाँ उरझ्यो सुरभाय रही कवि देव सखी द्वै।
तौ लगि आइ गयो[3] उत तें सु नगीच[4] मनो चित बीच परे च्वै[5]।
छोहर वा हरवा हरवाइ दै छोरि दियो छल सो छतियाँ छ्वै ॥५०॥

[1] इक गोप सुता—का०। [2] जाइ—भा० सा० का०। [3] आय परे—नी० हि०, आप गयो—भा० का०। [4] सु नजीक—हि०, सुनि जीक—नी०। [5] छ्वै—भा० सा०, म्वै—का०।

हर्ष-लक्षण :

प्रिय दर्शन श्रवनादि तें होय जु हिये प्रसाद[1]।
वेग स्वेद[2] आँसू प्रलय हर्ष लखौ[3] निरवाद ॥५१॥

[1] प्रमाद—नी०। [2] स्वाँस—नी० हि०। [3] सुकहु—का०।

उदाहरण :

बैठी ही सुन्दरि मन्दिर मैं पति को पथ पेखि पतिव्रत पोखे।
तौ लगि आए री आइ कह्यो दुरि द्वार तें[1] देवर दौरि[2] अनोखे।
आनँद मैं गुरु की गुरुताहू[3] गनी गुनगौरि[4] न काहु हू[5] ओखे।
नूपुर पाँइ उठे झननाइ[6] सु जाइ लगी घन धाइ[7] झरोखे ॥५२॥

[1] दूरि तें—ज०। [2] आइ—नी० हि०। [3] गुरताइ—ज० सा०। [4] गुनगाठि—का०। [5] काहू है—भा०, काहू के—भा०, काहुहि—ज०, कौनहू—नी० हि०। [6] झनकाइ—भा०। [7] अतुराइ—नी० हि०।

जडता लक्षण :

हित अहितहि देखे जहाँ[1] अचल[2] चेष्टा होइ।
जानि बूझि कारज थके जडता बरनै सोइ ॥५३॥

[1] सुनै—का०। [2] अचलन—नी० हि०।

उदाहरण :

कालिंदी के तट काल्हि भटू कहूँ ह्वै गई दोउन भेंट भली सी।
ठौरही ठाढे चितौन चितौत न[1] नेकहु[2] एक टकी टकसी[3] सी।

देव को[४] देखति देवता सी वृषभान लली न हली न चली सी ।
नद को छोहरा की छबि सो छितु एक रही छकि[५] छैल छली सी ॥५४॥

[१] इतै तन—नी० हि० । [२] नेक कही—नी०, नेक हिये—हि० । [३] ठगली—का० ।
[४]देव की—नी०, देव जू—का० । [५] छवि—का० ।

दु:ख-लक्षण :

उत्तम मध्यम नीच कम लघु चिंता अप्रसाद ।
महा सोक ये घन गये[१] हित[२] ससो सु विषाद[३] ॥५५॥

[१] ये वनुग को—नी० हि० । [२] ह्वै—का० । [३] सतोष विषाद—नी० हि० ।

उदाहरण :

केलि करै[१] जल मैं मिलि बाल गुपाल तहीं तट गैयनि घेरै ।
चोरि[२] सबै हरवा हरवाह दै दूरि तें दौरि वछान को फेरै ।
हार हरे हहरै हिय मैं[३] तिय धीर धरै न करै इक टेरै ।
राधिका ठाढी हरेई हरे हरिके मुख ओर हँसै अरु हेरै ॥५६॥

[१] करी—का० । [२] चेरी—का० । [३] हो हरे हिय मैं—नी० हि० ।

आवेग-लक्षण :

प्रिय अप्रिय[१] देखे सुने गात पात सवेग[२] ।
होइ अचानक भूरि भ्रम सो बरनहु[३] आवेग ॥५७॥

[१] अपराध—नी० हि० । [२] तँन तपँ सवेग—नी० हि०, तँन तपँ सवेग—सा०, गात पात अति वेग—का० । [३] कहिए—का० ।

उदाहरण :

देखन दौरी सबै बृजवाल सु आये गुपाल सुने ब्रज भू पर ।
टूटत हार हिये न सम्हारती[१] छूटत वार न किंकिनि नूपुर ।
भार उरोज नितवन को न धरै[२] कटि को लटिबो दृग दूपर[३] ।
देव हुदै[४] पथ आइ मनो चढि धाईं मनोरथ के रथ ऊपर ॥५८॥

[१] सम्हारत—नी० हि० । [२] केन धरै—नी० हि०, कौन डरै—सा० । [३] लटिवा तन दूपुर—नी० हि० । [४] ह्वै दै—नी० हि०, हु दै—का० सा० ।

गर्व-लक्षण :

बहु बल धन कुल रुप तें सिर उन्नत अभिमान ।
गनै[१] न काहू आप सम ताही गर्व बखान ॥५९॥

[१] गुनै—का० ।

उदाहरण :

देव सुरासुर सिद्ध वधून के[१] एतो न गर्व जितो यहि ती को ।
आपने जोवन[२] के गुन के अभिमान सबै जग[३] जानति फीको ।
वाम की ओर सिकोरति नाक न रागत नाक को नायक नीको ।
गोरी गुमानिनि ग्वारि गँवारि गिनै नहिं रुप रतीको[४] रती को ॥६०॥

[1] वो—भा० सा०। [2] जीवन—नी० हि०। [3] ऊपर और सबै रँग—का०। [4] मयक—का०।

उत्कंठा-लक्षण :

प्रिय सुमिरन तें गात मैं[1] गौरव आरसु होइ ।
देस न काल सह्यो[2] परै उत्कठा कहु सोइ ॥६१॥

[1] गर्व ये—नी० हि०। [2] कह्यो—नी० हि०।

उदाहरण :

कैधौ हमारीये बार[1] बडो भयो कै रवि को रथ ठौर ठयो है ।
भोर तें भानु की ओर चितौत घरी पल ते गनतैंही[2] गयो है ।
आवत छोर नही छिन को दिन को न अबैं[3] लगि जाम[4] गयो है ।
धाइये कैसिक साँझ तुरतहि देखु री द्यौस दुरत भयो है ॥६२॥

[1] वेर—नी० हि०। [2] हू गननी न—नी० हि०। [3] अभैं—भा० सा० नी०। [4] जाप—भा०, घाम—ज०।

नींद-लक्षण :

चिंता आरस खेद तें बसे तुचा[1] चितु जाय[2] ।
सुपन दरस अवयव चलन[3] ते कहु[4] नीद सुभाय ॥६३॥

[1] बैस तुचा—सा०, बसे चाह—नी० हि०। [2] चाय—नी० हि०। [3] अध वचन—नी० हि०। [4] ये कहिये—नी० हि०, एकहु—सा० ज०।

उदाहरण :

सोवत तें सखि जान्यो नही वह सोवत ते घर आयो हमारे ।
पीत पटी कटि मैं लपटी[1] अरु सांवरो सुन्दर रूप सँवारे ।
देव अबै लगि आँखिन तैं वह बाँकी चितौनि[2] टरै नहिं टारे ।
सापने मैं चित[3] चोरि लियो वहि चोर री[4] मोर पखौवन वारे ॥६४॥

[1] लपटि पटि मैं—का०। [2] सरूप—नी० हि०। [3] सौ सपने चित्त—का०। [4] उहि चोर री—सा०, चित्त चोर री—नी० हि०, वह चाह री—का०।

अपस्मृति-लक्षण :

अधिक दुख अति भय असुचि[1] सूनं ठौर निवास ।
सु अपस्मृति जहँ भू पतन[2] कप फेन मुख सांस[3] ॥६५॥

[1] असुधि—नी० हि०। [2] सो अपस्मृति है जहाँ भू पतन—नी० हि०, सु अपस्मृति जहँ मृतन—का०। [3] कप स्यमन उसास—नी० हि०।

उदाहरण :

मोहन माइ चले मथुरा तबतें निसिवासर बीतत ठाडे ।
बौरी भई ब्रज की बनिता बहु भाँतिन देव वियोग के बाढे[1] ।
भूलि गई गुरु लोग[2] की लाज गए गृह काज प्रमी[3] गृह गाढे[4] ।
मीनिन लौं अकिर[5] भहराद गिरैं फिरि धाइ[6] फिरैं मुख काढे ॥६६॥

[१] की बाढ़े—नी० हि० । [२] कुल लोक—का० । [३] धँसी—ज०, ग्रही—हि०, गली—भा० । [४] ठाढे—नी० हि० । [५] जु मिरै—ज० । [६] झुकि झुकि—का० ।

सुपति-लक्षण :

नीद बढ़ै तव तजि तचा चातुरी ती चितु जाइ ।[१]
अति उसास मुद्रित नयन सुपति[२] कहैं कविराइ ॥६७॥

[१] तचित तनु सुख मे चित जो जाहि—नी० हि०, तवनहु चाव रीरि चितु जाइ—भा०, तजित चापु रीति ती चितु जाइ—सा० ज०, तजित चापु रित ताहि चितु जाइ—का० । [२] सुमृति—भा०, स्वपन—नी० हि० ज० ।

उदाहरण :

साँवरो सोतु सुन्यो सुख सो कहुँ कालिदी कूल[१] कदव के कोरें ।
गोपवधू जुरि[२] आई सबै ब्रजभूषन के सब भूषन चोरें ।
काहू लई कर की बँसरी[३] कवि देव कोऊ[४] कर कक्न मोरें ।
काहू हर्‌यो हिय को हरवा हरवाय कोऊ कटि को पट छोरें ॥६८॥

[१] तीर—सा० । [२] मिलि—का० । [३] बनसी—का० । [४] दोऊ—नी० ।

बोध-लक्षण :

नीद गये मीर्जे नयन[१] अग भग जमुहाइ[२] ।
एक वार इद्रिय जगैं तै कहु बोध[३] सुभाइ ॥६९॥

[१] गई भरि जन्म की—नी० हि०, गये मूँदे नयन—का० । [२] जिय आय—नी० हि० ।
[३] ते अविवोध—का०, ते कउ नीद—भा० ।

उदाहरण :

सापने[१] मैं गई देखन हौं सुनि[२] नाचत नद जसोमति को नट ।
वा मुसकयाइ कै भाव बताइ कै मेरोई खैंचि खरो पकरो पट ।
तौ लगि गाइ रम्हाइ उठी कवि देव वधून मथ्यो दधि को घट[३] ।
जागि[४] परी तव कान्ह कहूँ न कदव कौ कुज न कालिदी को तट ॥७०॥

[१] सोवत—का० । [२] कौ तहाँ—नी० हि० ।[३] मट—नी० हि० । [४] चौंकि—भा० ज० ।

क्रोध-लक्षण :

अधिक्षेप[१] अपमान तें स्वेद कप दृग राग ।
अहकार जिय मे बढै क्रोध सुनहु बडभाग ॥७१॥

[१] औधि क्षेप—नी० हि० ।

उदाहरण :

देव मनावत मोहन ज्‌ वव वे मनुहारि करैं ललचौहे ।
बातैं बनाइ सुनावै[१] सखी मव ताती औ[२] मीरी रिसोहैं रसोहैं[३] ।
नाह सो नेह तऊ[४] तरुनी तजि रानि बितौनि चितौति न सौहैं[५] ।
माननि नाहि निरीछेहि साननि[६] वान सी आँखें कमान सी भौहैं ॥७२॥

[१] मिगावैं—का० मा०, सुनाइ—नी० हि० । [२] तानें औ—भा० । [३] रिसोही रसोहै—

हि०, रसोहै रिसोहै—भा०, रिसोही रसी है—नी०, रसोहे रिसोंहे—मा०, बुभाय रसौंहें—का०। [4] तर्ज—का०। [5] मोहै—मा०। [6] तान औ—नी० हि०।

अवहित्य-लक्षण

लज्जा गौरव धृष्टता गोपे[1] आहृति कर्म।
और करै और कहै[2] सो अवहित्य को धर्म[3] ॥७३॥

[1] लाज गौर अरु वधुता गोप—नी० हि०। [2] करै और औरै कहै—का०, और कहै औरै करै—नी० हि० भा०। [3] अवहित्था धर्म—नी०।

उदाहरण :

देखन को बन को निकसी बनिता बहु बानि[1] बनाइ कै आगे।
देव कहै दुरि[2] दौरि के मोहन[3] आइ गये उत तें अनुरागे।
बाल की छाती छुई छल सो धन[4] कुंजन मे रस[5] पुजन पागे।
पीछे निहारि निहारत नारिन हार हिये के सुधारन लागे ॥७४॥

[1] भांति—सा०। [2] डरि—ज०। [3] कै सोहन—मा०। [4] छवि कै बन—का०। [5] बस—भा०।

मति-लक्षण :

शास्त्र चिंतना ते जहाँ होइ[1] जथारथ ज्ञान।
करै शिष्य उपदेश जहँ[2] मति कहि ताहि बखान ॥७५॥

[1] सांसति मन में होइ जहँ जहाँ—नी० हि०, शास्त्ररु चितन तें जहाँ होइ—का०। [2] को—का०।

उदाहरण :

स्याम के संग सदा विलसी[1] सिसुता में सुता मे[2] कछू नहि जान्यो।
भूते गुपाल सों गर्व कियो गुन जोवन रूप वृथा अभिमान्यो[3]।
ज्यों न[4] निगोडी तबं समझ्यो कवि देव कहा अब जो[5] पछितान्यो।
धन्य जिये जग में जन ते तिनको मनमोहन सो[6] मन मान्यो ॥७६॥

[1] सदा मिलकै बिलसीं—का०। [2] ०—का०। [3] अरिमानो—भा०। [4] जो न—नी० हि०। [5] फिरि जो—का०। [6] तें—भा०।

उपालभ-लक्षण :

उपालभ अनुनय विनय अरु उपदेश बखान।
इनको अतरभाव कहि देव मध्य मति जान[1] ॥७७॥

[1] उपालभ द्वै भांति को बरनन है कविराइ। इनके अतरभाव कहि मध्यम देव सुजाइ—हि०, नी० प्रति मे दोहा त्रुटित है।

उपालभ द्वै भांति को बरनि कहें[1] कविराइ।
एक कहावै कोप तें दूजो प्रनय सुभाइ ॥७८॥

[1] बरनन है—नी० हि०, बरनि कहौ—का०।

कोप उपालभउ दाहरण

बोलत हौ बत बैन बडे अरु नैन बडे बड ऐन बडे हौ[१]।
जानति हौ छल[२] छैल बडे जू बडे खन के इहि गैल गडे[३] हौ।
देव कहै हरि रूप बडे ब्रजभूप बडे हमपै[४] उमडे हौ।
जाहु जू जैयै अनीठ बडे अरु ईंठ बडे पर[५] ढीठ बडे हौ ॥७६॥

[१] गहाइ कै गैल खडे हौ—का०, बडे वडरान अडे है—भा० हौ। [२] छवि—सा०ज०। [३] पैंड परे—नी० हि०। [४] हम सो—नी० हि०। [५] अरु—नी० हि०।

प्रणय उपालभ-उदाहरण :

लाल भले हौ कहा कहिये कहिये तौ कहा कहु काहू[१] कहैयैं।
काहू कहूँ न कहीन सुनी सु[२] हमैं कहिये कहि काहि सुनैयैं।
नैन परैं न परैं कर मैं नहिं[३] चैन परैं जु पै बैन बरैयैं[४]।
देव कहै नित को मिलि खेलि इतै[५] हित को चित को न चुरैयैं ॥८०॥

[१] कहो को हौ—नी० हि०। [२] सुनी रु—नी० हि०। [३] सैन—नी० हि०। [४] जब नैन खरैया—नी० हि०। [५] खेलियतै—नी० हि० खेले इतै—का०।

अनुनय-उदाहरण ·

वे बडभाग भरे[१] अनुराग इतै अति भाग सुहाग भरी हौ।
देखौ बिचारि समौ[२] सुख को तन जोवन जोतिन सो[३] उजरी हौ।
बालम सौ उठि बोलौ बलाइ ल्यो जो कहि[४] देव सयानी[५] खरी हौ।
हेरत बाट कपाट लगे हरि बाट परी[६] तुम खाट परी हौ ॥८१॥

[१] बडे—भा०। [२] समै—नी० हि०। [३] जोत महा—का०। [४] जो कवि—का०, यो कहि—भा०। [५] सयान—नी० हि०। [६] खरे—भा०, परो—नी० हि०।

उपदेश उदाहरण

कोपते[१] बीच परै[२] पिय सो उपजावत रग मै भग सु[३] भारी।
क्रोध निधान[४] विरोध निधान सु मान[५] महा सुख मैं[६] दुखकारी।
ताते न[७] मान समान अकारज[८] जाको अयान[९] बडो अधिकारी।
देव कहै कहिहौं[१०] हित की हरि जू सों[११] हितू न कहूँ हितकारी ॥८२॥

[१] कोपसें—भा०। [२] परयो—नी० हि०। [३] जु—का०। [४] विधान—भा० सा०। [५] समान—नी० हि०। [६] सुख तें—का०। [७] तोन न—का०। [८] अकारन—नी०। [९] अपानु—भा० अवान—हि० अजान—ज०। [१०] कहियो—नी० ज०। [११] जैसो—नी०।

उग्रता-लक्षण

दाप न बीरत[१] धीरता दुर्जनता[२] अपराध।
निरदयता[३] सो उग्रता जहँ तरजन वध बाध[४] ॥८३॥

[१] बीरत न—नी० हि० भा० मा०। [२] गोई है—नी० हि०। [३] निरजनता—भा०,

निदरैता—नी० हि० । [४] तन जन वध वाय—भा० ज०, तरजना व्याधि—मा० ।

उदाहरण

मोहन भाइ भये मथुरापति[१] देव महा पद मा मदमानो[२]।
कोरे परे अब कूबरी के हरि[३] याते कियो हमसो हित हातो।
गोकुल गांव के गोप गरीब हैं बांसु बराबर ही को इहां तो[४]।
बैठि रही सपनेहू[५] सुन्या कहुँ राजनि सो परजानि सो नातो ॥८४॥

[१] भये अब भूपति—नी० हि० । [२] मन मातो—का० मा० । [३] अब—मा० । [४] ही के इहां लो—मा०, हीं को वहां तो—नी० हि० । [५] सपने न—नी० हि० ।

व्याधि-लक्षण :

धातु कोप प्रीतम बिरह[१] जनर उपजै आधि।
जुर विकार बहु[२] अग मैं ताहीं[३] बरनैं व्याधि ॥८५॥

[१] प्रिय विरह तें—का०, कीतम विरह—नी० । [२] उर—का । [३] ताको—नी० हि०, नाहि सु—का० ।

उदाहरण

जा दिन तें अति व्याकुल है तिय[१] जा दिन तें पिय पथ सिधारे।
भूख न प्यास बिना ब्रजभूषन भामिनि भूषन भेष बिसारे।
पावत पीर नहीं कवि देव करोरिक मूरि सबै करि[२] हारे ॥
नारि निहारि निहारि[३] चले तजि बैद[४] बिचारि[५] बिचारि बिचारे ॥८६॥

[१] जिय—नी० हि० । [२] जबै करि—नी० हि०, सबै परि—मा० । [३] ०—का० । [४] तनै उपचारि—का० । [५] बिचारे—नी० हि० ।

उन्माद-लक्षण :

पिय बियोग तें जहँ वृथा वचनालाप[१] बिषाद।
बिन बिचार आचार जहँ[२] सो कहिय उन्माद ॥८७॥

[१] वचनन लाप—भा० मा०, वचन विलाप—नी० हि० । [२] काज जहां—का० ।

उदाहरण :

अरिकैं वह[१] आज अकेली गयी[२] खरिकैं हरि के गुन रूप लुटी।
उनहूँ[३] अपनो पहिराइ हरा मुसकाइ कैं गाइ कैं गाइ दुही।
कवि देव कह्यो[४] किनि कोई[५] कहू तबतें[६] उनके अनुराग[७] छुटी।
सगरी सो इहै[८] कहै बालबधू यह देखौ री माल गुपाल गुही ॥८८॥

[१] बहू—नी० । [२] गयी—का० । [३] उनहीं—का० । [४] कहौ—नी० । [५] कोऊ—मा०, काऊ—ज० । [६] तबनो—सा० । [७] जुअनाग—का० । [८] यही—मा० ।

मरण-लक्षण :

प्रकटहि लक्षन मरन के जह बिभाव अनुभाव।
जो निदान करि बरनिये तो[१] सिंगार अभाव ॥८९॥

[१] सो—मा० हि० ।

निर्वेदादिक भाव सब बरने सरस सुभाइ।
ता विधि मरनौ बरनिये जामैं रस न नसाइ[१] ॥६०॥

[१] नहि जाइ—नी०।

उदाहरण :

राधा के[१] बाढी वियोग की बाधा सु देव अबोल अडोल डरी रही।
लोगन की वृषभानु के भौन मैं भौर तें भारीयै भीर भरी रही।
वाके निदान के प्रान रहे[२] कढि औषधि मूरि करोरि करी रही।
चेति[३] मर करिकै चितई जब चारि घरी लौं मरीयै[४] धरी रही ॥६१॥

[१] राधिके—भा०। [२] गये—का० ज०। [३] चेती—ज०। [४] मरी सी—भा०।

त्रास-लक्षण :

घोर सबन दरसन[१] सुमृति लभ[२] पुलक भय गात।
होइ छोभ जो चित्त मैं त्रास कहत कवि तात ॥६२॥

[१] देर सब—नी० हि०। [२] थभ—नी० हि०।

चित्त छोभ द्वै भाँति को एक त्रास अरु[१] भीति।
अक्समात तें त्रास अरु विचार[२] भय रीति ॥६३॥

[१] इक—का०। [२] बिन विचार—नी० हि०, विचार तें—भा०, अरु अरु विचार—ज०।

त्रास-उदाहरण :

श्री वृषभान लली मिलि कै जमुनाजल केलि को हेलिन आनी।
रोमवली नवली कहि देव[१] सु सोने से गात अन्हात सुहानी।
कान्ह अचानक बोलि[२] उठे उर बाल के ब्याल वधू[३] लपटानी।
धाइ कै[४] धाइ गही ससवाइ[५] दुहूँ कर भारत अग अयानी[६] ॥६४॥

[१] कवि देव—का० सा०। [२] टेरि—सा० ज०। [३] बाल बधू—भा०। [४] को—भा०।
[५] ससकाइ—का०, सिसिआइ—ज०। [६] अपानी—भा०।

भय-उदाहरण :

आजु गोपाल जू बाल बधू सँग नूतन नूतनि कुंज[१] बसे निसि।
जागर होत उजागर नैननि[२] पाग पै पीरी पराग रही[३] पिसि।
चोज के चदन खोज खुले जहँ[४] ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि[५]।
बोलत बात[६] लजात से जात सु आये इतौत चितौन चहूँ दिसि ॥६५॥

[१] नूतन नूतने कुज—भा०। [२] मैननि—सा०। [३] परी—नी० हि०। [४] कहूँ—का०।
[५] मैं घिसि—भा०, मैं धँसि—का०, सो धिमि—सा०। [६] बाल—सा०।

तर्क-लक्षण :

विप्रतिपत्ति[१] विचार अरु ससय अध्यवसाइ।
वितरक चौविधि जानियै भ्रूचलनादिय[२] भाइ ॥६६॥

[१] विपनि विचित्र—नी० हि०। [२] भूवत निदक—नी० हि०।

विप्रनिपात-उदाहरण :

यह तौ[1] कछु भामनी[2] को सो[3] लसै मुख देखन हीं दुख जात है स्वै[4]।
सफरी मद मोचन लोचन ये परिहैं कहूँ मानो चितौन ही च्वै।
कवि देव कहै कहिये जुग जो जलजात रहे जलजात मैं ध्वै[5]।
न सुने न पै[6] काहू कहूँ कबहूँ कि मयंक के अंक मैं पंकज द्वै[7] ॥९७॥

[1] याहु तो—सा०। [2] राधिका—का०। [3] कैसी—नी० हि०, कैसो—सा०। [4] ह्वै—भा०। [5] द्वै—ज०, स्वै—का०, छ्वै—सा०, ह्वै—नी० हि०। [6] तवौ—भा०, तपे—भा०। [7] वर वारिधि मैं विधि खंजन है पै मयंक के अंक मै पंकज द्वै—नी० हि०।

विचार-उदाहरण :

काम कमान तैं बान उतारिहैं देव नहीं मधु माधव रैहैं[1]।
कोकिलऊ[2] कल कोमल बोल बिसारि कै आपु अलोप कहैंहै[3]।
मोहि महादुख दै सजनी रजनीकर औ रजनी घटि जैहै[4]।
प्रानपियारेऊ[5] ऐहैं धरे पै प्रान पयान कै फेरि न ऐहैं ॥९८॥

[1] व्याधव रैहैं—नी० हि। [2] कोकिल की—सा०। [3] अलीय कहैंहै—नी० हि०। [4] सजनीकर औ रजनी घरि जैहै—सा०, रजनीकर बैर बढे जरि जैहै—नी० हि०। [5] प्रान पियारे तु—भा०, प्रान पियारे जु—नी० सा०, प्रान पियारे को—हि०।

संशय-उदाहरण :

यह कैधौं कलाधर ही की कला अबला किधौं काम की कैधौं सची।
किधौं कौन के भौन की दीपसिखा सखी[1] कौन के भाग के भौंनि[2] खँची।
तिहूँ लोक की सुंदरताई की एक अनूपम रूप की[3] रासि मची[4]।
नर किन्नर सिद्ध सुरासुरहून की कंचि[5] कधूनि विरंचि रची ॥९९॥

[1] विधि—नी० हि०, विधौ—का०। [2] ह्वै भाल—भा०, की भौन—नी० हि०। [3] अनूप सरूप की—सा०। [4] रची—नी० हि०। [5] वीचि—ज०।

वितर्क-उदाहरण :

कहु[1] कौन की चपक चारु लता यह देखि सबै जन भूलि रहे।
कवि देव ए तामैं[2] कहा बिलसै बिवि श्रीफल से[3] धरि धूलि रहे।
तिहि ऊपर को यह सोम उवो[4] तम तोम चहूँ दिसि भूलि रहे।
चितये चित चोरत कोए[5] तहाँ नवनील सरोज से फूलि रहे ॥१००॥

[1] कहि—नी० हि०। [2] तोमैं—भा० सा०। [3] सोहे न से—नी०। [4] उदो—नी०, उद्यो—ज०, नवो—भा०। [5] चित मैं चित चोरत कोए—भा०, चित चोर कया धारहि धीर—नी० हि०

भरतादिक सतकवि कहैं बिभचारी[1] तैंतीस।
बरनत छन चौंतीसयो एक[2] कविन के ईस ॥१०१॥

[1] गचारी—का०। [2] चौतीसयें ए—का०, बरनत पुनि चौंतीस ए सकल—नी० हि०।

छल-लक्षण :

अपमानादिक करन को कीजै निया छिपाव।
वक्रउक्ति अतर कपट सो बरनै छल भाव ॥१०२॥

[१] कृपा—नी० हि० का०। [२] कछू—नी० हि०। [३] बरनहु—ज० सा०, वरणन—नी०, बरनत—हि०।

उदाहरण

स्याम सयाने कहावत हैं कहौ आजु को[१] काहि सयानु है दीन्हो।
देव कहैं दुरि दौरि[२] कुटीर मे आपनो वैर वधू उहि[३] लीन्हो।
चूमि गई मुख औचकही पटु लै गई[४] पै इन वाहि न चीन्हो।
छैल भले छल[५] ही मैं छ्वै दिन ही मैं छबीली भलो छल कीन्हो ॥१०३॥

[१] कहौं काहे धौ—का०। २ टेर—भा० सा०, ०—नी०, टेरि—हि०। [३] तेहि—नी० हि०। [४] द्रग—सा०। [५] छिन—भा० सा० का०।

सका सूया भय[१] ग्लानि घृति सुमृति नीद मति।
चिंता विस्मय व्याधि हर्ष उत्सुकता[२] जडगति॥
मद विषाद उन्माद लाज अवहित्थहि जानहु।
सहित चपलता ए विशेष सिंगार बखानहु॥
अरु समान मत[३] सभोग मैं सकल भाव बरनन करौ।
आलस्य उग्रता भाव द्वै[४] सहित जुगुप्सा परिहरौ ॥१०४॥

[१] गर्व—ज०। [२] उत्कठा—का०। [३] मति अरु समान—ज०॥ [४] ए—का०।

आलस ग्लानि निर्वेद[१] श्रम उत्कठा जड योग।
सकासुमृति अवबोधोन्माद वियोग[२] ॥१०५॥

[१] अलस ज्ञान निर्वेद—नी० हि०, अल ग्लानि निर्वेद—ज०। [२] सका सुमृति सु स्वास औ यो उन्माद विशोग—नी० हि०, सका ममरति सुस्वास औ बोधोन्माद विशोग—सा०।

इति द्वितीय विलास।

जो [१]विभाव अनुभाव अरु व्यभिचारिन[२] करि[३] होइ।
थिति की पूरन वासना[४] सुकवि कहन रस[५] सोइ ॥१॥

[१] जे—नी०हि०। [२] सचारिन—का०। [३] के—नी०हि०। [४] थिति के परन तें सबै—नी०हि०। [५] है—नी०हि०।

जोहि प्रथम[१] अनुराग मैं नहिं पूरब[२] अनुराग।
तो कहिये दपतीन के जन्मान्तर के भाव ॥२॥

[१] जौर प्रथम—ज०, जे प्रथमे—नी०हि०। [२] पूरल—ज०।

ताहि विभावादिकन तें[१] थिति सपूरन जानि।
लौकिक और अलौकिकहि द्वै विधि कहत बखानि[२] ॥३॥

१ के—ज० हि०। २ लौकिक ही द्वै विधि कहत कवि भरतादि बखानि—का०।

नयनादिक इन्द्रियनि[१] के जो गहि लौकिक जान[२]।
आतम[३] मन सजोग ते होय अलौकिक ज्ञान[४] ॥४॥

१ पहिचान—नी०हि०। २ मानु—नी०हि०। ३ उत्तम—नी०हि०, आतमा—ज०।
४ थान—न०, जानु—नी०हि०।

कहत अलौकिक तीन विधि प्रथम स्वापनिक मान[१]।
मनोरथ कवि देव[२] अरु[३] उपनायक[४] बखान ॥५॥

१स्वप्न को नाम—नी०हि०, स्वापनिक जानु—का०। २ कहि देव—का०। ३ कहि—नी०हि०। ४ उपनायकहि—ज०।

स्वापनिक-उदाहरण।

मोह गई अभिलाख भरी तिय सापने म[१] निरखे नँदनदन।
देव कह्यू[२] हँसि ग्रान कह्यो पुनके सुदिय फलके जल के वन।
जागि परी नव ऊढ[३] वधू ढिग ढँढति गूढ मनह सनी धन।
मोच सँकोच अगोचर तीय[४] बसँ बिनसं[५] बिहँसँ मन ही मन ॥६॥

१ अभिलाखन सों निसि या सुपने—का०, सपन म निय—नी०हि०। २ कहै—नी०हि०
३ है नवोढ—नी०हि०, तव जेठ—का०। ४ अगोचति यत्र—नी०हि०। ५ हँसैं हुलसैं—नी०, हँसै जलसै—हि०।

मनोरथ-उदाहरण।

कालिंदी कूल भयो अनुकूल कहूँ घरबार घिरै[१] नहि घेर्‌यो[२]।
मंजुल वंजुल माल[३] रसाल तमालनि के वन नैन नसेर्‌यो।
केलि करीर[४] कदबन बीच जु[५] काननं कुंज कुटीन मैं टेरयो।
मोहनलाल की मूरति के संग डोलत माइ[६] मनोरथ मेर्‌यो ॥७॥

१ घरघेर घिरै—नी०हि०, घरवार घिरो—भा०, घरवा घिरै—का०। २ नाहिन घेरो—का०। ३ बेत समाल—नी०, बेत रसाल—हि०। ४ करी री—भा०। ५ गु—का०। ६ माय—न०।

उपनायक-उदाहरण।

भूमक दैन[१] जमामनि के जुवतीन[२] की आजु समाज सिधायो।
स्याम को सुदर भेष बनाइ कै आइ वधू[३] इक बेनु बजायो।
हास में रास रच्यो कवि देव बिलास कै[४] ही मे हुलास बढायो।
नाचत वाहि[५] सखी सब ही के हिये[६] सुरसिंधु को पार न पायो ॥८॥

१ रैन—भा०। २ जु अतीन—ज०। ३ रूप—नी० हि०। ४ सखी—नी० हि०।
५ बिलास के—भा०। ६ ताहि—का०। ७ सब ही के उर म—का०।

लौकिक रस।

कहत अलौकिक[१] त्रिविधि विधि[२] यहि विधि बुध बलसार[३]।
अब[४] बरनत कवि देव कहि लौकिक नव परकार ॥९॥

[१] सुलौकिक—भा०। [२] रस—ज०, बुध—का० सा०। [३] लौकिक कछु बुधि कुबुधि कहि कहियो बुधि बलसार—नी०हि०। [४] अरु—का०।

प्रथम होइ सिंगार दूसरो हास्य सु जानहु।
तीजो[१] करुना कहौ चतुर्थो रौद्र सु मानहु[२]।
वीर पाँचवो[३] जानि भयानक छठो बखानहु।
सातवो[४] कहि बीभत्स आठवो अदभुत आनहु[५]।
यहि भाँति आठ विधि कहत कवि नाटक मत भरतादि सब[६]।
अरु सात[७] यूत[८] मत काव्य के लौकिक रस[९] के भेद नव॥१०॥

[१] तीजे—नी०। [२] बहुरि रौद्र रस जानि—हि०, वीर सु जानहु—नी०, रौद्र मानो—सा०, रौद्र जानौ—का०, रौद्रहि मानहु—ज०। [३] बहुरि रौद्र रस—नी०। [४] सप्तम—नी० हि०। [५] मानहु—नी० हि०। [६] नारद भरतादि कहु—नी०हि०। [७] सब अरु—नी०। [८] यतन—भा०, सुरम—नी० हि०, जुते—ज०। [९] अलौकिक रस—का०, लोक कर्म के—नी०हि०।

सकल सार शृंगार है सरस माधुरी धाम।
स्यामहि के चरनन बरन[१] दु खहरन अभिराम॥११॥

[१] स्यामहि के चरनन वरन—का०, सो याही वरनन करौ—नी० हि०।

याही तें[१] सिंगार रस बरनि कह्यो कवि देव।
जाको है हरि देवता सकल देव अधिदेव॥१२॥

[१] ताही तें—सा० ज०।

शृंगाररस-लक्षण।

आपुस में तिय पुरुष के[१] पूरन रति जो होइ।
ताही सो शृंगार रस कहत सुकवि सब कोइ[२]॥१३॥

[१] मिलि—नी० हि०। [२] बरनि कहैं कवि लोइ—का०।

उदाहरण।

बारेक[१] द्वार तुम्हे लखि कै सखि लाल के लोइन लोल रहे[२] लुभि।
आजु[३] इतै पर भेंट भई यहि[४] रीभि रहे[५] कवि देव सखी[६] खुभि।
तैसिय तै चितई हँसि कै सु[७] रहे छकि नैनन की[८] छवि सा छुभि।
नेह भरी यह प्यारी तिहारी तिरीछी चितौनि गई चित मे चुभि॥१४॥

[१] बारके—ज०। [२] लोल भये—नी० हि०। [३] औजु—नी०। [४] लखि—नी० हि०। [५] रही—सा०ज०। [६] सखी—नी०। [७] हँसि को सु—नी०हि०। [८] नैननमे—नी०हि०।

द्वै प्रकार सिंगार रस है[१] सयोग वियोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि[२] कहत चारि विधि लोग॥१५॥

[१] है रस—नी० हि०। [२] कहि—नी० हि०।

देव कहैं[१] प्रच्छन्न सो जाको दुरो विलास।
जानहि जाको सकल जन बरनैं ताहि प्रकास॥१६॥

[१] सु है—नी० हि० ।

प्रच्छन्नसयोग-उदाहरण ।

बाजी हुरे[१] रसना रमकेलि मैं कोमल कै बिछियानि[२] की बानी ।
प्यारी रही परजक निसक ह्वै[३] प्यारे के अक महासुख सानी ।
यौं पग[४] चाँपि चढी उतरी रँगरावटी आवत जात न जानी ।
छोलि छिपाइ[५] न खोलि हियो कवि देव[६] दुहूँ दुरि कै[७] रति मानी ॥१७॥

[१] बाजि रही—भा० सा० । [२] कज बियानि—ज० । [३] निसक कै—का० । [४] स्वै पग—सा०, ज्यों पग—ज० । [५] छोडि छिपाइनु—मा० । [६] कहि देव—का० । [७] दुहूँ दुरि कै—का० ।

प्रकाश सयोग-उदाहरण ।

मोती की सुबास आसपास भरि भौन रह्यौ भरत उसास वास बासन[१] बमात है ।
कक्न भनित[२] अगनित रव किकिनी के नूपुर रनित[३] मिले भनित[४] सुहात है ।
कुडल हलत[५] मुखमडल झलमलात झूलत[६] दुकूल भुजमूल महरात है ।
करत विहार कवि देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है[७] ॥१८॥

[१] बमन—नी० । [२] झनक—नी० हि० ज० । [३] भनक—नी० हि० । [४] भनित—नी० हि० । [५] लहत—सा० । [६] झलक—नी० हि० ज० । [७] कवि देव दत्त दोऊ मिलि छूटि जात बार हार टूटि टूटि जात है—नी० हि० ।

हाव-लक्षण ।

नारिन के सयोग तें होत विविध विधि भाव ।
तिनमे भरतादिक सुकवि बरनत हैं दस हाव ॥१९॥

हाव-नाम ।

पहिले लीला हाव बहुरि सुविलास बरनिये ।
ताते कहि[१] बिछित्ति बहुरि विभ्रम[२] कहि गनिये ॥
किलकिंचित तब कह्यौ[३] बहुरि[४] मोट्टाइत बरनहु[५] ।
ताते कहु कुटमित बहुरि बिब्बोकहु मानहु[६] ॥
कवि देव कहैं फिरि ललित कहु[७] ताते विहित कहे सरस ।
एहि भाँति विविध विधि विबुधवर[८] बरनत है ए[९] हाव दस ॥२०॥

[१] कऊ—भा०, कहु—मा० । [२] विश्रम—नी० । [३] को बरनि—नी० हि० । [४] तबै—भा० । [५] मानहु—भा० । [६] विहित ता कहि सुनि करनहु—नी० हि० । [७] सु कहन विलोक वरि कहे—नी० हि० । [८] विधि बरनियै—ज०, विधि कविराज बर—नी० हि० । [९] कवि बर—भा० सा० ।

लीला-उदाहरण ।

कौतुक तें[१] पिय की करै भूषन भेष उन्हार ।
प्रीतम सा परिहास जहँ[२] लीला तेहु[३] विचार ॥२१॥

[१] तिय—का० । [२] यह—नी० हि० । [३] हाव—नी० हि० ।

उदाहरण।

काल्हि भटू बनसीवट के तट खेल[१] बडो इक राधिका कीन्हो।
साँझ निकुंजनि माँझ बजायो जु स्याम को बेनु[२] चुराइ कै लीन्हो।
दूरि तें दौरत देव गये सुनिकै धुनि रोस[३] महा चित चीन्हो।
संग की औरै उठी हँसि कै तब हेरि हरे हरि जू[४] हँसि दीन्हो ॥२२॥

[१] ख्याल—नी० हि०, हास—का०। [२] बीनु—नी० हि०। [३] रास—का०। [४] जु हरे—का०।

विलास-लक्षण।

प्रिय दरसन सुमिरन श्रवन जहँ अभिलाख प्रकास।
बदन गमन[१] नयनादि की जो विशेष सु विलास[२] ॥२३॥

[१] मगन—भा०। [२] जो तु सरस विलास—का०।

उदाहरण।

आजु अटा चढि आई घटानु मैं बिज्जुछटा सी वधू बनि कोऊ।
देव तिया[१] कवि देवन केतिये[२] एनो हुलास बिलास न ओऊ।
पूरन पूरब[३] पुन्यन त बडभाग बिरंचि रच्यो जन[४] सोऊ।
जाहि[५] लखै लघु अंजन दै दुखभंजन ये[६] दृग खंजन दोऊ ॥२४॥

[१] तिया—सा०। [२] देवजू केतिय—नी०, देवन केती पै—का० हि०। [३] पूरब पूरन—नी०, पूरब पूरब—हि०। [४] मखि—का०। [५] वाहि—सा०, ताहि—ज०। [६] दुख-भंजन दै—नी० हि०।

विच्छित्त-लक्षण।

सुहाग रिस[१] रस रूप[२] ते बढै गर्व[३] अभिमान।
थोरेई भूषन जहाँ सो विच्छित्त बखान ॥२५॥

[१] पिय सोहाग—नी० हि०, जति रिस—का०। [२] गोसरूप—नी०। [३] गर्भ बढे—नी० हि०।

उदाहरण।

भाग सुहाग को गर्व बढ्यो सु रहै अभिमान[१] भरी अलबेली।
बेसरि बेंदी न[२] केसरि खौरि बनावै न[३] सेंदुर सीक[४] सहेली।
भूलेहू भूषन भेषु न और करै कहि[५] देव बिलास की बेली।
मोहनलाल के मोहन को यह पैन्हति[६] मोहनलाल[७] अकेली ॥२६॥

[१] सु नहै अनुराग—का०। [२] बदनि—भा०। [३] बनावन—नी० हि०। [४] रक सुहेली—भा०, सीफ लहेली—नी०, सीक सहेली—हि०। [५] कवि—नी० हि० का०। [६] पेंधति—भा० मा०, पहिरनि—ज०, पहिरे यह—का०। [७] मोतिनमाल—नी० हि०।

विभ्रम-लक्षण।

उलटे जहँ[१] भूषन बसन[२] वेष हँसै जन[३] जाहि।
भाग रूप अनुराग मद विभ्रम बरनहु[४] ताहि ॥२७॥

[1] उलट जाहि—नी० हि०। [2] वचन—भा० सा०। [3] जहँ—का०। [4] वरनै—भा०।

उदाहरण।

स्याम सों केलि करी निसि सोन तें[1] प्रात उठी थहराइ कै।
आपने चीर के धोखे वधू पहिर्‌यो पट्ट पीत भटू भहराइ कै।
बाँधि लई कटि मो वनमालन किंकिनी बाल लई ठहराइ कै।
राधिका की रस रग की दीपति सग की हरि हँसी हहराइ कै ॥२८॥

[1] सोवत—नी० हि०।

किलकिंचित-लक्षण।

किलकिंचित मैं चपलता नहिं कारज[1] निरधार।
श्रम मद[2] भय अभिलाष अरु[3] सुमृत गर्व[4] इकबार ॥२६॥

[1] काज—नी० हि०। [2] सम दम—भा०, श्रम मुद—का०। [3] रुख—भा० सा०ज०।
[4] नखमित गई—नी०।

उदाहरण।

पाँइ परै पलिका पै[1] परी तिय सकृति सौनिन होति न सौंही[2]।
ऐंचि कमी[3] फुफुंदी की फुंदी भुज दाबि दुहूँ छतियाँ हुलसोही।
काँपि कपोलनि चाँपि हथेरिन्ह[5] झाँपि रही मुख[6] डीठि[7] लसौही।
त्यों सकुचोंही उचोंही[8] रुचोंही ससोंही हँसोंही रिसोंही रसोंही[9] ॥३०॥

[1] पलगा पै—भा०। [2] सकित कपत सोतिन सौंही—का०, हौतिन सौंही—नी०हि०। [3] औचकही—नी० हि०। [4] अलसौंही—भा०। [5] रहै थिर—नी० हि०। [6] हाँथि हथेरिन्ह सो मुख—नी० हि०। [7] योंहीं—नी० हि०। [8] ०—नी० हि०। [9] सिसोंही—नी० हि०।

मोट्टाइत-लक्षण।

सौति[1] नाम कुल लाज ते कपट प्रेम मन होइ[2]।
सुमुख होइ चित विमुख ह्व[3] कहौ मोटायितु सोइ ॥३१॥

[1] सौह—नी० हि०। [2] प्रमान जु होइ—ज०, प्रेम नहिं होइ—नी० हि०। [3] सनमुख ह्वै चितवै जु मुख—नी० हि०, सन्मुख ह्वै न विमुख ह्वै—का०।

उदाहरण।

राधिका रूठी कछू दिन तें कवि देव कछू[1] न सुनै कछू[2] बोलै।
नैंकु चितौनि नही चितु दै रस हास[3] हियेहू हियेहु न[4] खोलै।
आवति लोक की लाज के काज यही मिस सौतिन को मुख[5] छोलै।
स्याम के अग सो अग लगावै न[6] रग मैं[7] सग मलीन के[8] डोलै ॥३२॥

[1] वधू—भा०। [2] नहिं—नी०हि०। [3] हास—भा०। [4] हियेहू खोलै—सा०, हियो नहि—नी० हि०। [5] सौतिन को मुख—नी० हि०, सौतिन स्वारथ—का०। [6] अग छुआवै न—नी० हि०। [7] रग मा—का०। [8] मलीन मैं—का०।

कुट्टमित-लक्षण ।

कुच ग्रहन[१] रददान तें उत्कठा अनुराग ।
दुखहू मैं सुख होइ जहँ कुटमित कहु[२] सभाग ।।३३।।

[१] कुच ग्राहन—भा०, कुच ग्रहनख—नी० हि० । [२] कुटमित कहै—भा०, कहि कुट-मित—हि० ।

उदाहरण ।

नाह सो नाही कके सुख सो[१] सुख सो रति[२] केलि करै रतिया मैं ।
देत रदच्छद सीसी करैं कर ना पकरैं[३] पै बकै[४] बतिया मैं ।
देव किते[५] रति कूजित कै तन कप सजै न[६] भजै घतिया[७] मैं ।
जानु भजानहू को[८] भहरावति आवति छैल लगी छतिया मैं ।।३४।।

[१] कढ़े मुख सो—नी० हि०, ककै मुख सो—भा० । [२] रस—का० । [३] करना यकरै—सा० ज० हि० । [४] जु बकै—का० । [५] देत विते—नी० हि० देव हिते—सा० । [६] तजै न—नी० हि० । [७] छतिया—भा० । [८] भुजानहू के—का० ।

बिब्बोक-लक्षण ।

प्रिय अपराध धनादि मद[१] उपजै गर्व विकार[२] ।
कुटिल डीठि अवयव चलन[३] सो बिब्बोक विचार ।।३५।।

[१] अपराधी होइ जब—नी० हि० । [२] किवार—भा० सा० । [३] अवये वचन—नी० हि०, अरु अयवचन—ज०, अवहित्थ जहू—का० ।

उदाहरण ।

स्यामले[१] सौति के सँग बसे निसि अँगन वाहि के रग रचाइ कै ।
आए इतै परभात लजात से बोलत लोचन लोल लचाइ कै[२] ।
देव को देखि कै दोष भरे तिय पीठि दई उत दीठि बचाइ कै ।
ज्यो चितई अरसोहैं रिसोहैं सु सोहैं[३] सखीन के भौंहैं नचाइ कै ।।३६।।

[१] सांवरे—ज० । [२] चलाइ कै—सा० । [३] सो सौहैं—नी०, से सोहैं—हि० ।

ललित-लक्षण ।

मन प्रसाद पति वस करन[१] चमत्कार अति[२] होइ ।
सकल अग रचना ललित ललित बखानै सोइ ।।३७।।

[१] अति वास कर—नी० हि०, पिय बस करत—का० । [२] चित—भा० सा० ।

उदाहरण ।

पूरि रहे पहिले पुर[१] कानन पौन के गौन सुगन्ध[२] समाजनि ।
गान सों गुज निकुज उठें कवि देव सु भौरनि[३] की भई[४] भाजनि ।
दूरि तें देखी मसाल सो बाल मिली[५] मुख भूषन वेष विराजनि[६] ।
जानि परी वृषभान सुता अब कान परी बिछियानि की बाजनि ।।३८।।

[१] पहिले सुर—नी०, पहिले सुर—हि०, पहिले उर—ज० । २ सगधि—सा० ।
[३] बड़ै—नी० हि० । [४] सु भौर—भा० । [५] की भय—नी०, पय भय—हि०, भई भय—

सा०। [६] बली मु लला—ज०। [७] मुख की दुति चंद बिराजति— का०।

विहृत-लक्षण।

ब्याज लाज तें चेष्टा और[१] और ब्यवहार[२]।
पूरें पिय अभिलाष निय ताही[३] विहृत विचार ॥३९॥

[१] ऊठ अह—नी० हि०। [२] विचार—भा० मा०। [३] ते ता कह—नी० हि०।

ब्याजविहृत-उदाहरण।

वृषभान की आई कन्हाई के कौतिक[१] आई सिंगार सबै सजि कै।
रस हास हुलास बिलासनि सौं कवि देव जू[२] दोऊ रहे रँगि कै।
हरि जू हँसि[३] रंग मैं[४] अंग[५] छुयो तिय संग सखीनहू कौ[६] तजि कै।
उठि धाई मटू भय कै[७] मिस[८] भावती[९] भीतरे भौन गई भजि कै[१०] ॥४०॥

[१] कौतुक—भा०, केतिक—नी० हि०। [२] कहि देव जू—नी० हि०। [३] हरि हू हरि—नी० हि०, हरि जु हरि—भा०। [४] रंग सों—नी० हि०। [५] रंग—का०। [६] सखीन को ना—नी० हि०। [७] सबके—नी० हि०। [८] बस—ज०। [९] धावती—नी० हि०। [१०] भजि गई भजि कै—नी० हि०।

लाजविहृत-उदाहरण।

भेंट भई हरि भावती सों[१] इक ऐसे मैं आली कह्यो बिहँसाइ कै।
कीजै लला रस केलि[२] अकेली ए[३] केलि के भौन नवेली को पाइ कै।
भौंहैं घुमाइ कछू इतराइ कछून रिसाइ कछू मुसकाइ कै।
खैंचि खरी दई दौरि[४] सखी के उरोजनि बीच सरोज फिराइ कै ॥४१॥

[१] भावते सों—नी० हि० भा०। [२] रस रीति—का०। [३] अकेली कै—नी० हि०। [४] दौरि—ज०, हेरि—का०।

वियोग-शृंगार।

सुखद श्रवन दरसन परस जहाँ परस्पर नाहिं।
सो वियोग शृंगार जहँ मिलन आस मन माहिं[१] ॥४२॥

[१] श्रवन कदाचित कै दरस परै परस्पर नाहिं। मिलै न सुहृद सनेह सों जहँ सु वियोग कहाहिं—का०।

वियोग-शृंगार-भेद।

कहु पूरब अनुराग अरु मान प्रवास बखान।
करुनातम[१] एहि भाँति करि वियोग चौबिधि जान[२] ॥४३॥

[१] करुणा भूम—नी० हि०। [२] चारि वियोग विधान—का, विप्रलंभ यों जान—नी० हि०।

पूर्वानुराग-लक्षण।

दपतीन कै[१] देखि सुनि[२] बढ़ै परस्पर प्रेम।
सो पूरब अनुराग जहँ मन मिलिबे को नेम ॥४४॥

[१] दपतीन मैं—का०। [२] देखे सुने—हि०।

दर्शन-उदाहरण।

देव जू दोऊ मिले पहिले दुति देखत ही तें[१] लगे दृग गाढे।
आगे ही तें गुन रूप सुने तबही तें हिये अभिलाष ह्वै[२] बाढे।
ता दिन तें इत राधे उतै हरि आधे भये जु बियोग के बाढे।
आपने आपने[३] ऊँचे अटा चढि द्वारन दोऊ[४] निहारत ठाढे॥४५॥

[१] देखत ही जु—का०। [२] अभिलाषहि—भा०, अभिलाखनि—ज०। [३] ०—का०।
[४] दोऊ कुमार—का०।

श्रवण-उदाहरण।

सुदरता सुनि देव दुहूँ के रहे गुन सो गुहि कै मन मोती।
लागि हैं देखिबे को दिन रात गिने गुरुहू नहि सौ किन गोती[१]।
देह[२] दुहूँ की दहै बिनु देखे सु देखि दसा निसि सोवत कोती।
होती कहा हरि राधिका सो कहूँ नैको दई पहिचान जो होती॥४६॥

[१] न हँसै किन गोती—नी० हि०, न हँसौ किन गोती—सा०। [२] देव—भा० सा०।

कृष्ण पूर्वानुराग उदाहरण।

बाल लतान[१] मैं बाल को बोल सुन्यो कहुँ सग सखीने के टेरत[२]।
काहू कही हरि राधा यही दुरि[३] देवजू देखि इतै मुख फेरत।
है तबते पल एक नही कल लाखनि लौं[४] अभिलाखनि घेरत।
वाही[५] निकुजहि नद कुमार घरीक मैं बार हजारक हेरत॥४७॥

[१] लोल लतान—का०। [२] हेरत—ज०। [३] इरि—ज०, कवि—नी० हि०। [४] लाखनि हू—का०। [५] पाही—भा० सा० का०।

राधिका पूर्वानुराग-उदाहरण।

सांसनि ही सौं समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तन की तनुता करि।
देव जियै[१] मिलिबेही की आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन तें मुख फेरि हरै[२] हँसि हेरि हियो जू लियो हरि जू हरि॥४८॥

[१] जीव रह्यो—नी० हि० का०। [२] हरे—सा० ज० हि०।

दस दसा-नाम।

प्रथम कहो अभिलाप बहुरि चिंता सुमिरन कहु।
ताते हैं[१] गुन कथन बहुरि उद्वेगहि बरनहु।
फिर[१] प्रलाप उन्माद व्याधि अरु जडता जानौ।
बहुरि मरन यहि भाँति दसावस्था[२] उर आनौ।
ए हाद[३] पूर्व अनुराग मैं दोउन के कवि देव कहि।
अरु[४] मरन न बरनत एक[५] कवि जो बरनैं तो रसहि गहि॥४९॥

[१] पुनि—नी० हि०। [२] अवस्था दस—भा० मा०। [३] यहि—नी० हि०। [४] अरु एव—भा०। [५] ०—भा०।

चिंता जडता व्याधि अरु सुमिरन मरनुन्माद[१]।
संचारिन मैं हैं कहे दंपति विरह विषाद ॥५०॥

[१] जडनुन्माद—नी०, ऊ उन्माद—हि०।

अभिलाष लक्षण।

प्रीतम जन के मिलन की इच्छा मन मे[१] होय।
आकुलता संकल्प बहु[२] कहु अभिलाष जु सोय ॥५१॥

[१] मन की—ज०। [२] सकुलय बहुरि—ज०।

उदाहरण।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पैं पाइ गहाइये तो।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बडे खन लौं उर लाइये तो।
अपनो दुख औरनि[१] कौ उपहास सबै कवि देव बताइये तो।
घनस्यामहि नेकहु[२] एक घरी कौं इहाँ लगि जो करि पाइये तो ॥५२॥

[१] औरति—ज०। [२] तेकहि—ज०। यायतो—ज०।

गुणकथन लक्षण।

पिय के सुंदरतादि गुन बरनै प्रेम[१] सुभाइ।
साभिलाष सो[२] गुन कथन[३] बरनत कोविदराइ[४] ॥५३॥

[१] सबै—नी० हि०। [२] साभिलाप जो—भा०। [३] गुन कथा—सा०। [४] कोविद गाइ—हि०।

उदाहरण।

दामिनि ह्वै रहिये[१] मन आवत मोहन को घन सो तन घेरे।
देव[२] को देखिये री दिन रातिहू कोई करौ किन कोटि करेरे[३]।
स्याम की सुंदरताई कहौं कछु होहिं जो जीभ हजारक[४] मेरे।
केवल वा मुख की सुषमा पर सौक[५] ससी गहि वारि के फेरे ॥५४॥

[१] रहिजो—नी० हि०। [२] वाही—भा० सा०। [३] करेरे—भा०, कहेरे—नी०। [४] हजारन—भा०। [५] कोटि—भा० सा०।

प्रलाप-लक्षण।

अति उत्कंठा मन भ्रमन पिय जनहीं को जाप[१]।
देव कहै कोविद सबै बरनत[२] ताहि प्रलाप ॥५५॥

[१] लाप—भा०। [२] वाचहू—वा०।

उदाहरण।

पुकारि कही मैं दही कोउ लेहु यही सुनि आइ गयो उत धाई[१]।
चितै कवि देव चलेई चने[२] मन मोहन[३] मोहनी तान सी गाई।
न जानति और कछू तबतें मनमाहि कहीयै[४] रही छवि छाई।
गई तो इती दधि बेचन बीच[५] गयो हियरा हरि हाथ बिकाई ॥५६॥

[१] इत धाई—नी० हि०, जदुराई—ज०। [२] चितैई चनै—नी० हि०, चलोई चलो—

का० सा० । [३] मोहनी—भा० । [४] वही पै—भा० सा० ज० हि० । [५] बीर—भा०, कौसु—का०, नीच—नी० हि० ।

उद्वेग-लक्षण ।

जहँ प्रियजन के अनमिले होइ अनादर प्रान ।
भली वस्तु नागा लगे सो उद्वेग बखान ॥५७॥

उदाहरण ।

बिरह के घाम ताई बाम तजि धाम धाई पाई प्रतिकूल कूल कालिंदी की लहरी ।
याते न अन्हाई[१] जरैं जोवत[२] जुन्हाई ताते चितैं[३] चहूँ ओर देव कहै यहै हहरी ।
बारिज बरत[४] बिन बारे बारि[५] बारु बीच बीच बीच बीचिका[६] मरीचिका सी छहरी ।
चंड[७] मारतंड कैं[८] अखंड बिधु मंडल[९] है कातिक की राति किधौं जेठ की दुपहरी ॥५८॥

[१] या तेज अन्हाति—नी०, याते न अन्हाति—हि० । [२] जोवन—भा० ज० । [३] तचि-लकैं—नी०, न चिलकैं—हि० । [४] बरज—नी० हि०, बरन—ज० । [५] बीर—नी० हि० । [६] बामरी—ज०, बामकी—सा० । [७] चंद्र—ज० । [८] सो—का० । [९] ब्रज मंडल—भा० का० ।

मान-लक्षण ।

पति परपतिनी रति करत[१] पतिनी करति जु मान ।
गुरु मध्यम लघु भेद करि ताहू त्रिविधि[२] बखान ॥५९॥

[१] करन—ज० । [२] ताहि अवध्य—नी० हि० ।

मान-भेद ।

पति पर परतिय[१] चिन्ह लखि करति त्रिया गुरु मान ।
मध्यम ताको नाम सुनि ता दरसन[२] लघु जान ॥६०॥

[१] रति तिय—नी० हि०, पति तिय—ज० । [२] दरसन ता—नी० हि० ।

गुरु मान-उदाहरण ।

सौति की[१] माल गुपाल गरे लखि बाल कियो मुख रोष[२] उज्यारो ।
भौंही भ्रमी करिकैं[३] अधरा निकस्यो रँग नैननि कै मग न्यारो ।
यों[४] कवि देव निहारि निहोरि दोऊ कर जोरि पर्यो पग प्यारो ।
पी को उठाइ कै प्यारी कह्यो तुमसे कपटीन को काहि[५] पत्यारो ॥६१॥

[१] मोती की—नी० हि० । [२] रोजु—नी० हि० । [३] भ्रमै फरकैं—नी० हि० । [४] ज्यो—का०, त्यो—भा० । [५] कौन—नी० हि० ।

मध्य मान-उदाहरण ।

बाल के संग गोपाल कहूँ निसि सोवत[१] सौति को नाम उठे पढ़ि ।
यों[२] सुनि कै पटु तानि परी तिय[३] देव कहै मन[४] मान गयो बढ़ि ।
जागि परी[५] हूरि जानी रिसानी सी सौंहैं प्रतीति करी चित मैं चढ़ि ।
आँसुन सो सताप[६] बुझ्यो अरु साँसन सो सब कोप गयो कढ़ि ॥६२॥

[१] मिस मौन मैं—भा० का० । [२] त्यो—सा० । [३] कवि—का० । [४] इमि—भा० ।

[५] परे—सा० । [६] तन ताप—नी० हि० ।

लघु मान-उदाहरण ।

बैठे हुते रँगरावटी मैं जिनके अनुराग रँगी ब्रजभूम्यो ।
किंकिनी काहू कहूँ झनकाई सु झाँकन कान्ह[१] झरोखा ह्वै झूम्यो ।
देव परत्रिय देखत देखि कै[२] राधिका को मन मान सो घूम्यो ।
बातें बनाइ मनाइ कै लाल हँसाइ के बाल हरे मुख चूम्यो ॥६३॥

[१] काहू—भा० सा० का० । [२] दोष कै—नी० । [३] कामिनी—नी० हि०, भावती का० ।

मान-मोचन-उपाय ।

साम दाम अरु भेद करि[१] प्रनति उपेच्छा भाइ ।
अरु प्रसग विभ्रस[२] ये मोचन मान उपाइ ॥६४॥

[१] पुनि—का०, अरु—ज० । [२] विध्वस—नी० हि० सा० ।

साम छमापन सो[१] बनै इष्ट दान[२] सो[१] दान ।
भेद सखी सम्मत[३] मिलै प्रनति नम्रता[४] जान ॥६५॥

[१] को—भा० सा० । [२] हर्ष दान—नी० हि०, दष्ट दान—ज० । [३] समते—का समता—नी० हि०, सम्मति—ज० । [४] ऊनता—का० ।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उपेक्षा की रीति[१] ।
सो प्रसग विभ्रस[२] जहँ अकस्मात[३] सुख भीति ॥६६॥

[१] होइ उपेक्षा रीति—ज०, सुनुपेक्षा की रीति—भा० । [२] विध्वस—नी० हि० व सा० । [३] अकर्मादि—का० ।

उदाहरण ।

आपनोई अपमान कियो पहिराइबे को मनिमाल मँगाई ।
लै मिलई मिस सो कुसखी[१] करि[२] पाय परेहू न[३] प्रीति जगाई ।
केतिक कौतिक[४] बातें कही[५] कवि देव तऊ तिय[६] तोरी सगाई[७] ।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ कै[८] राधिका कठ लगाई ॥६७॥

[१] सो सो सखी—नी० हि० । [२] फिरि—सा०, यह—ज० । [३] परेऊ न—भा०, द की—नी० हि० । [४] कौतुक—ज० हि०, कौतिग—सा० । [५] कहै—नी० हि० । [६] ति तव—नी० हि० । [७] तारी सजाई—नी० हि० । [८] उरलाइ कै—ज० ।

या विधि छऊ[१] उपाय हैं न्यारे न्यारे जान ।
लाघव लैं एकत्रही[२] सबको कियो बखान ॥६८॥

[१] धनै—ज०, छुवै—हि० । [२] लाघवता इकबार ही—नी० हि० ।

देसकाल सविशेष लखि देखि नृत्य मुनि गान ।
जात मनाये हू बिना माननीनु को मान ॥६९॥

[१] माननि तिय—नी० हि० ।

उदाहरण।

रूठि रही दिन द्वैक तें भामिनि मानी[१] नही हरि हारे मनाइ कै।
एक दिना कहूँ कारो[२] अँध्यारी घटा घिरि आई घनी घहराइ कै[३]।
ओर चहूँ पिक चातक मोर के सोर सुनी सु उठी अकुलाइ कै।
भेंटी भटू[४] उठि भावते को घन[५] धोखे ही धाम अँधेरे मैं धाइकै ॥७०॥

[१] मानै—नी० हि० का०। [२] राति—सा०। [३] गहराइ कैं—सा०। [४] बहू—भा०। [५] इन—का०।

प्रवासवियोग-लक्षण।

प्रीतम काहू काज दै अवधि गयो[१] परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन को[२] कष्ट कहै[३] विबुधेस ॥७१॥

[१] कियो—नी० हि०। [२] दुहू तन—का०। [३] दु ख कहै—नी० हि०।

उदाहरण।

लाल विदेस सु बालवधू बहु भाँति बरी[१] बिरहानलही मैं।
लाज भरी गृहकाज करै कहि[२] देव परै न कहूँ[३] कल ही मैं।
नाथ के हाथ के हेरि हरा हिय लागि गई हिलकी गलही मैं।
आँखिन के अँसुवा लखि लोग न लीलि लजीली लिय पलही मैं॥७२॥

[१] बहु जात जरी—नी० हि०। [२] कवि—नी० हि०। [३] कहै न परै—नी० हि०। [४] बाल—का०।

देव कहै बिन कंत बसत न जाहु कहूँ घर बैठि रहौरी।
हूक हिये[१] पिक कूक सुने[२] विष पुज निकुजनि[३] गुजति[४] भौरी।
नूतन नूतन के बन बेपन देखन जाति तो हौ[५] दुरि दौरी।
बीर बुरो मति मानो बलाइ ल्यो होहुँगी बौर[७] निहारत बौरी ॥७३॥

[१] हो कहिये—ज०। [२] कूकन सा—सा०। [३] कुजनि के जनि—नी० हि०। [४] बोलति—का०। [५] हौ तौ—नी० हि०, हु हौं—सा०। [६] जनि—नी० हि०। [७] बौरी—नी० हि०, बौर—ज०।

जागी न जुन्हैया यह आगी[१] मदनज्वर की[२] लागी लोक तीनो हियो हेरे[३] हहरतु है।
पारि[४] परजारि जल जतु जारि[५] बारि बारि बारिधि ह्वै[६] बाडव पताल पसरतु है।
धरनि तें[७] धाइ झर फूटी[८] नभ छाइ[९] कहै देव जाहि जोवन[१०] जगत ज्यो जरतु है।
तारे चिनगारे ऐसे चमकत चारौ ओर बैरी बिधु मडल भभूको सो बरतु है॥७४॥

[१] जुन्हाई लागी आगि—नी० हि०। [२] मनोभव की—नी० हि०, मदन की—का०। [३] हेरि हेरि—नी० हि०, हियो हेरे—सा०। [४] वारि—नी० हि०, पौर—सा०। [५] जरे जनजात जरि—नी० हि०, जारि जलजत जारि—ज०। [६] वारिद वे—नी० हि०, वारिधि हू—सा०। [७] धरती तें—भा० सा०। [८] भूर रवि फूटी—ज०, लाई भरि छूटी—नी० हि०। [१०] जाहि जोवन—ज०, याहि जियत—नी० हि०।

व्याकुल ही[1] विरहज्वर[2] सो सुभ पावन जानि जनीनु[3] जगाई।
घोरि[4] घनो रग केसरि कौं[5] गहि वोरी गुलाल के रग रँगाई[6]।
त्या तिय[7] सांस लई गहरी कहि री उनसों[8] अब कौन सगाई।
ऐसे भये निरमोही महा हरि हाय हमैं बिनु[9] होरी लगाई ॥७५॥

[1] है—नी० हि०। [2] विरहानल—का०। [3] सखीन—नी० हि०। [4] घेरि—नी० हि०। [5] केसरि की—सा०। [6] गुलाल मे वाल लगाई—नी० हि०। [7] सौतिय मास—सा०, ०—नी० हि० का०। [8] उनसों हमसों—नी० हि० का०। [9] हरि—नी० हि०।

नायकवियोग-उदाहरण।

सुधाकर[1] से मुख बानि सुधा मुसक्यानि सुधा वरसै रदपांति।
प्रवाल से पानि मृनाल भुजा कहि देव लता तन[2] कोमल काति।
नदी त्रिवली कदली जुग[3] जानु सरोज से नैंन रहे रस माति।
छिनो भर ऐसी तिया बिछुरें[4] छतिया सियरात कहौ केहि भाँति ॥७६॥

[1] सुधासर—का०। [2] लतान की—भा० सा०। [3] जनु—नी०। [4] छिनो भरि ऐसी छबीली छुटे—का०, जुपै बिछुरै छिन ऐसी तिया—नी० हि०।

करुणात्मक वियोग-लक्षण।

दपतीन मैं एक को विषम मूरछा होइ।
जहं अति व्याकुल दूसरौ[1] करनातम कहि[2] सोइ ॥७७॥

[1] दूजो अति व्याकुल जहँ—का०। [2] कहि करुणा रस—नी० हि०।

उदाहरण।

कत की वियोगिनि वसत की सुनत बात व्याकुल ह्वै जाति विरहज्वर[1] सो जरिकै।
देव जू दुरत[2] दुखदाई देखो आवतु सो तामैं तुम्है[3] न्यारी भई[4] प्यारी जैहै[5] मरिकै।
ऐती सुनि प्यार कह्यो हाय हाय ऐसी होय[6] अपराधी कौन कहौ सो[7] सुधरि कै।
हरि जू ता हेर जो लौं फेरि कहै दूती[8] कछु टेरि उठी तूती तौ लौं[9] तुही तुही करि कै ॥७८॥

[1] विरहानल—नी० हि०। [2] दुरत—नी० हि०। [3] तिन्है—ज०। [4] न्यारी होन—नी० हि०। [5] जैसे—ज०। [6] ऐसी भई—ज० सा०, ऐसी है—नी० हि०। [7] कहो जू—नी० हि०। [8] कही दूरही तें कछू—नी० हि०। [9] ०—नी० हि०।

गोकुल गांव त गौन गुपाल का वाल कहूँ सुनि आई अली पर।
न्याकुल ह्वै[1] विरहानल मा तचि[2] घूमि गिरी गुनगौरि गली पर।
हाइ पुकारत आइ[3] गए न सम्हारत वे बिस नाहि[4] थली पर।
आनि न काहू की कानि करी हरि आनि[5] गिरे बृषभान लली पर ॥७९॥

[1] देव कहै—का०। [2] तव—नी० हि० ज०, तजि—भा०, वरि—का०। [3] धाइ—भा०। [4] ताहि—सा० हि०। [5] हाय—नी० हि०।

कालिय काल महा विष व्याल[1] जहां जल ज्वाल जरै रजनी दिनु।
ऊरध के अध के उबरे नहि जाकी बयारि बरै तरु ज्यां तिनु[2]।

ता फनि की फन फाँसिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे[१] न कहूँ[४] छिनु।
हा[५] व्रजनाथ सनाथ करो हम होती हैं नाथ अनाथ[६] तुम्हैं बिनु ॥८०॥

[१] महा विकराल—सा०। [२] तनु—का०। [३] फँस्यो उकस्यो—नी० हि०। [४] अजौ—नी० हि०। [५] हे—सा०। [६] अनाथ पै नाथ—भा०।

जहाँ आस जिय जियन[१] की सो करुनातम[२] जानु।
जामैं निहचै[३] मरनु को करुना ताहि बखानु[४] ॥८१॥

[१] जान—नी० हि०। [२] करुणारस—नी० हि०। [३] परचै—का०। [४] सो करुणा रस जानु—नी० हि०।

करुणातम[१] सिंगार जहँ रति अरु सोक निदान।
केवल[२] सोक जहाँ तहाँ भिन्न[३] करुण रस जानु ॥८२॥

[१] करुणात्मक—सा०। [२] रति बिनु—का०। [३] सुद्ध—का०।

या बिधि[१] बरनत चारि बिधि रस बियोग सिंगार।
याते कहे न और रस बाढ़त[२] बहु बिस्तार ॥८३॥

[१] याते—का०। [२] बाढ़ै—भा०।

रस संयोग बियोग को यहि बिधि करहुँ बखान।
या रस बिनु सब रस बिरस कवि सब[१] नीरस जान ॥८४॥

[१] सो—ज०।

इति तृतीय विलास।

भाव सहित सिंगार को जो कहियत[१] आधार।
सो है[२] नायक नायिका ताको करत विचार[३] ॥१॥

[१] कहियतु है—सा०, ता कहियतु—का०। [२] साई—सा०। [३] कहत उचार—नी० हि०।

नायक कहियतु चार बिधि सुनत जात सब खेद[१]।
चौरासी अरु तीन सै कहत नायिका भेद ॥२॥

[१] कहत सुनत श्रुति खेद—का०।

नायक-भेद।

प्रथम होइ[१] अनुकूल अरु दछिन अरु सठ धृष्ट।
या बिधि नायक चार बिधि बरनत ज्ञान[२] गरिष्ट ॥३॥

[१] कहौं—सा०। [२] बुद्धि—का०

अनुकूल-लक्षण।

निज नारी सनमुख सदा बिमुख बिरानी बाम।
नायक सो अनुकूल है ज्यों सीता को राम[१] ॥४॥

[१] श्री सीताराम—का०।

उदाहरण।

पीत पटी लौं कटी[१] लपटी रहै छैल छरी लौं खरी पकरी है।
कान्ह के कंठ की कंठी भई बनमाल ह्वै बाल हिये पसरी है।
कान लगी कवि देव ह्वै कुंडल[२] बाँसुरी लौ[३] अधरान धरी है।
मूड चटी सिरमौर ह्वै री[४] गहनो सब ग्वालि गोपाल करी है॥५॥

[१] लकुटी—ज०, लै कुटी—भा०। [२] देव जू कुंडल ह्वै लगी काननि—नी० हि०।
[३] बासुरी लै—नी०। [४] सिर मोहन ह्वै री—ज०।

दक्षिन-लक्षण।

सब नारिन अनुकूल सो[१] यही दक्ष की रीति।
न्यारे[२] ह्वै सब सो मिलै करै एक सी प्रीति[३]॥६॥

[१] अनुकूल लौ—नी०। [२] न्यारी—भा०। [३] रमै दक्षिण की यह प्रीति—नी०।

उदाहरण।

सौगुने सील सुभाइ भरे जिनके जिय औगुन एक न पावै।
मेरियै बात सुनै समुझै मनभावन मोहि महा मन भावै।
देव को चित्त चितौनि न चंचल चंचलनैनी कितौ चितवावै[१]।
आँखिहू राखेहू ना रारकै[२] हरि क्यों तिन्हैं लोक अलोक[३] लगावै॥७॥

[१] ये चंचलनैनी कितोक चितावै—सा०। [२] आँखिहू आँखि नहीं ग्वरकै—नी०।
[३] लीक अलीक—भा०।

शठ-लक्षण।

आगे आपुन[१] ह्वै रहै पीछे करै चवाव।
दोष भरो कपटी कुटिल सठ को यही[२] सभाव॥८॥

[१] अपनो—नी०। [२] याको यहै—नी०।

उदाहरण।

रानि रहै रति मानि कहूँ अरु दोष[१] भरो नित ही इत आवै।
जो कहिये कि कहा है कह्यो[२] तब झूठी हजारक बातैं बनावै।
और सी[३] और के आगे कहै कवि देव जू मोरी सी मोहि सुनावै।
या[४] सठ को हटको न भटू उठि भोर की[५] बार किवार खुलावै[६]॥९॥

[१] अपराध—का०। [२] कहा बक हो—का०। [३] और से—नी०। [४] वा—का०।
[५] भोरहि—का०। [६] ऐसो सुभाव परो हरि को अब युक्ति अनेकन आइ बनावै—नी०।

धृष्ट-लक्षण।

दोष[१] भरो प्रत्यक्ष ही सदा कर्म अपकृष्ट।
सहै मार गारी रहै[२] निलज पांइ परि धृष्ट॥१०॥

[१] दो नय—नी, दोषन—हि०। [२] लहै—नी० हि०।

उदाहरण ।

द्वार तें दूरि करौ[१] बहु बारनि हारनि बाँधि मृनालनि मार्‌यो ।
छाँडत[२] ना अपनो[३] अपराध असाधु सुभाव[४] अगाध[५] निहार्‌यो ।
वैरिनि मेरी हँसैं[६] सिगरी जिव पाँइ परैं सु टरैं नहिं टार्‌यो ।
ऐसे अनीठ सो[७] ईठ कहै यह ढीठ बसीठिनि हो की बिगार्‌यो ॥११॥

[१] दौरि कह्यौ—नी० हि० । [२] मानतु—का० । [३] ०—ज० । [४] असाधु कुभाव—ज० । [५] असाधु—नी० हि० । [६] मे हमैं—नी०, मेरी हमैं—हि० । [७] अनीठ को—नी० हि० ।

नर्म सचिव-लक्षण ।

नर्म सचिव[१] नायक सखा[२] तीन भाँति[३] को सोइ ।
पीठ मर्द अरु विट कहे और विदूषक होइ ॥१२॥

[१] मर्म सचिव—का० । [२] सदा—का० । [३] सधातन—का० ।

पीठ मर्द-लक्षण ।

दूर होइ जा बात मैं माननीन[१] को मान ।
सोई सोई जो कहै[२] पीठि मरद सु बखान ॥१३॥

[१] मानिनिहू—नी०, मानवतिन—हि० । [२] करैं सदा—का० ।

उदाहरण ।

देखि जिन्हैं उमगैं अनुराग सु फूलि रह्यो बन बाग चहूँ है[१] ।
मानु तजौ री पुकारि पिकी कहै[२] जोवन की करिबे न अहूँ है[३] ।
सोर करैं सब ओर[४] अलीगन कोप कठोर हिये अजहूँ है ।
देखौ जु बूझि[५] मनै अपनेहू को ऐसो समौ सपनेहू कहूँ है ॥१४॥

[१] बहू है—सा० । [२] मान तजोरि पुकेरि पुकी कहै—ज० । [३] करिये नृपहू है—नी० हि०, करिबे न कहू है—सा० । [४] कुज गलीनु मै गुजै—का० । [५] जो वाहि—नी० हि० । अप-नेहू—नी० हि० ।

विट-लक्षण ।

वचन चातुरी को रचै जानै सकल कलानि ।
ताही सो विट सचिव कहि कविवर कहत बखानि ॥१५॥

उदाहरण ।

जाहि जपैं त्रिपुरारि मुरारि[१] सबै असुरारि मुरारि हने हैं ।
जाके प्रताप त्रिलोक तचै न बचै[२] मुनि[३] सिद्ध समाधि सने हैं ।
ताहि डरैं नहि तू सजनी[४] उत[५] आतुर वे कवि देव घने हैं ।
मेरो मनायो तू मानि लै भानिनि मैन महीप के मान मने हैं ॥१६॥

[१] मुरारि—नी० हि० सा० । [२] नचै न—ज० । [३] सुर—नी० हि० । [४] सजनी न तुही—नी० हि० । [५] अरि—सा० ।

विदूषक-लक्षण।

अग मेष भापानुकरि[1] करै अन्यथा भाइ[2]।
ताहि विदूषक कहत जो देइ हास कै दाइ ॥१७॥

[1] भूपननुकरि—सा०। [2] करि अन्यथा सुभाइ—रा०।

उदाहरण।

ऊत जो ह्वै रहिहै[1] अवै[2] इदु बिलोकत[3] भूमि पै घूमि[4] गिरौगी।
तीर सो मीरो समीर लगे तें सरीर मैं पीर घनीये घिरौगी।
मेरो कह्यो किनि मानती मानिनि आपुही तें उतको उतरौगी[5]।
भौन के भीतर ह्वां भ्रमि भौंरी लौं बौरी लौं नव मैं दौरी फिरौगी ॥१८॥

[1] ऊत सो है वै रही है—ज०, ऊत सो वो रहिहै—भा० सा०, इतनो बिरहै रहिहै—का०, ऊत सो वै रहि है—नी० हि०। [2] अभई—भा०। [3] ऊ विलोकत—भा०, इदु निहारत—नी० हि०। [4] पै भूमि वे घूमि—का०। [5] उतरौगी—का०।

नायक-भेद।

नायक नर्म सचिव कहू यहि विधि सब कविराइ[1]।
अब बरनत हौं नायका लक्षण भेद सुभाइ[2] ॥१९॥

[1] सबहि कराइ—ज०। [2] बनाय—नी०, वनाय—हि०।

तीन भाँति कहि नाइका प्रथम स्वकीया होइ।
परकीया सामान्या बहुरि[1] कहत सुकवि सब कोइ[2] ॥२०॥

[1] सामान्य पुनि—सा०। [2] लोइ—मा०।

स्वकीया-लक्षण।

जाके तन मन वचन करि निजि नायक सा प्रीति।
विमुख सदा पर पुरुष मो सो स्वकीया[1] की रीति ॥२१॥

[1] यह सुक्रिया—का०।

उदाहरण।

कवि[1] देव हरे छिद्रियानु[2] बजाइ लजाइ रहे[3] पग डोलनि पै।
गुरु डीठ बचाइ लचाइ कै लोचन मोचनि[4] सौं मुख खोलनि पै[5]।
हँसि हौंस भरे अनुकूल विलोरनि लाल के लोल कपोलनि पै।
बलि हौं बलिहारी हौ वार हजारक बात की कोमल बोलनि पै ॥२२॥

[1] कहि—या०। [2] छविपानि—नी०। [3] हरे—का० ज०। [4] लोचन साच सकोचन—का०। [5] लोचन सो मन मोमन सो मुख खोलनि बोलनि पै—नी०। [6] हौं सिगरे—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

मुग्धा मध्या प्रगल्भा स्वकीया त्रिविधि बखान।
सिसुता मे जोवन मिले[1] मुग्धा सो उर आन ॥२३॥

[1] समय—नी० हि०।

मुग्धा-भेद।

वय सधि[1] अरु नव वधू नवजोवना विचार।
नवल अनगा सलज रति[2] मुग्धा पांच प्रकार ॥२४॥

[1] वय सधित—नी० हि। [2] तिय—नी० हि०।

वय सधि-उदाहरण।

औरन के अग भूषन देखि[1] सु हौंसनि भूषन भेष सकेलै[2]।
मद अमद चले चितवै कवि देव[3] हँसै बिलसै[4] वपु वेलै।
फूल बियोरि कै बारनु छोरि कै हारन तोरि उतै गहि[5] मेलै।
भूरि[6] के भाव बिसूरि सखीन को[7] दूरि तें दौरि कै[8] धूरि मैं खेलै ॥२५॥

[1] पखि—नी० हि०। [2] सिकेलै—का०। [3] चितवै चितवै सु—नी० हि। [4] बिहँसै—नी० हि० सा०। [5] उतै महि—नी० हि०। [6] भूरि—भा०। [7] सखीन सो—सा०। [8] दूरि तें दूरि—भा०, दूरि तें घेरि—नी० हि०।

नववधू-उदाहरण।

गोकुल गाव की गोपसुता कवि देव न[1] केतिक कौतिक ठानै।
खेलत मोही पै नद कुमार री[2] बारहि बार बडाई बखानै।
मोरीये छाती छुवै[3] छिपि कै मुखि चूमि कहै कोइ और न[4] जानै।
काहे ते भाई कछू दिन तें मन मोहन को मन मोही सो मानै ॥२६॥

[1] को तकै नहि०—नी० हि०। [2] नद कुमार सु—का०। [3] छुई—नी०। [4] कोई दूजो न—नी० हि० का०।

नवयौवना-उदाहरण।

जानति ना वह को वड भाग[1] विरचि रच्यो रसिकाई वसी[2] है।
देव कहै नव वेष[3] वसत लता फल[4] जाके नखक्षत छीहै[5]।
मेटि वियोग[6] समेटि सबै सुख सा भट[7] भेटि भटू[8] जुग जीहै[9]।
या मुख सुद्ध[10] सुधाधर तें अधरा रस धार सुधारस[11] पीहै ॥२७॥

[1] जौन दिना वहि को वय भाग—नी० हि०। [2] रसिकाई वसी—भा० सा० का०। [3] बैस—मा० ज०। [4] फुल—सा०। [5] नवक्षत दीहै—भा०। [6] भेंटिवी अग—नी० हि०। [7] भरि—भा० मा०। [8] भले—नी० हि०। [9] जुग लीहै—नी० हि०, जग जीहै—ज०। [10] जो मुख—नी० हि०। [11] सुधार सें—भा०।

नवल-अनगा उदाहरण।

कालि परौं लगि[1] खेलतही कवहूं न कहूं यह[2] घूंघट काढ्यो।
आजुही भौंह[3] मरोरि चली तनु तारि जनावत जोबन[4] गाढ्यो।
नैननि कोटि[5] कटाक्ष करै कवि देव सु बैननि को रस बाढ्यो।
नैकु चितै चितवै चितु दै[6] तित मैन मनो दिन द्वैक तें ठाढ्यो[7] ॥२८॥

[1] पिय कालि परो लखि—नी० हि०। [2] इन—मा०। [3] भाइ—नी०। [4] लोचन—वा०। [5] कोरि—नी०, कोर—हि०। [6] चितदै चितवै—सा०। [7] बाढ्यो—वा०

चाहो—नी० हि० ।

सलज्जरति-उदाहरण ।

कूजन हैं कल हंस कपोत सुकी सुक मोर[1] करै सुनि ताहू[2] ।
नैंकहू दया न लला सकुचौ[3] जिय जागत हैं[4] गुरु लोग लजाहू ।
हाथ गह्यो न कह्यो न[5] कछू कवि देव जू भौन में देखी दियाहू ।
हाहा रह्यो हरि हाथ[6] छुओ जिनि[7] बालत बात लजात न काहू ॥२९॥

[1] सुकी रसु सोर—ज० । [2] सुर ताहू—का० । [3] अली सकुचे—नी० हि० । [4] जान है जु—ज० । [5] गहयो न कह्यो न—भा० । [6] मोहि—भा०, छाती—मा०, गात—का० । [7] छिति—का० ।

मुग्धा सुरत-उदाहरण ।

खाट की पाटी रहै लपटाइ करौंट की ओट[1] कनेवर कांपै ।
चूमत चौंकति चंदमुखी कवि देव कपोल निचोलनि[2] चांपै ।
बाल बधू जिछियानि के बाजनै लाज तें मूंदि रहै अँखिया पै ।
आंसू भर सिसकै रिसकै सिसकै[3] करि भारि[4] झुकै मुख झांपै ॥३०॥

[1] ओर—भा० । [2] सु लोल कपोलनि—भा० सा० । [3] सिसकै रिसकै—का० । [4] वर-धारि—नी० ।

मुग्धा सुरतांत-उदाहरण ।

मनभावन के ढिग तें उठि भामिनि[1] भोरही भूषन हाथ लिये ।
रँगभौन के भीतर भाजि परी भय मार भरी अति लाज हिये ।
सजनी जन नें[2] दुरि कै कवि देव[3] निहारनि हार विहार किये ।
निय बारहिबार सँवारहि कै[4] निरवारनि बार[5] केवार दिये ॥३१॥

[1] भावती—का० । [2] सजनी जब तें—ज० । [3] सब कै—नी० हि०, सब—का० । [4] निरवारहि कै—नी० हि०, सँवारनि ही—भा०, सँवारहि को—का० मा०, सँवारहि केश—ज० । [5] निरवारहि बार—नी० हि० का०, निरजुरनि बार—मा० ।

मान-उदाहरण ।

मौनि को नाम[1] लियो सपने कहुँ सौति को संग कियो पिय जाइ कै ।
देव कहै उठि प्यार की सेज तें न्यारी परी[2] पिय प्यारी[3] रिसाइ कै ।
नाह निसंक गही भरिअंक सु लै[4] परजंक धरी धन धाइ कै ।
आंसुन पोंछि उरोज अँगोछि लई मुख चूमि हिये सों लगाइ कै ॥३२॥

[1] सोनुप मानि—ज० । [2] भई—का० । [3] त्रिय जाय—नी० हि० । [4] सुनो—मा० ।

मध्या-लक्षण ।

जाके होंहि[1] समान द्वै एक लज्जा अरु काम ।
ताको कोविद कवि सबै[2] बरनत मध्या नाम[3] ॥३३॥

[1] होत—नी० हि० । [2] ताही को कोविद सबै—नी० हि० । [3] वाम—नी० हि० ।

मध्या-भेद ।

रूढयौवना नाम[1] प्रादुर्भूत मनोभवा ।
प्रगल्भवचना वाम[2] कहि[3] विचित्रसुरता बहुरि ॥३४॥

[1] आरूढ यौवना वाम—नी० हि० । [2] नाम—नी० हि० । [3] अति—ज०, हैं—भा० सा०, ०—नी० हि० ।

मध्या चार प्रकार की यहि विधि बरनत लोइ ।
उदाहरन तिनको सुनौ जाको जैसो होइ ॥३५॥

रूढ़यौवना-उदाहरण ।

राधिका सी सुर सिद्ध सुता नर नाग सुता कवि देव[1] न भू पर ।
चद करौ मुख देखि निछावर केहरि कोटि लटी कटिहू पर[2] ।
काम कमानहू को भृकुटीन पै मीन मृगीनहु को दृग हू पर ।
वारौ री[3] कचन कज कली पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥३६॥

[1] कहि देव— का० । [2] लची कटिहि पर—नी० हि०, लटी कटि ऊपर—भा० । [3] वारौं हौ—का । [4] मृगनैनी—का० ।

प्रादुर्भूत मनोभवा-उदाहरण ।

बाल वधू के विचार यही जु गोपाल की ओर बिलोकिबो[1] कीजै ।
त्यो चितवै[2] चित चातुरी सों रुचि की रचना बचनामृत पीजै ।
भूषन भेष बनावै सबै अरु केसर के रँग सो अँग भीजै[3] ।
आपने आगे औ पीछे तिरीछे ह्वै[4] देह को देखि सनेह सों भीजै ॥३७॥

[1] चितैबोई—भा० । [2] चितवै चित यों—नी० हि० । [3] लीजै—ज० । [4] तिरीछे कै—सा० ।

प्रगल्भवचना-उदाहरण ।

मेरेहू अब जो आवै निसक तौ हौं उनके परजकहि जैहौं ।
पान खवाइ उन्हे पहिले तब नाथ के हाथ के पाननि खैहौं ।
ऐसी न होइ[1] जो दह की दीपति देव को दीप समीप दिखैहौं ।
मोहन को मुख चूमि भटू तब हौं अपनो मुख चूमन दैहौं ॥३८॥

[1] होउ—का०, हौ हु—सा० ।

विचित्रसुरता-उदाहरण ।

केलि करै रस पुज[1] भरी नव कुज मैं[2] प्यारे सों प्रीति की पैनी ।
झिल्लिनि सो झहनाइ कै[3] किंकिनि बोलै सुकी सुक लौं सुखदैनी ।
यों बिछियानि बजावति बाल मराल के बालनि ज्यों मृगनैनी[4] ।
कोमल कूजि[5] कपोत के पोत[6] लौं कूकि उठै पिक लौं पिकबैनी ॥३९॥

[1] रसवत—नी० हि० । [2] बन कुजन—भा०, बन कुज मैं—सा० । [3] सो मनकाद कै—का०, लौं झहराइ कै—नी० हि० भा० । [4] बाल मु बाल मरालनि कै मृगनैनी—का० । [5] कुज—भा०, कूकि—नी० हि० । [6] रिपोत—नी० हि० ।

मध्या सुरत-उदाहरण।

जागतही मत्र जामिनि जाइ जगाइ महा मदनज्वर[१] पावक।
अंजन छूटि लगे अधरान मैं लोइन लाल रँगे जनु जावक।
कामिनि केलि के मंदिर मैं कहि देव करैं रति मानत रावक[२]।
सगहि बोलि उठे तजि कावर लावक पोत[३] कपोत के सावक॥४०॥

[१] मदनातुर—नी० हि०। [२] मानस रावक—नी० हि०, मानहु रावक—ज०।
[३] छावक छावक पोत—नी० हि०।

मध्या सुरतांत-उदाहरण।

रँगरावटी त उतरी परभातही भावती[१] प्यारी के प्रेम पगी।
अलसाति जम्हाति सु देव सुहाति रदच्छद मैं रदपाँति लगी[२]।
सब सौतिन की[३] छतियाँ छिगही मैं सुहागिलु की[४] दुति देखि दगी[५]।
उतराति सी वै[६] उत राति भई इतराति वधू इतराति जगी॥४१॥

[१] भामिनि—का०। [२] *अलसाति जम्हाति सुहाति रदच्छद गाल मैं बाल के है जु लगी*
—का०। [३] सौतिन को—नी०। [४] सुहागिन की—भा०, सुहागकला—नी० हि०।
[५] देखि रँगी—ज०। [६] सी के—नी०। [७] इतराति भई—नी० हि०।

प्रौढा-लक्षण।

मति गति रति पति सों रचै रतिपति सकल कलान।
कोविद अति मोहित[१] महा प्रौढा ताहि बखान॥४२॥

[१] मोहन—ज०।

प्रौढ़ा-भेद।

लब्धापति रतिकोविदा आक्रान्तनाइका[१] सोइ।
सविभ्रमा[२] यहि भाँति करि प्रौढा चौविधि होइ॥४३॥

[१] आकृतिगुप्ता—नी० हि०। [२] सभ्राता—नी० हि०।

लब्धापति-उदाहरण।

स्याम के संग सदा हम डोलैं जहाँ पिक बोलैं[१] अलीगन गुंजैं।
छाहन मांहैं उछाहनि सों छहरैं जहाँ पीरी[२] पराग की पुंजैं।
केलिन मैं रस केलिन कै[३] कवि देव करी[४] चित की गति लुंजैं।
कालिंदी कूल महा अनुकूल तै फूलति मंजुल वंजुल[५] कुंजैं॥४४॥

[१] बोलो—भा०। [२] बौरी—भा०। [३] केलिन मैं रस केलि चुकै—भा०, बोलनि मैं रस
केलिन कै—भा०। [४] करू—नी० हि०। [५] मंजुल मंजुल—भा०।

रतिकोविदा-उदाहरण।

केलि मैं केलि कौतिक कै रंग राग हुलास बिलासनि मोहै[१]।
कोमल नाद कथा रसवादनि काम कला करिकै मन मोहै।
छेदि कटाछ की कोरनि सों गुन सों पनि कै मन मानिक पोहै।
जानति तू रति की गिनती गति तोसी वधू रतिकोविद को है॥४५॥

[१] सौ अनि सोहै—ज०।

आक्रान्तनायिका-उदाहरण।

हार बिहार मैं टूटि परे[१] अरु भूषन छूटि परे हैं समूलनि।
जोरि सबै पहिरायो[२] सम्हारि कै अंग सम्हारि[३] सुधारि दुकूलनि।
सीतल सेज बिछाइ कै बालम बाल मृनालनि के दल मूलनि[४]।
बंसिये बेनी[५] बनाइ लला गहि गंथ्यो गोपाल गुलाब के फूलनि ॥४६॥

[१] छटि परै—भा०, टूटि गये—ज०। [२] पहिरावै—नी० हि०। [३] सँवारि—नी० हि० का०। [४] बिछाइ कै बाल मृनालनि के दल कोमल मूलनि—का०। [५] बेली—ज०। [६] गुह्यो—वा०, गुथी—नी० हि०।

सविभ्रमा-उदाहरण।

हँसत हँसत आई भावते के मन भाई देव कवि[१] कवि छाई सोने[२] से सरीर सो।
तैसी[३] चंद्रमुखी के वा चंद्रमुख चंद्रमा सो होड परै[४] चादनी औ चाँदनी[५] से चीर सो।
सोंधे की सुबास अंग बास औ उसास बास आसपास बासि रही सुखद समीर सो।
कुंज तजि[६] गुंजत गंभीर गिरि[७] तीर तीर रह्यो रंग भौन भरि भौरनि की भीर सो ॥४७॥

[१] कहै—नी० हि०। [२] छाई वर सोने—भा०। [३] तैती—नी०। [४] ह्वै ही परै—भा०, होय परै—हाशिये पर—सा०, होय परै—का०। [५] सूं चादनी से—सा०। [६] कुंजत सी—भा०। [७] गीर—भा० ज०, बीर—नी० हि०।

प्रौढा सुरत-उदाहरण।

साजि सिंगारनि सेज चढी तबही तें सखी सब सुद्धि भुलानी।
कंचुकी के बंद टूटत[१] जाने न नीवी की डोरि न छूटत[२] जानी।
ऐसी विमोहित ह्वै गई ही जु न[३] जानति राति किते[४] रति मानी।
साजी कबै रसना रस केलि मैं बाजी कबै बिछुवानि की बानी ॥४८॥

[१] छूटत—भा०। [२] डोरि न टूटत—भा० गाँठिओ छूटत—नी० हि०, गाँठि न छूटत—का०। [३] जनु—भा० ज० वा०। [४] राति कँ मैं—ज०, राति कबै—सा०, राति कैं मैं—भा०।

प्रौढ़ा सुरतान्त-उदाहरण।

आगे धरि अधर पयोधर सधर जानि जोरावर जघन सघन लरे लचिकै।
बार-बार देति बकसीस जैतवारनि को बारनि को बाँधे जे[१] पिछारे दुरे बचिकै[२]।
उरनि[३] दुकूल दै उरोजनि[४] का फूलमाल[५] ओठनि उठाए पान धाइ खाइ[६] पचि कै।
देव कहै आजु मानो[७] जीत्यो है अनंग रिपु पी के संग संगर सुरनि रंग रचिकै[८] ॥४९॥

[१] जो—भा०। [२] रो सु बचिकै—भा०, डर बचिकै—ज०, जोर दुरे जात बचिकै—का०। [३] दसन—हाशिये पर—वा०। [४] दुरैयन—का०। [५] फूलमनि—भा०। [६] खाइ खाइ—वा० भा०। [७] इहि—सा०। [८] पी के संग प्यारी सुरनि रंग रचिकै—वा०, पी के संग संग रस सुरत रंग रचिकै—भा०।

मध्या प्रौढा मान-लक्षण।

मध्या औ प्रौढा दुओ होहि त्रिविधि[१] करि मान।
धीरा अरु मध्या कहै[२] और अधीरा[३] जानु ॥५०॥

[१] विविध—भा०। [२] अधीर जहँ—नी० हि०। [३] सभीता धीरा—का०।

वक्र उक्ति[१] पति सों कहै मध्या धीरा नारि।
मध्या देहि[२] उराहनो वचन अधीरा गारि[३] ॥५१॥

[१] वक्र युक्ति—भा०। [२] धीराधीरा—नी० हि०। [३] अधीरा नारि—ज०।

मध्या धीरा-उदाहरण।

भारे हो[१] भूरि मराई भरे अरु[२] भाँतिन भाँतिन[३] के मन भाए।
भाग बड़ो वहि भामती[४] को जिहि भामते लै रँगभौन[५] बसाए।
भेष भलोई भली विधि सों करि[६] भूलि परे किधौं काहू भुलाए।
लाल भले हो भलो सुख दीनो भली भई आजु भले बनि आए ॥५२॥

[१] भारे हू—सा०। [२] उर—का०। [३] भाँति नभाँतिन—भा०। [४] वही भामते—का०।
[५] रँगभौन के भीतर जाय—का०। [६] कहि—का०।

मध्या मध्या-उदाहरण।

आजु कछू अँसुवान भरे दृग दखियै सो न कहौ जिय जो है[१]।
चूक परी हमहीं नैं कछू किधौं जापर[२] कोप कियो वह को है।
चूक अचूक हमारियै है कहौ[३] को नहि जोवन के मद मोहै।
स्याम सुजान सुजानैं[४] बलाइ ल्यों[५] जोइ करौ सु तुम्हें सब[६] सोहै ॥५३॥

[१] कहे जिय जाहै—नी०, करे जिय जो है—हि०। [२] चूक परै किधौं दोस इनैंही को
कापर—नी० हि०। [३] चूक अचूकहू चूक करै कहा—नी० हि०। [४] सुजान—सा०।
[५] भली विधि—नी० हि०। [६] सग सोई तौ—नी० हि०।

मध्या अधीरा-उदाहरण।

भोरही भौन मैं भावतो आवत प्यारी चितै कै इतै दृग[१] फेरे।
बाल बिलोकि कै लाल कह्यो कहु[२] काहे तें लाल बिलोचन[३] तेरे।
बोलि उठी सुनि कै[४] निय बोल सु देव कहै अति कोप[५] करेरे।
काहू के रंग रँगे दृग रावरे रावरे रंग रँगे दृग मेरे ॥५४॥

[१] चप—का०। [२] वही कहि—नी० हि०। [३] लोचन लाल भे—ज०। [४] तबहीं—नी०
हि०। [५] सु क्रोध परी कवि देव—का०।

प्रौढ़ा मान-भेद।

उदमीन रति कोप अति[१] पति सों प्रौढा धीर।
तजै मध्य उदास तें[२] ताड़न[३] करै अधीर ॥५५॥

[१] रति के मर्म—नी० हि०। [२] बरजै धीर अधीर तिय—नी० हि०, तजै मध्यम उदास
रहै—भा०। [३] नोउन—ज०, ताहि न—भा०।

प्रौढ़ा धीरा उदाहरण।

क्रोध कियो मनभावन सों सु छिपाइ लियो[१] पिकबैनी[२] के बोलनि।
राख्यो हियो अति[३] ईर्षा बाँधि खुल्यो उन घूँघट को पट खोलनि।
ज्यों चितई इत[४] आली की ओर सु गाँठि छुटी भरि भौंह बिलोलनि।
लोइन कोइन ह्वै उभक्यो[५] सु बताइ दियो कँपि कोप[६] कपोलनि ॥५६॥

[१] सुद्धि पाइ ठियो—सा०। [२] इक बैनी—भा०। [३] तेहि—नी० हि०। [४] अति—का०। [५] उचक्यो—ज०। [६] कँपि गोल—नी० हि०, कवि कोप—भा०।

प्रौढ़ा मध्यमा-उदाहरण।

सूँघिये बात सुनी समुझौ[१] अरु सूधी कहौ करि[२] सूधो सबै अग।
ऐसी न काहू के चातुरता[३] चित जो चितवै[४] कवि देव दवै सग।
याही के जैयै[५] बलाइ ल्यो[६] बालम हौं तुम्हैं नीको[७] बतावति[८] हौं ढग।
देव कहै[९] यह जाको सनेह महा उर बीच महाउर को रग ॥५७॥

[१] सुनै समुझै—नी० हि०। [२] कहै कहि—नी०, करै कहि—हि०। [३] आतुरता—सा०। [४] चतुराइ चितै—का०। [५] बोलै—ज०, जाव—नी० हि०। [६] ज्यों—नी०। [७] तुम पै जु—का०। [८] बताय है—सा०। [९] प्यारो लगै—भा०, करौ न कहौ—नी०, क्यों न कहै—हि०।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण।

पीक भरी पलकैं झलकैं अलकैं[१] जु गडी सु लसै भुज[२] खोज की।
छाइ रही छवि छैल की छाती मैं[३] छाप बनी कहूँ[४] ओछे उरोज की।
ताही चितौति बडी[५] अँखियान तें ती की चितौनि चली अति ओज की।
बालम ओर बिलोकि कै बाल दई मनो खैंचि[६] सनाल सरोज की ॥५८॥

[१] अलकैं अबकैं—नी०। [२] सु से सुज—सा०, सु लसै भय—ज०। [३] कै—ज०। [४] लगी—का०। [५] चितै बडरी—नी० हि०। [६] चोट—नी० हि०।

मध्या प्रौढ़ा दोय विधि ज्येष्ठा और कनिष्ट।
अधिक नून पिय प्यार करि[१] बरनत बुद्धि गरिष्ट[२] ॥५९॥

[१] दुहुन पिय प्यार करि—का०, अधिक प्यार ज्येष्ठा कहै—नी०। [२] बरनत ज्ञान गरिष्ट—भा०, है हित थोर कनिष्ट—नी०, बरनत बुद्धि वरिष्ट—का०।

उदाहरण।

खेलत फाग खिलार खरे अनुराग भरे[१] बडभाग कन्हाई।
एकहि भौन मे दोउन देखि कै[२] देव करी इक चातुरताई।
लाल गुलाल सो लीनी मुठी भरि बाल के भाल की ओर चलाई।
वा दृग मूँदि उतै[३] चितयौ इन भेंटी इतै[४] बृषभानु की जाई ॥६०॥

[१] भरे—नी०। [२] देखि कै दोउन—नी० हि०। [३] इतै—सा०। [४] उतै—सा०।

परकीया-लक्षण।

जाकी गति[1] उपपति[2] सदा पति सों रति मति[3] नाहिं।
सो परकीया जानिये ताकी[4] प्रीति जग माहिं ॥६१॥

[1] रति—ज०। [2] उपजै—नी० हि०। [3] रति गति—भा०। [4] जासु—नी०, तासु—हि०।

परकीया-भेद।

ताहि परोढा[1] कन्यका द्वै विधि कहत प्रवीन।
गुपित चेष्टा परोढा[2] कन्या पितु आधीन ॥६२॥

[1] ताही ऊढा—नी० हि०। [2] गूढ की—नी०, रूप सों—ज०।

परोढा-उदाहरण।

मोहन मोहि न जान्यो इहाँ बनि बाल को बोल सुनायो नजीक तें।
चौंकि परी चहुँ ओर चितै गुरलोगनि देखि उठी नहिं ठीक तें।
देखियो बान चलै न कहूँ यह छूटिहैगी कुल लोक की[1] लीक तें।
घूमति है घरही मैं घनी यह घायल लौं घर घाल घरीक तें ॥६३॥

[1] छूटिगो लाज लसी कुल—ज०, कुल कानि की—नी० हि०।

परोढा-भेद।

तामैं गुप्ता विदग्धा लक्षिता[1] कुलटानु।
अनरभूत वखानिये अनुसयना मुदितानु ॥६४॥

[1] पुनि सुलच्छिता—ज०।

गुप्ता-उदाहरण।

झँझरी के झरोखनि[1] ह्वै कै झकोरति रावटीहू मैं[2] न जाति सही।
कवि देव तहाँ कहौं[3] कैसें कै सोइये[4] जी की[5] बिथा मु परै न कही।
अधरानु को फोरति[6] अंग मरोरति हारनि तोरति जोर यही[7]।
घर भीतर बाहिरहू[8] बन बागनि बैरिनि[9] बीर बयारि बही ॥६५॥

[1] झकोरन—नी० हि०। [2] झकोर बढी हियहू मैं—नी० हि०, झकोर लिए उठिहू मैं—ज०। [3] कहौ कहि—ज०। [4] कैसिक सोइये—भा०, कैसे कै आइये—नी० हि०। [5] जाकी—भा०। [6] चोरति—का०, कोरति—भा० मा०, फेरति—ज०। [7] जोर रही—सा०। [8] घर बाहिर जाहिर भीतरहू—भा०। [9] ०—भा०।

विदग्धी-भेद।

कहत विदग्धा भाँति द्वै सकल[1] सुमति सब लोइ[2]।
वाक्‌विदग्धा एक अरु[3] क्रियाविदग्धा दोइ ॥६६॥

[1] सुकवि—भा०। [2] सब कोइ—ज०। [3] बहुरि अरु—भा० मा०, कहि बहुर—न०।

वाग्विदग्धा-उदाहरण।

ब्याह की बीथिं[1] बुलावे गये सब लोगन लागि गये दिन दूने।
देव तुम्हारी[2] सौं बैठि अकेलियै हौं[3] अपने उर आनति ऊने।

क्यों तिन्हें[४] वासर बीतत बीर बनाये हैं जे विधि बधु बिहूने[५]।
कौन घरी घर के घर आवैं लगैं घर घोर घरीक कै सूने ॥६७॥

[१] व्याह की बधु—नी० हि०, व्याह को ग्योति—का०। [२] तिहारी—नी० हि०। [३] अकेली अहो—नी०। [४] रोहिन्हें—सा०। [५] बिना रजनी बितवे बिध बधु बिहूने—का०।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

बँसुरी सुनि देखन दौरि चली[१] जमुनाजल के मिस बेग तवैं।
कवि देव सखी के सकोचन सों[२] करि ऊढ सु औसर[३] को वितवै।
वृषभान कुमारी मुरारी की ओर बिलोचन कोरनि सों चितवै।
चलिबे को घरै न करै मन नैक धरै[४] फिरि फेरि भरै रितवै ॥६८॥

[१] दौर चले—ज०, धाल चली—नी० हि०। [२] को—नी०। [३] ऊदम औसर—सा०, ऊदम औसर—नी० हि०, रुठन औसर—ज०। घड़ै—भा०, घटै—नी० हि०।

लक्षिता-उदाहरण।

जौ लगि जोवन[१] है जग मैं नहि तौ लगि जीव सुभाव टरैगो[२]।
देव यहै जिय जानिये जू जन[३] जो करि आयो है सोई करैगो।
कोटि[४] करौ कोउ प्रान हरै बिनु[५] हारिल की लकडी न हरैगो।
भूलेहू भौर चलावै न चित्त जो नपक चौगुने फूल फरैगो ॥६९॥

[१] जीवत—सा०। [२] डरैगो—ज०। [३] घन—ज०। [४] कोरि—नी० हि०। [५] नर। नी० हि०

कुलटा-उदाहरण।

छोरि दुकूल सकोरि कै अग मरोरि कै[१] वारनि हारनि[२] छूटै।
मीडि नितंबहि पीडि[३] पयोधर दावत दंत रदच्छद फूटै।
ज्यों करटी करि[४] केलि करै[५] निकरै न कहूँ कुल सों[६] किनि[७] टूटै।
तौ लगि जानै कहा जुवती[८] सुख जो न जुवा[९] दिन जामिनि जूटै ॥७०॥

[१] बगारि कै—नी० हि०। [२] हारति—का०। [३] पीन—नी० हि०। [४] यों कवि कीरति—नी० हि०, यों करके तिर—सा०। [५] बोलि कहै—ज०। [६] घरतें—का०। [७] कुल कानि को—नी० हि०, कवि—सा०। [८] जवहीं—ज०। [९] जोवन या—ज०।

अनुशयना-भेद।

थान हानि तिहि हानि भय[१] प्रिय आगम अनुमान[२]।
अनुसयना एहि विधि त्रिविधि बरनत सकल सुजान ॥७१॥

[१] भय है तहाँ—ज०, भय जहँ ह्वाति—सा०। [२] सु मान—मा०, प्रिय गम अनुमान—मा०, प्रिय अगमन मान—नी० हि०।

उदाहरण।

सब ऊजरे[१] भौन बसे तवतें[२] तरनी तननाय रही भरिकैं।
सुनि चेत अचेत सी ह्वै चित गोचनि[३] जैहैं[४] निकुंज घने भरिकैं।
ततकालहि देव गुपाल गये बन तें[५] बनमाल नई[६] धरिकैं।
जदुनाथहि जोवत ज्वाल भई जुवती बिरहज्वर[७] सों जरिकैं ॥७२॥

[१] मन ऊ तहाँ—नी० हि०। [२] जग्यों—का०। [३] ह्वै रही चित सो—नी० हि०। [४] जोहै—मा०, निकुंज सो पल जैहै—ज०। [५] वन है—ज०। [६] लई—सा० ज०। [७] विरहानल—नी० हि०, विरहाभर—हाशिये पर 'विरहाजर'—का०।

मुदिता-उदाहरण।

साँझहि[१] कारी घटा घिरि आई महाभर सो वरसे भरि सावन।
धोरिय कारिय[२] आइ गई सु रम्हाइ कै[३] धाइ कै लागी चुवावन।
माइ कह्यो कोइ जाइ कहै[४] किनि मोहूँ मा आज कह्यो उन आवन।
यों सुनि आनद तें उठि धाई[५] अकेलिये वाल गुपाल बुलावन ॥७३॥

[१] साँझ की—मा०। [२] धोरिए गाय जु—नी० हि, धोरिहू कारिये—मा०, धोरिय को जु पि—का०, धोरह कोटिए—ज०, धोरिहू कोरिये—मा०। [३] सु रम्हाइ कै—हि०, सु पन्हाइ कै—नी०, मुनि माइके—ज०, सु रमाइ कै—मा०। [४] कहै जाइ कोऊ—नी० हि०। [५] दौरि—का०।

वन्यका-उदाहरण।

भूमि घटा उमडै कहूँ देव सु दूरि तें दौरि[१] झरोखनि भूली।
हाम हुलास विलास भरी मृग खंजन मीन[२] प्रकासनि तूली[३]।
चारिहू[४] ओर चलैं चपरैं सु[५] मनोज के तेज[६] सरोज सी फूली।
राधिका की अँखियाँ लखि कै सखियाँ सब मग की कौतुक[७] भूली ॥७४॥

[१] देखि—का०। [२] मीन—ज०। [३] लूली—नी०। [४] वाहिर—का। [५] जु—मा० ज०, सो—नी० हि०। [६] मनोज की तेग—भा० सा०, मनोज की मानो—का०, मनोज की मौज—नी० हि०। [७] अग के कौतुक—नी० हि०।

चित्र स्वप्न[१] परतच्छ करि दरसन त्रिविधि बखानु।
देस काल भगीनु[२] करि श्रवन[३] तीनि[४] विधि जानु ॥७५॥

[१] स्वप्न चित्र—नी० हि०। [२] गभीर—नी० हि०, भागीन—का०, भृगीन—ज०। [३] वचन—मा०। [४] चारि—नी० हि०।

दर्शन-उदाहरण।

चारु चरित्र विचित्र बनाइ कै चित्र मे जे निरखे अवरेखे।
चोरि लियो तिन चित्त चितौनही त्योंही वने सपने महि पेखे।
आजु तें[१] नद के मदिर तें निकसे घनसुदर[२] रूप विसेखे।
हौंहूँ[३] अटारी चढ़ी[४] भारतें मैं हरिजू भरिजू[५] दृग देखे ॥७६॥

[१] तो—नी० हि०। [२] वन सुदर—का०। [३] देव—नी० हि०। [४] हौंहू अटा सरी भारी चढ़ चढ़—मा०। [५] ०—मा०।

श्रवण-उदाहरण।

ऊँचे अटा चढ़ि[१] सेज सनी[२] तो कहा हरि जो न इहाँ[३] निसि जागे[४]।
फूलि रहे बन कुंज कहा तो यात मैं जो न लगा अनुरागे[५]।

देव[६] सबै गहने पहिरे चुनि[७] चाइ सों चार[८] बनायें है बागे[९]।
सुदरि सुदर[१०] लागिहै तौ कहिहैं जब[११] सुदर स्याम सभागे ।।७७।।

[१] सजि—भा०। [२] चढ़ी—नी० हि०। [३] पछितात वहो री कहा—नी० हि०। [४] अनुरागे—का०। [५] लखि पागे—का०। [६] दाव—नी० हि०। [७] पुनि—नी० हि०। [८] चाव—सा०। [९] इहि भागे—का०। [१०] मदिर—का०। [११] तब—नी० हि०।

वेश्या-लक्षण।

रीझ नहीं गुन रूप की सामान्या के जीय[१]।
जौही लौं धन देहि जो तौ लौं ताकी तीय ।।७८।।

[१] जाय—सा०, पीय—ज०।

उदाहरण।

सोहति किनारी लाल बादले[१] की सारी गोरे अगनि उज्यारी कसी कचुकी बनाइ कै।
जेवर[२] जड़ाऊ[३] जगमगत जवाहिर के जूती जोति[४] जावक की जीली[५] पग पाइ कैं।
भौंहनि भ्रमाइ भूरि[६] भाइ करि नैननि सों[७] नैननि सो बैननि कहति मुसक्याइ कैं[८]।
चीकनी चितौनि चारु चेरे करि चतुरनि[९] वितु[१०] लियो चाहै नित लियो है चुराइ कै ।।७९।।

[१] बादला—भा० सा०। [२] भूपन—का०। [३] जराव—ज०। [४] जुही होत—नी० हि०, होति जोति—का०। [५] जाती—सा०, जोत—का०। [६] भरि—का०। [७] भायक बताइ करि—नी० हि०। [८] विहसाइ कै—का०। [९] चोर होत चातुरी सो—नी० हि०। [१०] वितु—नी० हि०।

स्वकीया-भेद।

पर रति दुखिता[१] प्रेम अरु रूपगर्विता जान।
मानवती अरु चारि विधि स्वीयादिकन बखान ।।८०।।

[१] पोखित दुखिता—का०।

पररतिदुखिता-उदाहरण।

साँझही स्याम को लेन गई सु बसी बन में सब जामिनि जाइ कै।
सीरी बयार छिदे अधरा उरझे उर झाँखर झार मझाइ कैं[१]।
तेरी सी[२] को करिहै करतूत हुती[३] करिबे सो करी तैं[४] बनाइ कै।
भोरही आई भटू इत मो[५] दुखदाइनि काज इनौ दुख पाइ कैं ।।८१।।

[१] झा मझाइ कैं—नी० हि०, झार भराइ कैं—का०। [२] सौं—भा०। [३] हुती—भा० ज०। [४] करि बेग—ज०। [५] को—का०, नो—ज०।

प्रेमगर्विता-उदाहरण।

ये बिनु मारी दये गुरलोगन टेरेई सैनन नैन नटेरेई[१]।
देव कहै दुरि द्वार लौं जात कितौ करि हारी तऊ हरि हेरेई।
पाय[२] यही घर बैठि रहौं[३] जु तौ वे मिस खेलन आवत मेरेई।
घेर करैं[४] घर बाहिर के अरु ये सु फिरैं घर बाहिर घेरेई ।।८२।।

[1] टेरिये नैनन सैनन नग्इ—ज०। [2] आपु—नी० हि०। [3] रही—नी० हि० का०।
[4] घरं—नी० हि०। [5] तो फिरं—नी० हि०।

विना-उदाहरण।

हरि जू सा हहा हटकोगे[1] भटू जनि बात कहै जिय सोचनि की।
कहि[2] पकजनैनी बुलाइ कै माहि दई सुषमा[3] दृग मोचन की।
उनहीं मा उराहनो देऊं तती उमगं उर रासि सकोचन की।
बलि वारों री वीरजु[4] कान्हि को जु बराबरि वीर[5] बिलोचन की ॥८३॥

[1] टकटोरि—ज०। [2] कहै—का०। [3] उमगा—मा०। [4] और जु—नी, वार जु—हि०। [5] होय—मा०।

है मयान वियोग मैं बरन्यो मान[1] प्रकार।
ताही के मन मानिनी कविवर करहु[2] विचार ॥८४॥

[1] नाम—नी०। [2] करन—भा०।

वस्था-भेद।

स्वाधीना उत्कंठिता वासकसज्जा वाम।
कलहंतरिका खंडिता विप्रलब्धिका नाम[1] ॥८५॥

[1] वाम—भा० मा०।

ताते प्रोषितप्रेयसी अभिसारिका बखान।
आठ अवस्था भेद ये एक एक प्रति जान[1] ॥८६॥

[1] अष्ट नायका ये त्रिधा बरनै सुकवि सुजान—नी० हि०।

वाधीना-लक्षण।

बंध्यो रहै गुन रूप सों[1] जाके पति आधीन।
स्वाधीना सो[2] नाइका बरनत परम[3] प्रवीन ॥८७॥

[1] मैं—का०। [2] स्वाधीनपतिका—नी० हि०। [3] मरन—नी० हि०।

उदाहरण।

मानिन ह्वै हरि[1] माल गुहै चितवैं मुख चोरी[2] भये चितचाइन।
पान खवावें सवामिन ह्वै कै सवामिन ह्वै सिंगरवें[3] सब भाइन[4]।
बेंदी दै देव दिखाइ कै[5] दर्पन जावक दैन लए अब पाइन।
प्रेम पगे पिय पीन पटी पर[6] प्यारी के पोछि पसारी से[7] पाँइन ॥८८॥

[1] रहै—ज०। [2] चोरी—ज०। [3] सिंगरवें—ज०। [4] सिंगरवें सब भूषन भेष सुभाइन—मा०। [5] दिखावत—का०। [6] पीन पिछौरी मा—नी० हि०। [7] पोछि पसारी मे—मा०, पोछिय वारी मे—ज०।

उत्कंठिता-लक्षण।

पति को गृह आये बिना सोच बढ़ै चित जाहि।
हेतु विचारै चित मे उत्कंठिता कहु ताहि[1] ॥८९॥

[1] उत्कठा कहु ताहि—भा० ज० मा०, उत्कंठिता सुनाइ—नी० हि०।

उदाहरण ।

मारग हेरनि हौं कब की कहौ[१] काहे ते आये नहीं अबहूँ हरि ।
आवत है किधौं ऐहै अबै कवि देव के राखे है काह कछू करि[२] ।
मोहूँ तें न्यारी को[३] प्यारी गुपाल की हाय[४] बिचारिये री चित मैं धरि ।
जो रमनी रमनीय लगैं बसि वाके[५] रहै सजनी रजनी भरि ॥९०॥

[१] कहि—नी० हि० । [२] आवत हैं किधौ आए न देव के राखें है काह तिया ने कछू करि—नी० हि० । [३] कै—भा० सा० ज० । [४] के—भा० सा० ज० । [५] ताके—नी० हि० ।

वासकसज्जा-लक्षण ।

जानै पिय को आइबो निहचै वार[१] बिचारि ।
मग देखै भूषन सजै वासकसज्जा नारि ॥९०॥

[१] चारु—भा० सा० ज० ।

उदाहरण ।

घोरि घनी घनसार सो केसरि चदन गारि कै अग सम्हारै[१] ।
मोतिन माँग कै वार गुहै[२] अरु[३] हार गुहै वलि वेनि[४] सँवारै ।
देव कहै सब भेष बनाइ कै आइ कै फूलनि सेज सुधारै ।
बैठी कहा उठि दखौ भटू हरि आवन हैं[५] घर आज हमारे ॥९२॥

[१] सवारै—नी० हि० । [२] चारु गहे—सा० । [३] किन—का० । [४] केस—नी०, केलि—हि० । [५] आवन हैं—ज० ।

कलहतरिका-लक्षण ।

पहिले पति[१] अपमान[२] करि फिर पीछे पछिताइ ।
कलहंतरिका नाइका ताहि कहैं कविराइ ॥९३॥

[१] पिय—नी० हि० । [२] सो कोप—का० ।

उदाहरण ।

पिय जा हित प्यारे ही के[१] परपकज पूजिबे को पकर्‌यो पन सो ।
सु बिसारि दियो तेहि मोहि निरादर[२] घोर पनि गृह को धन सो ।
यह पापन ही[३] विष बौरी[४] भई अरु सोरी[५] बयारि करै तन सो ।
कहि क्यो न अँगार मो हार लगै हिय मैं घनसार घनो घन सो ॥९४॥

[१] पिय जाय अप्यारी के के—नी० हि०, पिय जा हित प्यारी के—भा०, पिय जा हित प्यारि ही के—सा०, पिय जानहि प्यारिहि के—का०, पजाइ के प्यारि ही के—ज० ।
[२] तिहि मेहि निरादरे—भा०, हित मोहि निरादर—नी० हि० । [३] इन पापन ही—भा० सा०, या पापिनि हौ—नी०, यह पापिनि ही—हि०, यह पापन ही—का० ।
[४] विष बौरी—भा०, विष बौर—नी० हि० । [५] सोच—नी० ।

खडिता लक्षण ।

जानै[१] भवन न जाइ पति रहै कहूँ रति मानि ।
खडिनवारि सु खडिता[२] कविवर[३] कहत बखानि ॥९५॥

[१] पीके—ना०। [२] खंडिवार सु खंडिता—का०, बनिता वाहि सु खंडिता—ज०।
[३] पहिन—नी० हि०।

उदाहरण।

सेज सुधारि सँवारि सबै अरु आँगन[१] के मग मैं पग रोपै।
चंद की ओर चितौन[२] गई निसि नाह की चाह चढ़ी चित चोपै।
प्रानहीं प्रीतम आये कहूँ बसि देव कह्यो[३] न परै छबि ओपै।
प्यारी के[४] पीक भरे अधरा तें[५] उठी मनो कंपन कोप कौ[६] कोपै॥९६॥

[१] आवन—का०, अगनि—ज०। [२] चितौनि—अ०। [३] देव कहौं—ना०। [४] प्यारे के—नी० हि०। [५] अँगराने—का०। [६] कप कौ—ज०।

विप्रलब्धा-लक्षण।

जाकौ[१] पति की दूतिका[२] लै[३] पहुँचै रति धाम।
तहँ पति मिलै न जाहि[४] सो विप्रलब्धिका बाम[५]॥९७॥

[१] जाके—ज०। [२] दूती संग निज—नी० हि०, पति संकेत बदि—का०। [३] नहि—का०। [४] तहँ न मिलै पति खेद जगि—नी० हि०। [५] विप्रलब्ध कहु नाम—का० नी०, विप्रलब्ध तेहि नाम—हि०।

उदाहरण।

दूती लेवाइ गई तहँ बाल कौ[१] जा बन बालम[२] सों मिलि मेल्यो।
नेपु बनाइ कै भूषन साजि सुगंधि तमोर को साज[३] सकेल्यो।
आनद ही तें तहाँ तें गई निद[४] देखि तहाँ रति कुंज[५] अकेल्यो।
बीरी बगारि[६] सखीन सों खारि कै[७] हार उतारि उतै गहि मेल्यो॥९८॥

[१] बाम को—सा०। [२] बालहि—ज०। [३] आन—नी० हि०, समूह—का०। [४] दह—नी० हि०। [५] त्यों तह राति कुंज—नी०। [६] बिगारि—ना० ना०। [७] गारि दै—का०।

प्रोषितप्रेयसी-लक्षण।

सो तिय प्रोषित प्रेयसी जाको पति परदेस।
काहू कारन तें परो देवै[१] अवधि प्रवेस॥९९॥

[१] कहि कै—का०।

उदाहरण।

हौरी ह्वै हरे आइ गई हरि आए न हेरि हियो हहरैगो।
चानि[१] बनी बन बागनि की कवि देव बिलोकि वियोग दहैगो।
नाउ न लेहु[२] बसन्त को री सुनि हाय कहूँ पछिताय मरैगो।
कैसे कै जीहै[३] किसोरी जो केसरि नीर सों बीर अबीर भरैगो॥१००॥

[१] बेनी—नी०हि०। [२] नहि नाम सु लेउ—ज०। [३] कैसिक जीहौ—ना०, कैसे कहै सु—ज०, कैसे कौ जीहै—हि०।

अभिसारिका-लक्षण ।

जो घेरी[1] मद मदन करि आपुहि पति पर जाइ[2] ।
वेष अंग अभिसारिका सबै[3] समान बनाइ ॥१०१॥

[1] पेरी—नी० का० । [2] प्यारे पह तिय जाइ—ज० । [3] सजे—भा० ज० ।

उदाहरण ।

घटा घहराति त्रिज्जु छटा छहराति आधी राति हहराति[1] कोटि कीट रति[2] कुंज लौं ।
हूकत उलूक वन कूकत फिरत[3] फेरु भूकत जु भैरों भूत[4] गावैं अलि गुंज[5] लौं ।
भिल्ली मुख मूँदि तहाँ[6] धीछीगन गँदि विष व्यालनि को रूँदि कै मृनालनि के पुंज[7] लौं ।
जाई वृषभान की कन्हाई के सनेह बस आई उठि ऐसे मैं अकेली केलि कुंज लौं ॥१०२॥

[1] अति आत—ज० । [2] कीट रवि—भा०, कोटि रितु—नी०हि०, कोटि रति—सा० [3] मयूर—ज० । ४ हवें—ज० । [5] अति गुंज—सा० । [6] भिल्ली मुख कूँ दिखावै तहाँ—ज० । [7] मुनारनि के—का०, मृनाल पुंज—ज० ।

स्वीया तरह भेद अरु[1] दोइ भेद परनारि ।
एक वेस्या मे[2] सबै सोरह कहौं विचारि ॥१०३॥

[1] करि—भा० । [2] एक एक प्रति ये—सा० ।

एक एक प्रति सोरहौ आठ[1] अवस्था जान ।
जोरि सबै ये एक सौ अट्ठाईस बखान ॥१०४॥

[1] भेद—ज० ।

उत्तम मध्यम अधम करि[1] ये सब त्रिबिधि बिचार[2] ।
चौरासी अरु तीन सै जोरे सब विस्तार ॥१०५॥

[1] कहि—नी० हि० । [2] बखान—ज० । [3] ज्यों ज्यों सब विस्तार—नी० हि०, सकल नाइका जान—नी० हि० ।

उत्तमा लक्षण ।

मापराध पति देखि कै करै न[1] मन मे मान ।
दोष जनावै सहज ही[2] सो उत्तमा बखान ॥१०६॥

[1] करै जु—भा० सा० । [2] सहचरी —नी०हि० ।

उदाहरण ।

केसर सों उबट्यो सब अंग बड़े मुकतान सा माँग सँवारी[1] ।
चारु सु[2] चंपक हार हिये उर[3] ओछे उरोजन की छवि न्यारी ।
हाय सा हाय गहे[4] कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ निहारी[5] ।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती[6] छोहरी छीवर वारी ॥१०७॥

[1] सम्हारी—भा०, समारी—सा० । [2] से—नी०हि० । [3] अरु—नी०हि० । [4] गुहे—भा० । [5] हाथ निहारै हौ आज निहारी—नी० हि० । [6] वह कौन ही—नी०, वह कौन सी—हि०, वह थी—भा० ।

मध्यमा-लक्षण।

जाहि जानि जिय मानिनी कन करै मनुहारि।
पाँइ परै कोपहि तजै कहो[1] मध्यमा नारि ॥१०८॥

[1] वहै—नी०हि०।

उदाहरण।

नेह सो नीचे निहारि निहोरत[1] नाही कै नाह की ओर चितैबो।
पीठ दै मोरि[2] मरोरि कै दीठि सकोरि कै सौंह सो भौंह[3] चढ़ैबो।
प्रीतम सो कवि देव रिसाइ कै पाइ लगाइ हियै[4] सो लगैबो।
नेरो री मोहि महा सुख देत सुधारसहू नैं[5] रसीलो रिसैबो[6] ॥१०९॥

[1] निहोरनि—ज०। [2] तोरि—नी०हि०। [3] भौंह सो सौंह—का०। [4] लिये—नी०।
[5] सुधाधर हूँ तें—का०। [6] रसीलो चितैबो—का०।

अधमा-लक्षण।

बिनु दोषहि रूठै तजै बिना मनाये मानु।
जाको रिस रस हेतु[1] बिनु अधमा नाहि बखानु ॥११०॥

[1] होत—नी० हि०।

उदाहरण।

आजु रिसोही न सौंही[1] चितौनि चितौन सखी पति प्रेम पढ़ावै[2]।
नाह सो नेह को नातो[3] न नेकु जऊ परै[4] पाइ प्रतीति बढ़ावै।
पीठ दै बैठी अमैठि सी ढीठ कै कोटन कोप की[5] ओप कढ़ावै।
तीर से तानि तिरीछे कटाच्छ कमान सी भामिनि भौंहैं चढ़ावै[6] ॥१११॥

[1] सी सौंहैं—नी०हि०। [2] प्रति प्रीन बढ़ावै—ना०, पुनि नाको पढ़ावै—नी० हि०।
[3] मोहन सो सखि नातो—ज०। [4] तऊ पर—नी० हि०। [5] को बकि—नी० हि०।
[6] चढ़ावै—ज०।

सखी-लक्षण।

बहु[1] बिनोद भूषन रचै करै जु चित्त प्रसन्न।
प्रियहि मिलावै[2] उपदिसै रहै सदा आसन्न[3] ॥११२॥

[1] बन—ज०। [2] प्रियहि मनावै—का०, ऐसो सखी बखानिये—मा०। [3] सखी कहत
तिय बात जिय जासों कछू न भिन्न—ज०।

पति सो देइ उराहनो करै बिरह[1] आस्वास।
ऐसी सखी बखानिये जाके जी बिस्वास ॥११३॥

[1] सदा—नी० हि०। मा० प्रति में द्वितीय चरण त्रुटित है।

उदाहरण।

बाल बधू के बिनोद बढ़ाइ भली बिधि भूषन भेष बनावै[1]।
चाइ सो चित्त प्रसन्न करै रस रंग मैं मग सयान[2] मिलावै[3]।

दै कै[४] उराहनो दोउन को मन राखि कै देव[५] दुहून मिलावै।
नाह सा नेह ततो[६] निबहै जब भाग ते ऐसी सखी करि पावै ॥११४॥

[१] बनाइ कै—ज०। [२] सयानि—भा० सा०। [३] सिखाइ कै—ज०। [४] ०—भा०। [५] राखि कहै कवि देव—भा०। [६] तवै—नी० हि० का०।

दूती-भेद।

धाइ सखी दासी नटी ग्वालि सिलिपनी[१] नारि।
मालिनि नाइनि बालिका बिधवा वधू बिचारि ॥११५॥

[१] ग्वालिनि सिलिपनि—नी० हि०।

सन्यासिन भिक्षुक वधू सबधी[१] की बाम।
ऐती होती दूतिका दूतप्पन[२] अभिराम ॥११६॥

[१] अरु सबधी—नी० हि०। [२] दूत प्यार—ज०।

उदाहरण।

देव जू की दूती बृषभान जू के भौन जाइ राधिका बुलाइ[१] बहु बातनि[२] सिखाइ कै।
हास रस सानी[३] दुरि आगन ते द्वार आनी हित की कहानी कहि हिय[४] सो मिलाइ[५] कै।
हरे[६] हँसि कह्यो कैसे[७] सह्यो भी परतु है[८] अहै[९] नदनद तो बियोग सो[१०] बिलाइ कै[११]।
बिरह बढाई प्रेम पद्धति पढाइ[१२] चित चोपहि चढाइ दीनी[१३] मोहनै मिलाइ कै ॥११७॥

[१] जगाय—का०। [२] भाँतिन—नी० हि० का०। [३] हासन ससानी—का०, हास रस मानी—नी० हि०। [४] हाय—का०। [५] हिलाइ—भा० का०। [६] हरि—सा०, हारे—का०। [७] केस—भा०। [८] परतु हू—नी० हि०। [९] है—नी० हि०। [१०] बह—ज०। [११] बिताइ कै—नी० हि०। [१२] बढाइ—नी० हि०। [१३] चली—नी० हि०।

इति चतुर्थ बिलास।

कबिता कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति[१]।
अलकार पहिरे निकट अदभुत रूप लखाति[२] ॥१॥

[१] सुजान—का०। [२] बखान—का०।

ताही ते कबि देव कहि अलकार की भाँति[१]।
मुनि मत के अनुसार लै कछु लक्षन जाति[२] ॥२॥

[१] के भेद—का०। [२] दूरि होहि जिनके सुनत श्रवननि के सब खेद—का०।

अलंकार-नाम।

प्रथम स्वभावउक्ति उपमेय उपमान सशय[१] अनन्वय अरु रूपक बखानिये।
अतिसय औ[२] समास बक्रउक्ति परयायउक्ति सहित सहोक्ति सविशेषउक्ति[३] जानिये।
ताते व्यतिरेक औ विभावना[४] उतप्रेक्षा क्षेप दीपक उदात औ[५] अपन्हुत को आनिये।
पीछे असलेखा न्यास अर्थान्तर व्याजस्तुति अप्रस्तुत अस्तुति सु अलकार मानिये[६] ॥३॥

[१] उपमेयोपमेय सस—भा०। [२] ०—भा०। [३] ये विशेष—नी०। [४] है विभाव—भा० मा०। [५] है—भा० सा०। [६] अरु असलेखा व्याजस्तुति अर्थान्तर अस्तुति परिकर द्विविधि

अलङ्कृत मैं मानियै—नी० हि०।

आवृति निदर्सना विरोध[1] परिवृति हेतु रसवत ऊरज समूछम[2] बताइये।
प्रेय क्रमा[3] समाहित तुल्ययोगिता औ लेस भाविक औ सकीरन जानित सुनाइये।
अलकार मुख्य उननालिस ये[4] देव कहैं येई पुराननि मुनिमननि मैं पाइये।
आधुनि[5] कविन के सम्मत अनेक और[6] इनही के भेद और विविध बिधि गाइये[7] ॥४॥

[1] विरोधता—नी०, विरोधा—हि०। [2] प्रेयस्वतमा—नी० हि०। [3] प्रेमक्रम—नी० हि०। [4] हैं—भा०। [5] आधुनिक—नी० हि०। [6] भिये—नी० हि०। [7] विविध बतायो—भा० भा०।

स्वभावोक्ति-लक्षण।

जहाँ स्वभाव बखानिये स्वभावोक्ति सो[1] नाम।
सुकवि जाति वर्णन करत कहत सकल अभिराम[2] ॥५॥

[1] सु स्वभावोक्ति—भा०। [2] काव्य सुमत अभिराम अति शास्त्रन मैं मनमान—नी० हि०, शास्त्रन मैं मान्यो यही कवि मति अति अभिराम—का०।

उदाहरण।

आगे आगे आसपास फैलनि विमल[1] बास पीछे पीछे भारी भीर भौंरनि के गान की।
तातें अति नीकी किंकिनी की झनकार होति मोहनी है मानो मन[2] मोहन के दान की।
जगमग होति जात जोति[3] नवजोवन की देखे गति भूले[4] मति देव देवतान की।
सामुहे गली के जु अली के संग भलीभाँति चली जाति देखो वह[5] लली वृषभान की ॥६॥

[1] विविध—नी० हि०। [2] मद—भा०। [3] जगरमगर होति जोति—भा० भा०। [4] गात भूले—भा०, गति भूली—नी० हि०। [5] चली जाति देखी वह—भा०, देखौ वह चली जाति—नी० हि०।

उपमा-लक्षण।

जेहि जेहि[1] भाँति बराबरी जहाँ वस्तु[2] मैं होय।
सो उपमा कवि देव कहि बरनत हैं कवि लोय ॥७॥

[1] जेहि तेहि—का०। [2] अर्थ—का०। भा० भा० प्रतियों मे दोहे का पाठ है
"न्यून गुनहि जहँ अधिक गुन कहिये बरनि समान।
अलकार उपमा कहत ताही सुमति सुजान॥"

उदाहरण।

राति जगी[1] अँगिरात इतै यहि[2] गैल गई गुनकी निधि[3] गोरी।
रोमवली त्रिवली पै लली[4] कुसुमी अँगियाहू लसी उर[5] जोरी।
ओढ़े[6] उरोजनि पै हँसि कै कसिकै पहिरी गहरी रंग बोरी।
पैरि सिवार[7] सरोज सनाल चढ़ी मनो इंद्रवधून की जोरी ॥८॥

[1] जगी—नी० हि०। [2] यहि—भा०। [3] विधि—भा० का०। [4] भली—नी० हि०। [5] दुति—नी० हि०। [6] ऊँचे—का०। [7] सिवान—का०।

उपमेयोपमा-लक्षण ।

उपमा अरु उपमेय जहँ क्रम तें[1] एकै होइ ।
सोई उपमेयोपमा कहत सुकवि[2] सब कोइ ।।६।।

[1] कौ जह क्रम—भा०, जह जह क्रम—का० सा० । [2] करनि कहै—भा० सा० ।

उदाहरण ।

तेरी सी वेनी है स्याम अमा अरु तेरीयै बेनी है स्याम अमा सी ।
पूरनमासी सी तू उजरी अरु तोसी उज्यारी है पूरनमासी ।
तेरो सो आनन[1] चंद लसै तुअ आनन मैं सखि चंद समासी[2] ।
तोसी वधू रमनीय रमा कवि देव है[3] तू रमनीय रमा सी ।।१०।।

[1] तियानन—नी० हि० । [2] अभा सी—नी०, प्रकासी०—हि० । [3] कि—का० ।

संशय-लक्षण ।

जहँ उपमा उपमेय को आपुस मैं संदेहु ।
ताही सो संसय उकति[1] समति जानि सब[2] लेहु ।।११।।

[1] कहत—हि० । [2] सुचि—हि० । नी० प्रति मे संपूर्ण दोहा त्रुटित है ।

उदाहरण ।

श्री वृषभानु कुमारी के रूप की न्यारीयै को उपमा उपजावै ।
चंचल नैन कि मैन के बान कि खंजन मीन न[1] कोइ बतावै ।
आनँद सो बिहँसाति जबै कवि देव तबै बहुधा मन धावै ।
कै[2] मुख कैधौं कलाधर है[3] इतनो निहचोई नहीं[4] चित आवै ।।१२।।

[1] एती न—का०, से इन—नी० । [2] तो—नी० हि० । [3] कै—सा० । [4] निहचो इतनो—नी०, निहचो जु नही—सा० ।

अनन्वय-लक्षण ।

तैसो सोई[1] बरनियै जहाँ न और समान ।
ताहि अनन्वय नाम कहि बरनत देव[2] सुजान ।।१३।।

[1] तैसोई तहँ—का० । [2] सुकवि—नी० हि० ।

उदाहरण ।

केस सो केस लसै मुख सो मुख नैन से नैन रहे रंग सो छकि ।
देव कहै सब अंग से अंग सुरंग दुकूलनि मैं[1] झलकै झकि[2] ।
और नहीं उपमा उपजै जग ढूंढौ सबै सब भाँतिन सों थकि ।
श्री वृषभान कुमारी[3] री तेरी सो तोसी तुही अरु कौन भरै[4] बकि ।।१४।।

[1] मैं—हि०, सो—नी०, मै यों—का० । [2] भुकि—का० । [3] राधिका श्री वृषभान कुमारी—भा० । [4] सरै—भा० ।

और अतिशयोक्ति-लक्षण ।

सम समान जैसे जनो[1] जिमि ज्यों[2] मानो तूल ।
और सदृश[3] कवि देव ए पद उपमा के मूल ।।१५।।

[१] जहाँ—का०, जतौ—नी०, जतं—हि०। [२] तिमि त्या—का०। [३] सरिस—भा०, सदा—नी० हि०।

जहँ उपमा मैं ये न पद[१] सोई रूपक जान।
सीमा तें[२] अति वरनिये अतिसय ताहि बखान॥१६॥

[१] जहँ उपमा ये नहीं—नी० हि०, जहँ उपमा मैं ये नहीं—का०। [२] सोभा तें—नी० हि०।

रूपक-उदाहरण।

मदहास चंद्रिका को मंदिर बदन चंद सुन्दर मधुर बानि सुधा भरसाति[२] है।
इंदिरा के ऐन नैन[३] इंदीवर फूलि रहे विद्रुम अधर दंत मोतिन की पाँति है।
ऐसो अदभुत रूप भावती[४] को देखो देव जाके बिनु देखे छिन छाती न सिराति है।
रसिक कन्हाइ वलि पूछन[७] हौं आई तुम्है ऐसी प्यारी पाइ कैसे न्यारी राखी जाति है॥१७॥

[१] के—नी० हि०। [२] रसमाति—नी० हि०। [३] नैन ऐन—नी० हि। [४] धुन मालिनि—नी०। [५] राधिका—भा० सा०। [६] जाहि देखे रावरोयो छतिया सिराति है—भा०, जाहि देखे को। को न छतिया सिराति है—नी० हि० का०। [७] बूझन—नी० हि०।

अतिशयोक्ति-उदाहरण।

राधे के रूप निहारि सबै कवि मूक भये उपमा नहिं आवै।
को करि बूझनि केहरि कीर री[१] कुंद कली कदलीन गनावै[२]।
कंचन[३] कंचन कीन्हो अकंचन को चित चंपक चोप चढ़ावै।
देव जू निंदित इंदीवरै सब[४] इंदिरा इंदु न आदर पावै॥१८॥

[१] कीरनि—का०। [२] गवावै—नी०। [३] वचन—नी०, पचन—का०। [४] देव सुनौ कल कोकिला से वच—का०।

समासोक्ति-लक्षण।

कछू वस्तु चाहै कह्यो[१] ता सम बरनै और।
समासोक्ति सो[२] जानिये अलंकार[३] सिरमौर॥१६॥

[१] वरन्यो चहै—नी० हि०। [२] सु—समासोक्ति—भा० सा०। [३] बरनन कवि—नी० हि०।

उदाहरण।

मालती सों मिलये[१] निसि द्यौसहू या[२] सुखदानि हुं[३] ज्यौ समभैयें।
प्रीति पुरानी पुरैनि के रैनि रह्यौ नियरे न विपत्ति बढ़ैयें।
ऊपरही गुन रूप अनूप निरंतर अंतर मैं न पत्यैये।
ये अलि दूरहू[५] भूलेहू देवजू चंपक फूल के मूल न जैये॥२०॥

[१] मलिये—भा०। [२] द्यौसहि प्यौ—हि० सा०। [३] कै—सा०। [४] पुरैन करेन—हि०। [५] दूरहू—सा०।

वक्रोक्ति-लक्षण।

काहू वचन स्लेष करि[१] और अरथ ह्वै जाइ।
सो वक्रोक्ति सु वरनिये[२] बरनि कहत कविराइ॥२१॥

[१] काकु वचनलेश करि—सा०, वचन रचना श्लेष करि—का० । [२] बखानिये—नी० हि० [३] उत्तम काव्य सुभाइ—भा० सा० ।

उदाहरण ।

मति कोप करै[१] पति सो कबहूँ मति को पकरे पति सो निबहै ।
कवि देव न मान बधू रत है[२] सब भाषत आन बधू रत है ।
अब लौं न कहूँ[३] अवलोकि तुम्हें अब लोक तुम्हैं सुख देत रहै ।
जिनि नाम कहौं हमसो तिनको हम सौतिन को किहि भाँति कहैं ॥२२॥

[१] करौ—नी० हि० । [२] तु कहा हम मान बधू बस है—का० । [३] अवलोकनहू—नी० । [४] दै रहौ—हि० ।

पर्यायोक्ति-लक्षण ।

मन की कहे न ताल[१] ये बरने और प्रकार ।
परजायोक्ति सु नाम सो[२] अलकार निरधार ॥२३॥

[१] बाल—का०, ताप—हि० । [२] सु नाम जो—भा०, बखानि जो—हि० । बखानिये जो—हि०

उदाहरण ।

मैं सुनी काल्हि परौं लगि सासुरे[१] साँचेहूँ जैहौ[२] कहौ सखि[३] सोऊ ।
देव कहे केहि भाँति मिलै जाने को[४] काहि[५] कहा कब[६] कोऊ ।
खेलि[७] तो लेहु भटू सँग[८] स्याम के आजु ही की निसि आये हैं ओऊ ।
हौं अपने दृग मूँदति हौं धरि धाइ के धाम दुरौ[९] तुम दोऊ ॥२४॥

[१] सासुरे कालि परौं लगि—का० । [२] जैहौं सु साँची—भा० सा० । [३] किनि—भा० सा० । [४] को जानै—भा० सा० । [५] काल्हि—सा० । [६] अव—का० । [७] भेंटि—भा० सा० । [८] उठि—भा० सा० । [९] आज मिलो—भा०, धाइ मिलो—सा० ।

सहोक्ति-लक्षण ।

जहाँ सहज गुण सो सहित[१] कीजे वस्तु बखान[२] ।
अलकार कवि देव कहि सो सहोक्ति उर आन[३] ॥२५॥

[१] सो महोक्ति जहँ सहित गुन—भा० । [२] वस्तु विचार—नी० हि, सहज बखान—भा० । [३] सो सहोक्ति पहिचानिये देव कहै लकार—नी० हि० ।

उदाहरण ।

प्यारी के प्रान समेत[१] पिया परदेस पयान की बात चलावै ।
देव जू छोभ समेत[२] छपा छतिया मैं छपाकर की छवि छावै ।
बोलि अली बन बीच बसत की मीचु समेत नगीच बतावै[३] ।
बाम के तीर समेत[४] समीर सरीर मैं लागत पीर बढ़ावै ॥२६॥

[१] समीप—का० । [२] छोम समान—का० । [३] भौंर समेत नगीच न आवै—हि०, भौंर समेत रगोधन आवै—नी० । [४] समान—नी० हि० का० ।

विशेषोक्ति-लक्षण।

जाति वर्ग गुन भेद की विकलपना करि जाहि[१]।
वस्तुहि वरनि दिखाइये विशेषोक्ति कहि ताहि ॥२७॥

[१] विकल्पान करि जाइ—हि०, विकल्पना करि जाय—नी०।

उदाहरण।

जोवन ज्याव[१] नहीं[२] अरु बैननि मोहनी मन्त्र नहीं अवरोह्यो।
भौंह कमान न बान बिलोचन तानि तऊ पति को चितु पोह्यो[३]।
देव घृताची[४] सची न रची तू दियो नहिं देवता को तन तोह्यो[५]।
तापर बीर अहीर की जाई री तैं मनमोहन को मन मोह्यो ॥२८॥

[१] व्याधि—नी० हि०। [२] नहीं—भा०। [३] पोह्यो—हि०। [४] छताची—का०, धूनची—भा०, घृनाची—हि०। [५] तोर्‌यो—नी० हि०।

व्यतिरेक-लक्षण।

जहँ समान विधि[१] वस्तु को कीजै भेद बखान।
अलकार व्यतिरेक सो देव सुमति पहिचान[२] ॥२६॥

[१] ह्वैं—हि०, ०—नी०, ह्वै—का०। [२] व्यतिरेक को देवदत्त उर आनि—नी० हि०, व्यतिरेक सो देवदत्त करि जान—का०।

उदाहरण।

कौन के होइ न हौ मैं हुलास[१] सु जान[२] सबै छुव देखनही छवि।
जाहि लखे बिलखे यहि भाँति परै मनु सौति सरोजनि पै पवि[३]।
याही तें प्यारी तिहारी मुखद्युति चंद समान बखानत है[४] कवि।
आनन ओप न होत मलीन[५] पै छीन ह्वै[६] जाति छपाकर की छवि ॥३०॥

[१] विलास—का०। [२] जो जान—नी० हि०। [३] मैं पवि—नी०, पै पवि—का०। [४] तो—का० भा०। [५] मलीन न होति—भा०। [६] कै—भा०।

विभावना-लक्षण।

हेतु प्रसिद्ध निरास करि कहिये हेतु सुभाउ।
अलकार सो देव कवि विभावना कहि गाउ[१] ॥ ३१॥

[१] सो विभावना गाउ—भा०।

उदाहरण।

ये अँखियाँ बिनु काजर कारी अन्यारी[१] चितै चित मैं चपटैं सी।
मीठी लगैं बतियाँ मुख मीठिओ[२] सुनैं सब सौतिन को दपटैं सी।
अगहराग बिना अग अग[३] सुगोरे सुगधन की लपटैं सी[५]।
प्यारी तिहारी ये नहि लगैं बिनु जावक पावक की लपटैं सी ॥३२॥

[१] अदोरी—भा०। [२] सु अमीठिये रागै—का०, जामीठिश्रो रागै—नी०, अन ईठिश्रो रागै—हि०। [३] सौतिन को मुन कै दपटैं सी—भा०, यो सौतिन के उर मैं दपटैं सी—भा०। [४] अगनि ते विन अगहराग—नी०, अगहि मैं सु बिना अँगराग—का०। [५] राग

सुगधह के लपटै सी—नी०, सुगध झकोरै हिए झपटै सी—का०।

उत्प्रेक्षा लक्षण।

और भाँति की वस्तु को कीजै और बखान[१]।
सो कहिये उत्प्रेक्षा बहु वितर्क जहँ जान[२]॥ ३३॥

[१] और वस्तु को तर्क करि बरनै निहचै और—भा०, और वस्तु को त्याग करि करनै निहचै और—सा०। [२] अनुमानादिक दौर—भा० सा०, जहँ वितर्क जू जान—नी० हि०।

उदाहरण।

हियो हरे लेती पसुपच्छी बस करे लेती छिनो बिछुरे तें[१] छिदि छिदि उठै छतियाँ[२]।
सुनि सुनि मोही हौं न[३] जानति हौं कोही अब ओही रूप रहो[४] अबरोही[५] दिन रतियाँ।
पलो ना[६] परत मौन मान को करै री कौन भूल्यो भौन गौन नई लोक लाज थतियाँ[७]।
मेरे मन आवत मुनिन मन[८] मोहिबे को मोहनी के मंत्र हैं री मोहन[९] की बतियाँ॥३४॥

[१] बिछुरे ही—भा०सा०। [२] लेत छीन छतियाँ—का०। [३] हिय—भा०। [४] रही—नी० हि०। [५] अतिरुही—का०। [६] रह्यो न—भा सा०। [७] ज्ञान भूलो जात भई लोक छलियाँ—नी०, ज्ञान भूलो जात भई लोक लाज मतियाँ—हि०। [८] मही के मन—नी० हि०। [९] मोहिनी—भा० सा०।

आक्षेप और उदात्त-लक्षण।

करत कहत कछु वस्तु को[१] बर्नन है[२] आक्षेप।
उदात्त मैं[३] अति बरनिये सपति दुति अवलेप॥३५॥

[१] फेर सो—भा० सा०। [२] वर्जन वच—भा० सा०। [३] ये—नी० हि०।

आक्षेप-उदाहरण।

नूतन गुलाल[१] नूत मजरो की मालनि सौं कीजे गजमुख सनमुख सनमान कौ।
करिहै[२] सकल सुख विमुख वियोग दुख प्यारे जनि जानो प्यारे प्यारी हू के प्रान कौ[३]।
बायें बोलें मोर पिय सोर[४] करै सामुहेहूँ दाहिने सुनो जु मत्त मधुकर[५] गान कौ।
सगुन भले हैं चलिब को जो चलौ हौं कत[६] आवत बसत कत[७] करिये पयान कौ॥३६॥

[१] गुलाब—का०। [२] करिकै—नी० हि०। [३] जानिये न प्यारे ये हमारे प्रिय प्रान को—भा० सा०। [४] सगुन भले पै बोलें मोर—नी० हि०। [५] भौंर भीर—नी० हि०। [६] चलौं चितु—भा० सा०। [७] चित—नी० हि०।

उदात्त-उदाहरण।

बाल को न्योति बुलाइबे को बरसाने लौं हौं पठई नँदरानी।
श्री वृषभानु की सपति देखि थकी गति औ मति औ अति बानी[१]।
भूलि परी मनि मदिर[२] मे प्रतिबिंबन देखि विसप भुलानी।
चारि घरी लौं चितौत चितौन मह करि चदमुखी पहिचानी॥३७॥

[१] अति ही गति औ मति बानी—भा०, अति ही मति औ अति बानी—का०। [२] रग मदिर—नी० हि०।

दीपक-लक्षण।

अरथ कहै एकै क्रिया जहाँ आदि मधि अन्त।
अथवा जहँ प्रतिपद क्रिया दीपक कहत सु सत ॥३८॥

उदाहरण।

मोहि लई लखि कै हिरनी[1] हरि नीरज सी बडरी अखियानि सा।
सारिका सारसिका रसिका सु[2] कपोत कपोती पिकी मृदुबानि सो[3]।
देव कहैं सब भूप सुता अनुरूप अनूपम[4] रूप कलानि सो।
गोप वधू[5] विधु से मुख की मधुसूदन वा मधुरी[6] मुसक्यानि सा ॥३९॥

[1] हिरनी लखि कै—भा० सा०। [2] मार सुवा सो कपोती—नी० हि०। [3] हू सुवारे सुबानि सो—नी० हि०। [4] अरूपक—हि०। [5] पै न वधू—सा०, गोप सुता—का०। [6] घन सुन्दर हेरि हरी—भा०, घन सुन्दर मद मुरे—सा०।

अपह्नुति-लक्षण।

मन को अरथ छिपाइ कै[1] औरै अर्थ प्रकास।
देव कहै कीजै तहाँ नाम अपन्हुति तास[2] ॥४०॥

[1] छिपाइये—भा० सा०। [2] श्लेष वचन काकु स्वरनि कहत अपन्हुति तास—भा० सा०।

उदाहरण।

ह्वाँही ह्वौ और कि ये सब और कि डोलत आजु को औरै समीरौ।
याते इन्है तन ताप[1] मिरात पै मेरे हिये न थिरातु है धीरौ।
ये कहैं[2] कोकिल कूक भली सु तौ[3] कान सुने जम[4] आवत नीरौ।
लोग ससी को सराहत हैं[5] तब ताहू लगै सखी साँचेहु सीरौ ॥४१॥

[1] सनताप—नी० हि० का०। [2] कही—नी० हि०। [3] मुहि—भा० मा०। [4] परे जनु—नी० हि०। [5] री—भा०, है री—मा०।

श्लेष-लक्षण।

जहाँ कवित्त के पदन मैं[1] उपजै अर्थ अनन्त।
अलंकार अश्लेष सो[2] बरनत हैं मतिमन्त[3] ॥४२॥

[1] जहाँ काव्य के पदन मैं—भा०, जो है काव्य कछून मैं—सा०। [2] सब—नी० हि० [3] बरनत सत विहत—नी० हि०, बरनि कहैं मतिमत—का०।

उदाहरण।

ऐसी गुनी गने लागत ही न रहै तन मैं सनताप[1] री एकौ।
देव महारग वास निवास[2] बडो सुख या उर वास किये को[3]।
रूप निदान अनूप विधान सु प्रानन को फल जासो जिये को[4]।
साचेहुँ है[5] सखी नन्दकुमार कुमार नहीं यह[6] हार हिये को ॥४३॥

[1] तनताप—हि०। [2] अवास—का०। [3] बडो सुख जो सुख जा उर वास किये को—हि०। [4] मूरतिमत वसत विलास बढावत ही मैं हुलास हिय को—का०। [5] साँचेहूँ री

—हि०। [६] सखि—सा०।

अर्थान्तरन्यास-लक्षण।

उक्त[१] अर्थ दृढ करन को वाक्य जु कहिये और[२]।
अर्थान्तर को न्यास सो अलकार सिरमौर[३] ॥४४॥

[१] युक्त—भा०। [२] आनै अर्थ जु और—का०। [३] सो अर्थान्तिर न्यास कहि बरनत बस कवि रस भौर—सा० सो अर्थान्तिरन्यास कहि बरनत रस बस भौर—भा० हि०।

उदाहरण।

चैन के ऐन[१] ये नैन निहारत मैन के को[२] कर मैं न परै री।
तापर नैसिक अजन देत निरजन हू के हिये मो हरै री।
साधुओ होहि असाधु कहूँ[३] कवि देव जो कारे के सग परै री।
स्याह हियो[४] अरु स्याम[५] सुतो[६] सखी आठहू जाम कुकाम[७] करै री ॥४५॥

[१] राय—हि०। [२] कोउ—भा० वयो—का०। [३] कौऊ—हि०। [४] स्याह रह्यो—हि०, स्याही रह्यो—भा०, स्याही भरो—का०। [५] स्याह—भा० सा० हि०। [६] सखा—हि०। [७] अकाम—का०।

अप्रस्तुतप्रशसा और व्याजस्तुति-लक्षण।

जहां सु अप्रस्तु अस्तुति निंदा की अचान[१]।
निंदा अप्रस्तुत करै जहाँ[२] सो व्याजस्तुति जान ॥४६॥

[१] अप्रस्तुति ता स्तुतिल निंद अचान—सा०। [२] निंदै और जहाँ सराहिये—भा० सा०।

अप्रस्तुतप्रशसा-उदाहरण।

बडभागिनि येई बिरचि रची न इतो[१] सुख आन कहूँ[२] तिय के।
बिछुरै न छिनो भरि बालम तें कवि देव जू सग रहै[३] जिय के।
तृन[४] चारु चरै रुचि सो चहुँ ओर चलै चितवै सुचि सो[५] हिय के।
सब तें सब भांति भली हरिनी निसि बासर पास[६] रहै पिय के ॥४७॥

[१] रय तो—हि०। [२] किहूँ—का०। [३] बीच बसै—का०। [४] बन—हि०। [५] सुब सा—हि०। [६] सग—का०।

व्याजस्तुति-उदाहरण।

को हमको तुमसे तपसी बिनु जोग सिखावन आइहै[१] ऊधो।
पै यहि पूछिये जू[२] उनको सुधि पाछिनी[३] आवति है कबहूँ धो।
एक भली भई भूप भये अरु भूलि गये दधि माखन दूधो।
कूबरी सी अति सूधी बधू को मिल्यो वर देव जू स्याम सो सूधो[४] ॥४८॥

[१] आए है—हि०। [२] अब एती कहो—का०। [३] पाछिनी सुधि—का०। [४] जउ—का०। [५] वर पायो त्रिभगीयं स्याम सो सूधो—का० वह पायो भलो घनस्याम सो सूधो—हि०।

आवृत्तिदीपक-लक्षण ।

आवृत्ति दीपक भेद कै ताहू त्रिविधि बखान ।
आवृति अर्थावृति अरु परपदार्थावृति जानु[1] ॥४९॥

[1] वृत्ति अर्थ आवृत्ति अरु पद पदार्थ जुत जान—हि० ।

उदाहरण ।

बेलि लसैं त्रिलसैं नव[1] पल्लव फूल[2] खिले उखिलें[3] नव[4] कोरैं ।
मोरत[5] मान को गान अलीन के कूकि पिकी मुनि को मन मोरैं ।
डोलत पौन सुगंध ललैं[6] अरु मैन के बान सुगंध के डोरैं ।
चंचल नैननि सो तरनी अरु नैन कटाछनु सो चितु चोरैं ॥५०॥

[1] बन—का० । [2] भूलि—का० । [3] नखिलैं—भा० । [4] मोरन—हि० । [5] चलैं—भा०, तलैं—हि०, मलैं—'म' हाशिये पर—का० ।

निदर्शना-लक्षण ।

औरै वस्तु बखानिये फल तब ताहि[1] समान ।
जहाँ दिखाइये और कहि ताहि निदर्शन जान[2] ॥५१॥

[1] फूलत ताहि—सा० । [2] जहा दिखाइय निदरसन कहत सु ताहि सुजान—का०, जहा दिखाइय और कह ताहि निदर्शन ज्ञान—हि० ।

उदाहरण ।

देखिबे को जिनको दिन राति रहै उर मैं अति आतुर ह्वै हरि ।
कोरि उपाइन पाइये जे न रहै जिनके बिरहज्वर सों जरि[1] ।
पार न पैयतु[2] आनद को तिनि आनि भटू उठि भेंटै[3] भुजा भरि ।
जानि परै नहि देव दया विष देत मिली विषया जु मया करि[4] ॥५२॥

[1] दाइ पियैं न कहै न सुनै अकुलाइ महा बिरहज्वर सों जरि—का० । [2] पाइये पार न—का० । [3] यरही तिन्ह आइकै भेंटे—का०, उठि भेंटि भटू सु—हि० । [4] भातिन भाग वही मन भावती मीत मिलै जु दया करि—का० ।

विरोध-लक्षण ।

जहाँ विरोधी पदारथ[1] मिलै[2] एकही ठौर ।
अलंकार सु विरोध जिनु विष पियूष विष कौर[3] ॥५३॥

[1] पद अरथ—हि० । [2] होहिं—का० । [3] हैं बरनत कवि सिरमौर—का०, यह विषय पुग विष कौर—हि० ।

उदाहरण ।

आयो बसंत लग्यो बरसावन नैननि तें सरिता उमहै री ।
को मनि जीव दिपावै छपा मैं छपाकर की छबि छाइ रहै री ।
चंदन सो छिरकै छतियाँ अति आगि उठै दुन[1] सौन महै री ।
सीतल मंद सुगंध समीर वहै दिन दूनी देह दहै री[2] ॥५४॥

[1] उर—का० । [2] दव जु सीतल मंद सुगंध सु गंधवहौ लगि देह दहै री—भा० ।

परिवृत्त-लक्षण ।

जहाँ वस्तु[१] बरननि पदनि[२] फिरि आवतु[३] है अर्थ।
ताही सों परिवृत्त कहि बरनत सुमति समर्थ ॥५५॥

[१] भाव—का० । [२] विषय—का० । [३] आनतु—सा० ।

उदाहरण ।

केवली[१] समूढ लाज टूटत[२] ढिठाई पैयें[३] चातुरी अगूढ गूढ मूढता[४] के खोज हैं।
सोभा सील[५] भरत अरति[६] निकरत सब मुरि[७] चले खेल पुरि[८] चले चित चोज हैं।
हीन होति कटि तट पीन होत जघन सघन सोच लोचन ज्यों नाचत सरोज हैं[९]।
जाति लरिकाई तरुनाई तन आवत सु[१०] वैठत मनोज देव[११] उठत उरोज हैं ॥५६॥

[१] कै चली—हि० । [२] ऊढती—सा० । [३] पाइ—सा० । [४] गढत—का० । [५] साल—हि० । [६] अरत—हि०, जरति—सा० । [७] मुहि—भा० । [८] जुरि—का०, पुर—हि० । [९] खीन होति कटि तब पीन होत जघन बदेत सुख नैन लेत उपमा सरोज हैं—का० । [१०] है—का० । [११] है री—हि० ।

हेतु और रसवत-लक्षण ।

हेतु सहित जहँ अरथ पद[१] हेतु बरनिये सोइ।
नौहू रस मैं सरसता जहाँ सु रसवत होइ[२] ॥५७॥

[१] बरनिये—का० । [२] अधिक सरस जो बरनिये सो रसवत होइ—का० ।

हेतु-उदाहरण ।

देव यहै दिन राति कहै हरि कैसेहूँ राधे सो[१] बान बहैबी।
कोल के कुंज अकेली मिले कबहूँ भरिकै भुज भेंटि न पैबी।
आठहू सिद्धि नवो निधि की निधि है बिरची बिधि मांन्हिजि ऐबी[२]।
मेटि वियोग मनेटि हियो भरि भेंटि कबै सुखचन्द अँचैबी ॥५८॥

[१] वापर—का० । [२] छोरि छिपाइ बिछोरि बिछोह छिनो छतिया तिया सों छबैबी—का० । [३] चूमि सो चपक मी चिबुकै कर चांपि कै मुखचन्द अँचैबी—का० ।

रसवत-उदाहरण ।

बेली नवेली लतानि सों बेलि कै प्रात अन्हाइ सरोवर पावन।
पिंजर मंजरिका छहराइ[१] मरन्द की छाइ छपाइ छपावन।
सीतल मंद सुगंध महा बपुरे बिरही बपुरीनि तपावन।
आजु को आयो समीर सखी री सरोज कँपाइ करेजो कँपावन ॥५९॥

[१] जहरात—मा० । [२] जुवतीनि तपावन—मा०, बिरहीनि तपावन—हि० ।

ऊर्जस्वल और सूक्ष्म-लक्षण ।

अहंकार गर्वित वचन सो ऊर्जस्वल होइ[१]।
सैना सों प्रगटै अरथ सूक्षम कहियै[२] सोइ ॥६०॥

[१] जहाँ गु अरज होत—सा०, ऊर्जस्वल सो होइ—हि० । [२] बरनहु सूक्षम—का० ।

उर्जस्वल उदाहरण।

देव दुरत दवा[1] अँचयो जिहि कालिय कील[2] धर्यो सु वहै है।
को लौं वकौ हौं वकी वक वच्छ अघादिक[3] को अघु कै कै[4] अघैहै।
कान्ह[5] के आगे न काहू को कोप कहूँ कबहूँ निबह्यो न निबैहै।
छाँड़ि दै मान री मान कह्यो कहुँ भानु पै तेज कृसानु को रैहै[6]॥६१॥

[1] दमा—मा०, दमी—भा०। [2] केलि—का०, कील—हि०। [3] वक वछ नघारक—हि०, वकवक्ष अघारिक—भा०। [4] कै को—मा०। [5] कोप—हि०। [6] भानु को तेज कृसानु कै रहै—भा०।

सूक्ष्म-उदाहरण।

बैठी बहू गुरलोगनि मे लखि लाल गये करि कै कलु ओल्यो[1]।
ना चितई न भई तिय चचल देव इतै न उतै[2] चित डोल्यो।
चातुर आतुर जानि उन्हैं[3] छलही छल चाहि सखीन[4] सों बोल्यो।
त्योंही[5] निसक मयकमुखी दृग मूँदि कै घूँघट को पट[6] खोल्यो॥६२॥

[1] बोल्यो—हि०। [2] उनतें—भा०। [3] ज्ञान वहै—का०। [4] सयान—हि०। [5] मोही—हि०। [6] तें मुख—का० सा०।

प्रेय और क्रम-लक्षण।

कहिये जो अति प्रिय वचन प्रेय[1] वखानौ ताहि।
उपमा अरु उपमेय को क्रम सु क्रमोक्ति आहि[2]॥६३॥

[1] प्रेम—भा०। [2] सु कहै क्रम जाहि—का० क्रम सु क्रमोक्ति जु आहि—हि०।

उदाहरण।

केस भाल भृकुटि[1] नयन श्रुति औ कपोल नासिका अधर दन[2] चिबुक बिचारिये।
कठ कुच नाभी त्रिवली औ रोमावली कटि भुज कर जानु पग प्यारी के निहारिये।
मुहु[3] तम चद चाप मजन कनक पुट पत्र सुक बिंब मोती कपत्नी[4] वारिये।
कजु[5] गिरि कूप नदी सैवार मृनाल लता पल्लव कदलि कज फेरे करि डारिये॥६४॥

[1] त्रिकुटी—मा०। [2] देन—भा०। [3] श्रोनी रोमावली और—भा०। [4] कहू—भा०। [5] वृद वली—का०। [6] कुच—हि०।

समाहित-लक्षण।

जहँ कारज कर्तव्य को साधन विधि वल होइ।
अकस्मात ही देव कहि कहौ समाहित सोइ॥६५॥

उदाहरण।

गुनगोरि कियो गुरु मान मु मैन लता के हिये लहराइ उठ्यो।
मनुहारि के हारी सखीगन[1] रँगभौनहि तें[2] भहराइ[3] उठ्यो।
तब लौं घहराई घटा घहराइ कै बिज्जु छटा छहराइ उठ्यो।
कवि देव जू भाग तें भावतो को भय तें हियरा हहराइ उठ्यो॥६६॥

[1] सर्वो गुन—भा०मा०। [2] रँगभौनहि मैं—हि०। [3] हहराइ—मा०। [4] भहराइ—सा०

तुल्ययोगिता लक्षण ।

जहँ सम करि गुन दोस कैं[१] कीजै वस्तु बखान ।
स्तुति निंदारथ[२] जहां तहां[३] तुल्ययोगिता जान ॥६७॥

१ समान करि उत्कप गु—का० ।[२] स्तुनिन पदारथ मौ—भा० ।[३] तहा ही—हि० ।

उदाहरण ।

एक तुही वृषभानसुता अरु तीनि हैं[१] वै जु समेत सची है ।
देवी रमा[२] कवि देव उमा ये तिलोक मैं रूप की रासि मची है ।
औरन केतिक राजन के कविराजन की रसना पै[४] नची है ।
पै[५] वर नारि महा सुकुमारि ये चारि[६] विरंचि विचारि[७] रची है ॥६८॥

१ तीयन हैं—हि० । २ उमा—का० । ३ रमा—का० । ४ रसना पै—भा० । ५ पै—हि० । ६ चारु—का० । ७ विचारि विरंचि—हि० ।

श्लेष लक्षण ।

प्रगट अरथ[१] जु लस करि कीजे ताहि निगूढ ।
लेस कहत तासो सुकवि जे बुधि बल आरूढ़[२] ॥६९॥

१ अथ जु प्रगटै—का० । २ सु अगूढ—हि० ।

उदाहरण ।

बाल बिलोकत ही भजनी सी[१] गुपाल गरैं जलबिंदु[२] की मालैं ।
आपुस मैं मुसक्यानी सखी हरिदेव[३] जु बात बनाइ बिसालैं ।
साप ज्यों पौन गिलै[४] उगिलै विष ज्यों रवि ऊषम[५] आगि[६] उगालै ।
जात घुस्यौ[७] घर ही म घने तप छीन भयो[८] तनु घाम के घालैं ॥७०॥

१ सो—सा० जु—का० । २ अरविंद—हि० । ३ सब देव—का० । ४ पौ निगलै—हि० । ५ विष ग्रीषम ज्यों रवि—का० । ६ आनि—भा० । ७ घयो—का० । ८ तपधी उभयो—हि० सा० तप धीन भया—भा० ।

भाविक लक्षण ।

भूतर भावी[१] अरथ को बरतमान सु बखान[२] ।
भाविक वस्तु गभीर को मोई भाविक जान[३] ॥७१॥

१ भूतहु भावी—हि० भूत भाविक—का० । २ जहँ कवि करत बखान—का० । ३ गंभीर जो वस्तु को भाव सो भाविक जान—का० ।

उदाहरण ।

जा दिन तैं बृजनाथ[१] भटू इह गोकुल तैं मथुराहि गये हैं ।
छाकि रही तननैं छवि सो[२] छिन छूटति ना छतिया म छये[३] हैं ।
वैसिय भांति निहारति हौ हरि नाचति कालिंदी कूल ठये हैं ।
रामु सहारि कै छत्र धरयो सिर देखनि द्वारिकानाथ भये हैं ॥७२॥

१ जदुराइ—हि० । २ छवि सैं तन तैं—का० । ३ गए—हि० ।

गम्भीरोक्ति-उदाहरण।

सबहीं तें मनो मृग वा गुन्जे[1] दृग मीनन को गुन[2] जाल[3] लिये।
बसुधा सुख[4] सिंधु सुधारस[5] पूरन जात[6] चले दृग कों गलिये।
कवि देव कहै एहि भाँति उठी कहि काहू कौं कोऊ कहूँ जनिये।
तबलौं[7] सबही यह सोर परयो कि चलौं[8] चलिये जु चलौ चलिये॥७३॥

[1] उरियें—को०। [2] दुति—का०। [3] जानि—हि०। [4] बसुधा घर—हि०। [5] सुधा घर—का०। [6] जीनि—हि०। [7] तब तौं—हि०, तब हीं—का०। [8] कब लौं—का०।

संकीर्ण और आशिष-लक्षण।

अलंकार जामे बहुत सो संकीरन[1] होइ।
चाहु चित्त[2] अभिलाष कौ[3] आसिष बरनै सोइ॥७४॥

[1] संसरता—मा०। [2] प्रारथना—का०, चाह चित्त—हि०। [3] की—हि० मा०।

संकीर्ण-उदाहरण।

डोलति है जहँ काम लता[1] सु लखी कुच गुच्छ[2] दुहूँ दुधा कौ[3]।
कौंल सनाल कि बाल[4] के हाथ छिपी कटि[5] कांति कों[6] भाँति सुधा कौ[7]।
देव यही मन आवति है सविलास बधू विधि है बहुधा कौ[8]।
भाल[9] गुही मुकतालर माल[10] सुधाधर में मनो धार सुधा कौ॥७५॥

[1] कोमलता—का०। [2] लचि कचन गुच्छ—का०। [3] न कै बरषा को—का०, दम्ह उधा कौ—मा०। [4] कौधौं प्रकार कि बाल—का०। [5] छपी करि—हि०। [6] कान्तिकी—मा० हि०, कांति कैं—का०। [7] भुजा कौ—का०। [8] कि प्रकास रही तहि रासि प्रभा कौ—का०। [9] भाग—हि०। [10] मांग में मोती की माल लसै—का०।

आशिष-उदाहरण।

भाग सुहाग भरी अनुराग सों राधे जू मोहन को मुख जोवै।
भूषन भेष बनावै नये नित सोतिन के चित चाहित खोवै।
रोचन गोरस पुंज करो पय दाम दुही दधि दासी बिलोवै।
पूरन काम हौं[1] आठहू जाम जु स्याम की सेज सदा सुख सोवै॥७६॥

[1] है—मा० का०।

अलंकार ये मुख्य हैं इनके भेद अनन्त।
आनग्रंथ के पथ लखि[1] जानि लेहु[2] मतिमन्त॥७७॥

[1] मतन तें—का०। [2] जाहु—का०।

अपनी बुद्धि समान मैं कह्यो कछू निरधार।
ताते सोधन करि कृपा लैहैं सुमति सुधार॥७८॥
या साहित्य समुद्र को कहेन न पायो पार।
हमसे ओछे कविन की तहाँ कहाँ आकार॥७९॥

द्योसरिया कवि देव को नगर इटाए बास।
जोवन नवल सुभाव वर कीनो भाव विलास ॥८०॥

इति पंचम विलास।

इति भावविलास ॥

रस विलास

प्रतियाँ : प्रतियों की बहिरंग परीक्षा : पाठ-संपादन में प्रयुक्त 'रसविलास' की विभिन्न प्रतियों का विवरण इस प्रकार है

१ ब्र०—अर्थात् श्री ब्रजवल्लभ की प्रति : यह प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रह में है। सभा के सूचीपत्र में इसकी संख्या ८६७।१२ है। प्रति लगभग १३ इंच लम्बी तथा ७ इंच चौड़ी है। प्रति में १०६ पत्र तथा प्रत्येक पृष्ठ पर १६ पंक्तियाँ हैं। इसके अक्षर आकार में साधारण से अधिक बड़े हैं। इसकी प्रतिलिपि भरतपुर के श्री ब्रजवल्लभ ने संवत् १८९७ में अपने लिए की थी। यत्र-तत्र प्रति में पहले के पाठ पर हरताल फेरकर पाठ-संशोधन भी किया गया है। ध्यान से परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि प्रति में पीली तथा गेरुए वर्णों की हरताल का प्रयोग हुआ है। इनमें से पीली हरताल का उपयोग प्रतिलिपिकार ने तथा गेरुए रंग की हरताल का उपयोग किसी अन्य संशोधनकर्ता ने किया है। इस प्रति के षष्ठ विलास में भा० मो० शाखा की किसी प्रति से पाठान्तरों की तुलना तथा पाठ-संशोधन हुआ है। ऐसे सभी पाठ-संशोधन गेरुए रंग की हरताल की सहायता से हुए हैं। प्रति में आठ विलास तथा भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द मिलते हैं। प्रति की अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास सम्पूर्ण संवत् १८९७ मिती आसाढ़ कृष्ण १ भौम वासरे लिष्य कृत ब्रजवल्लभ बहस्ते स्वात्म पठनार्थम् भरतपुर मध्ये राज्ये बलवंत सिंघजी शुभ। श्रीरस्तु"

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

२ मो०—अर्थात् मोहनजी की प्रति : यह प्रति भी नागरी-प्रचारिणी सभा के संग्रह में है। इसकी सूचीपत्र-संख्या ४६६।१२ है। प्रति में कुल ४० पत्र हैं तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पंक्तियाँ हैं। प्रति की लम्बाई लगभग १२ इंच तथा चौड़ाई लगभग ८ इंच है। संवत् १८८१ में बालमुकुन्द मिश्र ने मोहनजी फौजदार के निमित्त यह प्रतिलिपि तैयार की थी। इस प्रति में अनेक स्थलों पर पाठ के एकाध वर्ण प्रमादवश छूट गए हैं। भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द तथा अष्टम विलास इस प्रति में नहीं है। अंतिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री रस विलास कवि देवदत्त कृतौ मंगल वियोग दसा वर्णनो नाम सप्तमो विलास ७ मिती श्रावण वदि ७ भौमवासरे संवत् १८८१ पोथी फौजदार श्री मोहनजी लिखित मिश्र बालमुकुन्दजी शुभ भवतु श्री ॥''

प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

३ भा०—अर्थात् भारतजीवन प्रेस द्वारा प्रकाशित 'रस विलास' का संस्करण : सन् १९०० में भारतजीवन प्रेस के संचालक श्री रामकृष्ण वर्मा ने 'रस विलास' का स्वसंपादित संस्करण प्रकाशित किया था। मो० प्रति के समान इस प्रति में भी भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास नहीं है। मुखपृष्ठ पर ज्ञापित सूचना के अनुसार श्री वर्मा जी को यह ग्रंथ सिहोर-निवासी, गुजरात के प्रसिद्ध कवि श्री गोविन्द गीलाभाई की सहायता से प्राप्त हुआ था। श्री वर्मा जी ने अपनी आधार-प्रति के विषय में अन्य सूचनाएँ नहीं दी हैं।

सम्पादक ने अपनी ओर से पाठ मे अधिक परिवर्तन नही किया है अत इस सस्करण का पाठ भी विश्वसनीय है।

४ सा०—*अर्थात् हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की हस्तलिखित प्रति* सम्मेलन-सग्रहालय के सूचीपत्र मे इसकी सख्या १३४६।२११२ है। प्रति आकार मे लगभग ७ इच चौडी तथा १२ इच लम्बी है। प्रति मे केवल ३४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर ३४ पक्तियाँ हैं। प्रति जिल्दबद नही है, यद्यपि पत्रों के फर्मे बगल से एक-दूसरे से सिले हुए है। अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि नागपुर-निवासी सीताराम ने बाजीराव भोसले के समय में सवत् १८९२ मे इसकी प्रतिलिपि की थी। इस प्रति मे भोगीलाल-सम्बन्धी छन्द अधिक तथा अष्टम विलास मिलते है। प्रति मे पचम विलास के अन्त मे पुष्पिका नही है किन्तु षष्ठ विलास मे छन्दो का सख्या क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति रस विलास ग्रथ सम्पूर्ण सवत् १८९२ सके १७५७ आषाढ कृष्ण तेरह त्रयोदसी शुभ वासरे भृगु वासरे सीताराम मोतीरामात्मज तेन स्वहस्तेन लिखित पठन पाठनार्थ आत्मा अर्थ परोपकारार्थ। मुकाम नागपुर सहर राजे बाजीवा भोसले। सन् फसली १२४५।"

सा० प्रति का पाठ सामान्य रूप से विश्वसनीय है।

५ नी०—*अर्थात् नीलगाँव, जिला सीतापुर की अपूर्ण प्रति* इस प्रति के आरम्भ मे ग्रथ-नाम 'रस विलास' न होकर 'जाति विलास' है। मध्य के विलासो की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम का उल्लेख नही है। मुझे यह प्रति राजा नीलगाँव के राजपुस्तकालय से प्राप्त हुई थी। प्रति आकार मे लगभग १० इच लम्बी तथा ७ इच चौडी है। प्रति म कुल ७१ पत्रे तथा प्रत्येक पृष्ठ पर २१ पक्तियाँ हैं। प्रति का अन्तिम अश खडित होने के कारण इस प्रति के प्रतिलिपिकार का नाम, उसका स्थान अथवा प्रतिलिपि सवत् इस प्रति मे नही है परन्तु 'भाव प्रकाश' तथा 'उमराव कोष' आदि जिन अन्य ग्रथो के साथ यह प्रति एक जिल्द मे बँधी है उनमे से अन्तिम, 'उमराव कोष' की पुष्पिका से ज्ञात होता है कि श्री गौरीशकर दुबे ने सवत् १९४३ मे इन सभी ग्रथो की प्रतिलिपि की थी। इस प्रति मे पाठ केवल 'केरल वधू' ५ ४७ तक मिलता है। भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द इस प्रति मे नहीं है।

प्रति का पाठ अत्यन्त विश्वसनीय है।

६ ग०—*अर्थात् श्री वच्चराज पुस्तकालय, गधौली, जिला सीतापुर की हस्तलिखित प्रति* 'रस विलास' की यह प्रति आकार मे लगभग १४ इच लम्बी तथा ६ इच चौडी है। पत्रा की सख्या ५१ तथा प्रति-पृष्ठ पक्तियो की सख्या २२ है। प्रति 'रस साराश'—दास, 'काव्य'—ब्रजराज, 'उमराव कोष'—मुबदा, आदि ग्रथों के साथ एक मोटे रजिस्टर मे बँधी है। कहीं-कहीं पेंसिल से हाशिये पर पाठान्तर भी सग्रहीत हैं। ग० प्रति म पचम विलास के अन्त मे पुष्पिका नही है एव षष्ठ विलास मे छन्दो का सख्या-क्रम १-२ से प्रारम्भ नही होता। (देखें सा० प्रति का विवरण) अन्तिम पुष्पिका के अनुसार स्वय युगलकिशोर मिश्र ने सवत् १९४२ मे इस ग्रथ की प्रतिलिपि की थी। ग्रथ मे भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द तथा अष्टम विलास मिलते हैं। प्रति की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—"इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास शृगार रस नायिका नायक हाव भाव दस हाव वर्णनो नाम सप्तमो विलास ॥७॥

समाप्त शुभमस्तु। श्री सवत् १६४२ चैत्र शुक्ल १३ शनौ। लिखित मिद पुस्तक जुगलकिशोर मिश्रेण स्वार्थे॥"

ग० प्रति के पाठ मे एकाधिक शाखाओ की अनेक प्रतियो से पाठ-मिश्रण हुआ है अत यह प्रति अविश्वसनीय है।

७ गजा—अर्थात् गधौली की 'जाति विलास' की अपूर्ण प्रति इस प्रति के आदि मे तथा मध्य मे विलासो की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम 'जाति विलास' दिया है। यह प्रति आकार मे 'रस विलास' की ग० प्रति के प्राय समान है। इस प्रति मे ३० पत्र तथा प्रति-पृष्ठ पक्तियो की सख्या १६ है। प्रति का अन्तिम अश अपूर्ण होने के कारण प्रति मे प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि-सवत् नही दिये हैं।

इस प्रति के पाठ मे अन्य प्रतियो के पाठ का मिश्रण होने के कारण इस प्रति का पाठ भी अधिक विश्वसनीय नही है।

अन्य प्रतियाँ 'रस विलास' की ऐसी प्रतियो का विवरण जिनका उपयोग ग्रथ के पाठ-सपादन मे आशिक रूप मे हुआ है अथवा जिन्हे अप्रयुक्त छोड दिया गया है, इस प्रकार है —

८ आ०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय मे इस पोथी की सूचीपत्र-सख्या १२२ है। प्रति कुल ४४ पत्रो की है तथा इसके प्रत्येक पृष्ठ पर ११ पक्तियाँ हैं। प्रति का आकार लगभग १५ इच तथा ४ इच है। प्रति की अतिम पुष्पिका खडित होने के कारण प्रतिलिपिकार की असावधानी से वर्ण तथा मात्रा अनेक स्थलो पर छूट गए है। प्रति के पाठ मे सशोधन भी कम हुआ है। हाशिये पर पाठान्तर भी एक दो स्थलो पर ही है तथा हरताल का प्रयोग भी कम हुआ है। भा० मो० प्रतियो मे तथा इस प्रति मे पाठान्तर तथा पाठ-विकृतियाँ समान मिलने के कारण हमने इस प्रति का आशिक उपयोग किया है।

सक्षेप मे इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं

आ० प्रति मे भोगीलाल-सम्बन्धी अधिक छन्द नही हैं परन्तु अष्टम विलास मिलता है। प्रत्येक विलास के अन्त मे भोगीलाल के नाम सहित अधिक छन्द भी आ० प्रति मे नही हैं तथा अष्टम विलास के अतिरिक्त किसी भी विलास के अत की पुष्पिका मे भोगीलाल का उल्लेख नही मिलता। प्रति मे षष्ठ विलास के अत में पुष्पिका नही दी है परन्तु इसके पश्चात् छन्दो का सख्या क्रम १-२ से प्रारम्भ होता है। सप्तम विलास के आरम्भ मे 'रानी राधा हरि सुमिरि' दोहा नहीं है यद्यपि अन्य तत्र प्रथम, द्वितीय आदि विलासो के आदि मे यह दोहा आया है। इस प्रति मे भोगीलाल का नामोल्लेख केवल अष्टम विलास के प्रथम 'दन जिन्हे मिति' छन्द मे, अष्टम विलास के अतिम दो छन्दो मे तथा प्रति की अतिम पुष्पिका मे हुआ है।

इस विवरण से यह प्रगट है कि प्रति का षष्ठम विलास तक का पाठ भा० मो० प्रतियो की शाखा से एव इस स्थल के पश्चात् ग्रथ के अत तक का पाठ ग्र०, ग०, शा० प्रतियो की शाखा की किसी प्रति से लिया गया है। इस प्रकार यह प्रति विभिन्न शाखाओ की प्रतियो से पाठ-मिश्रण द्वारा तैयार हुई है। पाठ मिश्रण के आधार वाली इन दोनो ही शाखाओ की प्रतियो का सपादन-कार्य के निमित्त चयन हो चुका है अत हमने आ० प्रति से पाठान्तर केवल द्वितीय

विलास के अंत तक दिया है यद्यपि हमने इसके आगे भी पाठान्तरो की तुलना करके देख लिया है।

९ आर०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'रसविलास' की प्रति पुस्तकालय मे प्रति की सूचीपत्र-सख्या ११५ है। प्रति आकार मे लगभग ७ इंच लम्बी तथा ६॥ इच चौडी है। प्रति मे ११४ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १५ पक्तियाँ हैं। प्रति बिलकुल आधुनिक है क्योंकि सवत् १९७७ मे ग० प्रति से इसकी प्रतिलिपि हुई थी। ग० प्रति की सभी विशेषताएँ तथा पाठ-विकृतियाँ इस प्रति मे मिलती हैं एव ग० प्रति सपादन कार्य मे प्रयुक्त हुई है, अत इस प्रति को महत्त्वहीन जानकर हमने छोड दिया है। अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—'समाप्तम शुभमस्तु। श्री सवत १९७७ श्रावण सुदि पूर्णिमा १५॥

१० हिर०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद की 'रस विलास' की प्रति प्रति आकार म लगभग १३ इच लम्बी तथा ८॥ इच चौडी है। प्रति म ७९ पत्र तथा प्रति पृष्ठ ३२ पक्तियाँ हैं। यह प्रति भी अत्यन्त आधुनिक है। प्रति के अन्तिम पृष्ठ पर प्रतिलिपिकार की टिप्पणी है, "नागरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दुस्तानी एकेडमी के निमित्त यह प्रतिलिपि कराई।' इस प्रति के पाठ की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि यह प्रति भी आर० प्रति की प्रतिलिपि है अत इसे भी अनावश्यक जानकर छोड दिया गया है। इस प्रति की तथा आर० प्रति की अंतिम पुष्पिकाएँ बिलकुल समान हैं।

११ आजा०—अर्थात् आर्यभाषा पुस्तकालय की 'जाति विलास' की अपूर्ण प्रति. पुस्तकालय म प्रति की सूचीपत्र सख्या ११७ है। प्रति मे ५४ पत्र है तथा प्रति पृष्ठ पर पक्तियो की सख्या १५ है। प्रति का आकार ७ इच लम्बा तथा ६॥ इच चौडा है। प्रतिलिपिकार का नाम तथा प्रतिलिपि सवत् यद्यपि प्रति मे नहीं है परन्तु आर्यभाषा पुस्तकालय की देवकृत भाव-विलास'—सूचीपत्र-सख्या ११४, शब्द रसायन—सूचीपत्र-सख्या ११२, ग्रन्थो की प्रतियो का लेख तथा आजा० प्रति का हस्तलेख एक ही है। इन पूर्वोल्लिखित प्रतियो की पुष्पिका मे प्रतिलिपिकार का नाम बटुकप्रसाद कायस्थ है इसलिए आजा० प्रति के प्रतिलिपिकार भी यही सिद्ध होते हैं। आजा० प्रति अत्यन्त आधुनिक है। इस प्रति म गजा० प्रति के समान केरल-वधू तक ही पाठ है। इस प्रति के पाठ की तुलना गजा० प्रति से करने पर यह गजा० प्रति की प्रतिलिपि सिद्ध होती है। गजा० प्रति सपादन कार्य मे स्वीकृत हो चुकी है अत आजा० प्रति का उपयोग नहीं किया जा रहा है।

१२ हिजा०—अर्थात् हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, की 'जाति-विलास' सोदक सहित प्रति हिजा० प्रति मे ३९ पत्र तथा प्रतिपृष्ठ ३२ पक्तियाँ हैं। प्रति आकार म १३ इच लम्बी एव ८॥ इच चौडी है। इस प्रति म भी गजा० प्रति के समान केवल 'केरल वधू' तक ही पाठ मिलता है। हिर० प्रति के समान इस प्रति की प्रतिलिपि भी नागरी प्रचारिणी सभा काशी, ने एकेडमी के लिए कराई थी। गजा० प्रति की सभी पाठ विकृतियाँ इस प्रति मे मिलती हैं एव गजा० प्रति पाठ-सपादन के निमित्त स्वीकार हुई है अत हमने इस प्रति को भी छोड दिया है।

प्रतियों की अतरंग परीक्षा : भा० मो० प्रतियाँ : पाठ-विकृति

१ : १६ देवी।

"आठहू पहर कर आठो आठो सिद्धि लिये सकट में सेवक सहाइ सदा दाहिनी।"

अर्थात् सिंहवाहिनी देवी सर्वदा अपने भक्तों के सकट मे उनकी सहायिका होती है। भा० मो० प्रतिया मे लेखन-प्रमाद से सेवक में सेवक पाठ है। 'सेवक में सेवक' का कोई सगत अर्थ नहीं है अत 'सकट में सेवक' पाठ, जो 'सुखसागर तरग' मे १६ तथा २४६ सख्याओ पर आये इसी छन्द मे भी मिलता है, यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ २६ धाय-लक्षण।

' बारे पालै प्याइ पै स्यानी करै सिखाय।"

'बार' का अर्थ है बाल अर्थात् 'बालिका'—बारेई बैस बडी चतुरै हौ—।' जो स्त्री बालिका को पयपान करावे, उसे सिखा पढा कर सयानी बनावे, उसे धाय कहते हैं। भा० मो० प्रतिया मे 'बारे पीछे' पाठ है, जिसमे 'बाल्यावस्था के पश्चात् जो अपना पयपान करावे—' आदि भ्रान्त अर्थ निकलता है।

१ ३३ सखी नायक मे।

"कुजनि के कारे मनु केलि रस बोरे लाल लालनि के खोरे बाल आवति है नित को।"

भा० मो० प्रतिया मे प्रतिलिपिकार ने कदाचित् 'मनु' के 'मन' रूपान्तर को पाठ-विकृति जान कर 'मैन' पाठ-सशोधन अपनी ओर से किया है। 'मैन केलि रस' पाठ असगत है। कवि का अभीष्ट भाव है, 'मानो केलि-रस मे निमज्जित होकर बाला कुज मे आती है।' 'काव्य रसायन' म ६ ३४ सख्या पर भी 'मनु' पाठ स्वीकृत है।

इसी छन्द के तृतीय चरण मे 'थोरे थोर जोबन' के स्थान पर भा० मो० प्रतियो म 'जवन' विकृत पाठ है। यह पाठ निरर्थक होन के कारण विकृत माना गया है।

१ : ४४

"नन्द कुमार उतै अलि ठाकुर राधे इतै अति ही ठकुराइनि।"

भा० मो० प्रतिया में 'इतै उतै' पाठ है, तदनुसार चरण का अर्थ होगा, "नन्द कुमार यहाँ वहाँ ठाकुर हैं और राधिका यहाँ (—ही) अति ठकुराइन हैं।" इस पाठ की निरर्थकता स्पष्ट है।

१ ४५

"श्री वृषभानु के भौन को दीपक एई है राधिका राजकुमारी।"

भा० मो० प्रतियो मे विकृत पाठ है दाइ कराइ है। 'एई' से 'राई' पाठ-विकृति 'ए' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने से सम्भव है। सर्वथा निरर्थक होने के कारण हमने इस पाठ को विकृत माना है।

२ : २८

"सोने से सोहने गातन सोहै सुहागिनि की अति सूही सुहाई।"

'सूही' का अर्थ होता है लाल रंग की साड़ी। यहाँ चूनरी की ओर भी कवि का संकेत हो सकता है। भा० मो० प्रतियों में पहले आये 'सोहै' पाठ के कारण लेखन-प्रमाद से 'सोहै सुहाई' पाठ हो गया है। पद-विन्यास करने पर इस पाठ की असंगति प्रगट होती है।

२ : ३१ तमोरिनि।

"रंगित चोली तें टोली खरी चुनि चाइ सों गाँठि उकेरि अमैठी।"

'चोली' पान रखने की डलिया को कहते हैं— "फेरि फेरि फननि फनीस पलटत जैसे चोली खोलि टोली ज्यों तमोली पाके पान की"—गुमान। तमोलिन अपनी डलिया से पान की एक अच्छी ढोली चुनती है और पान निकालने के लिए बाँसे की डोर का लिपटा हुआ सिरा खींचकर उमकी फेर खोलती है—इसी भाव को कवि ने 'चाह सों गाँठि उकेरि अमैठी' शब्दों में प्रगट किया है। भा० मो० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर 'सों आछे' पाठ है। 'आछे' का अर्थ 'अच्छे' होने के कारण इस पाठ की चरण में संगति नहीं बैठती। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरंग' में २६८ संख्या पर आये इसी छन्द में भी मिलता है।

३ : ११

"···प्रेमरस पागी अनुरागी सखियनि मैं।"

प्रतिलिपिकार के दृष्टि-भ्रम से प्रथम चरण के 'रंग रखियनि मे' पाठ पर जाने से भा० मो० प्रतियों में 'सखियनि' के स्थान पर 'रखियनि' पाठ मिलता है।

३ : १६

"रावै समाधान ममावान कैं दिखैयनि को ईंगुर सी अगनि गुराई है गँवारि मैं।"

भा० मो० प्रतियों में 'से अंगनि आंगुरो' पाठ है। निरर्थक होने के कारण यह पाठ-विकृति अग्राह्य मानी गई है।

३ : ३३

"मोहे महा पन्नग अनेक अग नग खग वान दै दै कोल भील केते भीमि रहे हैं।"

योगिन ने अपने मन्त्र-बल से अनेक विकराल सर्पों, पर्वतों तथा पक्षि-पल्लवों तक को वशीभूत कर लिया है। 'अग' तथा 'नग' समानार्थी शब्द हैं, दोनों ही का अर्थ है—'वृक्ष, पर्वत, सूर्य, साँप'। भा० मो० प्रतियों में वर्णों के विपर्यय से 'अनेक अनगन खग' पाठ है। अनेक तथा 'अनगन' का अर्थ एक ही होने से हमने इस पाठ को वर्ण-विपर्ययजन्य पाठ-विकृति माना है। तुलना, "अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर"—'सुमिलविनोद' ८ ७ १।

४ : १०

"अनगिने दिनन अनूप दुति आनन की देखत ही उपजै अनूठो अनुराग है।"

भा० मो० प्रतियों में 'उपजै' के स्थान पर 'उपजत' पाठ होने से चरण में एक वर्ण की नियम-विरुद्ध पाठ-वृद्धि होती है अत हमने इस पाठ को भी विकृत माना है।

४ : २७

"आपने ओक रहै अवलोकि तिलोक की लीक की लीक सदा निरजोनी।"

'ओक' का अर्थ है 'घर', उदा० सग 'ससोक बसी बन ओक'—काव्यरसायन ६ ८६। परन्तु लेखन-प्रमाद से भा० प्रति में 'ऊकि' तथा मो० प्रति में 'ऊक' पाठ मिलता है। कुलवती नायिका को प्रस्तुत सदर्भ में 'घर में' रहने के अर्थ में 'ओक' पाठ 'ऊक' अर्थात् 'उल्का' की अपेक्षा अधिक सगत है। 'ओक' से 'ऊक' पाठ विकृति प्रतिलिपिकार के दृष्टिभ्रम से अथवा सामान्य लेखन-प्रमाद से सम्भव है।

५ : २

"जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जानु।
प्रकृति सत्व नायिका के आठौ भेद बखानु॥"

भा० मो० प्रतियों में रेखाकित स्थल पर 'आठौ बेद' तथा व्र० प्रति में 'आठौ अग' पाठ है। इनमें से व्र० प्रति की पाठ-विकृति पिछले विलास में नायिका के अष्टाग का वर्णन होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से हुई है। भा० मो० प्रतियों का 'आठौ बेद' पाठ भी अशुद्ध है क्योंकि वेदो की सख्या आठ नहीं है। कवि ने प्रस्तुत विलास में जाति, कर्म, गुण आदि जिन आधारो पर नायिका-भेद किया है, प्रस्तुत दोहे में कवि ने उनकी नामावली गिनाई है। इनकी सख्या भी आठ है अत हमने यहाँ 'भेद' पाठ को मूल का माना है। भा० मो० प्रतियो की यह पाठ-विकृति प्रतिलिपिकार के सामान्य लेखन प्रमाद से सभव है।

५ : १५

"काइक वाचिक पतिहि रति मनसा उपजति जुक्त।
गुप्त तजै कुल धर्म को सो परकीया उक्त॥"

स्वकीया नायिका रति के अवसर पर तन, मन और वचन से अपने स्वामी में अनुरक्त होती है परन्तु परकीया तन-वचन से अपने पति के लिए अनुराग प्रगट करते हुए भी मनमें किसी अन्य पुरुष में लिप्त होती है। इस सदर्भ में 'उपपति जुक्त' पाठ सगत है किन्तु 'जुक्त' के नैकट्य के कारण लेखन-प्रमाद से 'उपपति' के स्थान पर भा० प्रति में 'उपजत' तथा मो० प्रति में 'उपजति' पाठ मिलता है। ये दोनो ही पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ-विकृति की कोटि में आते हैं।

५ : ४३

"बोलनि धानि चितोरनि सो दिन ही दिन दूनुन नेह दरसैं।"

अर्थात् मालवदेश की सुन्दरी स्त्री अपनी मधुर वाणी, अपनी सुदर चाल तथा अपनी मनोहारी चितवन से दर्शक के मन मे दिन-प्रतिदिन दूना स्नेह उत्पन्न करती है। 'बोलनि' पाठ इस प्रकार सगत है, परन्तु लेखन-प्रमादवश मात्रा छूट जाने से भा० मो० प्रतियो मे बेलनि चालि' पाठ मिलता है। यह पाठ किसी प्रकार भी सगत नही है।

५ : ५६

"काम हय मन्दरा सी देव काम कदरा सी इदिरा को मदिर सु सुदरी सुबीर की।"

'मन्दरा' एक प्रकार के वाद्य-यत्र का नाम है—'मदरा तबल सुमरु खजरी ढोलक धामक"—सूदन। हिन्दी-शब्द सागर मे ही 'मदिरा' का अर्थ 'मजीर' दिया है। अस्तु। वाद्य यत्र के अर्थ मे उद्धृत चरण का 'मदरा' पाठ सगत है परन्तु भा० मो० प्रतियो मे प्रतिलिपिकार ने कदाचित् 'मदरा को निरर्थक जानकर इसके स्थान पर 'सुदरा पाठ अपनी ओर से रख दिया है—'सुदरी' पाठ वह आगे आकारान्त 'कदरा' शब्द होने के कारण नही रख सका। 'सुदरा पाठ निरर्थक होने के कारण पाठ विकृति की कोटि मे आता है।

६ : २९

' ऐसी तरुनाई आई ता सुरतरगिनि सो सिसुता ज्यो सूरसुता मिलि चली चपि कैं।"

वय प्राप्त करने पर मुग्धा नायिका के शरीर मे तरुणाई का सचार होता है तो ऐसा लगता है जैसे शिशुता-रूपी गगा से तरुणाई-रूपी सूर्यसुता यमुना का सगम हो रहा हो। आलोच्य स्थल पर भा० मो० प्रतियो मे प्राप्त 'सूरासत' पाठ अर्थहीन होने के कारण विकृत है।

६ : ५०

तिनके लच्छन भेद सब जानहु नाम समान।
है प्रसिद्ध ससार मे जाति सुभाइ प्रमान॥"

यहाँ 'नाम समान' से कवि का तात्पर्य इस दोहे से ठीक पहले आये सत्त्व भेद दोहे मे प्रयुक्त खर, कपि, काग आदि सज्ञाओ से है परन्तु मो० प्रति मे लेखन-प्रमाद से 'नीम' तथा भा० प्रति मे सपादक अथवा प्रतिलिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण 'नीव' पाठ मिलता है। प्रसगानुसार ये दोनो ही पाठ असगत हैं।

७ : १६

"औचक ही ऍचि कै निसक भरि अक प्यारी पारी परजक सो ससक अकुलाति है।"

भा० मो० प्रतियो मे चरण का पाठ विकृत रूप में इस प्रकार मिलता है—*"औचक ही औच के निसक भरि अक प्यारी पाटी परजक सांस सकि अकुलाति है।"* 'औच कै' पाठ-विकृति 'औचक ही' पाठ के कारण लेखन प्रमाद से हुई है। 'औचक ही' का समानार्थी होने के कारण इन प्रतियो का यह पाठ अग्राह्य है। इसी प्रकार 'सकि' अर्थात् सशकित होने एव अकुलाने के परस्पर-विरोधी भावो का एक समय पर होना असगत है, अत हमने 'सांस सकि' पाठ को भी

बहृत माना है। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरंग' में भी ७४१ संख्या पर इसी छन्द में मिलता है।

७ : ६२

"घोर लगै घर बाहरिहू डर नूत पलास लगै पजरे से।"

चरण के डर, नूत आदि शब्द वृक्षवाची हैं, देखें—"चपक दाडिम नूत महाडर पाडर डार डरावनी फूली।" ध्यान रहे कि इन दोनों ही स्थलों पर भय के अर्थ में डर शब्द नहीं आया है क्योंकि पहले उद्धृत चरण में इसी अर्थ में 'घोर' तथा द्वितीय चरण में 'डरावनी' शब्द हैं ही, अतः मेरे विचार में 'डर' का अर्थ भय मानना अनुचित होगा। 'नूत' शब्द भी न तो 'नवीन' के अर्थ में आया है, जैसाकि पंडित कृष्णविहारीजी का विचार है ('देव और विहारी, पृष्ठ २७४) और न यह आम्रवाची ही है, जैसा कि मिश्रबंधु मानते हैं ('देव-सुधा', पृष्ठ १२८)। मेरे विचार में संस्कृत के 'नुत्त' अथवा 'नूद' से 'नत' शब्द की व्युत्पत्ति सम्भव है। मॉनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत-अंग्रेजी कोष में 'नुत्त' का अर्थ 'एक प्रकार का वृक्ष' तथा 'नूद' का अर्थ 'शहतूत का एक भेद' दिया है। शहतूत का फल जब पककर कुछ काला होता है तो शहतूत का वृक्ष वास्तव में जला हुआ-सा मालूम देता है। पलाश के फूलने पर उसकी लाली सर्वप्रसिद्ध है, अनेक कवियों ने जलते अंगारों से इसकी समता की है। (स्मरण रहे कि शहतूत तथा पलाश के वृक्ष प्रायः एक ही ऋतु में फलने-फूलते हैं।) कवि कहता है कि ये वृक्ष प्रज्वलित हुए-जैसे दिखलाई देते हैं। 'पजरे' यहाँ 'जले हुए, प्रज्ज्वलित हुए' के अर्थ में आया है। ('ज्यों पजरे पर लोन।') भा० मो० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर 'लगै उजरे से' पाठ मिलता है। लाल पलास का 'उजर' दिखलायी देना असंगत है एवं चतुर्थ चरण के "—मनि मन्दिर आज अहो उजरे-उजरे में" पाठ में यही शब्द आने के कारण भी प्रथम चरण में 'उजरे से' पाठ नहीं होना चाहिए।

लिपिजन्य विकृति :

१ : ५८

"नग नग जाल लाल अँगुरी विद्रुम माल नूपुर मराल ये अपार रस आउडे।"

नायिका की अँगुलियों के रक्ताभ छोर मूँगे की माला-जैसे लगते हैं अतः 'विद्रुम' पाठ सगत है, परन्तु भा० मो० प्रतियों में 'विद्रुम' के स्थान पर लिपि-भ्रम से 'विधुप' पाठ मिलता है। यह निरर्थक पाठ विकृति 'द्र' तथा 'म' वर्णों में क्रमशः 'ध' तथा 'प' का भ्रम होने से हुई है। 'सुखसागरतरंग' में २५७ संख्या पर इस छन्द के पाठ में 'विद्रुम' का पर्याय 'प्रवाल' मिलता है।

५ : ७

"...देखि देखि दूनो दिन साम उपजति है।"

केवल भा० मो० प्रतियों में 'न' में 'त' का भ्रम होने से 'दूतो' विकृत पाठ मिलता है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' में ५ ६, 'सुखसागरतरंग' में १७३ संख्या पर तथा अन्य ग्रंथों में आये इसी छन्द में मिलता है।

५ : ५२

"रति लागै बौनी जाको रभा रुचि पौनी लोचननि ललचौनी मुख जोति अवदात की।"

'पौनी' का अर्थ हिन्दी-शब्दसागर मे इस प्रकार दिया है (१) गाँव मे काम करने वाले लोग जिन्हे अनाज की राशि मे से कुछ अश मिलता है। (२) नाई, बारी, धोबी आदि काम करने ाले जो विवाह-आदि अवसरो पर इनाम पाते हैं। उ०··· (ख) "चली पौनि सब गोहने फूल र लै हाथ। बिश्वनाग कइ पूजा पदुमावति के साथ।"—जायसी। ध्यान रहे कि यहाँ प्रश्न रभा ो रुचि का नही 'जाकी' अर्थात् नायिका की रुचि का है अत 'रुचि' को रभा से सलग्न करते ए पद का अर्थ इस प्रकार करना कि "रभा की रुचि भी पौनी अर्थात्, अपूर्ण अथवा अधूरी है।" नुचित होगा। अत यहाँ 'पौनी' रभा के लिए तुच्छ, हीन जाति वाली सामान्य स्त्री के अर्थ आया है। अर्थ होगा, "जिसकी रुचि के आगे रभा भी पौनी ही लगती है।" परन्तु 'प' मे 'ब' का म होने से भा० मो० प्रतियो मे 'रुचि बौनी' पाठ है। 'बौनी' पहले ही आ चुका है इसलिए हाँ इस शब्द की आवृत्ति असगत है।

६ १२

"गरे पटु डारि करै बैती मनुहारि"

मो० प्रति मे 'डारि' पाठ लिपि-रूपान्तर से यो मिलता है 'गरि'। भा० प्रति के प्रति-लपिकार ने कदाचित् इससे भ्रमित होने के कारण रेखाकित स्थल पर अपनी प्रति मे 'रारि' ाठ रखा है। झगड़ने के अर्थ मे यह पाठ 'मनुहार करने' के साथ स्पष्ट रूप से असगत है।

६ ३७ प्रथम तथा तृतीय चरण।

"वे दिन नाहिं भटू भय के जब भौतें भई फुकि कै निम्बई हौ।"

ढीठ भई ढिग सोवत स्याम के काम कला लिपि ज्यो लिखई हौ।"

भौतें भई' के स्थान पर मो० प्रति मे 'भातें नई' तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के हेतु ा० प्रति के सम्पादक ने 'बातें नई' पाठ-सशोधन किया है। इन प्रतियो मे 'सोवत' के स्थान र 'सोवन' एव 'लिपि' के स्थान पर 'लिखि' विकृत पाठ भी मिलता है। अन्तिम दो पाठ-वेकृतियाँ लिपि मे दृष्टि-भ्रम के कारण सभव हैं। 'लिपि' से 'लिखि' पाठ-विकृति सन्निकट के लिखई हौ' शब्द के कारण लेखन-प्रमाद से भी हो सकती है। स्वीकृत पाठ 'भवानीविलास' मे २ ८ तथा 'सुखसागरतरग' मे ४४६ सख्या पर इस छन्द मे भी मिलता है।

७ : ७

"लघु मडन बिच्छित मैं मन अभिमान बिसेष।
बिभ्रम सो जु प्रमाद तें उलटे भूषन भेष॥"

'म' मे 'स' का भ्रम होने के कारण भा० मो० प्रतियो मे 'प्रसाद तें' पाठ मिलता है। नायक-नायिका जहाँ प्रमादवश वस्त्राभूषण धारण करने मे कोई भूल कर जाते हैं तो वहाँ विभ्रम हाव होता है। अत 'प्रमाद तें' पाठ सगत है। (देखें, विभ्रम-उदाहरण ७ · १५)

त्रुटि पाठ :

१ . ४७

"तबहीं तैं देव देखी देवता सी हँसनि सी खीझति सी रीझति सी रूसति रिसानी सी ।।"

भा० मो० प्रतियों में शब्दों के विपर्यय से तथा एक वर्ण त्रुटित होने के कारण 'रीझति खीझति सी' पाठ है। मनहरण छन्द के ३१ वर्णों के चरण में एक वर्ण न्यून होने से छन्दभंग दोष होता है।

५ . २३ से ३३ तक संख्या के छन्द भा० मो० प्रतियों में नहीं हैं। इनमें से २५ से २७ संख्या तक मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं के उदाहरण-छन्द हैं। कवि ने ५ . १६, २० दोहों में सत्त्व, रज तथा तम, इन गुणत्रय के आधार पर नायिकाओं को क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि में विभाजित किया है। भा० मो० प्रतियों में ५ . २२ संख्या पर केवल उत्तमा नायिका का उदाहरण है अतः इन प्रतियों में अन्य भेदों के उदाहरण-छन्द भी होने चाहिए। फिर कवि ने २७ से ३३ संख्या के दोहों में मगध, कोमल आदि उन देशों की सूची दी है जिनकी कामिनियों का वर्णन उसने देश-भेद के अन्तर्गत पंचम विलास में किया है। भा० मो० प्रतियों में ये दोहे भी नहीं मिलते हैं। अन्यत्र भी कवि किसी विषय का समारंभ करने के पूर्व उसकी रूपरेखा अथवा भेद-प्रभेद की सूची देता आया है। इसलिए हमने यहाँ भी देशों की नामावली के इन दोहों को कविकृत माना है। भा० मो० प्रतियों का समान आदर्श इस स्थल पर खंडित था, इस कारण ये सभी छन्द इन प्रतियों में त्रुटित हैं।

५ : ४८

"चाहे सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निबाहै रति रीति अति आगरी।"

मो० प्रति में सम्पूर्ण चरण त्रुटित है एवं भा० प्रति में इस चरण के स्थान पर पाठ है— "सुन्दर सुग्राम बास कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी।" ग० प्रति में पादने पर यही पाठ दूसरे हस्तलेख में 'द्वितीय पाठ' के रूप में दिया है। भा० प्रति के पाठ की स्वीकृत पाठ से तुलना करने पर इसमें रचनाकार की आत्मीयता नहीं मिलती अतः हम इस पाठ को भा० प्रति के सम्पादक द्वारा प्रक्षिप्त मानते हैं।

६ : ३८

रानी शिक्षा उदाहरण-छन्द केवल भा० मो० प्रतियों में त्रुटित है। ६ . ३६ संख्या पर आये दोहे में कवि मध्या-उराहनो तथा मुग्धा-शिक्षा के प्रसंग की सूचना पहले ही दे आया है, "मध्यनि सग उराहनो मध्यनि सिक्षा जानि।—" तथा ६ . ३७ संख्या पर 'उराहनो'—उदाहरण-छन्द आ चुका है अतः हम मान लेते हैं कि प्रतिलिपिकार के प्रमाद से इन दो प्रतियों में यह छन्द छूट गया है।

७ : ३६

"चित कोटि कला उलटै पलटै पल ही पल ज्यो मृग वागरि के।"

भा० मो० प्रतियो के पाठ मे २४ वर्णों वाले दुर्मिल सवैया के उपर्युक्त चरण से 'चित' शब्द त्रुटित होने के कारण छन्द भग-दोष होता है।

नी० गं० गंजा प्रतियाँ . पाठ-विकृति

१ : ५२

"चेटक सी चालि चित चोट सी चितौनि हाँसी
ठक की मिठाई भौंह फाँसी की सी लागरी।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे चरण का पाठ इस प्रकार मिलता है—"ठग को सी फाँसी फाँसी फँसी लागरी।" इस पाठ मे 'ठग फाँसी' प्रयोग तक तो ठीक है—देव ने अन्यत्र भी ऐसा प्रयोग किया है—परन्तु दूसरी 'फाँसी' लगाना अनावश्यक है अत हमने इस पाठ को विकृत माना है। घोडे की तेज चाल के साथ नायिका की चाल तथा हृदय मे हूक उठाने वाली उसकी हँसी के साथ ठग की मिठाई के समान उसकी हँसी तथा उसकी भौंह-फाँसी की सगति नही बैठती है। मेरे विचार से नी० गजा० प्रतियो मे यह असगत पाठ-प्रक्षेप इन प्रतियो के समान आदर्श मे चरण का यह अश त्रुटित होने के कारण हुआ है क्योकि भा० प्रति मे यह सम्पूर्ण छन्द नही है और मो० प्रति मे केवल यही तृतीय चरण त्रुटित है और इसी कारण प्रतिलिपिकार ने भा० तथा मो० प्रतियो मे सम्पूर्ण छन्द तथा सम्पूर्ण चरण का पाठ छोड दिया है। नी० ग० गजा० प्रतियो के पाठ मे एक वर्ण कम भी है।

१ : ५४

"जातो हो जो उत पै जो मिलै कहूँ पावो समौ कहिवे को ठिकाने।"

नी० प्रति मे 'उत चा जु' तथा इसी पाठ को सशोधित करके गजा० प्रति मे 'उत चीजु' पाठ मिलता है परन्तु दोनो ही पाठ असगत है। सम्भवत ग० प्रति मे भी 'पै जो' पाठ बाद मे प्रतिलिपिकार द्वारा सशोधित होने के कारण मिलता है।

४ : २८

"पार न लहत गहिराई न गहत देव केवल सुघाई मधु जैसे मखियन मैं।"

इस कुलवती नारी मे मधुमक्खियो से मिलने वाले मधुर मधु के समान केवल सरलता ही सरलता है। इस अर्थ मे 'मधु जैसे मखियान मैं' पाठ सगत है परन्तु नी० ग० गजा प्रतियो मे 'मधु' के सान्निध्य के कारण लेखन-प्रमाद से हुआ 'मधु मेसे भखियनि में' विकृत पाठ मिलता है। हमने इस पाठ को निरर्थक होने के कारण विकृत माना है।

पर्याय :

१ : ४६

"काम की दूती पढावत तूतीं चढी पग जूती बनात लपेटा।"

नी० ग० गजा० प्रतिया मे 'लसैं पग जूती...' पाठ है।

१ : ५३

"आपने ओछे हिये मैं दुराइ दयानिधि देव बसाय लिये मैं।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे प्राय इन्ही शब्दो के भिन्न सयोजन से पाठ इस प्रकार मिलता है—'ओछे हिये अपने दिन राति'।

लिपिजन्य विकृति

१ : २७

"राई-नौन वारति गुराई देखि अगनि की दुरै न दुराई त्यों भुराई सा भिरति है।"

मुहावरा 'राई नोन वारना' है, परन्तु नी० ग० गजा० प्रतियों म 'राई नान करति' पाठ मिलता है। 'वा' मे 'क' का भ्रम होने से यह विकृति सभव है। इसी प्रकार 'न' मे 'त का भ्रम होने से नी० प्रति मे 'दुरैत दुराई' पाठ है। इसी पाठ को सशोधित कर 'दुरत दुराई' पाठ ग० गजा० प्रतियो मे मिलता है। दोनो ही पाठ अशुद्ध हैं। स्वीकृत पाठ 'सुखसागरतरग' मे २५१ सख्या पर तथा 'सुजानविनोद' मे २ १५ सख्या पर मिलता है।

१ ५१

"जो कहिये तो कह्यो नहि जात कहेही बिना घर केते घले जू।"

नी० ग० गजा० प्रतियो मे 'केतो खले जू' पाठ मिलता है। 'केते खले जू' का अर्थ खीच-तान कर किया जा सकता है 'कितना कष्ट दिया', फिर भी 'घर के साथ इस पाठ की असगति यथावत् बनी रहती है। कितनो के घर नष्ट करने के 'घर केते घले जू' अनुप्रास-युक्त पाठ सगत है।

२ २

"पुनि अनेक करि हटवइनि कही अनेक प्रकार।
गनिका गनै न सन असत चाहै धनी उदार॥"

'हटवइन' दूकानदार अथवा अनाज तौलने वाले की स्त्री को कहते हैं।

नी० ग० गजा० प्रतिया मे 'इ' मे 'र' का भ्रम होने से निरर्थक पाठ है 'हटवरन'।

२ : १६

"चंदमुखी मुरि मद हसैं मुख मोनिन को मटि खोल्यो इया सो।"

चन्द्रमुखी नायिका इधर मुँह फेर कर धीरे से हँसती है तो मोतियों के समान उज्ज्वल उसकी दंत-पंक्ति चमक उठती है। ऐसा लगता है जैसे किसी ने मोतियों से भरा डिब्बा खोल दिया हो। परन्तु 'ड' में 'उ' का भ्रम होने से नी० रजा० प्रतियों में आलोच्य स्थल पर निरर्थक पाठ है 'खोल्यो उबा सों'।

५ : १६ परकीया।

"मीन की चितौनि चित बीच चुभि लुभी रहै उभी रहै आतिनु करेजनि कसकती।"

विपत्ति की मारी नायिका पलंग पर अपने पति के साथ पड़ी है, परन्तु मन ही मन वह अपने किसी प्रेमी के साथ रमण कर रही है। उसी प्रेमी का चित्र नायिका के सम्मुख खड़ा है, उसी की सुन्दर चितवन नायिका के हृदय में पीड़ा उत्पन्न कर रही है। इस प्रसंग में हृदय में कसकने के अर्थ में 'करेजनि कसकती' पाठ संगत है परन्तु 'ज' में 'त' का भ्रम होने से नी० ग० रजा० प्रतियों में 'करेजनि' के स्थान पर 'करेतनि' विकृत पाठ मिलता है। पद-भंग करने पर भी इस पाठ की संगति नहीं बैठती, अतः हमने इस पाठ को अग्राह्य माना है।

५ : २५ द्वितीय-तृतीय चरण—

"मोहन मान करै तो गरे परि देव मनैबे को जाइ अरुहौं।
कान्हें नयो सबसों विगरै यह जाको मरै सु तौ बात न बूझै।"

नी० ग० रजा० प्रतियों में द्वितीय चरण में 'जाय अरुझैं' तथा तृतीय चरण में 'याको' पाठ है। इन प्रतियों के समान आदर्शों में विद्यमान 'जाय' पाठ से 'जाय' तथा 'ज' तथा 'द' में उच्चारण-साम्य होने के कारण सम्भवतः 'जाको' से 'याको' पाठ-विकृति सम्भव है। स्वीकृत पाठ 'सुजानविनोद' में ४ ५७ एवं ५ ५२ संख्या पर तथा 'सुखसागरतरंग' में ४८६ संख्या पर भी मिलता है।

५ : ३७

"चंचल दृगचल चपल चितवनि चोरि चितवनि चाइ चढ़ी चारलो प्रगट ही।"

नी० ग० रजा प्रतियों में 'चाप चढ़ी' पाठ मिलता है। 'चाप' का अर्थ धनुष होने के कारण यह पाठ यहाँ असंगत है। यह पाठ विकृति 'चाइ' के 'चाय' रूपान्तर में दृष्टि-भ्रम होने से सम्भव है।

५ ४५ मालद-वधू।

"बोलनि चालि विलोकनि सों दिन ही दिन दूगुन नेह बढ़ावै।"

दिन प्रतिदिन अपने प्रिय के हृदय में अधिकाधिक प्रेम उत्पन्न करने के प्रसंग में यह पाठ सर्वथा संगत है परन्तु नी० ग० रजा० प्रतियों में 'दू' को भ्रम से 'इ' समझने के कारण 'ईगुन नेह' पाठ मिलता है। 'ईगुन' पाठ निरर्थक है।

नी० गंजा० प्रतियाँ

नीचे केवल नी० गजा० प्रतियों में प्राप्त समान विकृतियाँ के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। हमारा विश्वास है कि इन प्रतियों में और भी अधिक समान विकृतियाँ रही होंगी परन्तु गजा० प्रति के पाठ में उसके प्रतिलिपिकार ने ग० प्रति की सहायता से अत्यधिक पाठ-संशोधन किया है। इस कारण समान विकृतियों के स्थल गजा० प्रति में लुप्त हो गए हैं।

अधिक छन्द .

केवल नी० गजा प्रतियों के द्वितीय विलास में नागर-नागरी के प्रसंग में कसहेरिन, पसारिन, चुरहेरिन, धुनिन, जुलाहिन आदि के अधिक उदाहरण-छन्द मिलते हैं। (देखें, २ ६ छन्द की पाद-टिप्पणी) हमने 'जाति विलास' की प्रामाणिकता' शीर्षक के अन्तर्गत इन प्रतियों में इन अधिक छन्दों की प्रामाणिकता पर विस्तार से विचार किया है। (देखें, पृष्ठ ५६)

पाठ-विकृति :

१ ६४

"देवल रावल नागरी एहि विधि बरनों देव।
राजनगर नागरि कहाँ न्यारे लच्छन भेव॥"

नी० प्रति में 'देव' के स्थान पर 'देख' पाठ 'व' में 'प' का भ्रम होने के कारण मिलता है। यही पाठ गजा० प्रति में भी है परन्तु गजा० प्रति के प्रतिलिपिकार ने दोहे के अगले पद में सम-तुकान्त पाठ लाने के हेतु 'भेव' के स्थान पर 'भेष' पाठ-संशोधन किया है। 'भेद' के अर्थ में 'भेव' पाठ ही यहाँ संगत होगा।

२ . १२

"घाट बाट हूँ मैं पट निपट बटोहिन के नैक हीं निहारे नेह भरे हेरियतु है।"

नी० गजा० प्रतियों में लेखन-प्रमाद से 'नेह की' पाठ मिलता है। नायिका के 'किंचित् देखने मात्र' के अर्थ में 'नैक हीं' पाठ संगत है तथा 'सुख सागर तरंग' में २६७ संख्या पर इसी छन्द में भी प्राप्त होता है।

४ : १२

'दसन हीं जो मन हरै सुख अँखियनि को देइ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ॥"

आलोच्य स्थल पर नी० गजा प्रतियों में 'जो बन रहै' पाठ मिलता है। जो देखने मात्र से (लज्जित होकर ?) वन-प्रान्त में भाग जाय उसे यदि रूप कहते हैं तो यह रूप की विलक्षण परिभाषा है। इन प्रतियों में यह विकृति भ्रमवश 'जो मन' को 'जोबन' का विकृत रूप मानने के कारण हुई है।

गं० गंजा० प्रतियाँ

१ : ४१

"जोबन बजार बैठ्यो जौहरी मदन सब लोगन को हीरा वाके हाथ ह्वै बिकात है।"

ग० गजा० प्रतियो मे 'रस' पाठ है। 'हीरा' म श्लेप है—हियरा अर्थात् हृदय तथा हीरा नामक बहुमूल्य रत्न। चरण मे मदन जौहरी का जो रूपक है उसके अनुरूप केवल 'सब' पाठ ही सगत है—सभी लोगो के हीरे-जैसे बहुमूल्य हृदय का उसी मदन जौहरी के द्वारा एक-दूसरे के हाथ क्रय-विक्रय होता है। ग० गजा० प्रतियों के 'रस' पाठ की सगति न 'लोगनि' के साथ बैठती है न 'मदन' के साथ, इसलिए यह पाठ अग्राह्य है।

१ ४२

"आई निछावर के मन मानिक गोरस दै रस लै अधरान को।"

ग० गजा० प्रतियो मे 'रस से अधरान' पाठ मिलता है। यह छन्द इसी ग्रथ मे ७ ५७ सख्या पर भी आया है तथा यहाँ भी ग० प्रति मे 'रस से अधरान' पाठ ही है। 'रस से अधरान' पाठ की सगति नही बैठती अत इसे पाठ-विकृति मानना उचित है।

१ ४२

"काहू की वक चितवै की सक न लागै कलक बिसै किन बीसौ।"

केवल ग० गजा० प्रतियो मे 'बिसौ किन बीसौ' पाठ मिलता है। इस पाठ के 'बिसौ तथा 'बीसौ' शब्द समानार्थी होने के कारण यह पाठ असगत माना गया है। मुहावरा है 'बीसौ बिसे'—'बीसौ बिसे बिसवासिन के—' अत 'बिसै किन बीसौ' पाठ ही सगत है। यही पाठ 'सुख सागर तरग' मे २५८ सख्या पर भी इसी छन्द मे मिलता है।

१ ५२

"चेटक सी चालि चित चोट सी चितौनि हाँसी ठग की मिठाई भौंह फाँसी की सी लाग री।"

केवल ग० गजा० प्रतियो म 'चेटक सी चाल अरु चिलचोट' पाठ है। इस पाठ मे 'अरु' के दो वर्ण अधिक होने से नियम-विरुद्ध पाठ वृद्धि होती है तथा 'त' म 'ल' का भ्रम होने से इसका 'चिलचोट' पाठ निरर्थक भी है। इन कारणो से हमने इस पाठ को विकृत माना है।

२ ६

"मोहति सी मन पोहति सी जन छोहति सी तनि भौह नचावै।"

अर्थ होगा, 'पटविन दर्शको का मन मोहती है, मानो उन्हे ही पिरोती है जब वह किंचित् क्षुब्ध होते हुए अपनी भौंहे वक्रिम कर लेती है।' 'सुख सागर तरग' मे २६४ सख्या पर इसी छन्द मे 'तन चोहतिसी' निरर्थक पाठ मिलता है और इस ग्रथ से पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप यही पाठ ग० गजा० प्रतियो मे भी विद्यमान है।

२ १० वैस्यानी।

"नव जोबनी की जोवनी की जोति जोति रही कैसी बनीनीकी बनी नीकी छवि छाती मे।"

अर्थात् नवयौवना वनिनी के, जिसने यौवन की दीप्ति प्राप्त कर ली है, उरोजों की कैसी सुन्दर छवि है। यहाँ 'जोति' प्राप्त करने अथवा अर्जित करने के अर्थ मे आया है। 'सुख सागर तरग' मे २८३ सख्या पर आये इसी छन्द मे प्रमादवश मात्रा मे छूट जाने से 'जाति' पाठ मिलता है और इस ग्रथ से यही पाठ ग० राजा० प्रतियो मे भी प्रक्षिप्त हुआ है। नव यौवना की जोबन-ज्योति का 'जाना' उसके ढलते यौवन की ओर सकेत करता है। हमने इस पाठ को अविकृत भाव के प्रतिकूल होने के कारण विकृत माना है।

२ . १५ धोबिन।

"जोबन की एठ अठिलान सी उठोहैं कुच ओटनि अमेठि पट ऐंठि के धरनि है।"

भाव स्पष्ट है—घाट पर कपडे धोने वाली धोबिन धुले हुए कपडो को ऐंठ कर, ताकि वे बिखर या उड न जायें, किनारे रखती जाती है। 'सुख सागर तरग' मे २८६ सख्या पर 'ऐंठि पकरति है' पाठ मिलता है। यद्यपि वस्त्रो को ऐंठ कर पकडना कोई विशेष चित्ताकर्षक मुद्रा नही है तथापि इस ग्रथ से प्रक्षिप्त होकर यही पाठ ग० राजा प्रतियो मे भी विद्यमान है।

२ २४ मुनि-त्रिया।

"चौंर करैं चमरी चय मोर चकोर मृगी मृग चाकर भारी।"

चमरी अर्थात् सुरागाय अपनी पूंछ मुनि-पत्नी के ऊपर डुला रही है और मोर, चकोर आदि सेवको का भारी समूह उनकी सेवा मे तत्पर हैं। 'चय' का अर्थ है 'समूह', परन्तु 'सुखसागर, तरग' मे २६७ सख्या पर लिपि-भ्रम से विकृत 'चम मोर' पाठ मिलता है। 'चम' पाठ निरर्थक है, फिर भी इस ग्रथ मे पाठ-मिश्रण करने म तत्पर ग० राजा० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने यही पाठ अपनी प्रतियो मे रखा है।

स्थान-विपर्यय :

१ ५३

"कानन तानन भूतल ना जिन आँखिन रूप अनूप पियै मैं।"

ग० राजा० प्रतियो म प्रमादवश वर्णों का विपर्यय होने मे 'भूनल' पाठ है। प्रसग स्पष्ट है, पाठ 'भूतल' ही होना चाहिए। धरती के अर्थ मे 'भूनल' पाठ यहाँ असगत है।

२ . १६ कान्हिन।

"गागं गमाया समाधान के दिगंयनि पो ईंगुर सी अगनि गुराई है गँवारि मैं।
देस कहै जगमग्यो जोबन जुन्हाई ऐसी एते पै जुन्हाई पैठी सरोवर वारि मे।
कारि कुसारि उघारे भीन गातनि गुनातनि सी लोगन फिरनि चहुँ पारि मैं।
अचर अँगौछै मोदे ओदे कुच पोछै लिये कोछे मे कमल डोलै कान्हिनि कछार मैं॥"

काछिन का यौवन यो ही ज्योत्स्नामयी रात्रि के समान सुन्दर है। और जो उसने सरोवर मे स्नान किया तो उसका सौदर्य कई गुना अधिक हो गया है ! स्नान करने के पश्चात् वह अपने गीले केश सुखाती है, अचल से देह पोछती है। 'सुख सागर तरग' मे २६३ सख्या पर इस छन्द मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है। इस ग्रथ मे पाठ-मिश्रण होने के कारण ग० गजा प्रतियो मे भी चरणो का यही क्रम मिलता है। चरणो के विपर्यय के कारण छन्द मे असगति आती है—नायिका के स्नान करने के पहले ही बाल सुखाने के कारण दुष्क्रम स्पष्ट है।

पर्याय

१ ४०

"......समाय गई ब्रजराज के रूप मैं।"

ग० गजा० प्रतियों मे 'रगराइ के' पर्याय मिलता है।

गं० सा० प्रतियाँ पाठ-विकृति

६ ३०

"औरन को गौनो होत विरह को औनो होत तुमही अगौनो दुख देखनि दुखाई यह।"

ग० सा० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर भी प्रमादवश 'गौनो' पाठ हो गया है। स्नेहप्रिय नायक के गमन पर विरह का आगमन होता है, इसी विरोधाभास की ओर कवि का सकेत है। किंतु ग० सा० प्रतियो के अनुसार उसके जाने के साथ ही विरह-व्यथा के भी समाप्त होने पर तो नायिका मे परकीयत्व की भ्रान्ति उत्पन्न होती है अत इन प्रतियो का पाठ विकृत है।

७ ४ हाव नाम

"लीला और विलास भनि औ विच्छित्त विलोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि मोट्टाइत बिब्बोर ॥"

'हाव के अन्तर्गत एक भेद का नाम है विच्छित्त। जहाँ थोड़े-से अलकार से ही नायिका के मन मे सुन्दर होने का अभिमान जाग उठे वहाँ विच्छित्ति हाव होता है—'लघु मडन विच्छित्त मैं मन अभिमान विशेष'—७ ७। (देखें, ७ १४ पर विच्छित्ति का उदाहरण)। ग० सा० प्रतियो मे लेखन-प्रमाद से 'विक्षिप्त' विकृत पाठ मिलता है।

विच्छित्ति हाव के कवि देव कृत उपरोक्त लक्षण के साथ केशव तथा मतिराम द्वारा निरूपित लक्षण की तुलना करना रोचक होगा—

"भूषण भूषक को जहाँ होहि अनादर आन।
सो विच्छित्त विचारिये केशवदास सुजान ॥

—केशव 'रसिकप्रिया', ६ ४५

"औरे ही भूपन बसन जहँ सोभा सरसाय।
ताहि कहत विच्छित्ति हैं जे प्रवीन कविराय।।"
—मतिराम, 'मतिराम-ग्रंथावली', पृष्ठ ७४,

जन्य विकृति :

१७

"खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुज मजु गुज अलि पुजन की देव हियो हरि जाति।"

'फरी कुज' का अर्थ है 'फल-युक्त' ('देव-सुधा', पृ० १५४), परन्तु 'कुज' सज्ञा ग है, यहाँ 'फरी' को उपरोक्त अर्थ मे कुज का विशेपण मानने पर लिंग-दोप होगा, अत फरी' को सस्कृत 'फलिन', अर्थात् फल देने वाले वृक्ष, से सम्बद्ध मानते हैं। ग० सा० यो मे 'फ' मे 'क' का भ्रम होने से 'करी कुज' विकृत पाठ मिलता है। कहना न होगा कि 'करी' पाठ असगत है।

न-विपर्यय :

५७

केवल ग० सा० प्रतियो मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है, यद्यपि इस चरण-विपर्यय से का अर्थ करने मे कोई असगति नही उत्पन्न होती।

व्याधि कामदशा का लक्षण तथा उसके अनेक भेदो के नाम सप्तम विलास के, क्रमशः वें तथा ८२वें दोहो मे मिलते हैं। केवल ग० सा० प्रतियो मे पहले व्याधि भेद वाला ८२ वी या का दोहा, उसके पश्चात् ८१वी सख्या का लक्षण-दोहा आने से स्पष्ट दुष्क्रम उत्पन्न होता । सामान्य रूप मे पहले लक्षण पश्चात् उमके भेदों का वर्णन होता है।

टित पाठ :

६८

"बोर्‌यो बस बिरद मैं बौरी भई बरजति मेरे
बार बार बार कोर कोऊ पैठो जिनि।"

एक गोपिका, जो श्रीकृष्ण के सन्मुख सपूर्ण आत्मसमर्पण कर चुकी है, अपनी किसी सह-री को समझाती है, "मैं तो बावली थी, मैंने कुल-मर्यादा नष्ट की और मुझे लोकापलोक ला। मैं तुम्हे रोकती हूँ, तुम मेरे द्वार से बार-बार न आया-जाया करो, नही तुम्हे भी लोक-न्दा का भागी बनना पडेगा।" तीसरा 'बार' अनावश्यक न होकर द्वार के अर्थ मे सगत है, रन्तु ग० सा० प्रतियो के प्रतिलिपिकार ने इसे अनावश्यक जानकर निकाल दिया है तथा इन वर्णों की क्षतिपूर्ति 'पास' शब्द के प्रक्षेप द्वारा इस प्रकार की है, "बार बार कोर कोऊ पास ठो जनि।" 'पास पैठना' अर्थ के विचार से असगत है एव अतिम चरण मे—"कोऊ मोहि

मिलि बैठो जिनि" पाठ होने के कारण भी यहाँ पास पैठने मे पुनरुक्ति-जैसी लगती है।

ब्र० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

५ ३१

"कहौ विंधवन मालवा और अभीर बिराट।
कुकुन केरल द्रविड अरु कहि तिलग करनाट॥"

कवि ने प्रस्तुत दोहे मे विन्ध्यवन, मालवा आदि जिन देशो का उल्लेख किया है, उसने इस विलास के ४२, ४३ आदि सख्याओ के छदो मे इसी क्रम से उस देश की नारियो का वर्णन किया है। ५ ४२ के छदो मे विन्ध्यवन-वधू का वर्णन है—"महोपधि की बूटी सी बधूटी विंध बन की।" इस प्रकार उपर्युक्त दोहे का 'कहौ विंध वन' पाठ सगत है, परन्तु केवल ब्र० सा० प्रतियो मे इसके स्थान पर 'झारखड अरु मालवा' पाठ है। पचम विलास मे झारखड-कामिनी का कहीं वर्णन नहीं मिलता, न ही इन दो प्रतियो मे झारखड-वधू का कोई पृथक् उदाहरण-छद है अत हमने इस पाठ को प्रक्षिप्त माना है।

६ ४२

"प्रकृति भेद करि नायिका त्रिविध कहन कवि लोइ।
ताते सो कफ पित्त अरु बात प्रकृति तिय होइ॥"

केवल ब्र० सा० प्रतियो मे 'त्रिविध' के स्थान पर 'त्र' मे 'व' का भ्रम होने से 'विविध' विकृत पाठ मिलता है। सगत पाठ 'त्रिविध' ही है क्योंकि कवि ने नायिका की प्रकृति के आधार पर कफ-प्रकृति नायिका, वात-प्रकृति नायिका तथा पित्त-प्रकृति नायिका—ये तीन ही भेद किये है।

प्रौढा सुरतान्त :

८ ७६

"उतरत सोच लें सखीन सुखदैनी बाँधी बेनी
लोंनी लसे लाज भरे कुल कनि के।"

सुरतान्त पर नायिका सेज पर से उतरने लगती है तो उसकी सखियाँ उसे सहारा देती हैं—इस अर्थ मे केवल ग० प्रति का ऊपर-उद्धृत पाठ प्रसग सगत है। इसके स्थान पर ब्र० प्रति में 'उरतम सेज लें' तथा सा० प्रति मे 'उरतम सेज लै' पाठ मिलता है। ब्र० सा० प्रतियो की समान पाठ-विकृति 'उरतम सेज' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। निरर्थक होने के कारण हमने इन पाठो को अस्वीकृत किया है। 'सुख सागर तरग' मे २०६ तथा ५०४ सख्याओं पर इस छद मे भी ऊपर-स्वीकृत पाठ मिलता है।

८ ४३ प्रथम-द्वितीय चरण

"बाल लतान मैं बाल को बोल सुनो वहु सग सखीन के टेरत।
काहू कही हरि राधा यहीं कहि देव जू देखी इतैं मुख फेरत।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे, 'सुख सागर तरग' मे ९८ सख्या पर एव 'भाव विलास' आदि अन्य ग्रथो म इसी छन्द मे मिलता है। प्रथम स्थल पर ब्र० प्रति मे लेखन-प्रमाद से "लाल लतान मैं बाल को बोल" पाठ हो गया है। 'लाल लतान' पाठ असगत है। इस प्रति से सा० प्रति अथवा उसके आदर्श की तुलना होने के कारण 'लाल' पाठ सा० प्रति की शाखा मे कदाचित् पार्श्व पर आया होगा और फिर यही पाठ भूल से मा० प्रति मे 'बाल' के स्थान पर आ गया है—सा० प्रति मे पाठ है, "बाल लतान मैं लाल को बोल...।" लाल का अपनी सखियों (!) को टेरने की अपेक्षा बाल अर्थात् बाला नायिका का अपनी सखियों को हेरना अधिक सगत है अत हमने केवल ग० प्रति मे प्राप्त तथा अन्य ग्रथों द्वारा पुष्ट पाठ यहां स्वीकार किया है।

इसी प्रकार द्वितीय चरण का 'मुख फेरत' पाठ जो केवल ग० प्रति मे एव उपर्युक्त अन्य ग्रथों मे मिलता है, ब्र० प्रति के मुख फेरति तथा सा० प्रति के सुख केरति विकृत पाठो की अपेक्षा अधिक सगत होने के कारण ग्राह्य है। 'मुख' से 'सुख' पाठ विकृति प्रतिलिपिकार के भ्रम से सभव है।

लिपिजन्य विकृति :

८ ११

"देव कहै सोवत निसक अक भरी परजक मैं मयक मुखी सुषमा सचति है।"

'व' में 'च' का भ्रम होने से ब्र० सा० प्रतियो मे सोचत पाठ है। नि शक होकर पर्यंक मे सोना ही सगत पाठ है अत केवल ग० प्रति मे प्राप्त 'सोवत' पाठ प्रस्तुत स्थल पर स्वीकृत हुआ है।

८ ६०

पोटि भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सों कटी पट छोरत।

नायिका वन-कुज मे थी तभी अचानक जल-वृष्टि होने लगी। श्रीकृष्ण ने उसे भीगते देखा तो वह तुरन्त वहां जा पहुंचे और उसे कुटी के पीछे अपने शरीर के निकट समेटते हुए अपने पीताम्बर मे उसे लपेट कर उसकी कटि मे लिपटा हुआ गीला वस्त्र उतारने लगे। 'समेटने' के अर्थ मे 'पोटि' शब्द सर्वथा सगत है। यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'सुजानविनोद' में ५ ७५ तथा 'सुख सागर तरग' मे १५३ सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है। प्रस्तुत ग्रथ की ब्र० सा० प्रतियों मे कदाचित् इस शब्दार्थ से अपरिचित होने के कारण प्रतिलिपिकार के प्रमाद से 'ओढ भटू तट...' पाठ मिलता है। यदि श्रीकृष्ण अपना वस्त्र ही ओढते हैं तो फिर आगे 'लपेटि पटी सों' पाठ किस प्रकार सगत होगा ? इस प्रकार 'पटी' का एक साथ ओढना तथा लपेटना असगत होने के कारण केवल ग० प्रति मे प्राप्त 'पोटि' सगत पाठ उपर्युक्त अन्य ग्रथो के साक्ष्य पर यहां स्वीकृत हुआ है।

नी० गं० गंजा० सा० प्रतियाँ : पाठ-विकृति :

१ ४१

"त्रिवली तरंगिनि निकट नाभि हृद तट सोमराजी वन धँसि मुकत अन्हात है।"

कदाचित् 'हृद' के अर्थ से अपरिचित होने के कारण तथा 'तट' के सामीप्य से सा० आ० प्रतियों के प्रतिलिपिकार ने अपनी प्रति मे नद पाठ रखा है। इसी 'नद' में दृष्टिभ्रम होने से 'नट' पाठ नी० ग० गजा० प्रतियो मे भी मिलता है। 'नद' पाठ इसलिए असगत है क्योकि पहले ही समानार्थी शब्द 'तरंगिनि' आ चुका है, अत यहाँ इसकी आवृत्ति अनावश्यक है। 'नट' पाठ इसी से नि सृत होने तथा असगत होने के कारण अग्राह्य है। ताल के अर्थ मे आया 'हृद' शब्द 'ह्रद' का रूपान्तर है जो गोल नाभि के लिए उचित उपमान है। हमने इसी पाठ को मूल प्रति का माना है।

३ २१ कहारिन

'चाहेऊ न चाहे चहूँ ओर ते गहत बाहें गाहक उमाहे रोकि राहे चित हार की।"

मनोहारिणी कहारिन अपने ग्राहक का मार्ग रोक लेती है, उसे बाँहों मे चारो ओर मे घेरती है और अपना कार्य सिद्ध करती है। सा० प्रति मे 'गहत बाहें' के स्थान पर लिपि-भ्रम से कहत चाहै तथा नी० गजा० प्रतियो मे भी गहन चाहै पाठ मिलता है। यद्यपि ये दोनो ही पाठ अशुद्ध है फिर भी बाहें' के स्थान पर 'चाहै' की समान विकृति महत्त्वपूर्ण है। निश्चय ही ग० प्रति मे भी मूल मे यही विकृत पाठ रहा होगा। परन्तु इस प्रति को सुख सागर तरग मे २८४ सख्या पर आये इसी छन्द के पाठ से सशोधित करने के कारण अब यहाँ शुद्ध पाठ मिलता है। इसी प्रकार आलोच्य स्थल के शेष अश का पाठ नी० सा० प्रतियो मे इस प्रकार है—ग्राहक घनेरी दोरि चित अपहार को। 'दोरि' को 'दौरि' के समान मान लेने पर भी 'घनेरी' पाठ असगत ही रहता है। यहाँ ग० गजा प्रतियो मे 'सुख सागर तरग' से लेकर यह पाठ रखा गया है, 'गाहक उमाहे राहै रोके सु विहार को।'

३ २६ भीलनी

"उरभति भारनि मैं सुरभि' पहारनि मैं गाढी गूढ गौन छैल भीलनी छबी फिरै।।"

भीलनी पर्वतीय मार्ग पर स्वच्छन्द विचरण करते हुए कही झाडियो मे उरभती है, थक कर मूच्छित होती है फिर भी उसका आनन्द कम नही होता। नी० सा० प्रतियो मे 'उरभति' की सगति पर अथवा 'म' मे 'स' का भ्रम होने से 'सुरभि' पाठ मिलता है। मेरा अनुमान है कि इस स्थल पर ग० गजा० प्रतियो भी पहले 'सुरभि' पाठ रहा होगा परन्तु बाद मे 'सुखसागर-तरग' मे २६६ सख्या पर आये इस छन्द के पाठ की सहायता से इन प्रतियो मे पाठ-सशोधन हुआ है।

३ ३०

"गाहक बलावै सैन करै दैन करै 'सौदा' मैंगति मरोरि जाइ मरोरि मरोरि सी।"

मा० प्रति में 'सौदा' का एक वर्ण त्रुटित होने से केवल 'सो' पाठ मिलता है। नी० प्रति 'दैन करै सोस नैन मुसकाइ जाइ .' पाठ मिलता है। यहाँ 'सोस' अफसोस के लिए भी युक्त नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ खेद का कोई प्रसग नहीं है। 'सुखसागरतरग' म ३०२ सख्या र इस छन्द के पाठ की सहायता से ग० गजा० प्रतियों मे 'सौदा' पाठ सशोधन हुआ है।

भा० मो० नी० ग० गंजा० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति

५ ३८

'प्रीतम के रूप को सुधा सो अँचवनि तऊ प्यासीयै रहति जो लहति सुख मग ना।

कवि कहना है कि कलिंग देश की कामिनी मे कामोद्रेग की मात्रा इतनी अधिक होनी है कि वह अपने प्रियतम की रूप सुधा का पान करने पर भी प्यासी ही रहती है, सुरति-सुख प्राप्त किये बिना उसे तृप्ति नही होनी। नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियों मे 'सुधा' के स्थान पर 'मया' तथा 'तऊ' के स्थान पर 'तन' विकृत पाठ मिलता है। इनमे से प्रथम पाठ 'मया' का अर्थ माया आदि होने के कारण असगत है। इसी प्रकार प्रीतम के तन को अचवना तथा रति-सुख प्राप्त करना प्राय' समान हैं, यद्यपि 'तन अचवना' स्वयमेव असगत पाठ है। 'तऊ' से 'तन' पाठ विकृति 'उ' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण 'तऊ' से 'तनु' होने हुए सभव है अत हमने 'तऊ' पाठ मूल का माना है।

५ ४०

"तीनिहूँ लोक नचावनि ओक मैं मन के सूत अभूतगती है।
आपु महा सुखवत सुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है॥"

नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियों मे आलोच्य स्थल पर 'ऊक' पाठ है। घर के अर्थ म 'ओक' शब्द इसी ग्रथ मे अन्यत्र भी आया है—"आपन ओक रहै अवलोकि तिलोक की लीक सदा निरजोगी।"—४ २७। स्मरण रहे कि यहाँ भी भा० मो० प्रतियों मे 'ऊक विकृत पाठ मिलता है। 'ऊक' का अर्थ है 'उल्का', अत इस अर्थ म यह पाठ यहाँ भी असगत है। उपर्युक्त दोनों ही प्रसगों मे नायिका स्वकीया है—पहले प्रसग मे नायिका का स्वकीयत्व छद के दूसरे चरण मे प्रगट होना है अत 'ऊक' की अपेक्षा 'ओक' पाठ अपने घर मे रहते हुए त्रैलोक्य को नचाने के प्रसग मे, मूल प्रति का पाठ है।

भा० मो० नी० प्रतियाँ : लिपिजन्य विकृति :

३ ४७

'कटक बर्ग ते गेन्या तीन भाँति कहु ताहि।
दर वृपनी अरु वेस्या कहत मुकेरिन जाहि॥"

'म' मे 'ग' का भ्रम होने म भा० मो० नी० प्रतियों मे 'गुकेरिन' विकृत पाठ मिलता

है। 'मुकेरनि' पाठ ही शुद्ध है, क्योंकि यही पाठ ३ ३०वें छद के शीर्षक पर भी है तथा छद के अन्तिम चरण मे भी 'मुकरि मुकेरनि की' पाठ मिलता है।

३ २८

"वानन वरन फूल सोहत जरी दुकूल नथ मैं अथक लटकन लटकायो है।"

'अथक लटकन' से कवि का तात्पर्य नथ मे पडे उस मोती-लटकन से है जो नासिका के थोडा भी हिलने पर निरतर झूमता रहता है। लिपिभ्रम से 'अथक' का 'अधव' होते हुए तथा इसे सार्थकता प्रदान करने के लिये केवल भा० मो० नी० प्रतियो मे 'अधिक' पाठ मिलता है।

४ २५

"तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि।
हारी पाँई परि परि तौ न कीन्ही तै सम्हार।"

'तै' भा० मो० नी० प्रतियो म त्रुटित होन के कारण रूप घनाक्षरी के चरण मे ३२ वर्णों के स्थान पर ३१ वर्ण ही मिलते है।

भा० मो० ब्र० प्रतियाँ : पाठ-विकृति

५ ५६ पर्वत वधू

"पकज से नैन बैन मधुर मयक जैसे अधरनि धरी धार सुधा सरवत की।"

पर्वतीय रमणी के नेत्र कमल के समान सुन्दर तथा उसके मधुर बोल भी चन्द्रमा के समान अत्यन्त सुखकारी हैं। जैसे उसी के अधर पर अमृत-रस की धार गिरी हो! केवल भा० मो० ब्र० प्रतियो मे 'धराधर' पाठ मिलता है। 'धराधर' का अर्थ 'शेषनाग, पर्वत, विष्णु' होने के कारण यह पाठ यहाँ असगत है।

६ २८

"आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन तितै तितै।"

चरण का यही शुद्ध पाठ 'सुजानविनोद' मे २ ११ पर, 'काव्यरसायन' मे १ ४० पर तथा 'सुखसागर तरग' म ३७१ सख्या पर इसी छन्द मे भी मिलता है। हमने 'सुजानविनोद' की भूमिका में इस छन्द के अर्थ पर विस्तार से विचार किया है। चरण में रेखाक्ति पाठ के स्थान पर भा० मो० प्रतियो म 'तरल तनाइमति तोरति' पाठ है—मो० प्रति मे अन्तिम 'ति' पार्श्व पर है, ब्र० प्रति मे 'तरल तनैनो मति तोरति' पाठ मिलता है। इन प्रतियो की '—मति तोरति' समान पाठ विकृति, जो 'य' तथा 'न म क्रमश 'म' एव 'त' का भ्रम होने से सभव है, विशेष रूप से द्रष्टव्य है। जैसा कि इस चरण पर विचार करते हुए हमने अन्यत्र स्पष्ट किया है, 'तनाइयत तोरन—' का अर्थ है 'कमलो की माला से निर्मित वदनवार।"

७ २३

"इहि विधि दसौ प्रकार के हाव होत सयोग।
अब दपति की दस दसा बरनौ बीच वियोग॥"

आलोच्य स्थल पर मो० व्र० प्रतियो मे 'विचित' तथा कदाचित् सपादक अथवा प्रतिलिपिकार द्वारा इस पाठ को सार्थक रूप देने के कारण भा० प्रति मे 'विहित' पाठ मिलता है। वियोगावस्था के मध्य दस कामदशाओ की स्थिति मानी गई है अत 'बीच वियोग' पाठ ही सगत है।

७ ४८

"भौंर भरे भीतर सरोज फरकत ऐसी अधखुली अँखियानि उपमा बढाइयतु।"

भा० मो० व्र० प्रतियो मे 'भौंर भौंर' पाठ मिलता है। प्रकृत भाव कुछ इस प्रकार है—अर्धोन्मीलित नेत्र उस फरकते सपुटित कमल के समान लगते हैं जिसके भीतर एक भ्रमर बदी होकर पुन स्वतन्त्र होने के लिए कुलबुला रहा है। अत 'भौंर भौंर भीतर' की अपेक्षा 'भौंर भरे भीतर' पाठ अधिक सगत है। यहाँ 'भौंर' की पुनरुक्ति भी अनावश्यक है।

७ ६८ प्रलाप-लक्षण

"दपति कैं 'उद्वेग ह्वं बढे' विरह सताप।
उत्कठित चित प्रेम पिय पेख्यो प्रगट प्रलाप॥"

दोहे का यही पाठ 'भवानीविलास' मे ७ ३७ सख्या पर भी मिलता है परन्तु यहाँ केवल भा० मो० व्र० प्रतियो मे 'उद्वेग हू बैठि' पाठ है। उद्वेग तथा उत्कठा आदि विरह-दशा के उत्तरोत्तर वृद्धि प्राप्त करने पर प्रलाप की दशा प्रगट होती है अत 'बैठि' की अपेक्षा 'बढे' पाठ अधिक सगत है।

७ ७६ विशेषोन्माद-उदाहरण

"चलि चलि मोसो कहै चलि चलि होति चित
बिचलि बिचलि चलि परति उचकि चकि।
काहि लखि तकि चित तिनहि पठायो आजु
देव कहै रहै कौन विथा मो थियकि थकि॥"

प्रथम चरण मे भा० मो० व्र० प्रतियो मे आलोच्य स्थल पर 'थियकि थकि' पाठ है। यही पाठ तृतीय चरण मे भी है एव पीडा से व्यथित होने के प्रसग मे सगत है। इसके विपरीत धकधक धक पडने के अर्थ मे प्रथम चरण मे 'चलि परति थियकि थकि' पाठ की असगति स्वयसिद्ध है।

७ ७८

"कमल सुनैन तोरे जबतें सुनैन तुम तबतें सुनैं न स्यामा सखिन के सोरन।"

जबसे तुमने उसके कमल के समान सुन्दर नेत्रा से अपने सुन्दर नेत्र मिलाये हैं तब से वह तुम्हारे ध्यान में इतनी तल्लीन रहती है कि सखियों के पुकारने पर भी नहीं सुनती। 'जबतें' की सगति 'तबते' से भी सिद्ध है अत 'जबतें' के स्थान पर भा० मो० ब्र० प्रतियों मे प्राप्त 'जियत' पाठ असगत माना गया है।

प्रतियो का प्रतिलिपि—सम्बन्ध :

'रसविलास' की प्रतियो का परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त उलझा हुआ है क्योकि इसकी एक-दूसरे समूह की विभिन्न प्रतियो मे परस्पर तथा देव-कृत अन्य ग्रन्थो की प्रतियो से भी अबाध मात्रा मे पाठ मिश्रण हुआ है। फिर भी प्रतियो मे प्राप्त विभिन्न प्रकार की समान विकृतिया के आधार पर *प्रतिया का सम्बन्ध इस प्रकार निर्धारित होता है—*

मा० मो० प्रतियाँ ग्रथ के प्रथम सस्करण की वशज तथा एक ही आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ हैं। इन दोनो प्रतियो मे स्वतन्त्र विकृतियाँ भी मिलती है अत ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नही हो सकती।

नी० गजा० प्रतियाँ भी ग्रन्थ के प्रथम सस्करण की खडित प्रतियाँ है। इन दोनो प्रतियो *मे भी स्वतन्त्र विकृतियाँ मिलने के कारण ये एक-दूसरे की प्रतिलिपि नही सिद्ध होती।* (देखें, 'जातिविलास की प्रामाणिकता' शीर्षक)

ग० सा० प्रतिया ग्रथ के दूसरे सस्करण की वशज, एक ही शाखा की दो प्रतियाँ हैं। ग० प्रति मे नी० गजा० प्रति से कल्पनातीत मात्रा मे पाठ मिश्रण हुआ है।

सा० प्रति की शाखा तथा नी० गजा प्रतियो की शाखा मे ऊपर कही पाठ-मिश्रण हुआ है।

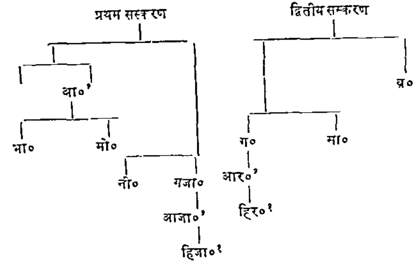
ब्र० प्रति दूसरे सस्करण की स्वतन्त्र शाखा की प्रति है यद्यपि इस प्रति मे भी, ग० प्रति के समान, अन्य प्रतिया मे पाठ मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। यह पाठ मिश्रण विशेष रूप से ग्रन्थ के अन्तिम अश मे अधिक हुआ है।

ब्र० तथा सा०, भा० मो० तथा ब्र०, भा० मो० तथा नी०, नी० ग० गजा० तथा भा० मो० प्रतियो के समुच्चय सदिग्ध प्रतिलिपि-सम्बन्ध के उदाहरण है अर्थात् इन प्रतियो का परस्पर सम्बन्ध प्रतिलिपि परम्परा के माध्यम से नही अपितु पाठ मिश्रण के द्वारा निर्धारित होता है।

रेखाओ के माध्यम से 'रसविलास' की सभी उपलब्ध प्रतियो के परस्पर सम्बन्ध को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है —

सपादन-सिद्धान्त

"रसविलास की सभी उपलब्ध प्रतिया मे अत्यधिक पाठ मिश्रण होने के कारण इस ग्रथ का पाठ-चयन करने मे गहरी सार्थकता की आवश्यकता है। पाठ-मिश्रण के कारण ही केवल शुद्ध प्रतिया के समुच्चय ऐसे है जिनमे समान विकृतियाँ नहीं मिलती हैं। इस प्रकार के केवल निम्नलिखित समुच्चय निर्विवाद रूप मे विश्वसनीय है —मा० भा० तथा मो० प्रतियाँ, ब्र०



तथा ग० प्रतियाँ। सहायक सामग्री के रूप में अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान छंद के पाठ का उपयोग भी व्यापक रूप में हुआ है। ऐसे स्थलों का निर्देश भूमिका में कर दिया गया है।

अपवाद

मान्य संपादन-सिद्धान्त के अपवादस्वरूप कुछ स्थल इस प्रकार हैं

केवल व्र० प्रति में प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ :

६ १५ खंडिता।

"लालन लजात से जम्हात विहँसात प्रात आए अलसात आली देन पेंच पाग के।"

यह पाठ केवल व्र० प्रति में है, अन्य पाठान्तर इस प्रकार हैं—आए आली मेरे गृह—भा० मो; आली उठि आए देखि—ग०। इन सभी प्रतियों में 'आए आली' पाठ समान है अतः इतना पाठ निर्विवाद रूप से स्वीकृत किया जा सकता है। शेष अंश में भा० मो० प्रतियों का 'मेरे गृह' तथा ग० सा० प्रतियों का 'उठि देखि' पाठ अर्थहीन न होने पर भी व्र० प्रति के 'अलसात' पाठ की तुलना में प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मालूम देता है। नायिका का पति रात्रि-पर्यन्त किसी अन्य रमणी के साथ विलास कर अपने शरीर पर सुरति के स्पष्ट चिह्न लिये मुस्कराता, जमुहाता हुआ घर वापस लौटा है। जिस प्रकार जमुहाना आलस्य संचारी का अनुभाव है उसी प्रकार अलसाते हुए आना श्रम संचारी का अनुभाव हो सकता है, अतः कवि की शैली पर ध्यान देते हुए हमने व्र० प्रति का 'आए अलसात आली' पाठ स्वीकृत किया है।

८ : १५ मुदिता-उदाहरण

"आरस सों रस सों अँगिरात हसों अँगुरी कर अंजन वाढी।"

---

¹ अंतिम प्रतियों का उपयोग पाठ-संपादन में नहीं हुआ है।

यह पाठ केवल ब्र० प्रति म है, ग० सा० प्रतियो मे इसके स्थान पर अजुलि पाठ है। मुदिता नायिका आँखो मे अजन लगने के हेतु एक या दो अगुलियो पर नही, आनदातिरेक मे अपने हाथ की सभी उँगलियो पर अजन निकाल लेती है। अत 'अजन' पाठ की सगति स्पष्ट है। वह अपना कसा हुआ नीवी-बध खोलकर फिर से कसकर बाँधती है एव कचुकी का बधन भी ठीक करती है। नायिका के इस चित्रण से भी उसके उल्लास का आधिक्य प्रकट होता है। इस प्रकार 'अजन' पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है। तुलना, "सजन नैनी उठी अकुलाइ धरे अगुरी पर अजन बूदी।"—'सुमिलविनोद' ५ ११ २।

केवल ग० प्रति मे प्राप्त तथा स्वीकृत पाठ

७ ६२

"धूम घटागरु धूपनि की निकसे नव जालनि व्याल भरे से।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'सुख सागर तरग' मे ५६८ सख्या पर इसी छन्द मे मिलता है, भा० मो० ब्र० प्रतियो मे इस स्थल पर 'धूम जठागरु धूमन के' तथा सा० प्रति मे 'धूम जठागरु धूपनि की' पाठ है। 'जटागरु' तथा 'जठागरु' पाठ शब्दार्थ के विचार से अग्राह्य है। भा० मो० ब्र० प्रतियो का 'धूमनि' विकृत पाठ भी, जो लिपि-भ्रम से सभव है, 'धूम' की पुनरुक्ति होने के कारण असगत है। यहाँ ऊपर उठते हुए धूप, अगर चदनादि के धुँए की टेढी लकीर की ओर, जो वक्राकार सर्प के समान लगती है, कवि का सकेत है अत 'अगर तथा धूप की धूम-घटा' के अर्थ मे सर्वप्रथम उद्धृत 'धूम घटागरु धूपनि की' पाठ सगत है।

८ १०

"रँग लाल जरी पट घूंघट ओट लसै मुक्तालर की लरक्यो।
प्रभात प्रभाकर मडल मैं विधु मडल बिंब सुधाकर को।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि बोलत देव कछू अधरा फरक्यो।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाकर मध्य सुधा भरिकै ढरक्यो।।"

नायिका के लाल वस्त्र के नीचे से झलकती हुई मोतियो की माला पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है कि यह माला प्रभात के समय की लालिमा मे विलम्ब से उदित होने वाले चद्रमडल का प्रतिबिम्ब है। इसके स्थान पर सा० ब्र० प्रतियो मे प्राप्त 'बिंदुसुधा ढरक्यो' पाठ, अर्थहीन न होने पर भी, चतुर्थ चरण के अन्त मे यही पाठ होने के कारण, अग्राह्य है।

८ ३५

"रावरे पायन ओट लसै पग गूजरी बार महावर टारे।"

यह पाठ केवल ग० प्रति मे तथा 'काव्यरसायन' म २ ५४ तथा दवकृत अन्यान्य ग्रन्थो मे इसी छन्द मे मिलता है। ब्र० प्रति में सामान्य लेखन प्रमाद से वर्णो का विपर्यय होने से 'पाय अलोट' पाठ है। यह पाठ निरर्थक होने के कारण अस्वीकृत तथा केवल ग० प्रति मे प्राप्त पाठ

अन्य ग्रंथों के साक्ष्य पर स्वीकृत हुआ है।

८ ५० कुलटा उदाहरण।

"ठान कुठान अठान ठनी ठहकीली रहै गुर लोग ग्ठाये।"

कुलटा परकीया नायिका इधर-उधर रुककर अथवा बैठकर अकरणीय कार्यों में लगी रहती है इसीलिए उसके गुरुजन उससे रुष्ट रहते हैं। 'ठहकीली' शब्द 'ठहना' (म० स्था०, प्रा० ठा) अर्थात् 'किसी काम को करते हुए बीच-बीच में ठहरने' के अर्थ में इस प्रकार सगत सिद्ध होता है। तुलना—"पूरब पौन के गौन गुमानिनि नद के मदिर में ठहकाई।" —काव्यरसायन ८ ४८। 'ठहकीली' पाठ केवल ग० प्रति में मिलता है। यही पाठ वर्ण-विपर्यय से ब्र० प्रति में 'हठकीली' एव सा० प्रति में 'हटकीली' हो गया है। 'हठकीली' का सम्बन्ध खींचतान कर 'हठ' से जोड़ने पर भी चरण का कोई विशेष सगत अर्थ नहीं निकलता। इसी प्रकार सा० प्रति का 'हटकीली' पाठ स्पष्ट रूप से अग्राह्य है क्योंकि 'हटकना' का अर्थ 'रोकना, वर्जन करना' आदि है एव प्रसग से 'हटकीली' नायिका के लिए प्रयुक्त है तथा नायिका का हटकना अथवा रोकना भी सगत नहीं है।

विशेष संशोधन :

५ ५४ आभीर वधू।

"कर पद पदम पदमनैनी पद्मिनी पदम सदम सोभा संपद सी आवती।"

आभीर देश की पद्मिनी नायिका, जिसके हाथ, पाँव तथा नेत्र कमल के समान सुन्दर है और जो कमल-महल में शोभा तथा सपत्ति के समान सुशोभित है, वह चली आ रही है। यहाँ ऐश्वर्य तथा सपदा के अर्थ में 'सपद' शब्द का प्रयोग हुआ है। विभिन्न प्रतियों में आलोच्य स्थल का पाठ इस प्रकार मिलता है : सेपद सी—ब्र०, सपति सी—सा०, सबद-सी—ग० गजा०, गुसद सी—नी०, सेखद सी—मो०, सबै देखन में—भा०। इनमें से सा० तथा भा० प्रति में प्राप्त पाठ के अतिरिक्त अन्य पाठ निरर्थक तथा प्रसग में असगत होने के कारण अग्राह्य है। इन सभी प्रतियों के विकृत पाठों पर सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस विवादास्पद स्थल में मूल प्रति में स, प तथा द वर्णों-सहित कोई पाठ रहा होगा। सा० प्रति का 'सपति' पाठ चरण की 'द' अनुप्रास-माला के अनुकूल न होने के कारण मूल का नहीं माना जा सकता। इसी कारण भा० प्रति का पाठ भी असगत है अत सपादक ने चरण की वर्ण-योजना पर ध्यान देते हुए 'सपद सी' पाठ-सशोधन अपनी ओर से किया है। मो० प्रति की 'सेखद' तथा ब्र० प्रति की 'सेपद' पाठ-विकृति भी इसी पाठ से सभव है।

७ ६६ प्रथम दो चरण

"प्रेम की पीर न जानी तैं धीर जु हौं न कहाहूँ सों कहूँ छुहैहै।
देव हुती भ्रमिहै हँसिहै बलि बावरी ह्वै रस न्गिहै र्ह्वैहै॥"

यह पाठ केवल 'देवग्रन्थ—प्रेमचन्द्रिका' में २४वीं सख्या पर इसी छन्द में मिलता है।

'रसविलास की विभिन्न प्रतियों में पाठ की स्थिति इस प्रकार है—रस ही रस चैहै—भा०, रस है रस चैहै—मो०, रस है रस च्वैहै—व्र०, रस रूसी सी ह्वै है—सा०, वो रवि सूचि विसैहै—ग०। 'भवानीविलास' में ८ १६ सख्या पर इसी छन्द मे 'रस रूमिहै चैहै' पाठ मिलता है। इनमे से 'भवानीविलास' तथा 'रसविलास' की भा० प्रकाशित प्रतियो मे प्राप्त 'चैहै' विकृत पाठ परस्पर पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप अथवा दोनो ग्रन्थो मे सम्पादक को 'र्वै' के प्राचीन रूपान्तर मे 'च' का भ्रम होने के कारण स्वतन्त्र रूप से सम्भव है। इन प्रतियो का 'चैहै' अथवा व्र० प्रति का 'च्वैहै' पाठ शब्दार्थ के विचार से अग्राह्य है क्योकि नायिका के रुष्ट होने तथा उसके 'चू पडने' म कोई सगति नही है। ग० प्रति का 'सूचि विसैहै' पाठ तो और भी भ्रष्ट है। 'चैहै', 'च्वैहै' तथा 'ह्वैहै' आदि पाठ विकृतियाँ 'र्व' के प्राचीन रूपान्तर म भ्रम होने से सभव हैं अत इन पाठो को अस्वीकृत करते हुए देवकृत उपर्युक्त अन्य ग्रथ से 'र्वैहै' पाठ यहाँ विशेष सशोधन के रूप मे स्वीकृत हुआ है।

८ ६२ कुलगर्विता-उदाहरण

'बोलत बातें बडी बन मैं मन मैं वृषभान बबा सा अरुझत।"

आलोच्य स्थल पर ग० प्रति म 'अनूझत' तथा व्र० सा० प्रतिया म 'अबूझत' पाठ है। 'भवानीविलास' म ७ २१ सख्या पर इसी छन्द मे 'अरुझत' पाठ तथा 'सुखसागरतरग' मे ३४१ सख्या पर 'अनूझत विकृत पाठ मिलता है। यहाँ यह अर्थहीन पाठ विकृति 'र' के प्राचीन रूपान्तर मे 'न' का भ्रम होने से सम्भव है एव इस ग्रन्थ म पाठ-मिश्रण के फलस्वरूप ग० प्रति मे भी यही विकृत पाठ आ गया है। व्र० सा० प्रतिया का 'वृषभान बबा सा अबूझत' पाठ भी न मानने अथवा अवज्ञा करने के अर्थ मे, 'अरुझत' के स्थान पर कविकृत पाठ परिवर्तन नही हो सकता क्योकि इस अर्थ मे पाठ 'सा बूझत' न होकर 'को अबूझत' होता। अत हमने उपर्युक्त स्थल पर 'भवानीविलास' के 'अरुझत' पाठ को स्वीकार किया है।

'जातिविलास' की प्रामाणिकता

मैंने 'रसविलास' के पाठ सपादन म 'जातिविलास' शीर्षक की नीमगाँव एव गथौली म प्राप्त (भूमिका म क्रमश नी० तथा गजा० सज्ञा से अभिहित) जिन दो प्रतियों का उपयोग किया है उनके अतिरिक्त 'जातिविलास' शीर्षक की केवल कुछ ही अन्य प्रतियाँ अब तक प्राप्त हुई है। यद्यपि इन सभी प्रतियो का विस्तृत परिचय हमने 'रसविलास' की प्रतियो के साथ दे दिया है फिर भी यहाँ इतना स्मरण दिलाना अप्रासगिक न होगा कि 'जातिविलास' शीर्षक से प्राप्त इन प्रतियो मे केवल नी० तथा गजा० प्रतियाँ सवत् १६४२-४३ के निकट प्रतिलिपि होने के कारण कुछ प्राचीन हैं एव नागरी-प्रचारिणी सभा तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी मे सग्रहीत इसकी अन्य प्रतियाँ गजा० प्रति से सवत् १६७७ के बाद प्रतिलिपि होने के कारण केवल साधारण महत्व की सामान्य आधुनिक प्रतिलिपियाँ हैं। गजा० प्रति मे 'रसविलास' की गथौली की ग० प्रति से तथा अन्यान्य प्रतियो से पाठ-मिश्रण तथा प्रतिलिपिकार द्वारा अत्यधिक पाठ-सशोधन हुआ है, अत इस प्रति मे अपनी आदर्श प्रति का पाठ भी सुरक्षित रह सकने की बहुत

कम आता है। इसके विपरीत नी० प्रति में अन्य स्रोतों से पाठ-मिश्रण नहीं हुआ है इस कारण गजा० प्रति की तुलना मे यह प्रति 'जातिविलास' शीर्षक प्रतियों की परम्परा का यथासम्भव शुद्धतम पाठ देती है। इसी कारण हमने 'रसविलास' के पाठ-सपादन मे इस प्रति का उपयोग किया है तथा इसी कारण यह प्रति 'जातिविलास' के सम्बन्ध मे किसी सगत निष्कर्ष तक पहुँचने मे सर्वाधिक सहायक हो सकती है।

'जाति विलास'—शीर्षक की नी० प्रति सहित सभी प्रतियाँ 'केरल वधू' ५ ४७ के छद से आगे खण्डित हैं यद्यपि पचम विलास मे देश-भेद का विषय-प्रवर्तन करते हुए कवि देव ने जिन देशों की सूची दी उसके अनुसार केरल वधू के आगे, द्राविड, तिलग आदि वधुओं का भी वर्णन होना चाहिये। इस सूची मे विज्ञापित सभी देश-भेद 'रस विलास' मे मिलते हैं। इसके अतिरिक्त ग्रथ का "जाति विलास" नाम नी० प्रति मे केवल प्रति के प्रारम्भ मे ही मिलता है 'अथ जाति विलास लिख्यते—' एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इस प्रति मे विभिन्न विलासो के अन्त मे जो पुष्पिकाएँ दी है परन्तु उनमे ग्रथ-नाम नहीं है यद्यपि रीतिकालीन अन्य कवियो मे प्रचलित परिपाटी के अनुसार देव के सभी ग्रथो मे निरपवाद रूप से प्रत्येक विलास अथवा अध्याय के अन्त मे ग्रथ एव उसके रचयिता का नाम तथा यदि ग्रथ किसी को समर्पित है तो उस आश्रयदाता का नाम अवश्य मिलता है। नी० प्रति के विपरीत गजा० प्रति (तथा उसकी सभी प्रतिलिपियो) के प्रथम, द्वितीय आदि प्रत्येक विलास के अत की पुष्पिका म कवि देव का नाम भी मिलता है। आश्रयदाता का नाम नी० सहित किसी प्रति मे नहीं है क्योकि यह ग्रथ देव कवि ने किसी को समर्पित नहीं किया है। गधौली के जिन स्वर्गीय श्री युगल किशोर मिश्र के परिवार के सग्रह से यह प्रति प्राप्त हुई है उस परिवार मे कई पीढ़ियो से कवि तथा काव्य-मर्मज्ञ विद्वान होते आए हैं। मेरे विचार मे इसी परिवार के किसी काव्य-रीति से परिचित विद्वान ने अपनी आदर्श प्रति के आदि मे 'जाति विलास' नाम देख कर यही नाम तथा देव का नाम सभी विलासो के अन्त की पुष्पिका मे भी दे दिया होगा और इससे प्रतिलिपि होने के कारण यह विशेषता उनकी वर्तमान प्रति मे आ गयी है।

'जाति विलास' के इस भिन्न नाम से भ्रमित होकर अब तक के विद्वान इसे 'रस विलास' से पृथक्, देवकृत स्वतन्त्र ग्रन्थ मानते आये हैं यद्यपि किसी ने 'जाति विलास' को स्वतन्त्र ग्रन्थ मानने का कोई भी कारण नहीं दिया है। आश्चर्य है कि एक बार 'जाति विलास' को पृथक् एव स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लेने के कारण विद्वानो ने इस ग्रन्थ की रचना के सम्बन्ध मे विचित्र-विचित्र कल्पनाए भी की है। उदाहरण के लिए श्री मिश्र बधुओं का अनुमान है कि 'जाति विलास' देव की देशव्यापी यात्रा का परिणाम है :—

"इस समय देव जी अच्छे गुणज्ञ की खोज मे, अथवा तीर्थयात्रा के लिए देश भर मे बराबर घूमते रहे। यह महाराज जहाँ गये वहाँ के मनुष्यों की चाल-ढाल रीतियों और अन्यान्य दर्शनीय पदार्थों पर पूरा ध्यान देते रहे। जान पड़ता है उन्होंने काश्मीर, पजाब, बगाल, उडीसा, मद्रास, बम्बई, गुजरात, राजपूताना, बरार आदि सब देशों को घूम-घूम कर देखा। इन महाकवि ने अपने भ्रमण द्वारा प्राप्त अपूर्व ज्ञान को वृथा नहीं खोया वरन अपनी रचनाओं मे स्थान-स्थान पर उसका उपयोग किया है। 'जाति विलास' नामक ग्रन्थ रचकर उन्होंने सब देशो की स्त्रियों

का बडा ही सच्चा वर्णन किया है।—इन महाकवि ने इन सब देशा की स्त्रिया का ऐसा सच्चा वर्णन किया है कि जान पडता है ये वहाँ गये अवश्य थे। इस समय इनका कोई भी आश्रयदाता न था, यहाँ तक कि इन्होने 'जाति विलास' किसी को भी समर्पण नही किया।"

—"हिन्दी नवरत्न" पृ० २७३

इसम सदेह नही कि जाति-भेद का यह प्रसग कवि देव की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है परन्तु इस चित्रण मे ऐसी कोई विशेषता नही मिलती जिसे देखकर यह स्वीकार करना पडे कि उस प्रदेश मे स्वय जाए बिना कवि ऐसा सच्चा वर्णन नही कर सकता था। इसके विपरीत समग्र रूप से देखने पर कवि के वर्णन में प्रदेश के स्थानीय वातावरण (Local colour) का अभाव प्रकट होता है। मैं केवल एक उदाहरण देता हूँ, देखें, क्या इस सुदूर कोकण देश की वधू के चित्रण मे कोई ऐसी विशेषता है जिसका वर्णन कवि उस प्रदेश म जाए बिना नही रह सकता था —

"गोरी गजराज गति गुननि गहीर मति भार भाग ही रमति सुरति सकोचनी।
आलिगन चुबन अधर पान नखदान मान सौं बचन रचना सौं रुचि रोचनी।
जाने रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानि सबही की प्यारी पी की दुख मोचनी।
केसरि करै न सरि को कनक जाकी दरि कावजदरी की नारि कोकनद लोचनी॥

—'रस विलास' ५ ४६।

इसी प्रकार देश-भेद के अन्य उदाहरणो म भी, समकालीन चेतना के अनुरूप कवि की दृष्टि नारी के रूप-लावण्य पर पहले जाती है, प्रदेश के आधार पर विभाजन तो उसने केवल नाम लेने भर को, गौण रूप मे किया है।

आश्चर्य है कि देव की रचनाओ पर प्रथम बार आधुनिक, वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करते हुए डा० नगेन्द्र ने भी देव की देशव्यापी यात्रा के उपर्युक्त काल्पनिक मत का विस्तार कर अपनी ओर से यह भी मान लिया है कि देव को इस यात्रा म कम से कम १५ वर्ष लगे होगे —

"जैसा कि सभी पडितो का मत है—जाति विलास एक देशव्यापी यात्रा के फलस्वरूप लिखा गया है। यह यात्रा काफी लबी थी और दस पन्द्रह वर्षों मे अवश्य समाप्त हुई होगी। अतएव, सभवत सवत् १७६५ के लगभग राजा कुशलसिह के आश्रय से किसी कारण विमुख होकर देव देशाटन के लिए चल पडे होगे। इस यात्रा म देव ने समस्त भारत मे पर्यटन किया और वहाँ के सौन्दर्य का, सौंदर्य से तात्पय उस समय केवल नारी-सौंदर्य का ही था, अवलोकन किया।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ४६

परन्तु 'जाति विलास' प्रति की 'रस विलास' के साथ तुलना करने पर, प्रतिया के प्रति-लिपि-सम्बन्ध के अपेक्षाकृत गुप्त साक्ष्य को छोड देने पर भी, केवल समान छदो की स्थिति ही स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे 'जाति विलास' की पृथक् सत्ता के विरुद्ध सबसे सशक्त प्रमाण मालूम देता है। 'जाति विलास' की प्रति म कुछ अधिक छदो को छोडकर 'रस विलास' के ५ ४७ सख्या तक के सभी छद समान है। इस तथ्य से मिश्र बधु भी अवगत हैं—"हमारी कापी मे केरल वधू तक का वर्णन लिखा है। उसके आगे पुस्तक अपूर्ण है।—जहाँ तक ग्रन्थ हमारे पास

है वहाँ तक इसकी रचना रस विलास में बहुत कुछ मिलती है, यहाँ तक कि दोनों ग्रन्थों में प्रति सैकड़े नब्बे छन्द एक ही हैं—'हिंदी नवरत्न', और डॉ० नगेन्द्र भी इस सत्य से अपरिचित नहीं—"वास्तव में रस विलास को जाति विलास का सशोधित और परिवर्धित संस्करण कहना चाहिए। जाति विलास और भवानी विलास की अपेक्षा उसमें इतने कम नवीन छंद हैं कि उनकी रचना में कवि को बहुत ही थोडा समय लगा होगा।"

—'देव और उनकी कविता' पृ० ८८।

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों के केवल इन थोड़े से अधिक छन्दों के कारण 'जाति विलास' को 'रस विलास' से स्वतन्त्र ग्रंथ माना गया है—यद्यपि किसी विद्वान ने यह कारण नहीं दिया है परन्तु 'जाति विलास' प्रति में 'रस विलास' से इतनी समानता देखते हुए भी इसे पृथक् ग्रंथ मानने का फिर दूसरा और क्या कारण हो सकता है ?

'जाति विलास' शीर्षक प्रति में 'रस विलास' में जहाँ तक छन्द समान हैं, उन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है अतः हम केवल 'जाति विलास' शीर्षक प्रति के अधिक छन्दों पर यहाँ विचार करेंगे। इस समूह की प्रतियों में अधिक छन्द नगर नागरी भेद के अन्तर्गत 'रस विलास' २ : ६ से आगे मिलते हैं। नगर नागरी भेद के ये छन्द 'रस विलास' के अतिरिक्त देव-कृत 'सुख सागर तरंग' में भी मिलते हैं। स्मरण रहे कि इस 'सुख सागर तरंग' ग्रंथ के कवि-कृत दो संस्करण हैं। एक, जो पिहानी के अकबर अली खाँ को समर्पित है, इस लेख में सुसा० (अली०) संकेत से तथा दूसरा, जो महाराज जसवन्तसिंह के नाम समर्पित है, इस लेख में सुसा० (जस०) संकेत से उल्लिखित है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ, 'रस विलास', सुसा० (जस०) एवं सुसा० (अली०) ग्रंथों में इस प्रसंग के सभी छन्दों की प्रतीक-सूची प्रत्येक ग्रंथ में छन्द के स्थल निर्देश-सहित इस प्रकार है —

नगर-नागरी भेद—रस० २ : ५

'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ			'रस विलास'		सुसा० (जस०)		सुसा० (अली०)
जौहरिनी	'साँची सुधा'	——	वही २ : ७	—	वही १०७	—	वही २६२
छीपिनी	'सौंने में'	——	वही २ : ८	—	वही १०८	—	वही २६३
कमहरिन	'कला यही'	——		—		—	
सुनारि	'देव दिखावत'	——	वही २ : १०	—	वही ११०	—	वही २६५
हलवाइन	'मीठे महामृदु'	——	वही २ : १४	—	वही ११३	—	वही २६६
बनैनी	'मदन के मोर'	——	वही २ : १५	—	वही ११४	—	वही २७०
पटविन	'रमन के गुन'	——	वही २ : ९	—	वही १०९	—	वही २६४
पसारिन	'पीपरी सुपारी'	——		—		—	
गंधिन	'अरगजे भीनी'	——	वही २ : ११	—	वही १११	—	वही २६९
मालिन	'बीनन फिरत फूल'	——	वही ३ : १६	—	वही		वही २८८
तमोलिन	'रागन बोली सें'	——	वही २ : १३	—	वही ११२	—	वही २६८
बढ़इन	'बन निहारति'	——		—	'मोह मराले'	—	वही २७६

			अरेरति' ११७ —	
लुहारी	'लागी तचावन' ——		— 'लहलहे जीवन— ११८" —	यही २७७
दरजिन	'अन्तर पैठि' ——	यही २ १७ —	यही ११६ —	यही २७२
तँलिन	'तिल है अमाल' ——	यही २ १२ —	यही ११२ —	यही २६७
कुम्हारी	'चदमुखी मुरि' ——	यही २ १६ —	यही ११५ —	यही २७१
भरभूजिन	'साँवरे अग लसै' ——		— 'विज्जु छटा— सी' १२१	
चुरहेरिन	'हास्यलतासी' ——		—	—
धुनिन	'पीतम पास व पास' —		—	—
जुलाहिन	'लाज जजीरन' ——		—'बाँसुरी मोहनि -- ११६	यही २७४
कटेरिन	'जीति लियो सिगरो'—		—	—
खटकिन	'मोहत हजारन' ——		—	—
भठियारी	चाउ परै भठियारी'—		—	—
सिनलीगरनि	'चित चोरति सी' ——		—	—
चूहरी	'चीकन कपोल ——	यही २ १८ —	यही १२४ —	यही २७८
चमारि	'जोवन जोम से' ——		'मोचिन' रगित— पीठी' १२०	यही २७९
गनिका	'चाट उचाट ——	यही २ १६	यही १२५	यही २७६
			बँगहरिन 'बँधी स कटाछनि' १२१	
			कुंजरी 'कूजरी ऊजरी बाल' १२२	यही २७३
			मनिहारि 'मानै नही मनुहारि' १२३	

नोट — 'रस विलास तथा नी० गजा० प्रतिया में य छन्द परस्पर स्वतन्त्र भ्रम से आए हैं।

नोट — दरजिन उदाहरण छद तक 'रस विलास' एव 'सुसा० (जस०) म छदों का भ्रम समान है। इससे आग के अन्य उदाहरण सुसा० अन्य उदाहरण सुसा० (जस०) तथा सुसा० (अली०) में समान हैं परन्तु नी० गजा० प्रतिया के अन्य उदा-

नोट — सुसा० (जस०) तथा सुसा० (अली०) में समान छद एक ही क्रम से मिलते हैं।

हरण छन्द अन्यत्र
कहीं नहीं मिलते।

इस तुलनात्मक प्रतीक-सूची के अनुसार 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में कसेरिन, चमारिन, चुरिहेरिन, धुनिन, पटेरिन, खटकिन, भटियारी तथा सिकलीगरनि—ये कुल आठ उदाहरण अन्य ग्रंथों की अपेक्षा अधिक हैं एवं इन प्रतियों में बढ़इन, सुनारि, भरभूजिन जुलाहिन तथा चमारि के उदाहरण छन्द अन्य ग्रंथों में इन्हीं शीर्षक के अन्तर्गत आए उदाहरण छन्द से भिन्न हैं।

इन प्रतियों में तथा 'रस विलास' में दूसरा अन्तर 'रस विलास' ३ १३ से आगे है, जहाँ 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में बारिन 'नेह भरी नउ', डोमिन 'तान सुजान की' तथा चडागी 'साँवरी साँट की', ये तीन छन्द अन्य ग्रंथों की अपेक्षा नए हैं। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में तथा 'रस विलास' में केवल इन्हीं सोलह छन्दों का अन्तर है, इन प्रतियों के २१० छन्दों में से शेष छन्द 'रस विलास' के समान हैं।[1]

इन अधिक छन्दों के विषय में केवल दो सम्भावनाएँ हो सकती हैं—एक ये छन्द कवि देवकृत हैं। तथा दो, इन्हें इन प्रतियों में कवि ने रखा है।

इन प्रतियों के अधिक छन्दों में पटेरिन, सिकलीगरनि, भरभूजिन, सुनारिन तथा बढ़इन उदाहरणों में देव कवि की छाप मिलती है। उदाहरण स्वरूप सिकलीगरनि में यह इस प्रकार है। 'कवि देव कहै छिन देखत ही कहि का न कहो छतिया दरकी।' भाषा तथा शैली के आधार पर छन्द का विवेचन कर उसकी प्रामाणिकता का निर्णय विद्वान दे सकते हैं, अतः यह भार मैं उन पर छोड़ता हूँ।

यदि ये अधिक छन्द देवकृत हैं तो इन प्रतियों में इनकी उपस्थिति से सम्बन्धित दूसरा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसी प्रश्न के साथ स्वतन्त्र ग्रंथ के रूप में 'जाति विलास' की प्रामाणिकता का प्रश्न भी संलग्न है। इस विषय में निम्नलिखित सम्भावनाएँ विचारणीय हैं—

एक, कि कवि ने 'रस विलास' की रचना करते समय ग्रंथ का आकार संक्षिप्त करने के हेतु इन अधिक छन्दों को 'रस विलास' में नहीं रखा। डा० नगेन्द्र आदि विद्वान भी यही मानते हैं कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पूर्व हुई थी। संक्षेप की यह सम्भावना फिर भी संदेहपूर्ण है क्योंकि कवि संक्षेप केवल एक स्थल क्यों करेगा, एवं वह संक्षेप करते हुए अन्यत्र भी मिलने वाले छन्दों को छोड़कर केवल ऐसे ही छन्दों को क्यों बहिष्कृत करेगा जो अन्य-अन्य ग्रंथों में कहीं नहीं मिलते। ऐसा केवल संयोगवश नहीं हो सकता। फिर, 'रस विलास' के अनेक छन्द 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियों में नहीं मिलते। इस प्रकार भी ग्रंथ के आकार में संक्षेप करने की कवि-प्रवृत्ति सगत नहीं सिद्ध होती।

दो, कि तथाकथित 'जाति विलास' ग्रंथ की रचना 'रस विलास' के पश्चात् हुई एवं 'जाति विलास' के अधिक छन्द कवि द्वारा इस दूसरे ग्रंथ की आकार-वृद्धि के कारण मिलते हैं। परन्तु यह सम्भावना इसलिए अमान्य ठहरती है क्योंकि 'जाति विलास' ग्रंथ किसी आश्रयदाता को समर्पित नहीं है अतः इसकी रचना का कोई प्रयोजन नहीं है। कोई भी कवि, और फिर देव-जैसा कवि, एक ग्रंथ से उन्हीं-उन्हीं छन्दों को लेकर उसी के उसी क्रम से दूसरा ग्रंथ न तो निर-

ईश्य तैयार करेगा और न केवल इन १५-१६ अधिक छन्दो को सम्मिलित करने के लिए एक नए 'ग्रथ' की रचना करेगा। स्मरण रहे कि 'प्रेम तरग' तथा 'कुशल विलास' मे कुछ छन्द न्यूनाधिक होते हुए भी अधिकतर छन्द समान हैं परन्तु दोनो ग्रथो मे छन्दो का सयोजन एव विलासो का विभाजन स्वतन्त्र रीति से हुआ है, साथ ही ये सभी विशेषताएँ सगत भी है इसलिए हमने उन दो ग्रथो को एक दूसरे से स्वतन्त्र तथा 'प्रेम तरग' को 'कुशल विलास' का आधार ग्रथ माना है। 'जाति विलास' के सभी छन्द 'रस विलास' मे उसी क्रम से मिलते है। इस कारण इन ग्रथो की स्थिति पहले उदाहरण से भिन्न है।

इन सम्भावनाओ के अमान्य होने पर हम इन अधिक छन्दो को 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो के प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त मानते है। इन प्रक्षिप्त छन्दो को छोड देने शेष छन्द इसी क्रम से 'रस विलास' मे भी मिलते है अत 'जाति विलास' शीर्षक ये प्रतियाँ किसी स्वतन्त्र ग्रथ की प्रतियाँ न होकर 'रस विलास' की किसी खडित प्रति की प्रतिलिपि अथवा 'रस विलास' की अपूर्ण प्रतिलिपि सिद्ध होती है। इसका एक प्रमाण नी० प्रति के अनुसार इसके विभिन्न विलासो की पुष्पिका म रचनाकार का नामोल्लेख न होना भी है।

इस खडित शाखा मे ये अधिक छन्द क्यो प्रक्षिप्त हुए, इसका कारण भी स्पष्ट है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियो मे भी, जो श्लेष लक्षण दोहे से आगे खडित है, इसी प्रकार लगभग ६० छन्द प्रक्षिप्त है। हमने माना है कि आदर्श प्रति खडित तथा उसका पाठ नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे होने के कारण प्रतिलिपिकार ने 'भाव विलास' की इन प्रतियो मे प्रक्षेप किया है। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो मे प्रक्षेप होने का एकमात्र कारण यह न भी हो कि इसकी आदर्श प्रति का पाठ अत्यन्त नष्ट-भ्रष्ट अवस्था मे था, तो भी इसकी आदर्श प्रति के खडित होने के कारण भी प्रक्षेप की सभावना हो सकती है। मैं केवल एक सभावना के रूप मे इस ओर सकेत कर रहा हूँ।

यदि ये प्रक्षिप्त छन्द देवकृत हैं तो इन अधिक छन्दो का प्रक्षेप कहाँ से हुआ ? ऊपर दी गई तुलनात्मक तालिका से यह प्रगट है कि प्रक्षिप्त छन्दो के बढइन, लुहारिन जैसे कुछ ऐसे शीर्षक हैं जो 'रस विलास' म न मिल कर 'सुख सागर तरग' के दोना सस्करणा मे मिलते है। इनमे भी सुसा० (जस०) सस्करण मे सुसा० (अली०) की अपेक्षा इस प्रसग के कुछ अधिक छन्द हैं। इसलिए 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियो के अधिक छन्द 'सुख सागर तरग' के दोनो सस्करणो से भी प्रक्षिप्त है और इनम से ऐसे छन्द जो 'सुख सागर तरग की अपेक्षा भी अधिक है, जाति-वर्णन विषयक देवकृत किसी अन्य ग्रथ अथवा सग्रह से आए मालूम देते हैं। इस अन्य स्रोत की उपस्थिति हमने इसलिए मानी है क्योकि सुसा० (जस०) सस्करण मे भी कुछ ऐसे छन्द हैं जो सुसा० (अली०) मे नही मिलते।

हस्तलिखित ग्रथो की खोज रिपोर्ट मे देवकृत 'जाति वर्णन प्रकाश' शीर्षक ग्रथ की सूचना है। (१६२३-२५, पृष्ठ ४५४-७६) परन्तु इसे 'जाति विलास' के समान देवकृत जाति-विषयक नवोपलब्ध स्वतन्त्र ग्रथ समझ कर चौंक न पडना चाहिये। यह 'सुख सागर तरग' की गयौली वाली प्रति से २४६ छन्द—सख्या से ३०६ सख्या तक के जाति विषयक अश की प्रतिलिपि है। इस प्रति मे प्रतिलिपि होने का केवल एक प्रमाण दिया जाता है। इस सग्रहीत 'जाति वर्णन

प्रकाश' ग्रंथ में तथा गरौली की व उपर्युक्त प्रति में 'मैन्य वामिनी' के स्थान पर सैन्यो वासिनी शीर्षक मिलता है।

इन प्रतियों में ग्रंथ का 'जाति विलास' नाम आदर्श प्रति के खंडित होने के कारण तो आया ही है परन्तु इस भ्रांति के उत्पन्न होने का कारण निम्नलिखित दोहा भी है—

"देवल रावल राजपुर नागरि तीनि निवास।
तिनके लच्छन भेद सब बरनत जाति विलास ॥"

—रस विलास १ १४

प्रतिलिपिकार को भ्रान्ति हुई कि कवि नागरी स्त्रियों का लक्षण तथा भेद इस 'जाति विलास' नामक ग्रंथ में कर रहा है। फिर उसने खण्डित आदर्श के अंतिम अंश, पंचम विलास में जाति-भेद वर्णित देखकर उसकी धारणा पुष्ट हुई इसलिए उसने ग्रंथ का शीर्षक 'जाति-विलास' दे दिया। मेरे विचार में उपर्युक्त दोहे का अर्थ इस प्रकार करना उचित नहीं है। इस दोहे में कवि ने नागरी-स्त्रियों के प्रसंग का केवल विषय-विस्तार अथवा उसके विभाजन की रूप-रेखा स्पष्ट की है। कवि सर्वदा विषय-विवेचन के पूर्व उसका विभाजन करते हुए उसकी रूप-रेखा देता आया है। इस प्रकार दोहे का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है, "देवल नागरी, रावल नागरी तथा राजपुर नागरी,नागरियों के केवल ये तीन भेद हैं। मैं उनके लक्षण तथा भेद एवं जाति-भेद के आधार पर उनका वर्णन यहाँ कर रहा हूँ।"

यहाँ 'जाति विलास' को 'जाति विलास' ग्रंथ का नाम समझने की भ्रान्ति डा० नगेन्द्र को भी हुई है। इसीसे उन्होंने अनुमान लगाया है कि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई थी। परन्तु डा० नगेन्द्र के ध्यान में 'रस विलास' का निम्नलिखित दोहा नहीं आया जो 'जाति विलास' की प्रतियों में भी मिलता है और जिसमें 'रस विलास' का स्पष्ट नामोल्लेख है :—

"रस विलास रचि ग्रंथ सो कहत दूसरी बार।
कहौं नायिका भेद सब सुनहु नवीन प्रकार ॥"

—रस विलास ४ : ४०

यदि 'जाति विलास' की रचना 'रस विलास' से पहले हुई तो 'जाति विलास' में 'रस विलास' का यह स्पष्ट नामोल्लेख कैसे?

इसी भ्रांति के कारण डा० नगेन्द्र ने 'रस विलास' को 'जाति विलास' का संशोधित और परिवर्धित सस्करण मान लिया है। 'जाति विलास' की सभी उपलब्ध प्रतियाँ ५ ४७ पर खण्डित हैं अतः यह कैसे जाना जा सकता है कि इस स्थल से आगे इस 'ग्रंथ' में पाठ कहाँ तक था और 'देव' ने किस स्थल से आगे पाठ-परिवर्तन कर 'रस विलास' का परिवर्धित 'सस्करण' तैयार किया। 'जाति विलास' शीर्षक प्रतियाँ केवल ५ ४७ पर खण्डित हैं तथा 'रस विलास' की प्रतियों में इससे आगे भी पाठ मिलता है। केवल इसीलिए इस बड़े आकार वाले ग्रन्थ को छोटे आकार वाले ग्रंथ का सीधे-सीधे परिवर्धित सस्करण मान लेना उचित नहीं है।

इन समस्त तथ्यों पर विचार कर हमने 'जाति विलास' को देवकृत पृथक ग्रन्थ न मानते हुए इस शीर्षक की प्रतियों का उपयोग 'रस विलास' की खण्डित प्रतियों के रूप में किया है एव

इसके प्रक्षिप्त छन्द परिशिष्ट में दे दिया है।

कवि देव द्वारा 'रस विलास' की आकार-वृद्धि

'रस विलास' की उपलब्ध प्रतियों की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि स्वयं कवि देव ने "सुख सागर तरंग" की तरह इस ग्रंथ के भी दो संस्करण किये थे। ग्रंथ के पाठ-संपादन में प्रयुक्त प्रतियों में से भा० मो० नी० गजा० प्रतियाँ ग्रंथ के प्रथम संस्करण की एवं ब्र० सा० ग० प्रतियाँ ग्रन्थ के परिवर्धित रूप, उसके द्वितीय संस्करण की वंशज प्रतियां हैं।

प्रथम संस्करण के निम्नलिखित छन्द से प्रगट होता है कि यह संस्करण किसी आश्रयदाता के नाम समर्पित नहीं था —

"बीच मरीचनु के मृग लौं अब धावे न रे सुन काहू नरिंद के।
ओस की आस बुझै नहिं प्यास बिसास इसे विनि काल फनिंद के।
भूलै न देव निहारी असारनि प्यास निमारत तार पै विंद के।
इंदु लौं आनन तू जु चितै अरविंद के पायन पूजि गुविंद के॥

—'रस विलास'-परिशिष्ट १।

इस संस्करण की प्रतियों में प्रत्येक विलास के प्रारंभ में आए "रानी राधा सुमिरि···" दोहा से भी कवि की सांसारिक अवलंब के प्रति उदासीनता एवं अपने आराध्य देव के प्रति अनन्याश्रय की भावना पुष्ट होती है।

कदाचित् इस ग्रंथ की रचना पूर्ण हो चुकने पर सुल्तानपुर के राजा श्री भोगीलाल से देव की भेंट हुई। इस समय उनके पास एक 'रस विलास' ही ऐसा ग्रंथ था जिसे वह भोगीलाल को समर्पित कर सकते थे। परन्तु देव सर्वदा अपने पूर्वरचित ग्रंथ की पर्याप्त आकार-वृद्धि कर तब उसे आश्रयदाता को समर्पित करते आये हैं। 'प्रेम तरंग' एवं 'कुशल विलास', 'सुखसागर तरंग' के दो संस्करणों एवं 'सुजान विनोद' की ऐसी ही आकार-वृद्धि में यह मान्यता पुष्ट होती है। तदनुसार देव ने ग्रंथ के प्रथम विलास में भोगीलाल सम्बन्धी "भूलि गए भोज बीर विक्रम बिसरि गए—" जैसे छंद सम्मिलित कर, प्रत्येक विलास के प्रारम्भ में आए "रानी राधा हरि सुमिरि—" दोहों के स्थान पर (जिनसे आश्रयदाता के प्रति कवि की यदि अवज्ञा नहीं तो उदासीनता प्रकट होने का भ्रम हो सकता था।) उसके पहले वाले विश्राम के अन्त में भोगीलाल के नामोल्लेख सहित एक छन्द सम्मिलित कर एवं ग्रंथ के अन्त में नायिकाओं के प्राचीन शास्त्रीय विभाजन का ६४ छन्दों का एक सम्पूर्ण अष्टम विलास जोड़कर यह ग्रन्थ भोगीलाल को समर्पित किया।

इस द्वितीय संस्करण की प्रामाणिकता में संदेह के लिए अधिक स्थान नहीं है। 'भाव विलास' की नी० हि० प्रतियों में प्रक्षिप्त छन्दों की परीक्षा करते हुए हमने देखा है कि प्रतिलिपिकार के अधिक से अधिक सतर्क होने हुए भी प्रक्षिप्त पाठ में कोई न कोई ऐसी असंगति अथवा न्यूनता रह जाती है जिससे पाठ प्रक्षेप ग्रंथ के मूल-आकार से स्वयमेव अलग हो जाता है। 'रस विलास' के द्वितीय संस्करण में निरूपित विषय तथा उसका कविकृत विवेचन न प्रसंग की दृष्टि से असंगत है न उसमें कहीं अनौचित्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, ग्रंथ में विस्तार से

त नायिका-भेद की आवृत्ति ग्रंथ के अष्टम विलास के रूप में किए गए पाठ-परिवर्धन में नहीं हुई है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत है, अष्टम विलास में मुग्धा आदि का वर्णन विस्तार ग्रंथ नायिका-भेद निरूपण को और भी पूर्णता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ग्रंथ के पाठ में क ऐसे स्थल मिलते हैं जो कवि द्वारा इस अंश की पाठ-वृद्धि किये जाने के प्रमाण स्वरूप त किये जा सकते हैं। ऐसे केवल दो उदाहरण दिये जाते हैं —

"कहे नायिका भेद सब आठ अंग के साट।
अब भेदान्तर कहत हौं मत प्राचीन सुनाइ॥" —रस विलास ८ १
"उक्तिगर्विता आठ विधि आठौ अंग सगर्व।
कहे नायिका भेद मैं जोवनादि अंग सर्व॥" —रस विलास ८ ५६

उपर्युक्त दोहों में 'नायिका भेद' तथा 'जोवनादि—आठौ अंग' का उल्लेख ग्रंथ के चतुर्थ लास में ४ ७ में आगे के नायिका के अष्टांग वर्णन की ओर संकेत करता है। ग्रंथ के इस-रे अंश में तारतम्य अथवा परस्पर-सम्बन्ध की ऐसी विशेषता स्वयं कवि द्वारा किये जाने पर भव है, प्रक्षेपकार द्वारा नहीं। स्वयं कवि द्वारा इस अंश की पाठ-वृद्धि करने का दूसरा महत्व-र्ण प्रमाण इस अंश में कवि के ऐसे अनेक लक्षण-उदाहरण छन्दों का सगत प्रसंग में प्राप्त होना जो छन्द देवकृत किसी अन्य ग्रंथ में नहीं मिलते।

अष्टम विलास के अतिरिक्त ग्रंथ में यत्र-तत्र हुए पाठ-परिवर्धन के भी कवि कृत होने मुझे संदेह नहीं है। ऐसे छन्दों में अधिकतर छन्द भोगीलाल से सम्बन्धित हैं। इनमें से अनेक न्दों में कवि की छाप भी मिलती है। ग्रंथ का यह स्वरूप भोगीलाल को समर्पित है। अतः ोगीलाल के नामोल्लेख एवं कवि की छाप-सहित इन छन्दों का रचयिता हमारे विचार में स्वयं वि है, कोई प्रक्षेपकार नहीं।

इन छन्दों की प्रामाणिकता के विपक्ष में केवल एक तर्क हो सकता है कि ये अधिक छन्द जन प्रतियों में मिलते हैं उनमें समान पाठ-विकृतियाँ भी मिलती हैं। अतः यह संभव है कि ये भी छन्द किसी एक पूर्वज प्रति में प्रक्षिप्त होकर अन्य दो प्रतियों में आए हों। परन्तु यह तर्क धिक पुष्ट नहीं है क्योंकि प्रथम तो 'रस विलास' की न केवल इन प्रतियों में वरन् सभी उप-ब्ध प्रतियों में परस्पर तथा अन्य ग्रंथों से इतना अधिक पाठ-मिश्रण हुआ है कि इन प्रतियों में ाप्त विकृति-साम्य का तर्क निर्णायक नहीं माना जा सकता। दूसरे, जैसा कि ऊपर के विश्लेषण प्रकट है, हमने प्रबल अन्तर्साक्ष्य के आधार पर इस पाठ-वृद्धि को कविकृत पाया है अतः प्रक्षेप ी यह संभावना मान्य नहीं।

हमने प्रथम सम्वरण की मा० मो० प्रतियों में प्राप्त 'रानी राधा—' दोहों एवं सप्तम विलास में आए ग्रंथ-समापन के दो-तीन छन्दों का पाठ 'रस विलास' के अन्त में परिशिष्ट १ में दे दिया है। विस्तार भय से कविकृत आकार-वृद्धि के समस्त छन्दों के बारे पर पृथक रूप से विचार करना असंभव है अतः हम नीचे की सूची में ऐसे छन्दों का केवल स्थल-निर्देश कर रहे हैं —

१:२—८, १:१३—१८, १:६५, २ ७०, ३:३३, ६ ६१, ७:६०, ८:१—६६।

रस विलास

पायनि नूपुर मंजु बजै कटि किंकिनि की धुनि की मधुराई।
साँवरे अंग लसै पट पीत हिये हुलसै बनमाल सुहाई॥
माथे किरीट बड़े दृग चंचल मंद हँसी मुखचन्द जुन्हाई।
जै जग मंदिर दीपक सुन्दर श्री ब्रजदूलह देव सहाई[1]॥१॥

१ कन्हाई-आ० सुहाई-भा०

गिरा गौरि गनपति सुमिरि गुरु गिरीस के पाँइ।
रस विलास कवि देव यह रच्यौ सरस रस राइ॥२॥

भूलि गये भोज वीर विक्रम बिसरि गए जाके आगे और तन दौरत न[1] दीदे हैं।
राजा राइ राने उमराउ उनमाने निज गुन के गरब गिरबी दैहैं॥
सुजस बजार जाके सौदागर सुकवि चलेई आवै दसहूँ दिसान के उमीदे[2] हैं।
भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया[3] जिहि लाखन खरचि रचि आखर खरीदे है॥३॥

१ और तन—ग०। २ उनमीदे—ग०, उनोदे—व्र०। ३ लिखैया—ग० सा०।

पावस घन[1] चातक तजै चाहि स्वाति जल बिंदु।
कुमुद मुदित नहिं मुदित मन जौ लौं उदित न इंदु॥४॥

१ बन—ब्र० सा०।

देव सुकवि तातें तजे राउ रान सुलतान।
रस विलास करि रीझिहैं भोगीलाल सुजान॥५॥

पूरन पुन्यनि को महिमा भुव भिक्षुक भौंरन को मकरंद है।
माधव मोद को मोदक भोगिभुवाल भयो अरि कंज निकंद है॥
दिल्ली है सुद्ध सुधा को सरोवर तौमें लसै वसुधा को अनंद है।
कीरति कातिक पून्यो की रीति मैं दून्यो विराजत पूनो को चंद है॥६॥

साँझ कैसो चंद भोर को सो अरविंद स्वाति बिंदु कैसो बादर बिसाति बसुधा ही की।
मधु कैसो तरवर सरद को सरवर है गरीबपरवर प्रीति गुनगाही की॥
जोगीदास नंद जुग जियो जगबंद चंद चंदन[1] सी कीरति चलाई चित चाही की।
दीन को दयाल देव मूरति बिसाल भोगीलाल भूमिपाल है मसाल पातसाही की॥७॥

१ चाँदनी—सा०।

पृथ्वी मैं पृथिन पृथु पुण्यन अमृत सींच्यो पृथु सो पुरुरवा सो निपुर प्रतीप सो।
मनु सो मनीषी मनवाना सम दाता रघु नहुष ययाति शूर सगर[1] महीप सो॥
जदु सो जुधिष्ठिर सो भीषम भगीरथ सो तीरथ नदीपति सो दीपनि[2] मैं दीप सो।
राजनु है आज भोगीलाल देव राज मँहि[3] नवल दुलहिया को दूलह दिलीप सो॥८॥

१ सूर सागर—०। २ दीपनि—गं०।

३ देव देवराज—गं०। १:२ से १:८ संख्या के छंद केवल व्र० सा० गं० प्रतियों में हैं, नौ० गंजा० भा० तथा मो० प्रतियों में नहीं।

मुक्ति सराही मुक्ति हित मुक्ति मुक्ति[1] को धाम।
मुक्ति मुक्ति अरु[2] मुक्ति को मूल सु कहिए काम॥९॥

१ मुक्ति मुक्ति—नौ० गं० गंजा०। २ उर—मो०।

रमनी रावा ससिमुखी पूरैं काम समुद्र।
बिना काम पूरन भये लगै परमपद छुद्र॥१०॥

तातें त्रिभुवन सुर असुर नर पसु कीट पतंग।
राक्षस जक्ष पिसाच अहि मुखी सबै तिय संग॥११॥

कोटि कोटि बिधि कामिनी[1] तिनके कोटिन भेव।
तिनमें माया मानुषी बरनत हैं कवि देव॥१२॥

[1] कामना—भा० मो०।

कामिनी भेद।

सो नारी बहु नागरी पुरवासिनि ग्रामीन।
वन्या सैन्या[1] पथिक तिय पट विधि कहत प्रवीन॥१३॥

[1] वन सयना अरु०—भा० मो०।

नागरी।

देवल रावल राजपुर नागरि तीनि[1] निवास।
तिनके लच्छन भेद सब बरनत जानि बिलास॥१४॥

[1] नागरि तरनि—भा० मो०।

देवल देवी नागरी दूजी पूजनहारि।
द्वारपालिका तीसरी बरनहु त्रिविधि विचारि॥१५॥

देवी।

पूरन सरद ससिमण्डल बिसद जोति मढ़न बितान मैं अगाढ़ गुन गाहिनी।
अमल अमोल मनि रतननि रच्यो महा सुन्दर सुमन्दिर अमन्द सुर[1] चाहिनी।
आठहू पहर घर आठो आठो सिद्धि लिये नरदने सेवक[2] महाद सदा दाहिनी।
रूप रंग एवी महादेवी देव देवनि की सिंहासन बैठी सोहै सो है सिंहवाहिनी॥१६॥

[1] मुख—भा०, मो० प्रति में दूसरे हस्तलेख से "मुख" से "सुख" पाठ संशोधन हुआ है। [2] सकल में सब की—सा० आ०, सेवक में सेवक—भा० मो०।

सूरन को रन की विजया मन कूरन को अजया भयभीता[1]।
योगिन की गति ज्ञानिन की मति विप्रन वेद विवेक विनीता।
स्वर्ग सची तल भोगवती भुव भीषम भूप सुता गुणगीता।
भारथ जुद्ध की भारथी सुद्ध रती वर तीन सतीन म सीता ॥१७॥

[1] भयतीता—सा०।

आदि ब्रह्म विद्या वेद कहत प्रकृति जासो जोगमाया जानियोई योगिनि समाधी है[1]।
भारती भवानी भुवनेश्वरी मतगी मात काली[2] अन्नपूर्णा कपाली अग आधी है।
एक तें अनेक जानी जल थल मे समानी[3] अगनित बानी सिद्ध साधकनि साधी है।
साधारन देवी जो असाधारन रूप सोई[4] बाधा हरिबे को देव राधा अवराधी है ॥१८॥

[1] प्रकृति कहत जाहि सोइ ध्यान जोगिन समाधी है—सा०। [2] का सी—सा०। [3] बखानी—ब्र०। [4] साधा—ग०, धार्यो—ब्र०।

पूजाकिन।

केसरि कपूर मृगमद चोवा चन्दन चरचि[1] रचि पहुप चढावति महानी के।
धूप दीप भोजन समीपही निवेदन के वेदन जताइ जपै नाम वर बानी[2] के।
जानत न जीकी तन जी की कोई देव कहै बाहि रट पीकी[3] भट बाहिर कहानी के।
कही जदुराइ[4] जदुराइ वर पाइव को रुक्मिनि रानी पग पूजत भवानी के ॥१९॥

[1] रुचि—भा०। [2] वरदानी—भा० मो०। [3] जानत न जाकी तन जाकी नही देव कोई वाहि रटकी की—नी० ग० गजा०। [4] ०—सा०।

द्वारपालिका।

जगमगै जोतिन के मोतिन के हार हिये करत बिहार[1] मृदु मालती की मालिका।
बेसर की खोर देव पौरि पर मोहनी[2] सी देव मुनि मोहै बिधुवदन बिसालिका[3]।
नवला चतुर नवला सी लिये हाथ[4] अवलानि जान देति जब देति[5] कर तालिका।
एकी[6] अदभुत वह कैसी हूँ है[7] देवी जाके मन्दिर[8] के द्वार दयी ऐसी[9] द्वारपालिका ॥२०॥

[1] उनहत भार—भा०, लसति भार—मो०। [2] मोहन—मो०। [3] विलासिका—मो०। [4] सग—ग० गजा०। [5] देती—ब्र०। [6] एव—ग० गजा०। [7] गृह—ग० गजा०। [8] महल—ग०। [9] सोहै ऐसी—भा०, ऐसी सोहै—मा०, ऐसी देवी—नी० ग० गजा०।

रावल नागरी भेद।

रावल नागरि पाँच विधि पहले राजकुमारि।
तासु धाय दूती[1] सखी दासी कही गम्हारि ॥२१॥

[1] दूजी—मा०।

राजकुमारी।

ठकुराइन[1] सब नगर की सुख सम्पति की मूल।
गुन गरवीली मानिनी पति जाको अनुकूल ॥२२॥

[1] राजकुँवरि—व्र०।

उदाहरण।

पावरिन पावडे परे हैं पुर पौरि लगि धाम धाम धूपन के धूम धुनियत हैं।
कस्तूरी अतर सार[1] चोवा रस घनसार दीपक हजारन अँध्यार[2] लुनियत हैं।
मधुर मृदंग राग रंग की तरंगनि म अंग अंग गोपिन के गुन गुनियत हैं।
देव सुख साज महाराज बृजराज आज राधा जू[3] के मदन सिधारे सुनियत है ॥२३॥

[1] अगर अतर सार—ग०, अगर सार—भा०। [2] हजार ते अँधार—भा० मो०
[3] राधा जी—नी०, राधा—गजा०, राधिका—ग०।

उज्वल[1] अखंड खंड सातयें महल महा महल चौवारी चंद्र मंडल के चोटही।
भीतर हू लालन के जालन विसाल जोति बाहिर जुन्हाई जगी जोति नके जोटही[2]।
बरनन बानी चौर ढारत भवानी कर जोर रमारानी ठाढी रमन के[4] ओटही।
देव दिगपालनि की देवी सुखदाइनि ते राधा ठकुराइनि के पाइनि पलोटही ॥ २४॥

[1] मजुन—भा० मो। [2] चड—भा० मो०। [3] चोट ही—मो०।
[4] रमनी की—सा० ग० गजा०।

धाय-लक्षण।

राजनगर जे बसत जन ते राजन के मीन।
तिनकी तिय नृपसुतनि की होंनी धाइ पुनीत ॥ २६॥
बारे पाले[1] प्याइ पै[2] स्यानी करे सिवाय।
जेहि जाने जननी कुँवरि ताहि बखानो धाय॥ २६॥

१ बार पीछे—भा० मो०। [2] प्याइ के—सा०।

उदाहरण।

राइ नोन वारति[1] गुराई देखि अगनि की[2] दूरे न दुराई[3] त्यो भुराई सा निरति है[4]।
ज्यों ज्यो सुघराई[5] सोन उपरन देति[6] त्यों त्यों सुंदरि सुघर घर फेरो न धिरति है।
निठुर डिठौना दीन्हे नीठि निकसन कहै दीठि लागिबे के डर पीठि दे गिरति है।
जित जित ओर चितचोर चितवत त्योंही तिन तिन ओर तृन तोरति फिरति है ॥ २७॥

१ वरति—नी० ग० गजा। [2] अगनि मे—भा० मो०। [3] दुरैन दुराई—नी०, दुरत दुराई—ग० गजा०। [4] पै भुराई सी भरति है—भा० मो०। [5] तरनाई—सा०। [6] उघरत देह—भा०।

धाय-भेद

धाइ सखी दासी[१] नटी ग्वालि सिल्पिनी नारि।
मालिनि नाइनि बालिका बिधवा[२] बधू बिचारि॥ २८॥

[१] दूती—ग०। [२] पटवा—भा० मो०।

सन्यासिनि भिक्षुकबधू सम्बन्धी की बाम।
एती होती दूतिका दूतपन्य अभिराम॥ २९॥

छल सो पैठे राजगृह मोहे राजसुतानि।
हिलवे मिलवे दम्पतिनि कहे सँदेसो आनि॥ ३०॥

रचि[१] उपजावे परसपर नित नित[२] नेह बढाइ।
रहे दुहुनि[३] चित में चढी दूती चतुर सुभाइ॥ ३१॥

[१] रस—भा० मो। [२] नित नव—ग० गजा०। [३] दुवी—नी० ग० गजा०।

उदाहरण

लेहु लली उठि लाई हो बालहि[१] लोक की लाजहि सो लरि राखौ।
फेरि इन्हे सपनेहु न पैयतु ले अपने उर मे धरि राखौ।
देव लला अबला नवला यह चन्दकला कठुला करि राखौ।
आठहु सिद्धि नवो निधि[२] ले घर बाहर भीतरहूँ भरि राखो[३]॥ ३२॥

[१] लेहु लला उठि लाइ हो बाल हि—भा०, लेहु लला उठि लाई हो बात को—मो०।
[२] नेत्र निधि मो०। [३] धरि राख—आ०।

कुजनि केकोरे मनु[१] केलि रस खोरे लाल तालनि के खोरे बाल आवति है नित को।
अमृत निचनेर कल बोलत निहोरे नेक ससिनि के डोरे[२] देव डोले जित तित को।
थोरे थोरे जोवन[३] बिथोरे देति[४] रूपरासि गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेत[५] हित को।
तोरे लेति रति दुति भोरे लेति मति गति छोरे लेति लोकलाज चोरे लेति चित को॥ ३६॥

१ कुजन के कोरे मैन—भा० मो०। [२] जोरे—ग०।
३ जवन—भा० मो०। [४] देखि—नी० [५] गोरे गोरे मुख भोरे भोरे लेत—भा० मो०।

बन्धु बिप्र कुल गुरु सुता औ गुनवन्ती कोद।
सोद राजसुतानि की सखी सहचरी[१] होइ॥ ३४॥

१ सहेली—भा०।

दुहुन सुहावन दुहुन गुन उपजावन रस भाव।
बिरहास्वारा दिखावना दोउन[१] बिरह जताव॥ ३५॥

[१] दिखाय पुनि दोऊ—भा०, हित उपजावन भूपनन दोउन—सा०, बिरहास्वान दिग-रावनन दोउन—आ०।

इत को उतहि उराहनो इन उन को[1] सदेस।
दुहु मिलावन परसपर रचिबो भूषनवेस ॥ ३६ ॥

[1] उत को इन—ब्र०, उन को इतहि—सा०।

देस काल गुन रूप[1] विधि करिबो सदा प्रसन्न।
ए दस कर्म सखीनि के करैं रहैं[2] आनन्द ॥ ३७ ॥

[1] अनुरूप—भा० मो०, अरु रूप—ग०। [2] रहो—ग०।

समै समै के काज पै सखी अनेक प्रकार।
धाइ कहूं दूती कहूं दासी कबहूं की यार[1] ॥ ३८ ॥

[1] कहूं विचार—भा०, कहै विचार—मो०।

दस कर्म-उदाहरन।

आई हौं देखि बधू इक देव सु देखत भूली सबै सुधि मेरी।
राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि सुनार की ढेरी।
एरी अबै वह ऐवै है वेग मरेंगी महा विष घूंटि घनेरी।
जे जे गनी गुनआगरि नागरि ह्वैहैं ते वाके[1] चितौनहीं[2] चेरी ॥ ३९ ॥

[1] ह्वैहिगी वाकी—भा० मो०। [2] चितौनि की—ब्र०।

देव न देखनि हों दुति दूसरी देखे हैं जा दिन ते[1] यदुभूप[2] में।
पूरि रह्यो री वही पुर कानन[3] कानन आनन[4] ओप अनूप में।
ये अँखियाँ सखियानि निहारिये जाइ मिली जलबुंद[5] ज्यों कूप में।
कोटि उपाइन पाइये फेरि[6] समाय गई ब्रजराज[7] के रूप में ॥ ४० ॥

[1] जा दिन ते निरखे—मो०। [2] ब्रजभूप—आ०। [3] छाइ रही री वहै छवि कानन—भा० मो०, पुर तानन—सा०। [4] आनन आनन—ग० गजा०। [5] रस बिंदु-भा० मो०। [6] कोरि करै अब क्यों निकसैगी—भा० मो०, कोरि करो नहि पाइये फेरि-सा०। [7] रँगराइ के—ग० गजा०, सुन साँवरे—भा० मो० जदुराइ—के—आ०।

रस उपजाइबो-उदाहरन।

त्रिबली तिरंगिनि निकट नाभि ह्रद[1] तट रोमराजी बन धँसि मुकत अन्हात हैं।
नेह नगरीमैं गुन गेह[2] उर ऊँची पौरि देव कुच कचन के कलस लखात हैं।
लोचन दलाल सलचावत कटाछिन को लाल चलि देउ लाल मोलनि लहात है।
जोबन बजार बैठ्यो जौहरी मदन रव[3] लोगनि को हीरा[4] वाके हाथ ह्वै बिकात हैं ॥ ४१ ॥

[1] नट—मो० ग० गजा०, नद—सा० आ०। [2] मन गेह—ग० गजा०, गुन गेह—सा०। [3] रस—ग० गजा०। [4] हिय—मो०।

ग्वालि गई इक ह्यां की उहाँ सखि[1] रोसि गुनी मिलु के दधिदान को।
वा तो नट वह भेंटी भुजा भरि नातो निरानि कछू पहिचान को।

जाई निछावर कै मनमानिन गोरस दे रम ले अधरान[१] को।
वाही दिना ते हिय मे गडो वह ढीठ वडी वटरी[३] अँखियान को॥ ४२॥

[१] मग—भा०। [२] रम से अधरान—ग० गजा०। [३] री वडी—भा० मो०।

विरहास्वासन।

काहू की बर चितैवे की सक न लागे कलक ब्रिसे किन[१] बीसो।
वा ठकुराइनि की अब देव विरचि रची रचि रावरे जी सौ।
देहो मिलाई तुमैं हा तुम्हारिये आन करो वृपभानलली सौं।
वाम्हन की सौं बबा की सौं मोहन मोहि गऊ की सौं गोरस की सौं॥ ४३॥

[१] ब्रिसो किन—ग० गजा०।

नन्दकुमार उतै अति[१] ठाकुर राघ इतै अतिही ठकुराइनि।
देव सयोग तिहारो दुहुं को बन्यो कुल सम्पति सील सुभाइनि।
पांय न लागिय मेरी भटू नित लागत[२] हौंही लगी इन पाइनि।
आज तुम्हे ब्रजराज मिलाऊँगी राज करो गृहकाज[३] गुसाइनि[४]॥ ४४॥

[१] इतं उतं—भा० मो०। [२] चाहत—भा०। [३] लुगाइन पाइन—ग० गजा०। [४] ब्रज-राज—ब्र०, रहि आजु—सा०। [५] सुसायनि—नी० ग० गजा०।

परस्पर दिखावन।

सील की सागरि रूप उजागरि है गुन आगरि नागरि नारी[१]।
वा वरसाने के वासिन की निसि वासर सोम समान समारी।
याहिय वेस वडो सुखदाइनि ए ठकुराइन[२] है जु हमारी।
थी वृपभानु के भोन को दीपक एई है[३] राधिका राजकुमारी॥ ४५॥

[१] भारी—भा० मो०। [२] नागरी वेस वडी ठकुराइन मो सुखदाइन—भा०। [३] दाइ कराइ है—भा० मो०, दापति एई हैं—सा०।

कानन कुडल माल गरे संग मडित[१] गोपन के कुँवरेटा।
देव गयन्द से आवत मन्द से देखुरी चन्द स नद के बेटा[२]।
काम की दूती पढावत तूती चढी[३] पग जूती बनात लपेटा।
पीरो झगा[४] पटुका जिन छोर छरी[५] कर लाल जरी सिर फेटा॥ ४६॥

[१] राजत—ग०। [२] ढोटा—सा०। [३] लसै—नी० ग० गजा०। [४] भीन झगा—सा०। [५] कसे—ग० गजा०। केवल सा० प्रति मे चरणो का क्रम १-२-३-४ है।

जब तें कुवरकान्ह रावरी कला निधान कान परी वाके कहूँ[१] सुजस कहानी सी।
तबही तें देव देखी[२] देवता सी हँसति सी खीझति सी रीझति सी[३] रूसति रिसानी सी।
छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी सी छीन[४] जकी सी टकी सी लगी थकी[५] थहरानी सी।
बीधी सी बधी सी बिष बूडी सी[६] बिमोहित सी बैठी वह[७] बकति बिलोकनि बिकानी सी॥ ४७॥

¹ वाके कहूँ कान परी—भा०, वाके कान परी कहूँ—मो०, दरोक वाके कान कहूँ—बु०। ² देखो—सा०, आ०। ³ रीझति खीझति सी—भा० मो०। ⁴ छान—आ०। ⁵ ०—मो०, हाशिये पर उमी हस्तलेख से—त्र०। ⁶ बूढति—भा० मो०। ⁷ बाल—भा०।

दंपति को विरह-जनावन।

ऐपन की ओप इन्दु कुन्दन की आभा चम्पा केतकी की गाभा जीति¹ जोतिन सो जटियत।
जगरमगर होत सहज² जवहर से अतिही³ उजारे जब नैसक उबटियत⁴।
वैसेई सुघर⁵ सुकुमार अंग सुन्दरि के लालन⁶ तिहारे पास नेह खरे लटियत।
देव तेव गोरी के बिलात गात बात लगे ज्यों ज्यों सीरे पानी पीरे पान से पलटियत ॥ ४८ ॥

¹ पीत—नी० ग० गजा०। ² सहन—नी०। ³ नग से—नी० ग० गजा०। ⁴ उलटियत—भा०। ⁵ सुठार—भा०, सहज—ग०। ⁶ मोहन—नी० ग० गजा०।

बरनि बघबर में गूदरी पलक दोऊ कोए राते बसन भगोहें भेष रखियाँ।
बूडी जलही में दिन जामिनिहूँ जागे भौंहें धूम सिर छायो विरहानल विलखियाँ।
आँसू ज्यों¹ फटिक माल लाल डोरे सेली पैन्हि² भई हैं अकेली तजि चेली³ संग सखियाँ।
दीजिये दरस देव⁴ कीजिये संयोगिनि ये⁵ जोगिन ह्वै बैठी हैं वियोगिनि की अँखियाँ ॥४६॥

¹ अँसुवा—भा०। ² लाल डोरे सेल्ही साजि—सा०, सेली पंधि—नी० आ०, सेली सम—मो०। ³ चली—नी०। ⁴ नेकु—सा०। ⁵ जस गनिये—मो०, सजोगिनि जू—सा०, संजोगिन के०—त्र० नी०।

दंपति को उराहनो।

तो गुन देव देव सुने जब ते तब तें सुधिऊ न उन्हें उर की है।
पीर नहीं पहिचानत लोग बखानत बेद बिथा¹ जुर की है।
लोभ चढ़ी अति मोहन की मति मोह महागिरि तें ढुरकी है।
थोरिये वैस बिथोरी भटू ब्रज भोरी सी बातनि तैं भुरकी है ॥५०॥

¹ वथा—त्र०।

ह्यां सुधियो बिसरी उत ह्वां गु घरी पल¹ जात हैं प्रान चले जू।
जो कहिये तो कह्यो² नहिं जात³ कहे ही बिना घर केते घले जू⁴।
देव दुहूँ विधि बूड उतैंही की रावरे बातन हीं⁵ बदले जू।
ओर उराहनो देत बने न⁶ कहा कहों कान्ह भले हो⁷ भले ज ॥५१॥

¹ पल ही पल—भा० मो०। ² कह्यो—सा०। ³ मानत—भा० मो०। ⁴ केतो खले—नि० ग० गजा०। ⁵ बातन पे—भा० मो०। ⁶ बदै न—मो०, बैन न—आ०। ⁷ भले जू—ग० गजा०।

देव कामदेव हीं को कमन¹ हथ्यार हो जू अंग अंग गुननि हियो² गुननि आगरी।
नेह की निकाई देह³ दुति मधुराई नाग निस तें मधुर मधु घन⁴ की सी सागरी।
चेटक सी चालि⁵ चित चोट⁶ सी चितोनी हांसी ठग की मिठाई मोह फाँसी की सी सागरी⁷।
भली हो जू भली हो सलोनी पान मीठो विष गोरी आँचि गरबस चोरन उजागरी⁸ ॥५२॥

¹ कोमल—सा०। ² गुनन में औ—मो०, गुनन बीओ—त्र०। ³ देव—सा०।

[४] मधुव्रत—सा०। [५] चली—सा०। [६] चान अरु चितचोट—ग० गजा०, चितचोर—भा० [७] ठग की सी फाँसी फाँसी फँसी लाग री—नी० ग० गजा०। [८] सलोनी बात मीठी मुख कि सीरी आँखि सरवस चोरन उजागरी—सा० भा० प्रति में सम्पूर्ण छन्द तथा मो० प्रति में छन्द का केवल तृतीय चरण त्रुटित है।]

राधे वही है कि तैं छमियो ब्रजनाथ जिते[१] अपराध किये मैं।
कानन तानन भूलत ना खिन[२] आँखिन रूप अनूप पिये मैं।
आपने ओछे हिये में दुराई[३] दयानिधि देव बसाय लिये मैं।
हौंही[४] असाध बसी न कहूँ पल आध अगाध तिहारे हिये मैं ॥५३॥

[१] किते—भा० मो०। [२] भूल नाचनी—नी० भूतल नाखिन—ग० गजा०। [३] ओछे हिये अपने दिन राति—नी० ग० गजा०, मैं यही अपने ओछे हिये मैं—सा० आ०। [४] होय—मो०।

जाती हो जो उत वे जो[१] मिलें कहूँ पावौ समौ कहिबे को ठिकाने।
ह्याँ की दशा तुम देखिये है कहियो समुझाइ जो पै[२] जिय आने।
या मन की बिन पाये बिथा तनकी[३] कबि देव जू कौन बखाने।
तोसी हितू हित की बिन और सु को इत की[४] चित की गति जाने ॥५४॥

[१] जा उत बाजु—नी०, जा उत बीजु—गजा०। [२] जो वै—भा० मो०। [३] तीन की—भा० मो०। [४] इन की—नी० गजा०।

दंपति को मिलाइबो।

जा दिन तें हित जान्यो इतै[१] तब ते नहिं तू कहि काहू सो बोले।
तेरेई ह्वै रहे[२] भाट भटू सब सों गुन रूप[३] सराहत डोले।
देव इन्हे सुख[४] सा सजि कै रस सो रजिकै[५] तजि लाज के ओले।
राधे अहो हरि भावते को भरि के भुज भेंटिये भेंटि ममोले ॥५५॥

[१] जोर्‌यो इतै—सा० नी० ग० गजा। [२] तेरे ह्वै रहैं—नी०, तेरेई ह्यौ रहे—सा०। [३] सोगुनो रूप—भा०। [४] मुख—ग०। [५] रचि के—भा० मो०, रसि के—सा०, रजि पै—नी० ग० गजा०।

देव तज्यो गुन गौरव औ गुरु लोगनि सों[१] छल छिद्र करे मैं।
धाय घसी वृषभान के भौन समान के गाप[२] सबै निदरे मैं।
तो हित जाय हितू हित की मई[३] दूती के दाइनि पाँय परे मैं।
लाल इन्हें उर माल करो गहि डारि है ग्वालि[४] गुपाल गरे मैं ॥५६॥

[१] मैं—ग० गजा। [२] समान के गोप—भा० मो०, समामत गोप—आ०, समान के लोग—गजा०। [३] हित के मई—भा० मो०। [४] गहि डारा है ग्वालि—नी०, गहि डारिहौं ग्वाल—सा०, गहि डारहु बाल—भा० मो०।

दम्पति को भूषण।

धोवा मिलै मृग मैद घसे घनसार सो केसर गारत डोलै।

भूषन वेष बनाइ नये पहिराइ पुराने बिगारत टोलै।
राधे के अगनि ही सिगरौ दिन सगही सग सिगारत डोलै ॥ ५७ ॥

[1] लगारत—व्र० नी०।

प्रसन्न करन।

भरे गुन भार[1] सुकुमार सरसिज सार सोभा पर सागर अपार रस[2] आउडे।
नख नग जाल लाल अंगुरी विद्रुम[3] माल नूपर मराल[4] से अनूप रव[5] नाउडे।
धरिये न पांव बलि जांव राधे चन्दमुखी वारौ मद गति[6] पै गयन्दपति छाउडे।
टिटिहि छुवन देव दूनी होनि भलक पलक छुजे ठाटी हो पलक करौ पांउडे ॥ ५८ ॥

[1] रुचि भार—ग०। [2] गुन—भा० मो०। [3] विद्रुप—भा० मो०, प्रवाल—ग०। [4] मदाल—ग०। [5] अनूप रस—भा०। [6] गनि मद—भा० मो०।

सखिन को मुख सुने मौनिनि को महादुख होत गुरुजनन के गुन को गरूर है।
देव कहै लाख लाख भांति अभिलाषा पूरि पी के उर गमगत प्रेम रस पूर है।
तेरो बलबोल कल भाषिन को स्वाति बुद जहां जाइ पर्यो तहां तैसोई समूर है।
व्याल मुख विष ज्यो पियूष ज्यो पपीहा मुख सीप मुख मोती कदली मुख कपूर है॥ ५९ ॥

नी० गजा० प्रतियो मे ५८, ५९ सख्या के छन्द नहीं हैं। इन प्रतियो मे इन छन्दो के स्थान पर "देव व्रज जीवन" छन्द है।

घाइ सखी के दूतिका के दासी[1] अभिराम।
जासो दम्पति हित करै सिक्षा ताको[2] नाम[3] ॥ ६० ॥

[1] सो दासी—नी० ग० गजा०। [2] तासो ताको—नी० ग० गजा०।
[3] काम—व्र०।

वारई[1] वैस बडो चतुरी हा बडे गुन देव बडीये बनाई।
सुन्दरी हो सुघरी हो सयानी हो सील भरी रसरूप सनाई।
राजबहू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानी मनाई।
नैसिक नाह के नेह बिना[2] चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई ॥६१॥

[1] वारि हौ—भा०, वारि हौ—मो०, हौ—व्र०। [2] नह के नेह बिना—मा०। (केवल मा० प्रति मे चरणा का क्रम १-२-४-३।)

दासी।

दम्पति आयसु[1] करन को सनमुख रहनि विनौनि[2]।
दासी नागरि[3] सेवकिनि कहूं ह्वै रहनि है मौनि[4] ॥६२॥

[1] आयसु—भा० मो०, आपुस—नी० ग०। [2] विनीत—नी०। [3] कहिये—नी० ग० गजा०। [4] कहूं रहनि है मौनि—भा०, कहूं ह्वै रहति सोनि—मो०, कहूं ह्वै रहो मौनि—भा०।

दम्पति एकहि सेज पर पग पीडुरी दाबि दहूं को रिझावनि।
आपने ऊंचे[1] उठौहै कठोर उरोजन कोमलै एहि मिलावनी।

भौहे अमेठि रहै ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति।
लौडी अनोखी लडाइति[२] लाल की पाइ पलोटें की चोटं चलावति ॥६३॥

[१] पाइते वैठि—नी० सा० आ०। [२] लडावति—भा० मो०, लडावते—ग० गजा०, लडावते—सा०।

देवल रावल नागरी इहि विधि बरनौ देव[१]।
राजनगर नागरि कहौं न्यारे लच्छन भेव[२] ॥६४॥

[१] देस—नी० गजा०। [२] भेय—गजा०।

धाय सौं खीन खिनै खिनखीन सखीन सा नेम न प्रेम सँजोगी।
दूतिनहू तिनकी गति पाय न दासी सों नेन उदास वियोगी।
भावे न भोजन पान न भूपन दूपन से जन[१] और अयोगी।
राजबधू बिलखे मन गोवे[२] लखे कहूँ लाल भुवप्पत[३] भोगी ॥६५॥

[१] अन—ग०। [२] गोप—सा०, गोख—ब्र०। [३] लाल जू भूपत—मा०। नी० ग० गजा० भा० मो० प्रतियों मे यह छद नही है।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कविदेव कृते देवल रावल नागरी वर्णन नाम प्रथमो विलास।

राजनगर नागरि दुविधि[१] बरनत सुकवि सम्हारि।
एक हटवई की बहू[२] दूजी क गनिका नारि ॥१॥

[१] विविध—भा० मो०। [२] एक हटवाइन कही—नी० ग० गजा०।

पुनि अनेक करि हटवइनि[१] कही अनेक प्रकार।
गनिका गनै न सत असत चाहे धनी उदार[२] ॥२॥

[१] पन—नी०। हटवरन—नी० ग० गजा०। [२] अपार—नी० ग० गजा०।

तजि अपने कुल धर्म पन[१] करें और व्यौहार।
सोई जाति प्रसिद्ध है बैठे हाट बजार ॥३॥

[१] धर्म येन—मो०, धर्म एन—भा०।

राजनगर की नागरी पन[१] अनेक बहु भाँति।
तिनमे मुख्य मनुष्य तिय वरनि कही दस जाति ॥४॥

पुनि—भा० मो० सा०।

जौहरिनी छपिन कह्यो पटविन और सुनारि।
गधिन तेलिनि तमोरीन कन्दुनि[१] बनिनि कुम्हारि ॥५॥

[१] किंदुनि—भा० मो०।

दरजिन आदि अनेक लघु जाति चूहरी अत।
नगरद्वार गनिका बसै सो चाहे धनवन्त ॥६॥

नी० गजा० प्रतियों मे जाति-नाम के सख्या ४, ५, तथा ६ दोहो के स्थान पर निम्नलिखित दोहे है :—

जोहरनी।

सींची[1] मुरा बुदनि सों कुन्दन की बेलि किधों सांचे भरि काढी[2] रूप जोबनि भरनि है।
पोखी पुष्प[3] रागनि वपुष नखसिख कर चरन अधर विद्रुमन ज्यों धरनि है।
हीरा सी हँसनि[4] मोती मानिक दसन सेत स्यामता लसनि[5] दृग हियरा[6] हरनि है।
जोबन जवाहिर सों जगमग होत जोइ[7] जौहरी की जोई जग जौहर करनि है ॥७॥

[1] सांची—भा० सो०। [2] डारी—ब्र०। [3] पुष्प—नी०, पुष्प—"ष्प" हाशिये पर—मा०। [4] हीरा सम मनि—भा०। [5] लसनु—आ०, बसनि—गजा०। [6] हीरा को—भा०। [7] होत जात—भा० सो०, होति जोति—ब्र०।

छीपनि।

सोने से सोहने[1] गातन सोहै सुहागिनि की अति सूही[2] सुहाई।
देव जू आवै लगी अँखियान में देखतही मुख की अरुनाई।
ज्यों ज्यों रँगै पट रंग निचोरन त्यों निचुरै अँग अंग निकाई[3]।
दै छबि छापै[4] करै मन छीट[5] सु छीपनि बार[6] छिपै न छिपाई ॥८॥

[1] सोने से सोहन—भा० सो०। [2] सोहै—भा० सो०। [3] गोराई—ग० गजा०। [4] छीपे—ग० गजा०। [5] छीर—मा०, छाप—भा० सो०। [6] छैल—ग०गजा०, बाली—मा०।

पटवनि।

रेसम के गुन छीनि छरा करि छोर उँ[1] एंचि[2] सनेह रचावै।
देव दसौ अँगुरी उरझाई कै डोरी गुहै रस रंग मचावै[3]।
मोहनि सी मन पोहति[4] सी जन छोहति[5] सी तनि[6] भौंह लचावै[7]।
चंचल नैननि सैननि सों पटवा की बहू नटवा सी नचावै ॥९॥

[1] कर छोरनि—भा० सो०। [2] पेंछि—नी०। [3] देव दसौ अँगुरी कर पाइ करै उरझाइ कै रंग मचावै—ग० गजा०। [4] मोहन—भा०, जोहति—ब्र०। [5] जनु जोहति—भा० सो०, ननु चोहति—ग० गजा०। [6] छवि—ग० गजा०। [7] चलावै—नी० ग० गजा०।

जौहरनी छीपिन कही कसेरनी सुनारि।
ओपटन हलवाइन बनिन[1] और पसारि॥

[1] ओ पटवन हलवाइन—गजा०।

गंधिनि मालिन तमोलिन बढइन और लुहारि।
दरजिन तेलिन कुम्हारिन भरभूजिन मनिहारि॥
धुनिन जुलाहिन कहेरी और गडरिन नारि।
भटिहारी सिकलीगरनि और धूहरी चमारि॥
ये पत्निये सब इटवदन नृप पुर नगरी नाम।
पुर द्वारे गनिका बसैं नागरिक अति अभिराम॥

देखें "जाति विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १७८, तथा परिशिष्ट ७, पृ०२६४

सुनारिन।

देव दिखावति कंचन सो तन औरन को मन तावै अगौनी।
मुदरि साँचे में दै भरि काढ़ी सी आपने हाथ गढ़ी विधि सौनी।
सोहति[१] चूनरी स्याम किसोरी की गोरी गुमान भरी गजगौनी।
कुन्दन लीक कसौटी मे लेखी सी देखी[२] सुनारि सुनारि सलौनी ॥१०॥

[१] सोभित—भा०। [२] लेखि सु देखि—सा०।

गंधिनि।

अरगजे[१] भीजी मरगजे बागे बनीठनी[२] हाट पर बैठी अनिही[३] सुघरपन सा।
इन्दु सो बदन मृगमद बिन्दु बेंदी भाल झलकै कपोल गोल दूने दरपन सो।
मैन मद छाके नैन देखे[४] देव मुनि मोहैं सोहैं सटकारे[५] बार कारे सरपन सा।
वधु किये मधुप मदन्ध किये पुरजन[६] बाँध्यो मनु[७] गन्धी की सुगध[८] भरपन सों ॥११॥

[१] अगर जै—नी०। [२] बाग मनो बनी—सा०। [३] अनि ही—भा०। [४] ०—ग० गजा०। [५] सैन सोहै सटकारे—ग० गजा०। [६] बधुजन—ग० गजा०। [७] मोह्यो मन—भा० मो०। [८] गध की सुगध—सा०।

तेलिन।

तिल है अमोल लोल नैनी के कपोल बीच कोटिक अनूप रूप[१] वारि फेरियतु है।
सोभा सुने जाकी छवि देव कहै कौन को न होत चित चौगनो चतुर चेरियतु है।
घाट बाटहू मे घट निपट बटोहिनि के नक्ही[२] निहारे नेह भरे हेरियतु है।
सरस निदान ताके[३] परस की कौन कहै पौनहूँ के परस परोसी पेरियतु है ॥१२॥

[१] कपोल गोल बोलत अमोल जन—ग० गजा०। [२] नेह की—नी० गजा०। [३] तकि—भा० मो०। नी० प्रति मे चतुर्थ चरण त्रुटित है।

तमोरिनि

रंगिन चोली में ढोली[१] करी चुनि चाइ[२] सों गाँठि[३] उघेरि अमेठी।
गोरी गुलाब लै नै छिरकै छबि भाव सा देव सुभाव सो एठी
सोने मे अग सुरंगिन[४] ओठनि कौन के जानि[५] हिये मे न पैठी[६]।
ऊँची दुरान पै बेचनि पान तमोरिनि रचत सौचन[७] बैठी ॥१३॥

[१] टोनी—नी०, डोनी—आ०। [२] चार—भा०। [३] सो आछे—भा० मो०। [४] सुरगनि—भा० मो० ब्र०। [५] काज—नी०। [६] देव सु देखत ही हिय पैठी—ग० गजा, नैन पैठी—आ०। [७] ऐंचत सी चित—भा०, प्रानन ऐंचनि—ग० गजा०।

बन्दुनि

मीठो महा मृदु बोल कहै हँसि मोल कहै[१] मुसकाइ सुभाइनि।
देव भुलाइ बटोहिनि बाट डुलावनि चोरि लिये चित चाइनि।
रूप अनूप भरी नग तें सिर सुद्ध सुधारसही[२] की रमाइनि।
हाट के ऊपर हाटक बेनि सी बेचति है हलवा हलवाइनि ॥१४॥

[१] मीठो महा हँसि मोल कहै—हँसि बोलि कहै—आ० नी०, लघु बोल कहै—भा०

मो० । [२] सूक्ष्म सुधारस ही—भा०, सुद्ध सुधारस ही—मो० । [३] हटवी—सा० ।

बनिनि ।

मदन के मोदभरी जोवन प्रमोद भरी[१] मोदी की बहू की दुति देखी दिन[२] दूनी सी ।
चाउ रहै चित मे चितंत दारिदं न राखो वोल मोल मीठो खांड घीउ तें न ऊनी सी ।
राज बाट बीच बाट पारति बटोहिनि की बाट बिनु तौलें मनु[३] आँखिनि मे सूनी सी ।
चूनरी सुरग अग इंगुर के रग देव बैठी परचूनी की दुकान पर चूनी[४] सी ॥१५॥

[१] विनोद भरी—आ० । [२] देखी तिन—भा० । [३] बिनु तोलै मनु लत—आ० । [४] चूंबी—आ० ।

कुम्हारिनि ।

चन्दमुखी मुरि मन्द हँसे मुख[१] मोतिनि को गहि खोल्यो डवा सो[२] ।
देव सुधा भरे ओठ[३] उठे कुच भेंटि अघात[४] सही मधवा सो[५] ।
रूप उम्हार[६] कुम्हार की जाई के जोवन को न तचायो तवा सो ।
काम के चक्र चढ़ायो न को[७] घट काको[८] न कीनो अवाम अँवा सो ॥१६॥

[१] गुन—मा० । [२] उवा सो—नी० ग० गजा० । [३] ऐंठ—भा० । [४] अँचात—नी० गजा० । [५] नहीं मधवा सो—मा०, सही मधवा सो—ग० गजा० । [६] रूप अभार—भा० । [७] नयो—ग० गजा० । [८] याको—भा० मो० ।

दरजिन ।

अन्तर पैठि[१] दुहूँ पट के कवि देव निरन्तरता उर आनैं[२] ।
देत मिलाइ घने अपने गुन सार[३] सुई विधौं दूती[४] सुजानैं ।
ताहि लिये कर मैं घर मैं रहै[५] जाको[६] सियें भरमैं[७] सोई ठानैं[८] ।
होनी[९] करे जनि की दरजैं दरजी की बहू बरजी नहिं मानैं ॥१७॥

[१] बैठी—मा० । [२] मानै—नी० । [३] तार—ग० । [४] दूजी—सा० । [५] फिरै—सा० । [६] जाहि—भा० मो० । [७] मरमै—गजा०, घर मे—सा० । [८] ख्यानै—भा०, सु बखानै—ग० गजा० । मोइ जानै—आ० । [९] कीन्ही—ग० गजा० । केवल आ० प्रति में इसके बाद "बढइन वर्णन" तथा "लुहारिन वर्णन" छन्द अधिक हैं ।

चूहरी ।

पीक्ने कपोल मौका चमकैं चुनी मे दन्त चकत दृगचलनि चितवनि चक्निी[१] ।
कचुकी मे कसे कुच कचन कलो मे भीनें अचर की ओट[२] भाई रचक उमकनी ।
चटकीनी चूनरी[३] मे चोट सी चलावै भौंहे चेटक सी चानि[४] पग जूती कर[५] ककनी ।
पूर मे भरत रग भर[६] लागे भारू देन चूहरी चतुर चित चोरनि[७] चमकनी ॥१८॥

[१] तोमे चार चकत दृगचलनि चक्निी—भा० । [२] अचर की ओर—ग० । [३] चोरन—नी० । [४] चेटक सो लावै—ग०, 'चानि' गजा० प्रति मे त्रुटित है । [५] कटि—ग्र०, जूती कर ककनी—गजा० । [६] भरत रग उडि—मा०, भरत रग भर भर—नी०, ज रत अग भार—आ० । [७] चोरनि—आ० ग्र० ।

गनिका।

चाट उचाट सो चेटक सो[१] चुकुटी भृकुटीन[२] जम्हात अमेठी।
जोवन के इतराहट[३] सो अठिलात अठोठनि ओठनि[४] ऍठी।
सौति भई सब नारिन[५] की सगरे नर मोहि मनो मन[६] पैठी।
देव दृगचल छोरनि सो चित चोरनि यो चित चोरनि बैठी॥ १९॥

[१] चाटु उचोटसी चटु कुसी—नी०। [२] चिकुटी चकुटीन—नी०, भृकुटी चिकुटीन—भा० मो०। [३] इतराहट—ग०। [४] अछोटनि ऐठनि—भा० मो०, अठोवनि जोठनि—नी०। [५] कुल नारिन—सा०। [६] मनो मुख—मो०, मनो रमन—आ०, हियेमनो—ग० गजा०।

जौहरनी हरिनी ज्यों[१] भुलानी छकी छवि छीपिन छोह पछारी[२]।
रूप मदधनि[३] मोहित गधिनी व्याकुल बैन सुनै न सुनारी।
हूक उठी हलवाइन के हिय[४] तीखे कटाछ तमोरिनि मारि।
देखै[५] बनी ना गनै गनिका गुन भायक भोगी भुवाल निहारी॥ २०॥

[१] जा—ब्र०। [२] दीपनि छोह पदारी—ग०। [३] मदगनि—ग०। [४] अनि—सा०। [५] बैली—ब्र०। उपर्युक्त छद केवल ब्र० ग० मा० प्रतियो म मिलता है, भा० मो० नी० गजा० प्रतियो मे नहीं।

इति श्रीनृप भोगीलाल हित बानो देव प्रकाश रस विलास नगर नागरी वर्णन नाम द्वितीयो विलास।

पुर कहिये छोटो नगर राजनगर के[१] तीर।
अपने अपने धर्म मे चारि[२] बरन की भीर॥ १॥

[१] राजनगन की—भा०, राजनगर की—मो०, महानगर के—सा०। [२] नारि—सा०।

तहाँ विप्र छत्री बनिक काइथ कुल अरु सूद्र[१]।
नाऊ माली रजक ए पुरवासी निरदूद[२]॥ २॥

[१] तहाँ विप्र धर्म छत्री बनिक काइथ कुल सूद्र—मो०। [२] निर द्वुद्र—भा० मो०।

पुरवासिनि तिनकी तिया कुल आचार विचार।
निय धर्म सुभ कर्मपन[१] साज बाज[२] व्यौहार॥ ३॥

[१] कर्मपुनि—ब्र०, धर्मकुल कर्म सुभ—मा०। [२] राज बाज—नी० गजा० ताज बाज—मा०।

ब्राह्मणी लक्षण।

सत्य शील सतोष निधि विप्र बधू सविवेक।
न्हान ज्ञान जप तप[१] नियम पूजन यजन[२] अनेक॥ ४॥

नी० गजा० प्रतियों मे दोहे का पाठ इस प्रकार है —
"तहाँ विप्र छत्री बनिज भट कायस्थ सिगार।
नाऊ अरु बारी बर्म धोबी डोम चमार॥
इन प्रतियों मे अतिरिक्त जाति-नाम के उदाहरण—छद भी है। देखें, "जाति-विलास की प्रामाणिकता" शीर्षक—पृ० १३८, तथा परिशिष्ट २—पृ० २६५।

[२] न्हान ज्ञान तप जप—नी० ग० गजा०, न्हान गान जप तप—भा० मो०। [३] कुल आचार—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

गग तरंगिनी बीच बरंगनि ठाढी करैं जप रूप उदोती।
देव दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसैं मुख[१] पकज जोती।
नीर भरी निचुरैं अलकैं[२] छुटिकैं छवकैं मनो माँग के मोती।
बिज्जुन सी भलकैं लपटैं कन[३] कज्जल सी अग उज्जल धोती ॥ ५ ॥

[१] मनु—भा० मो० ग्र०। [२] अलकैं निचुरैं—भा० मो० अलकैं निचुरैं अलकैं—दूसरे "अलकैं" पर हरताल फेरी है—ग्र०। [३] लपटैं भलकैं कन—भा० मो०।

क्षत्रिय-लक्षण।

छत्र धरन छत्रिय कह्यौ भूपति सो ह्वै ठाम।
पूरब में रजपूत अरु पच्छिम छत्रिय नाम ॥ ६ ॥

मा० प्रति में दोहा त्रुटित है।

रज गगन रन दान[१] भट गाय[२] विप्र हरि पीर।
ताकी तिय क्षत्रिय बधू बरनी गुननि गहीर[३] ॥ ७ ॥

[१] रज दान—भा०। [२] गये—मा०। [३] गुन गभीर—ग० मा०।

राजपूतानी।

भाग भरी अनुराग भरी[१] बड भागिनि सुद्ध सुहागिनि छाजैं।
अग अनग तरगनि जानि[२] इकगनिय सब सगिनि साजैं।
सचित कैं रचि बचि बधूनि बिरची सु सची सुनि लाजैं।
प्रेम भरी पुर भूपसुता गुन रूप रची[३] रजपूतिनि राजैं ॥८॥

[१] अति राग भरी—ग्र०। [२] जागि—मा०। [३] रची—भा० मो०।

खतरानी।

ज्यौं बिनही गुन अंक लिखैं घुन या बरि कैं करता करि हार्‍यो[१]।
बारिये कोरि सची रति रानी[२] इतो खतरानी[३] को रूप निहार्‍यो।
देव सु बानक देखि अचानक आन कहूँ न को आन कुमार्‍यो।
लाज रचैं प्रिय और रचैं तो पचैं बिन काज बिरंचि बिचार्‍यो[४] ॥९॥

[१] कर भार्‍यो—ग०। [२] बरिये करि कोरि सची रति रानी—मा०। [३] छत्रिरानी—मा०। [४] लाज रचैं प्रिय और रचैं बिन काज बिरचि बिचारि बिचार्‍यो—भा मो०।

नी० गजा० प्रतियों में संख्या ६, ७ दोह का पाठ इस प्रकार।

जो रच्छै सो विप्र को छितपति पुर पुरहून।
रज गर्ने रन दान भट सो कहिये रजपून॥
ताही सो छत्री कहै हरै सदा पर पीर।
ताकी तिय छत्री बधू बरनी गुन गभीर॥

केवल भा० प्रति में चरणों का क्रम १-४-३-२ है। नी० गजा० प्रतियों में छन्द त्रुटित है और इसके स्थान पर "सूहो पैन्हे आवति" छंद है।

वैस्यानी।

पीरे पीन कुचनि पै[1] कंचुकी बदन कसी निकसी निकाई परै सूहे की सुहाली[2] मैं।
गोरे गरे तरे लरैं मोतिनि की[3] तामैं झमकति धुकधुकी जैसे दूलह[4] बराती मैं।
देव चित चूमे वेप इन[5] चूमे बाजूबन्द ललकत लाल लगिवे की गैंगराती मैं।
नवजोवनी की जोव नीकी[6] जोति जीति[7] रही वैसी बनीनीकी घनी नीकी छवि छाती मैं॥१०॥

[1] कुच नीके—मा०। [2] सुहानी—नी०। [3] मोती कुमननि—नी०। [4] दूलहे—मो०।
[5] अन—सा०। [6] जोवन की—सा०। [7] जानि—ग० गजा०।

काइथिनि।

रीझैं रिझवारि[1] इंदु वदनी उदार सुर रख की सी डार डालै रंग रसियनि मैं।
साँवरी सलौनी गुनबन्ती गजगौनी[2] महा सुन्दर सुघर लाग लाग[3] लखियनि मैं।
जागी सब रैनि बडभागी पिय प्यारे[4] सग प्रेमरस पागी[5] अनुरागी सखियनि[6] मैं।
दार्‌यो से दसन मन्द हँसन विमद भरी सद भरी सोभा[7] मद भरी अँखियनि मैं॥११॥

[1] रिझाई—नी०। [2] जगौ—नी०। [3] अभिलाख—ब्र०। [4] निज पिय—ब्र०।
[5] पतिव्रत पागी—ब्र०। [6] रसियनि—भा० मो०। [7] "मद भरी"—हाशिये पर—ब्र०, सोभा सद भरी—सा०। नी० प्रति में तृतीय चरण नहीं है एव गजा० प्रति में सम्पूर्ण छन्द त्रुटित है।

किरारिन।

नेह सो निचोरै चित चोरैं डीठि जोरैं कौन डारैं लाग्यो डोरैं डारि[1] मुरनि अहार की।
सोने के सरोज से उरोज उमगोहे गोरे अंग मे सुहाई देव महीं अरतार की।
कठ सिरोकठ कटि किंकिनी कक्न[2] कर ऊजरी[3] पगनि गूजरी सु झनकार[4] की।
चद सो बदन मद हँसनि गयद गति कावरी[5] कुरगनैंनी कुँवरि किरार की॥१२॥

[1] लागी डोरैं डारि—भा० मो०। [2] कनक—ग०। [3] ऊजरे—भा० मा०। [4] झमकार—भा०। [5] को अरी—नी० ग० गजा०।

नाइनि।

घर-घर डोलनि सुघर नर मोहिने को[1] ऊधरी फिरनि सनमुख[2] सुख दैनिया।
अरुन बसन वय[3] तरुन चुवत रस कुलटा कुटिल कुच[4] जुवनिन जैंनिया[5]।
जावक कै मिस काम पावक जगावै देव[6] हिय को हरत यो करन करसैनिया।
वैनी गुहिव को[7] पिकवैनी सो तनैनी फिरै[8] पैनी चितवनि की चपलनैनी नैनिया॥१३॥

[1] मोहनी सी—ग० गजा०। [2] सब मुख—भा० मो०, सनमुख—मा०। [3] बैन—मा०।
[4] जग—ग० गजा०। [5] कुच जुवनिन की जैनिया—मा०, जुवनिन भरैंनिया—ग०।
[6] जगावति सी—ग० गजा०। [7] गूदिब को—ग० गजा०। [8] डोलै—ग० गजा०।

केवल भा० प्रति मे छन्द का द्वितीय चरण नहीं मिलता और छन्द के तृतीय चरण के पश्चात् भा० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ इस प्रकार है :

"प्रेमी अनुरागिनि को हियरो रिभावै अरुभावै सुरभावै बिरुभावै नैन पैनिया।"

मालिन।

बीनन फिरत फूल दार्यो दल मे[1] दुकूल खुले भुजमूल लटैं घूमैं ज्यों[2] अलिनिया।
चौसर चमेली चारु पहिरे सिंगारहार लची[3] कुच भार जीति लीनी है[4] फलिनिया।
जुही गुही मांग अग[5] चपक पराग छुटी देव लखे लोचन लजाति है नलिनिया।
बाग मे बिनोकी अनुराग की सी बोहनी सो[6] मोहनी[7] सुघर मन मोहनी मलिनिया॥१४॥

[1] दार्यो नै लसै—ग०। [2] छूटी लटै ज्यो—ग० गजा०। घेरि घूमत—नी० सा०। [3] चपी—मा०। [4] फली जे—ग० गजा०। [5] आंग—भा०, आग—मो०। [6] वाहिनी से—ग० गजा०। [7] मोहनी—भा० मो०। नी० गजा० प्रतियो मे यह छन्द द्वितीय विलास मे है।

धोबिन।

घाट पर ठाढी बाट पारति बटोहिनि की चेटक सी डीठि मन काको न हरति है।
लटकि पटकि पट छियो करि मटकति देव भुज मूलनि ते फल से भरनि[1] है।
जोवन की ऐंठ अठिलात सी[2] उठोहै[3] कुच ओठनि अमेठि पट ऐंठि कै धरनि है[4]।
धोबिन अनोखी यह धोवनि कहायौं करि मूध[5] मुख गखति न ऊधम करति है॥१५॥

[1] मटकाय देव छोटो कहि ठाढे भुज मूल हासी फूल मे भरति है—मा०, मटकाय देव छियो कहै वाढे भुजमूल हांसी फूल मे भरति है—नी०, लटकि लटकि छो करनि खुले भुज मूल भुकि भुकि स्वेद कन फूल से भरनि है—ग० गजा०। [2] अठिलाग सी—भा० मो०, अठिलात से—नी० ग० गजा०। [3] उचौहैं—नी०। [4] ऐंठि पकरनि है—ग० गजा०। [5] धोबिन कहा धौं यह धोबिन अनोखी कर मूध—ग० गजा०, करि मुधा—भा० मो०।

बन मैं जो लघु पुर बसै तासो कहियै गाँव।
तहाँ बसै ग्रामीन तिय गँवारी ताको नाँव[1]॥१६॥

[1] तिन्ह गँवारी नाँव—भा० मो०, ग्रामनि ताको नाउ—ग०, गँवारि सो ताको नाउ मा०।

ग्रामीण नायिका-भेद।

अहिरनि अर काछिनि कही कलारि और कहारि[1]।
और तुनेरिनि[2] पाँच विधि बरनहु नारि गँवारि॥१७॥

[1] कलारिन और कहारि—मा०, नारि कलारि कहारि—भा० मो०। [2] तूनेरी अरु—भा० मो०।

अहीरनि।

माखन सो मन[1] दूध सो जोवन है दधि तें अधिकै उर ईठी।
छैल रँगीली की[2] छाछि के आगे[3] गमेत सुधा वसुधा सब सीठी।
नैननि नेह चुवै कवि[4] देव बुझावत बैन[5] वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहे कहो क्यो न लगै मनमोहनै[6] मीठी॥१८॥

[1] तन—नी० गगजा०। [2] छबीली की—सा० नी०। [3] जा छवि आगे छपाकर छाँछ—ग० गजा०। [4] नहि—सा०, कहै—नी०। [5] चैन—भा० नी०। [6] मन-मोहन—भा० मो०।

काछिन।

राखै समाधान समाधान कै दिखैयनि को ईगुर सी अगनि गुराई[1] है गँवारि मैं।
देव कहै जगमग्यो[2] जोवन जुन्हाई ऐसी एते पै[3] जुन्हाई पैठी सरोवर[4] बारि मैं।
वारनि सुखावति उघार मीस गावति लुभावति[5] सी लोगनि फिरति चहूँ पारि म।
अचल अँगोछै[6] ओछे ओछे कुच पोछै[7] लिये कोछे मे कमल डोलै काछिनि कछार[8] मे॥१६॥

[1] मे अगनि आँगुरी—भा० मो०,। [2] जगमगी नव—ग० गजा०। कही जगमगी—भा० मो०। [3] जोति जोवनी—ग०। [4] कुमुद मोदित—ग० गजा०। [5] भुलावति—भा० मो०। [6] अचर अँगौछि—भा० मो०। [7] ओछि ओछि कुच पोछि—भा० मो०, ओछे आछे कुच पोछे—सा०। [8] कगार—मा०। ग० गजा० प्रतियो मे चरणा का क्रम १-३-२-४ है।

कलारिन।

आपु पियै अरु औरनि प्यावति लाज के मूल ज्यो झूमति डोलै।
जोबन जेब जकी सी कलारि छकी मद सों झुकि झूमति डोलै।
गावनि रीझि रिझावति त्यो मतवारनि को मुख चूमति डोलै।
काम के बान हनी[1] हिय मैं घर बाहिर घाइल घमति डोलै॥२०॥

[1] हनै—सा०। केवल नी० प्रति मे चरणो का क्रम १-३-२-४ है।

कहारिन।

जगमगे जोबन जगी है रँगमगी जोति लाल लहँगा पै लीलो[1] ओढनी कहार की।
भाऊ[2] की भँवरिया मै सफरी फरफरात वेचति फिरति बोने बानी मनुहार की।
चाहेऊ न चाहै[3] चहूँ ओर तें गहत बाहैं[4] गाहक उमाहे रोकि राहै[5] चित हार की[6]।
देखत ही मुख विष लहरि सी आवै लगी जहर सा नैन करै[7] कहर कहार की॥ २१॥

[1] नील—ग्र०, पीली—भा०। [2] भाऊ—भा०, भाम—मो०। [3] चाहै अनचाहै—नी०। [4] गहन डाहै—मा०, गहन चाहै—नी० गजा। [5] रहै—भा० मो०, रहै रोरै—ग० गजा०। [6] गाहक घनेरी दोरि चित अपहार की—नी० सा०, उमाहै राहै रा़कै सु विहार की—ग० गजा०। [7] हाँसी करै—ग० गजा०।

सुनेरिन।

पीरे अँचरान मेन[1] सुगरा लहर लेत लहँगा की[2] लगी[3] लाल रँगी रँगहेरा की[4]।
गात मे गुभौरहाई[5] अँगिया उचौहै कुच बीच पचरँग पोति ताई सीसि फेरा की[6]।
हाथनि[7] लखौटा पाई[8] चूरा पचमनी गरे गारी की जुगल जाले[9] है उन्हारि[10] केरा की।
गजगौनी मौनी[11] धरे नोन की डेन्या सीस[12] नीरज से नैन नारि निरखी सुनेरा की॥१२॥

[1] पीरे पीरे आँचर स्वेत—भा०। [2] लुगी लंहगा की—ग०, लुगी लाल लहँगा की—ग्र०। [3] पीरे अचरा मेन डड़िया अघोतर की लहँगा गरा की—मा० नी० गजा०।

[८] रग रीझ रग होरा की—नी० सा०, रग रँगी रँगहरा की—ग० गजा०। [५] गातन में गुभौरपरि—ग० गजा०, गात मैं गुहै हराई—ब्र०, धावत मैं डोरिहाई—भा०। [६] पोन सरी है तिफेरा की—नी०, पनि सरह तिफेरा की—सा०, अँगिया उमग उर ताई पन पोही पीन पोनि है तिफेरा की। ग०गजा० [७] हाथ—नी० गजा०। [८] बाहु—नी०। [९] जघ—ब्र०। [१०] कोरी मनो—ग०। [११] लोनी—नी०, ग० प्रति मे भी पहले "नोनी" पाठ था। परन्तु बाद म उसी कलम मे उसे "लोनी" बनाया गया है। [१२] ठरैया सीस—ग० भा० मो०, सिर—नी० सा०।

वन्या।

वन्या वनवासिनि वधू ताहू त्रिविधि बखानि।
मुनि त्रिय अरु तिय व्याध की और भीलनी जानि ॥ २३ ॥

मुनि-त्रिया।

फूली लतान को छत्र दिये नव[१] पत्र सुखासन है सुखकारी[२]।
चौंर करै चमरी चय मोर[३] चकोर मृगी मृग चाकर भारी।
गावत भौंर रिझावति[४] कोकिल आइ मिले सगरे बनचारी।
जीति लिये मृगराज सबै जग राज करै रिषिराजकुमारी ॥२४॥

[१] मन—भा०। [२] हितकारी—मा०। [३] ज्यों मरीच मयूर—सा०, चय मोर—ग० गजा०। नी० मे "चम" अपठ है। [४] स्यामा रिझावति—सा०, भौंर लजावनि—भा० मो०।

व्याध-वधू।

है करलीन लिये परवीन बजावनि गावति मोहनी[१] ताननि।
मोहि लिये खग औ मृग[२] मानुष गान सुनै ममुहे करि काननि।
मोर पर्यो सगरे बन[३] बीच न कोऊ रह्यो तपसी थिर थाननि[४]।
बच त्रिलोकनि बेधि हियो सु कियो बध व्याध बधू बिन[५] बाननि ॥ २५ ॥

[१] मोहति—ग० गजा०। [२] मृग औ खग—भा० मो०। [३] बृज—ग० गजा०' [४] बाननि—नी०, ताननि—ग० मो०। [५] बध—ब्र०।

भीलनी।

स्यामघन ऐसे तन[१] सघन जघन कुच[२] घने घुंघराले बार जोबन जकी फिरै।
मोरपच्छ भूषन[३] बिराजै गुंजमाल[४] गरे मद भरे नैनन की[५] टारैं न टकी[६] फिरै।
बिलकि बिलकि[७] पुलकत काम बिकल ह्वै सीतल सलिल अवगाहन[८] थकी फिरै।
उरझनि भारनि मैं सुरझि[९] पहारनि मैं गाढ़ी गूढ़ गैल छैल भीलनी छकी फिरै ॥ २६ ॥

[१] केस—हाशिये पर पेंसिल से "तन"—ग०। [२] जघन उँचे—मा०, मघन कुच—हाशिये पर पेंसिल से "स" के स्थान पर "ज" ग०। [३] भू पर—मो०। [४] गलमाल—नी०गजा०। [५] नैनन सो—मा०, नैन नेव—भा० मो०। [६] मटकी—नी० गजा०। [७] बिलखि—सा०। [८] नद गाहन—ग० गजा०। [९] सुरभि—नी० मा०।

सैन्या।

वटक बसै ते सैन्या[१] तीनि भाँति वहु ताहि।
इक बृपली अरु वैस्या कहत[२] मुकेरिनि[३] जाहि॥ २७॥

[१] ते सैन्य तिय—ग० गजा० सा०। [२] वैस्या दुतिय त्रितिय—भा० मो०। [३] सुकेरिन—भा० मो० नी०।

वृषली।

लहलह्यो जोवन हँसत उहउह्यो मुख गहगह्यो काजर चखनि चटकायो है।
कानन करन फूल सोहत जरी दुकूल नथ म अथक[१] लटकन लटकायो है।
लालच लपटी टेढ़ी[२] चितवनि मन्द चाल[३] चीकने कपोल गोल को न भटकायो है।
भौहनि मरोरि मुरि मोरे गोरे गातन सों[४] वातनही सगरो वटक अटकायो है॥ २८॥

[१] अकथ—पेंसिल में १-२—सख्या डालकर अथक'—ग०, अछत—सा०, अधिक—भा० मो० नी०। [२] लाल चल बैठी गढी—भा०, लालच लै बैठी एठी—ग० गजा०, बक—सा०। [३] गति—सा०। [४] गात देखो—भा० मुरि मुरि मोरि गोरे गात—ब्र०, गात बात—ग० गजा०, गोरे गात—मो०।

वैस्या।

उज्जल उज्यारी सी झलमलात झीमी मारी[१] झाँई सी दिखाई देत देह की[२] विलास सी।
जोवन की जोतिनि सा हीरा लाल मातिन सा नख तें सिखा लौं मिलि एक ह्वै महालसी[३]।
बोलनि हँसनि मन्द चलनि चितौनि चारुताई[४] चतुराई चित चोरिवे की चाल सी।
सग मैं सहेली सान वेली सी नवेली बाल रगमगे अग[५] जगमगति मसाल सी॥ २९॥

[१] झलक झमकत झीनी सारी—आ०। [२] दिखात देह दीपक—सा०, दिखाई दह दीपति—नी०, दिपति देह दीपति—ग० गजा। [३] जोवन की जोतिन सा नख तें सिखा सा मिलि कहे कवि देव ऐसी एक ह्वै महाल सी—भा०। [४] चारु अति—सा०। [५] सगमग अग—नी०, सग मैं सहली सो नबेली बाल रगमगे अग—भा०।

मुकेरिन।

राची कर महदी महावर सा राजै[१] पग घाघर की घूम गति घूमति घनरनि की।
रग भर गोरे अग अँगिया लसति लीली लाल ओढनी मैं[२] डीठि डालै चितचोरनि[३] की।
हाटक बुटी सौं[४] बाढी हाट पै हँसति ठाढी बाट बिनु तोलै[५] बाट पारै बहुतेरनि की।
गाहक बुलावैं[६] सैन करैं देन करैं सौदा[७] नैननि मुकरि जाइ[८] मुकरि मुकेरिन की॥ ३०॥

[१] राची—ब्र०, भीगे—सा०, भीजे—नी० गजा०, भीनें—ग०। [२] पै—पार्श्व पर दूसरे हस्तलख म—ब्र०। [३] चित चोरनि—भा० मो०, ग० प्रति में हरताल की सहायता से 'चोरनि' का "चैरनि'। [४] पटी सी—भा०। [५] तोलै—भा० मो०। [६] बुलाइ—सा० नी० ग० गजा०। [७] दैन करे सो—सा०, देन करै सोस—नी०। [८] नैन मुकराइ जाति—ग० गजा० नैन मुकराय जाइ—नी०।

पथिक-वधू।

सदा वसै जो[1] पन्थ मैं पथिक वधू तेहि जानि।
बनिजारनि जोगिनि नटी कँगहेरनि वखानि[2] ॥३१॥

[1] ते—भा० मो०। [2] वजारनि पहिचानि—ग० गजा०, हगहेरनि पहिचान—नी०, बनजारनि जोगिनि वनिनि ताहू त्रिविध वखान—भा०।

बनजारिन

एड़िनि ऊपर घूमत घाघरो तैसियै मोहनि सारू की सारी।
हाथ हरी हरी छाजे छरी अरु जूती चढ़ी पग फंद फुँदारी।
ऊँचे उरोज हग घुँघुचीनि कैं हाँ कहि हाँकनि[1] बैल निहारी।
गालनही दिखराइ बटोहिन बातनही बनिजै बनिजारी ॥३२॥

[1] हाँकनि हाँकनि—गजा०।

जोगिन।

डोले बन बन जोर जोवन के जाचकनि रास बस कीने बनवासी बोभि रहे हैं[1]।
बाँसुरी बजावनि मधुर सुर गावनि सु धुनि[2] सुनि सीस धुनि मुनि खीभि[3] रहे हैं।
मोहे[4] महा पन्नग अनेक अग नग खग[5] कान दे दे कोन भील केते भीभि[6] रहे हैं।
ठाढे ठिग बाघ बिग[7] चीते चितवत दृग भांत मृग माखा मृग रीभ रीभि[8] रहे हैं॥३३॥

[1] थिरह रहे—मा०। [2] मधुर—मो०। [3] रीभि—नी०। [4] मोहे—ब्र०। [5] अनगन नग—भा० मो०, पनअनेक अनग नग—नी०, अनेग अग नग—गजा०। [6] केते रीभि—भा० मो०, भाव भीभ—ग० गजा०। [7] वग—मो०, बन—भा०, बीच—ब्र०। [8] चितवत भांत मृग माखा मृग मुख रीभि रीभि—ग० गजा०, रीभ रीभ—भा०।

नटी।

पातर अग उड़ै बिनु पाँखनु कोमल भायनि प्रेम झिरी की[1]।
जोवन रूप अनूप निहारि कै लाज मरै निधिराज सिरी की।
कीन मैं नैन कलानिधि सा मुख को गनै कोटि कला[2] गहिरी की।
बांस पै सीस अकास मै[3] नाचनि को न छकै छबि सोनचिरी की ॥३४॥

[1] कामत बानि चवान त्रिगी की—ग०। [2] कोटि कला गुनकी—ग० गजा०। [3] मे—मो०, पै—ग० गजा०।

कँगहेरनि।

साँवर अग मरोज से नैन उरोज उठे अठिलात कपोलै।
एड़नि सौं भुजमूल उठाय अँगूठनि चालि[1] चवाय सों बोलै।
हाँसी मे डारनि फाँसी बिसासिनि पोहनि सी चित टोहनि डोलै[2]।
सोरपखा घुँघुचीन के जेवर जेब सो जेवरी बेचनि डोलै ॥३५॥

[1] अँगूठ नचाय—मा० नी०। [2] डोलै—ग० गजा० भा० मा०, बोलै—नी०।

जाति करम गुन अगन पन[१] नारि अनेक प्रकार।
ताते मैं सूछम कछू कही[२] बुद्धि अनुमार ॥३६॥

[१] अग नव—सा०, अन पन—नी०, आपने—गजा०। [२] कही कछू—भा० मो०।

मारग मेन अरन्य तियान कमान, ज्यो भू दृग वान कसी से।
पेखे पुरदर ज्यों पुरनारि गँवारिग्नि सीस लचाइ[१] ससी से।
भोगी भुवप्पति भूपसुतानि अनूपम जानि बिलोके वसी से।
रूप मधूनि अँचे उर धूनि सराहि के विप्र बधूनि असीसे ॥३७॥

[१] नवाइ—ब्र०। उपर्युक्त छद केवल ब्र० ग० सा० प्रतियों मे मिलता है, भा० मो० नी० गजा० प्रतिया मे नही।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देवदत्त कृते पुर वन सेन्या मार्ग वधू नाम तृतीयो विलास।

काम अन्ध कामी[१] जगत लखे न रूप कुरूप।
हाथ लिये डोलति फिरै कामिनि छरी अनूप ॥१॥

[१] अन्धकारी—भा० मो०।

ताते कामिनि एक सो[१] कहन सुनन को भेद।
राचै प्यावै[२] प्रेमरस मेटै मन के खेद ॥२॥

[१] एक ही—भा० [२] राचै पागै—भा०, राचै पावै—मो०, राच्यो पावै—ग०।

रची राम सँग भीलनी जदुपति सग अहीरि।
प्रबल सदा बनवासिनी नवल नागरिन पीर ॥३॥
कौन गनै पुर नगर बन[१] कामिनि एकै रीति।
दग्वत हरै विवेक को चित्त हरै करि प्रीति ॥४॥

[१] पूरब नगर—भा० मो०।

ठाढी ही बाग मे भागभरी मनौ काम भुजगम के बिष भोई[१]।
आनि परी चित बीच अचानक जोवन रूप महारस[२] मोई।
नागरि थी[३] पुरवासिनिही कि गँवारि किधौ बनवासिनी कोई।
को गनै भोजन की जन की पन की तन की मन की मति खोई ॥५॥

[१] चोई—भा०। [२] मही रस—सा०। [३] कै—ब्र०।

अष्टागवती नायिका।

जा कामिनि मे देखिये पूरन आठौ अग।
ताही बरनौ नायिका त्रिभुवन मोहन रग ॥६॥

नायिका के अष्टाग।

पहिले जोवन रूप गुन सील प्रेम पहिचानि।
कुल बैभव भूपन बहुरि आठौ अग बखानि ॥७॥

यौवन लक्षण।

बालापन को भेदि कै छवि को अधुर होई।
जग मोहे दिन दिन बढै जोवन कहिये सोई ॥८॥

उदाहरण।

मेलत ही मे भयो कछु मेल मेलावनहारी[1] भईं मब सौनें।
देव जू चौंकि चिते चकिते ह्वै चवाव[2] करैं उठि आपनी गौनें।
भोरई[3] मांझ तें मूर उदौ लगि भोरई[4] मांझ तें मूर उदौनें।
रूप की ओप अनूप घरी पल बेलि[5] सी बाढ़ति कान्हि परौनें ॥९॥

[1] सेलावनवारी—भा० मो०। [2] चकिवे मु चवाव—भा०। [3] औरई—भा०। [4] औरई—भा०, ह्वै रही मूर उदौ लगि सांझ तें औरई—मा०। [5] वालि—नी० ग० गजा० भा० मो०।

लहलही बेस उलही है दुलही की देव[1] उर मे उरोज जैसे उमगत[2] पाग है।
अनगिने दिनन[3] अनूप दुति आनन की देखन ही उपजै[4] अनूठो अनुराग है।
तैसीयै तरल तीखे अनखोहे[5] नैनन तें[6] निचुरै सनेह[7] सूधो भामते[8] को भाग है।
सोने मे सुरगनि तें चपा चारु अगनि तें रगनि सों उठन[9] तरगनि सुहाग है ॥१०॥

[1] देव दुलही की—नी० ग०। [2] उमरत—मो०, उमड़त—अ०। [3] गुनन—मा०, दिन मे—नी० ग० गजा०। [4] उपजत—भा० मो०। [5] अनमिख—सा०। [6] नैनन वे—भा०। [7] निस दिन नेह—ग० गजा०, निस दिन सनेह—नी०, निचुरै निपुन—भा०, चुरैन सनेह—मी०। [8] भामनी—नी० ग० गजा०। [9] सो ऊचन—भा० मो०।

ज्ञात-यौवना।

पीछे तिरीछे कटाछनि[1] सों इत नैं चितवै री जना लनचो है।
चौगुनो चैन चवाइनि के चित चाई चढ़ै है चवाई मचो है।
जोवन आयो न पाप लग्यो रुचि देव रह गुरु लोग रिसो है।
जो मे लजैयै जो[2] जैयै जितै नितै पैं यै कलक चितैयै जो सो है ॥११॥

[1] कटाच्छ—नी०। [2] जो मे लजैयै औ—भा० मो०।

रूप-लक्षण।

देखत ही जो मन हरै[1] सुख अँखियन को देइ।
रूप बखानै ताहि जो जग चेरो कर लेइ ॥१२॥

[1] जो बन रहै—नी० गजा।

उदाहरण।

कुन्दन मे अग नव जोवन सुरग[1] उठे उरज उतग धन्य प्यो जु परसत है।
मोहनि किनारी वारी तनसुख सारी देव सीस सीसफूल अधखुल्यो दरसत है।
बेंदिया जराउ बड़े मोतिन सों नीकी नथ हँसन[2] तरौननि सों रूप सरसत है।
गोरी गजगौनी सौनी नवल दुलहिया के[3] भाग भरे सुख पैं सुहाग बरसत है ॥१३॥

[1] कुन्दन मे अग नव जोबन से सुरग—नी०, नव जोवन सोरग—मा०, जोवन तरग—अ०। [2] हसन—मा०। [3] दुलहैया तेरे—भा०।

घूंघट सुघट अबै[1] ऊघट तें जैहै देव उदत मनोज जग[2] जुद्ध जूटि परेगो।
ऐसो न सुगेह सिय को कहै अतोर बात[3] सोर निहै लोक की सुनाई लूटि[4] परेगो।

दैयनि[५] दुराउ मुख नलरू तरैयनि को मडल औ मटकि[६] चटकि टूटि परैगो।
तो चितै सकोचि सोचि मोचि मद[७] मूरछि कै छोरतें[८] छपाकर छ्पा सो छूटि[९] परैगो ॥१४॥

[१] आवै—ब्र०। [२] ओज—नी० ग० गजा०। [३] ऐसी न सरूप सीये को कहै अलोक बात—ब्र०, ऐसी न सुरोक सीक को के कहे अलोक बात—सा०, ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलक बात—ग० गजा०, को कहै अलोक बात सो कहै सुरोक सिय—मो०, को कहि अलोक बात सो कहै सुरोक सिय—भा०। [४] लटि—मो०। [५] दैवनि—भा०, दैपनि मो०। [६] मडल उमडि कै—नी०। [७] मृदु—सा०, मग—सा०, मेड—ग० गजा०। [८] दौरिकै—सा०। [९] टूटि—नी०।

गुण-लक्षण।

काइक वाचिक करम करि बाँधै सब को चित्त।
राव रक रीझै[१] गुनहि होइ जगत को मित्त ॥१५॥

[१] माने—नी० ग० गजा।

उदाहरण।

गाइ बजाइ नचाई कै नैन[१] रिझाइ के भाव[२] बताइवो[३] सोह्यो।
चित्र विचित्र कला कविता रस देव जू चातुरी सो[४] चित पोह्यो[५]।
भोजन भूषन भाष न भेष विसेष सबै[६] रचना रुचि रोह्यो।
रूप उजागरि[७] राधे अहे गुनआगरि[८] तैं जगमोहन मोह्यो ॥१६॥

[१] नारि—भा० मो०। [२] नाथ—भा०। [३] बतायो सु—नी० ग० गजा०, तताइवो—म०। [४] देव जू चित्र विचित्र कला कविता रस चातुरी सो—नी० ग० गजा०। [५] चोह्यो—नी०। [६] रचै—भा० मो०। [७] ए गुन आगरि—नी० ग० गजा०। [८] जग मोहनी—नी० ग० गजा।

वेदनहू नने गुन गने[१] अनगने भेद भेद बिन जाको गुन निरगुनहू पहै[२]।
केतिक[३] विरच्यो ऐसो रचै रुचि[४] रच्यो महा सुखनि को सच्यो जहाँ बच्यो बृजभूप है।
सोई[५] सुनि सुनि अवराधा अब राधा जस जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है।
तेज है कि तप है कि सील है कि सम्पति है राग है कि रग है कि रस है कि रूप है ॥१७॥

[१] ०—मो०, जाके—भा०। [२] निरगुन रूप है—ग० गजा०, पुहै—ब्र०। [३] कौतुक—सा०। [४] ऊचि—ब्र०, डरि—ग०। [५] तोही—भा० मो०।

शील-लक्षण।

कोमल वचन प्रसन्न मन सज्जन रजन[१] भाइ।
दीन दया थिरता छिमा ये बहु सील सुभाइ ॥१८॥

[१] सज्जन हूजन—ब्र०।

उदाहरण।

भोन भरे सगरे बृज माँह[१] सराहत तेरेई[२] सील सुभाइन।
छाती सिराति सुने सबकी चहु ओर तें चोप चढी चित चाइन।
ए री बलाइ ल्यो मेरी भटू सुनि[३] तेरी हौं चेरी परौं इन पाइन।

सौतिहू की अखियाँ सुख पावति तो मुख देखि[४] सखी सुखदाइन ॥१९॥

[१]सोर—सा०,सो जु—नी० गजा। [२] हैं तेई—सा०। [३] एरी अहे ठकुराइन सु तेरी भटू सुनि—गजा० ऐरी अहे ठकुराइन मेरी सु भटू सुनि—ग०। [४] देखे—नी० ग० गजा०।

नेह भरी सब देह[१] खरी रस मेह झरी अँखियानि विसेषी।
भौहनि मे झलकैं मुसकानि[२] सी काम कमान मनौ अवरेखी।
देव सुधा बरसैं[३] मृदु बोल सुधानिधि[४] मे न इती[५] रुचि[६] पेखी।
कैसेहू क्योंहू[७] रिसात[८] जु पै सरसात घनी अरसात न देखी ॥२०॥

[१] तें सदेह—भा०, रस देह—मो०। [२] मुक्तान—नी० गजा०। [३] सुभाव रसे—भा०, सभा बरसे—मो०। [४] सुधाधर—नी० ग० गजा०। [५] रती—सा०। [६] छवि—ग० गजा०। [७] केहू—सा० नी० गजा०। [८] सिरात—ग०।

म लक्षण।

सुख दुखहू मे एक सी तन मन बचननि प्रीति[१]।
सहज नेह नित नित नयो जहाँ सु प्रेम प्रतीति ॥२१॥

[१] मीनि—नी० ग० गजा।

उदाहरण।

रीझि-रीझि रहसि रहसि हँसि-हँसि उठ सासैं[१] भरि आँसू भरि कहति दई-दई।
चौंकि चौंकि चकि-चकि औचकि उचकि देव छकि-छकि बकि-बकि उठति[२] बई बई।
दुहुन के गुन रूप[३] दोऊ बरनत फिरैं घर न[४] थिरात रीति नेह की नई-नई।
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय राधा मन मोहि-मोहि मोहन भई-भई[५] ॥२२॥

[१]हासैं—नी०। [२]परति—नी० ग० गजा। [३] रूप गुन—नी० ग० गजा०। [४] पल न—भा०। [५] भई-भई—नी० ग०। केवल भा० प्रति मे उपरोक्त छन्द त्रुटित है।

औचक अगाध सिन्धु स्याही को उमगि आयो तामे तीनों लोक बूडि गये एक भग मैं।
कारे-कारे[१] कागद लिखे ज्यौं कारे आखर सु[२] न्यारे करि बाँचै कौन[३] रचि[४] चित भग मैं।
नैननि मे[५] तिमिर अमावस की रैनि अरु जम्बू रस[६] बिन्दु जमनाजल तरंग मैं।
यो ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई[७] स्याम रंग ह्वै करि[८] समान्यो स्याम रंग मैं ॥२३॥

[१] कोरे-कोरे—भा०, कोरे-कोरे—मो०। [२] पै कारेई बरन लिख्यो—मा०, लिखे ते चारु अक्षर सु—नी०, लिखे ते चारु अक्षरनि—गजा०, आखर लिखे ते चारु कागदनि—ग०, कागद लिखे कारे आखर ज्यों—प्र०। [३] न्यारे कौन बाँचै कौन—ग०। [४]होन—सा०, नाचै—नी०, जाँचै—ग० गजा०। [५] आँखिन मे—मा० नी० ग० गजा०। [६] जम्बू नद—ग० गजा। [७] आली—मा०। [८] ह्वै कैसो—नी० ग० गजा०।

सो सजोग वियोग करि द्वै विधि[१] बरनत प्रेम।
सुखदायक सजोग मे[२] दुख वियोग को नेम ॥२४॥

[१] द्वै विधि—मा०, निविधि सु—नी० गजा०। [२] है—प्र०।

तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि हारी पाँइ परि-परि तौं न कीन्ही तै सम्हार[१]।
ललन बिलोक देव पर न लगाए तवया मन न दीन्ही तै छनन उछनहार।

ऐसे निरमोही सो सनेह बाँधि हौ बँधाई आपु[1] विधि बूड्यो व्याधि[2] बाधा सिन्धु निराधार।
ए रे मन मेरे तै घनेरे दुख दीने अब एक बार दै कै तोहि मूँदि मारो एक बार ॥२५॥

[1] ०—भा० मो० नी०। [2] आय—भा०। [3] व्याध—भा० मो०।

कुल लक्षण।

गुरुजन पूजन[1] धर्मपन लीने लोक विचार।
लाज काज गौरव जहाँ सोई[2] कुल आचार ॥२६॥

[1] पूजा—नी० गजा। [2] सो कहि—सा०।

उदाहरण।

आपने ओक[1] रहे अवलोकि तिलोक की लीक[2] सदा निरजोसी।
लाज के काज सुकाज[3] करै सुनि साधु समाज असीस दै पोसी[4]।
कीन्ह प्रसन्न सबै करि सेवन काहू कहूँ गुर देव न[5] दोसी।
दो कुल निर्मल मो कुल कीरति गोकुल मो कुल नारि[6] न तोसी ॥२७॥

[1] ऊकि—भा०, ऊक—मो०। [2] विलोकिक एक—भा०, तिलोक की एक—मो०। [3] माज सुकाज—सा०। [4] दयोसी—भा०। [5] गुरु लोगन—नी० ग० गजा०। [6] मैं नारि नारि—सा० नी०।

तेरे अनगिने गुन रतन जतन करि गुरुजन पावै पैरि प्रेम परखियन मैं।
पार न लहत गहराई न गहत देव केवल सुधाई मधु जैसे मखियन मैं[1]।
एरी कुलवधू मेरी राधे ठकुराइनि हौ पाइनि परति तेरी चेरी सखियनि मैं।
सील की सलिलनिधि विधि तू[2] बनाई जाके राजति जहाज भरी लाज अँखियन मैं ॥२८॥

[1] मेसे मखियन—नी० ग० गजा०। [2] विधिनै—सा०।

वैभव-लक्षण।

जहाँ सहज सम्पत्ति सुखद[1] प्रभुता को अभिमान[2]।
थिरता गति गम्भीरता[3] वैभव ताहि बखान ॥२९॥

[1] सपती न सुख—नी०, दम्पती न सुख—गजा०, दम्पति सुखद—ग०, सपत सुखनि—मो०, सम्पति सुपुनि—मो०, सम्पति सुपुनि—भा०। [2] अनुमान—नी० ग० गजा०। [3] गजगम्भीरता—नी०, जग गम्भीरता—गजा०।

उदाहरण—

फटिक सिलानि सौं सुधार्‌यो सुधा मंदिर उदधि दधि को सो अधिकाइ[1] उमगे अमन्द[2]।
बाहर तै भीतर लौं भीति न दिखैये देव[3] दूध[4] को सो फेन फैल्यो आँगन[5] फरसबन्द।
तारा सा तरनि तामे ठाढ़ी झिलमिली होति[6] मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद।
आरसी अम्बर मे आभा सी उजारी लागै[7] प्यारी राधिका की प्रतिबिम्ब सी लगत चन्द ॥३०॥

[1] उफनाय—भा० मो०। [2] अनद—ग०, अधिक ह्वै भलके अमद—ग्र०। [3] दिखाई देत—भा० मो० ग्र०। [4] छीर—भा० मो०। [5] चाँदनी—भा० मो०। [6] देव जगमग होन—भा० मो०, ठाढ़ी भिलमिलाय—सा०। [7] देव—ग्र०, ठाढ़ी—भा० मो०।

रूपे के महल धूपे अगर उदार द्वार भँभरी भरोखा मूदे चारु चिकराती मैं।
ऊध अध मूल तूल पटनि लपेटे चहूँ पटल सुगन्ध सेज सुखद सुहाती मैं।
सिसिर मे सीत प्रिया प्रीतम सनेह दिन छिन मे बिहात देव राती नियराती मैं।
केसरि कुरग सार रग से लिपत दोऊ दुहूमे दिपत औ छिपत जात छाती मैं ॥३१॥

नी० गजा० प्रतियो मे वैभव के उपरोक्त दो उदाहरणो के स्थान पर "पामरनि पाउडे" तथा "उज्जवल अखड खड" छद हैं। ग० सा० प्रति मे "पामरिन पाउडे", "फटिक सिलानी सो" एव "उज्जल अखड खड" छन्द हैं। "रूपे के महल" छन्द इन प्रतियो मे नही हैं।

भूषण-लक्षण—

चमतकार रचनानि करि बहु निधि माडे[1] गात।
भूषन बेस बिसेष कहूँ[2] अलकार अवदात ॥३२॥

[1] मोहै—ग० गजा०। [2] विसेष करि—सा०, विसेषहू—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

कचन किनारीवारी सारी तामकी मैं आसपास भूमी[1] मोतिन की झालरि इकहरी।
सीसफूल बेना[2] बेंदी बेसरि औ बीरनि[3] मैं हीरनि की भीर मैं हँसनि[4] छबि छहरी।
चन्द के बदन भानु भई वृषभानजाई उवनि लुनाई[5] की लुनिनि[6] की सी लहरी।
धाम धाम धी ज्यो पथिलात घनस्याम मन क्यो सहै समीप देव दीपति[7] दुपहरी ॥३३॥

[1] तनी—भा०। [2] बेंदा—ग०, बेनी—सा०। [3] बारनि—सा०। [4] भीरत मे हँसनि—सा० ग० गजा०, भीर मे अधिक—भा० मो०। [5] यौवन लुनाई—भा०। उवनि जुन्हाई—ग० गजा०। [6] लुनाई—मो०। [7] देखै या—सा०। केवल नी० गजा० प्रतिया मे इस छद के पश्चात् "कुदन से अग" छन्द अधिक है।

गोरे मुह गोल हरे हँसति कपोल बडे लोचन बिलोल बोल[1]लोने लोन[2] लाज पर।
सोभा लागे लाल लखिबे को[3] कबिदेव छबि[4] सोभा मे उठत रूप सोभा के समाज पर।
बादले की सारी दरदावन[5] किनारी जगमगे जरतारी झीनी झालरि मे साज पर।
मोती गुहे कोरन चमक चहूँ औरन ज्यो तोरन तरैयनि की तानी[6] द्विजराज पर ॥३४॥

[1] लोल—भा० मो०। [2] लोने निज—सा०। [3] लखि सोभा—सा०, लखि सोभा—प्रतियो मे इस छन्द के नी० ग०। [4] ललचात लखिबे को देव—गजा०। [5] बर दामन—भा०। [6] तारी—मो०।

अष्टांगवती।

सुन्दर जोबन रूप अनूप महा गुन गान की रासि मची तू।
सीलभरी कुल दोऊ[1] उजागर नागरि पूरन प्रेम पची तू।
भाग को भौन सुहाग सो भूषित भूमि को भूषन साँचो मची तू।
आठहूँ अग तरगनि रग[2] भरे रचि[3] मचि बिरचि रची तू ॥३५॥

[1] बीच—सा०, रूप—नी० गजा०। [2] अगनि रग तरग—ग० गजा०। [3] सुचि। भा० मो०।

थोरीयै वैस बिसाल लसै कच[1] टेढी चितौनी पै[2] सूधी चलै पथ।
गोरे से अग[3] करेरे कुचवृत[4] लाज लची[5] गुन ऊँचे मनोरथ।
लक दुर्यो[6] उमग्यो उर[7] देव सु बोल हरे[8] गरुई सी गिरा[9] लथ।
नैन बडे बडे नैसुक अजन मोती बडे बडे नैसुक सी नथ॥ ३६॥

[1] करि—सा०, कुच—नी० ग० गजा०। [2] चितौनी मे—भा० मो०, चितौनि यो—सा०। [3] कोवरे से अग—भा० मो०, कोरे से अग—नी० ग० गजा०। [4] कुलवृत—नी० ग० गजा०। [5] तची—ग०। [6] लग्यो—भा० मो०। [7] कुच—सा०। [8] देव उठे कुच लक दुरो लटि बोल हरे—नी० ग० गजा०। [9] गरा—नी० ग० गजा०।

एहि बिधि आठौ अग करि[1] पूरन नारि जु होइ।
ताही बरनी नायिका जेहि बरनत कवि लोइ[2]॥३७॥

[1] कहि—नी०। [2] तिहि बरनै नायिका हौ जिहि बरनी कवि लोइ—भा० मो०, मो० प्रति मे चरण का स्वीकृत पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे है।

केसव आदिक महाकवि[1] बरनी सो बहु ग्रथ।
हौहू बरनत ताहि अब सरस अपूरब पथ॥३८॥

[1] आदि महा कविन—नी० ग० गजा० सा०।

एक बार जद्यपि कही मति प्राचीन प्रकास।
भाव सहित सिंगार रस रचिकै भावविलास॥३९॥
रसविलास रचि ग्रथ सो कहत दूसरी बार।
वही नायिका भेद सब[1] सुनहु नवीन प्रकार॥४०॥

[1] अब—ग०।

जौ[1] तिय जोबन रूपवती कुल सील सुधा गुन गौरव रोही।
प्रेम भरो कुल कीरति मूरति भूपन भेप बिभौ उभरोही।
देव जिन्हे[2] अभिमान बडो सनमान[3] बडो ते सबै छबि छोही।
भोगी भुवाल के नैन सरोजन रोज निहारै मनो जव मोही॥४१॥

[1] सो—ग०। [2] जी है—सा०। [3] मन मान—ग०। उपर्युक्त छन्द केवल व्र० ग० सा० प्रतियो मे है, भा० मो० नी० गजा० प्रतियो मे नही।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देवदत्त कृते अष्टांग नायिका वर्णनम् नाम चतुर्थो विलासः।

नायिका-भेद।

आठ भेद करि नायिका[1] बरनत हैं कवि मन्त।
भेद भेद प्रति होत है अन्तरभेद अनन्त॥१॥

[1] नायकन के—नी० ग० गजा०, नारीन के—सा०।

जाति कर्म गुन देस अरु काल वहिक्रम जान।
प्रकृत सत्व नायिका के आठौ भेद[1] बखान॥२॥

[1] अग—व्र०, वेद—भा० मो०।

जाति-भेद।

पद्मिनि चित्रिनि संखिनी हस्तिनि कहौं विचारि।
जाति भेद यहि भांति सो कही नायिका चारि ॥३॥

पद्मिनि-लक्षण।

हंस बेष भाषा गमन[1] लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्य[2] सील सुचि पद्मिनि पद्म सुवास ॥४॥

[1] हंस भाय हंसै गमन—भा०। [2] सति—नी०, सत्ति—गजा०, सती—ग०।

उदाहरण।

सरद के बारिद[1] में इन्दु सो लसत देव सुन्दर बदन चन्द्रिका[2] सो चारु चीर है।
सोधो सुधाबिन्दु मकरन्द सो मुकुतमाल लपटी[3] मनोज तरु मंजरी सरीर है।
सीलभरी सलज सलोनी मन्द[4] मुसकानि राजै राजहंस गति गुननि गहीर है।
घेरी चहुँ ओरन तें भौरन की भीर भारी भौरन की भीर में चकोरन की भीर है ॥५॥

[1] पारद—मो०। [2] चांदनी—नी० ग० गजा० भा०। [3] निपन—भा० मो०। [4] मृदु ग० गजा०।

चित्रिणी-लक्षण।

मोर बेष भूषन बचन[1] गज गति[2] अति सुकुमारि।
चंचल नयनी चितहरनि चतुर चित्रिनी नारि ॥६॥

[1] बसन—भा०। [2] राजत—भा०।

उदाहरण।

देखी न परत देव देखिबे की परी बानि देखि देखि दूनी[1] दिन साध उपजति है।
सरद उदित इन्दु बिन्दु सी लगत लसे[2] मुदित मुखारबिंद इंदिरा लजति है।
अद्भुत रूप सी पियूष सी मधुर बानी सुनि सुनि श्रवननि भृंग सी भजति है।
मन्त्री कर्यो[3] मैन पञ्चमन्त्री कर्यो[3] बैननि के बिना तार तन्त्री जीभ जन्त्री सी बजति है ॥७॥

[1] दूनी—भा० मो०। [2] लसत लसे—भा०। [3] कह्यो—गजा०।

संखिनी-लक्षण।

दीरघ सिर कर चरन कटि लघु नितम्ब कुच नैन।
सुलप छमा[1] सन्तोष मुद[2] संखिनि तीछन[3] बैन ॥८॥

[1] सुनयु छमा—नी० ग० गजा०। [2] बद—भा०। [3] तिक्त न—भा०।

उदाहरण।

कोप भरी लघु गुच्छ परी[1] उर बान चले[2] तरु डार सी डोलैं।
बाम छरी सी लगै उछरी सी फिरै मछरी सी सुभाव बिनोलैं।
भौहैं चढ़ी भृकुटिनै अखियाँ जनि तीखे[3] कटाछनि चित्त न खोलैं।
प्यारे सों रूसि रहै बिन दोष बिना रिस रोस रिसाइ कै बोलैं[4] ॥९॥

[1] तन गुच्छ परी—नी० ग० गजा०, लघु लुच्छ भरी—भा०, गुच्छ परी—भा०।
[2] लगै—नी० ग० गजा०। [3] तीख—मो०, तीखी—भा०। [4] रिसानी सी डोलैं—भा०।

हस्तिनि-लक्षण।

थूल चरन कर[१] अधर कटि भारी कुच भुज जानु।
ठिगनी बहु भोजन गमन हस्तिनि तिय पहचानु ॥१०॥

[१] कर चरन—मो०, सुकर पद—भा०। [२] भुज कुच—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

गुलगुली गोल मखमल[१] कैसो गेंदुआ[२] गडै न गडी[३] जी मे जऊ करत ढिठाई सी।
चोर की सी गठरी छुटै न छतियाँ तें मुख लागत अँध्यारेहू न लागत सिठाई[४] सी।
भूखे को सो[५] भोजन न भूलत सवाद नही नैकहू उबीठें[६] नये नेह की इठाई सी।
सुरत सँयोग[७] को नही न करै निस दिन भोग को गुपत गुपचुप की मिठाई सी ॥११॥

[१] मखतूल—भा०। [२] गेडुआ—नी० ग० गजा० सा०। [३] गुडी—भा० मो० ब्र०।
[४] मिठाई—भा०। [५] भूखेन को—नी०, भूखन को—ग० गजा०। [६] उमेठें—भा०,
तें घटे न—सा०। [७] समाज—सा०।

कर्म-भेद।

कर्म भेद करि नायिका तीन प्रकार बखानि।
सुकिया परकीया कहौं सामान्या अरु[१] जानि ॥१२॥

[१] उर—नी० ग० गजा० सा०।

स्वकीया-लक्षण।

कायिक वाचिक मानसिक पति रति[१] तीनौ कर्म।
तासो कवि सुकिया कहै लिये सकल कुल धर्म ॥१३॥

[१] रत—नी० ग० गजा०।

उदाहरण।

सीलभरी बोलति सुसील बानी सबही सों[१] देव गुरुजननि की लाज सों लचि[२] रही।
कोमल कपोल पर दीसी हरदी सी दुति चूनी[३] सी सकुच मुसकानि मैं मचि रही।
लालन की लाली अखियानि मैं दिखाई देत अन्तर निरन्तर ही प्रेम सो पचि रही।
कुँवरि[४] किसोरी मुख मोरी करै सखिन[५] सो चोरी चोरा[६] चित गति रोरी सा रचि रही ॥१४॥

[१] सही सा—नी०, सही सोहे—ग० गजा०। [२] सचि—नी० गजा०। [३] धून—नी०
ग० गजा० सा०। [४] कोंवरी—सा०। [५] सखियन—भा०। [६] चोरा चोरी—भा०।

परकीया-लक्षण।

काइक वाचिक पतिहि रति मनसा उपपति[१] जुक्त।
गुप्त तजै कुल धर्म को[२] सो परकीया उक्त ॥१५॥

[१] उपजत—भा०, उपजिति—मो०। [२] गुप्त प्रेम पर पुरुष को—भा०। [३] परकिया
तासों कहैं कवि कोविद मति उक्त—सा०।

उदाहरण।

मारी विपतिन की पतिऊ मग[१] पौढी गूढ कोरे मैं चकोरी देव कामागि निसकती।
मानेहूँ मुरनि अमुरत विमुरत कहूँ भौंहनि[२] मरोरि मुरि उर तें खिसकती।

मीत[1] की चितौनि चित बीच चुभि[4] सुभी रहै उभी रहै आँखिनु करेजनि[5] कसकनी।
सुपने के मिसु करि गेह उठे रिस करि मोहीं मनहीं मन ससुमनि मिसकनी[6] ॥१६॥

[1] पनि उछग—भा०, पतिहू सग—ब्र०, पनि जु सग—मा०। [2] मानेहू सुगनि पै सुरत कहूँ लागी देव मोहनि—भा०। [3] नीनि—मा० मो०। [4] चौति चुभि—नी० ग० गजा०, निन चढि—मा०। [5] करेजनि—नी० ग० गजा०। [6] ससकनी—ग० गजा०।

सामान्या-उदाहरण।

बाचकही मत्र सो रचै करै जगत मनुहारि।
तन मन धन चाहै सदा सो सामान्या नारि ॥१७॥

उदाहरण।

हेरतही हरि लेत हियो बस किन्ह कियो रस की बनिया मैं।
जोबन रूप की ओप अनूप सुन्यो गुन एतो काहू न निया मैं।
कन्त कियो धनवन्त निहारि कै[1] चूकत ना अपनी घनिया मैं।
हाय[2] दई हँसि हौंस भरी मुँदरी कर देवि[3] धरी छनिया मैं ॥१८॥

[1]विचारि कै—ग०। [2] हाय—भा०, हायी—नी० ग० गजा०। [3] देत—ग०।

गुण-भेद।

कहो सत्त रज तम त्रिगुन उत्तम मध्यम अन्त।
तीनि भाँति गुन[1] भेद करि कहत नायिका सन्त ॥१६॥

[1] गुर—नी०।

सत्व प्रकृति उत्तम कह्यो मध्यम रजस[1] सुभाइ।
अन्त तमोगुन प्रकृति तिय बरनत कवि समुदाइ[2] ॥२०॥

[1] राज—ब्र०, रजत—मा०। [2] है कविराइ—नी० ग० गजा० मा०।

तीनों की चेष्टा।

अहितहूँ सो[1] हित उत्तमा सम सों सम मधि[2] जानि।
अधमा हित हूँ सा अहित[3] तीनो तिय पहचानि ॥२१॥

[1] अनहित सो—भा०। [2] मध्यम —ग० गजा०, समाधि—नी०, सु मधिमा—गा०।
[3] नहित—भा०।

उत्तमा-उदाहरण।

घोंसेहू कहै[1] जो कटु बोल तो कढाऊँ[2] जीभ छार डारौं आँखिनि की आँसू झलकनि पै।
कौन कहै कैसी सौति सो तो ठकुराइनि लिखी है बृज बालनि के भाल पलकनि[3] पै।
हूँ रहीं नजीकी हौं न जीकी कुचिलाई रहो[4] पी की प्रानप्यारी सही[5] नीकी ललकनि पै।
दूजो नहीं देव देव[6] पूजौं राधिका के पग[7] पलकनि[8] साऊँ धरि ध्याउँ[9] पलकनि पै ॥२२॥

[1] कहूँ—भा०, कहौ—भा०। [2] कढाऊँ—ब्र०। [3] पलकनि—नी० गजा० ब्र०।
[4] रहो—ग० गजा०। [5] रहौं—ब्र०। [6] ०—भा० मो०। [7] पग पग—भा० मो०।
[8] पलकन—भा० मो०। [9] ध्यान—भा० मो०, ल्याउ—ग० गजा०। भा० मो० नी० गजा० प्रतियो में उत्तमा नायिका के २३ तथा २४ सख्या के द्वितीय तथा तृतीय उदा-

हरण छन्द नही हैं। मो० प्रति मे पार्श्व पर केवल "रावरे पायन" लिखा है, जो इस छन्द को भी पाठ मे सम्मिलित करने का संकेत है। भा० मो० प्रतियों मे आगे ५ ३३ दोहा से पाठ मिलता है।

रावरे पायन ओट[१] लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।
मारी असावरी की झलकै[२] छलकै छवि घाघरे घूम घुमारे।
आहु जु आहु दुराहु न मोहू सों देव जु चद दुरै न अँध्यारे।
देखौं हौं कौन सी छैल छिपाइ तिरीछ्र हँसै वह पीछे तिहारे ॥२३॥

[१] ओप—ब्र०। [२] सलकै—मा०।

केसरि सों उबटे सब अग बडे मुकुतान सो मॉग सँवारी।
चारु सु चम्पक हार[१] हिये उर[२] ओढे उरोजन की छवि न्यारी।
हाथ सों हाथ गहे कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ[३] निहारी।
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह को हुती[४] छोहरी छीवर वारी ॥२४॥

[१] चद तिहार—सा०, चद्रक हार—ब्र०। [२] अर—ग०। [३] तिहारे हौं आज—ग०। [४] कौन ही—ग०। नी० गजा० प्रतियों मे २३-२४ सख्या के छन्द नहीं हैं।

मध्यमा-उदाहरण।

मैं समुझायो नही समुझै मन को अपनो अपमान न सूझै।
मोहन मान करै तो गरै[१] पगि देव मनैबे को जाइ अरुझै[२]।
काको भयो यह सब सों बिगरै यह जाको[३] मरै सुतो बात न बूझै।
मौनि हमारी सु प्यारे की प्यारी सु प्यारे को प्यार परोसी सो जूझै ॥२५॥

[१] करै—ग०। [२] जाइ असूझै—ब्र०, आप अरुझै—नी० ग० गजा०। [३] याको—नी० ग० गजा०।

कौन भयो दिन चारि नयो रग वे नव[१] जोवन जोति समाते।
वै अब मेरी हितू हमे बूझै को होत पुरानान सो हित हाते।
देखिये देव नयेई नये नित भाग सुहाग नये मद माते।
नाह नये वे[२] नयी दुलही ये नये नये नेह नये नय नाते ॥२६॥

[१] चाग्नि प्यारिन औ नये—ग०, रितवे नव—सा०। [२] नाह न पैये—ग०। केवल ग० प्रति मे चरणों का क्रम १-३-४-२ है। नी० गजा० प्रतियों मे यह छन्द नहीं है।

अधमा-उदाहरण।

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै कहि देव कुप्यारी ह्वै कैसिक ऐंये[१]।
प्यारी कहौ मति[२] मोसों अहो प्यारीयो प्यार की प्यारी बुलैये।
कै यह प्यार की एनो कुप्यार ओ न्यारी[३] ह्वै बैठी सु बात बतैये[४]।
प्यारे पराये सो कौन परेगो गरे परि कौ लगि प्यारी कहये ॥२७॥

[१] पैये—गजा। [२] जनि—नी० ग० गजा०। [३] अन्यारी—ब्र०। [४] बनैये—ग० गजा०, चलैये—नी०।

देश भेद।

सात दीप नव खड म सुनियत देस अनत।
वरनि वरनि थाके तिनहें[१] व्यासादिक मति मत ॥२८॥

[१]सबै—नी० ग० गजा०।

तिनमे जतुद्वीद के सुने कछू जे देस।
वरनत तिनकी नायिका सुभ लक्षन सुभ वेप[१] ॥२६॥

[१] देश—नी० ग० गजा०।

मध्य[१] मगध कौसल कहो पाटलपुत्र कलिग[२]।
कामरूप उत्कल कहौं[३] और बखानो बग ॥३०॥

[१] मद्धि—नी० ग० गजा०। [२] पाटल बहुर कलीन—सा०। [३] उतकला बहुरि—सा०।

कहो बिंध बन[१] मालवा और अभीर विराट।
कुकुन केरल[२] द्रविण अरु कहि तिलग[३] करनाट ॥३१॥

[१] भारखड अरु—प्र० सा०। [२] केर—नी० ग० गजा०। [३] कहो परम—नी०।

सिंधु देस गुर्जर वरनि मरु कुर अरु करवीर[१]।
पर्वत अरु सौवीर कहि औ भुटन[२] कसमीर ॥३२॥

[१] मारु कुर कुरवीरहू—सा०। [२] भुटत और—सा०।

गान्धारादिक देस कहि सुनियत देस अनन्त[१]।
नीरस नारि निहारियन[२] वरनत नाहिं न सत[३] ॥३३॥

[१] दिस दिस देस विदेस की नारी और अनन्त—भा०। [२] निहारितव—मो०, निहारितित—नी० ग० गजा०, निहारि तेहि—सा०। [३] नाहिं न वरनत सत—ग०

मध्य देश-वधू।

कोविद कामकला सकलानि[१] कलानिधि सी गुन रूप निधानै।
गीत सगीत विनीत सदा सुभ कर्म पुनीत सबै सुख सानै।
देव अचार विचार रची सुचि साची सची रुचि को पहिचानै।
अन्तरवेद विचच्छन[२] नारि निरन्तर अन्तर की गति जानै ॥३४॥

[१] मकलानि—भा०। [२] विजच्छन—सा० नी०।

मगध-वधू।

प्रेम मद[१] मगन उछाह उमगन भरी मग न धरति पग घूमति सी घनीये।
खोले उर बाँह रति पैरति अथाहे उपभोग सिंधु गाहै[२] परिरभ सुख सनीये।
सुन्दर[३] सरस रस बस कीनी प्यारो पिय न्यारो हिय तें न होन[४] देव विधि बनीये।
रहसि सिरावे काम पावक दगध पीर मगध की मानिनी अगाध गुन गनीये ॥३५॥

[१] मन—ग०। [२] माहै—भा०। [३] सुन्दरी—सा०। [४] न्यारो न रहन ही न—नी० ग० गजा०।

कोशल-वधू।

सील[१] रुचि रुचि सचि रुचिर विरचि रची रचर सी सची रूप वचित सी दामिनी।

विमल विचित्र विधि चित्र की सी लिखी चारु रचना चरित्र सो विचित्र गति[२] गामिनी।
भोग उपभोग अग सग सुख जोग जामे प्रेम सो प्रसन्न लाज सतत[३] विरामिनी।
देव पति देवता दिपति दुति देवता सी काशी देश कौशल[४] कुशल कुल कामिनी ॥३६॥

[१] सीत—नी० गजा०। [२] पवित्र गति—सा०, विचित्र मत्त—नी० ग० गजा०। [३] सजत—नी० ग० गजा०, सनत—भा० मो०। [४] काशी देस कौसल कुटिल—नी० ग० गजा०, देखी जग मे कुशल एक कौशल—भा०।

पाटल-वधू।

चचल दृग चल चपल चितवति चोरि चितवति चाइ[१] चढी चारता प्रगट ही।
हौंस भरी हँसति लसति हुलसति हिये बिलसति[२] टालम मा[३] नेह के निकट ही।
देव हरषत बरषत मानो मेन रस[४] मरस बचन रचना[५] सो रचि रटही।
मोह की अँध्यारी मे उज्यारी ह्वै रमति रति प्यारी पटना की पट लपट निपटही ॥३७॥

[१] चाप—नी० ग० गजा०। [२] बिलसति हिये हुलसति—ग० सा०। [३] बाल मनो—भा० मो०,बास मनो—नी० ग० गजा०। [४] सर—नी० ग० गजा० मा०। [५] रसना—भा०मो० नी०ग० गजा०।

उत्कल-वधू।

निरज बिराजै रज रजित कियो है पति[१] गुंज अलि पुंजन[२] ले कीनी कुजगली सी
मूंदे मुख बाहिर बिनत[३] त्रिन बात डोले अन्तर निरन्तर उनीदी[४] भाँति भली सी।
रहन अवासही सुवास सो बसायो बन देव अनुकूली मन फूली तन फूली सी।
खेलनि सहेलिन नवल बाल बेलिन[५] मैं देखी उतकली नारि अद्भुत कली सी ॥३८॥

[१] पोति—भा०मो०नी० ग० गजा०। [२] कु जन—मो०। [३] बिजन—सा०। [४] उदीनी—मो० ग० गजा०, उनोदी—भा०। [५] चेलिन—भा०। [६] अबुज की कली सी—भा०, देखी जाति चली कोई अद्भुत कली सी—सा०।

कलिंग-वधू।

मदन के मद मतवारीन बदन[१] झांवे मदन थिराति न सिराति रति रग ना।
प्रीतम के रूप को सुधा[२] सा अँचवनि तऊँ[३] प्यासीय रहति जो लहनि सुख सग ना।
प्रेम रस बस[४] प्यावै प्यार मा अधर रस लागत नवच्छत करति भुव[५] भग ना।
अग अग उमगि अनग अपजावति अलिगन उघात न कलिंग की कुलगना ॥३९॥

[१] बहून—नी० ग० गजा०, ग० प्रति मे "हून" पर दूमर हस्तलेख मे 'भूमे" पाठ है, बहून—मो०, बभूमि—भा०। [२] मया—नी० ग० गजा० भा० मो०। [३] तन—नी० ग० गजा०भा० मो०। [४] भावै—सा०। [५] करे विभूप—नी० ग० गजा० मो०, उचिर भूप—भा०।

कामद-वधू।

तीनिहूं लोक नचावनि ओर मैं[१] मत्र के सूत[२] अभूत गती है।
आपु महा गुनवन्त गुसाइनि पाइनि पूजत प्रानपती है।
पैनी चितौनि चलावनि चेटक को न कियो[३] बस जोगी जती है।

कामर कामिनि काम कला जगमोहिनि भामिनि भानमती है ॥४०॥

ऊ[1] मे—नी० गजा० मो०,ग० फूक मे—भा०। [2] दून—मा०। [3] भयो—सा०।

बंग-वधू।

कंचन मंडित रूप भरी पहिरे पट लाल प्रकाम बिसालनि[1]।
सुंदर स्याम लची[2] अभिराम धरे सिर दाम गरे मृदु मालनि।
संग रमे कर मैं न[3] छुटै कटि सो लपटी प्रिय प्रानन पालनि[4]।
देव रहै हियरे लगि कै करवाल किधौ बर बाल बगालनि ॥४१॥

[1] विलासनि—नी० गजा० भा० मो०। [2] रची—ब्र० मो०। [3] संग रमें न—नी० ग० गजा० भा० मो०। [4] प्रिय प्रान को पालिनि—मा०, लपटी रहै प्रान प्रिया तन पालनि—नी० ग० गजा०, लपटी जु रहै प्रिय प्राननि पालिनि—"जु रहै" हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे—मो०, लपटी प्रिय प्रानन आनन पालिनि—भा०।

विपिन-वधू।

ढूँढति फिरति रतिकन्त को इकन्त गृह पति की सुरति गति मति भूली मन की।
डोलति अकेली अकुलानी प्रिय[1] केलि रस केली सी नवेली तनवेली[2] अति तन की।
डोडी की बजाइ छोडी लाज उपजाइ नेह गोडी नारि ठोडी कै डरै न प्रेमपन की।
झिलमिली भौंई सी दिखाई पति भार मे महौषधि की बूटी सी वधूटी विपिनन[3] की ॥४२॥

[1] सिन—मा०। [2] तनवेनी—मा०, अलवेली—ब्र०। [3] वृन्दावन। ग० गजा०, विपिनन—सा०।

मालव-वधू।

बोलनि चालि[1] बिलोकनि सो दिनही दिन दूगुन नेह[2] बढावै।
अगही अग अनग[3] तरगनि आदर सो उठि ओठनि प्यावै।
मालवदेस की बाल मनोहर बालम के[4] चित की गति पावै।
जोग सबै उपभोग भले करि भाँतिनि भोग[5] करावै ॥४३॥

[1] बेलनि चालि—भा० मो०, चाल—ग० गजा०। [2] दुगुन नेह—नी० ग० गजा०, दूनों सनेह—ब्र०, दूगने नव नेह—मा०। [3] तरग—नी० ग० गजा०। [4] मानुस की—मा०। [5] भाँति सु भोग—भा०।

आभीर-वधू।

विधि की सी आमिर अभेद[1] भेद भूषन विसेष नग सिर[2] रची रेख सी सुहावनी।
कर पद पदम पदमनैनी पदमनी[3] पदम सदम सोभा सपद सों[4] आवनी।
रमोरु अदभ रमा को सो परिरम्भन दै[5] गभीर मनोज ओज आगमि सिरावनी।
मगन अमृत गति आभा अभिरामन की अभिराम आभरन आभीरिनी भावनी ॥४४॥

[1] अभेद—ब्र०। [2] सिर नग—भा० मो०। [3] पदमिनी की पदम सी—भा० [4] पदमी—ब्र०, सपति सी—मा०, सबद सी—ग० गजा०, सुपद सी—नी०, सपद सी। —मो०, सबै देखन म—भा०। [5] रमा रूप अधर भरमा का सो—मा०, रमेरूप अभ भर मार को सो—ग०। [6] आगनि सिरावनी—भा०।

विराट-वधू।

अरुन बसन सदा सोहत तरुन तन कोमल कर चरन[1] मार सर मार की।
पिय के जियत जिय[2] प्यारी पिय जिय बसैं प्रेम रस बस छाकी ताकी रति भार की।
तीखे नख घातन[3] अघात न अधरपान मानति सुरति रुचि सुरतरु डार की।
बारन गमन बड़े बारन की बर तनु चंपक बरन बर बनिता बरार की।।४५।।

[1] करन चारु—भा०, करभ मन—सा०। [2] जियनि जीभ—भा०, जियति पिय—मो० ग० गजा०, जिय जीवनी—मा०, जियनि जिय—ब्र०। [3] तीखे नखिया तन—भा० मो०।

कोंकण-वधू।

गोरी[1] गजरात गति गुननि गहीर मति भारे भाग ही[2] रमति सुरति सकोचनी।
आलिंगन चुम्बन अधर पान नखदान मान सो बचन रचना सो रुचि[3] रोचनी।
जानै रीति जी की पहिचाने प्रीति नीकी सुखदानी सबही की प्यारी पी की दुखमोचनी।
केसरि करे न सरि को कनक जाकी दरि कोकनदरी की नारि लोचनी।।४६।।

[1] गौरी—भा० मो०। [2] रग ही—ग०। [3] रसना सो रस—ब्र०।

केरल-वधू।

चम्पा के[1] बरन तन चन्दन बसायो बन चन्द से बसन बसे चन्दन के बारि है।
खग मृग मीन जल थल के अधीन होत गुजरत भौर पुंज कुजनि[2] बिसारि है।
कौन करै सेव कहि देव ताहि देखत ही मोहि मन देवता करति मनुहारि है।
जोबन की जोतिन सों मोतिन केरली हार केरली कुरगनैनी नारि सुकुमारि है।।४७।।

[1] चंपक—सा०। [2] कजन—सा०।

नोट: भा० प्रति में अन्तिम चरण त्रुटित है।

द्राविड़-वधू।

देवता दरस पति देवता[1] सरस देव एहि विधि और नहीं[2] देव नर[3] नागरी।
सहज सुभाई सुभ सुचि रुचि सीलमति[4] कोमल विमल मन[5] सोभा सुखसागरी।
चाहै सनमान को सराहै सदा प्रीतमहि प्रीति को निबाहै रति रीति अति आगरी[6]।
देवी देस द्राविड की सुन्दरी निविड नेह गुननि अनूप रूप ओपन उजागरी।।४८।।

[1] दरसियत देवता—भा० मो०। [2] नही और—ब्र०। [3] नग—ग०, नरी—भा० मो०। [4] सत सुचि रुचि सील व्रत—सा० ग०, सुति सचि रुचि सील-मति—मो०, सुचि सचि रुचि सील मति—भा०। [5] मनो—सा०। [6] चरण त्रुटित—मो०, सुन्दर सुवास बास कोमल कलानिधान जानत तहाँ न ताहि चाहि चित आगरी—भा०, ग० प्रति में छंद के पार्श्व में बिना संकेत दिये दूसरे हस्तलेख में "सुन्दर सुवास······चित आगरी। द्वितीय पाठ"

तिलंग-वधू।

साँवरी सुघर नारि महा सुकुमारि सोहै मोहै मन मुनिन को[1] मदन तरंगिनी।
अनगने गुननि के गरब गहीर मति निपुन संगीत गीत[2] सरस प्रसंगिनी।

परम प्रवीन बीन मधुर बजावै गावै नेह उपजावै यौं[4] रिझावै पति मगिनी।
चतुर सुभाय साय[1] मौहनि दिखाय देव विगनि अलिगन बनावनि[5] निलगिनी ।।४६।।

[1] मोहन को—भा० । [2] गनि अनि ही निपुन प्रीति—मा० ।[3] वत्र—भा०, चारु सुकुमार नाई—ग० । [4] जो—मा०, "त्यों" दूसरे हस्तलेख में संशोधन "यो"—ग० ।
[5] बनावनि—भा० मो० ।

रनाट-वधू

सोध भरी मूर्धा सी सुधानिधि सुधारि विधि सहज सुवासनि की रासि[1] नहियत है।
जगमगे बसन सुरग रँगमगे अग मदन तरगनि के रग चहियत है।
बोलनि बिलोकनि चलनि चतुराई चारुताई मुसकानि कौ[2] रीझि रहियत है।
प्रेम परिपाटी रूप जोवन की पाटी पढ़ी[3] देव दुनि माटी करनाटी कहियत है ।।५०।।

[1] रास—ग० । [2] मुसकाई नीको—भा० । [3] माटी जाटी—मो०, पाटी पढ़ी—ब्र०, पाटी मढ़ी—मा० ।

सधु-वधू ।

वसुधा को सोधि कै सुधारि वसुधारनि सौं सब रसु सारनि सुसारन सुवेस[1] की।
धरम की धरनी[2] धरा की धाम धरनी की धरनी सी धारनी सी धन्यता धनेस की।
सिद्धन की सिद्धि सी असिद्धि सी असिद्धन की मायुता की सायक सुधारि साधु[3] वेस की।
सुधानिधि वदनी[4] सुदाटनी[5] की सुद्धि[6] विधि सिंधुरगमनि गुनसिंधु सिंधु देस की ।।५१।।

[1] सुबेस—ग० मा० । [2] धरनी—ग० मा० । करनी—ब्र० । [3] सुधा—भा० मा० ।
[4] वदानी—मो०, दानी—भा० । [5] सुधानिधि—भा० । [6] सुसुद्ध—भा०, साधि—मा० । यह छन्द मो० प्रति में पार्श्व पर दूसरे हस्तलेख में है, भा० प्रति में छन्द त्रुटित है ।

गुजरात-वधू ।

छिन की सी छौनी रूपरासि सी ढकौनी गढ़ि गाढ़ी विधि सोनी[1] सोंगे कुन्दन में गात की।
देव दुनि दूनी दूनी[2] दिन-दिन होनी और[3] ऐसी अनहोनी कहूँ कोई दीप गात की।
रति लाजै बौनी जारी रभा रचि पौनी[4] लोचननि लोचनी सुत जोति अवदात की।
इंदिरा अगौनी इदु इंदीवर औनी[5] महासुन्दर सलौनी गजगौनी गजरात की ।।५२।।

[1] विधि चाय सो रचौनी—भा०, गुटराय विधि सोनी—मो० । [2] दूनी दिन—भा० मो० । [3] औरहोनी—भा० मो० । [4] रचि बौनी—भा० मो० । [5] बौनी—ग० ।

मारवाड़-वधू ।

चित्र की सी तिरी चारु चित्रिनी विचित्र गति रुचिर चरित्रन की[1] रचना विचार की।
रचको बची न रुचि रचिन[2] विरचि रच्यो मचिन सुचित सुचि सोधा सुरसार की।
रूप की सी मुद्रिका समुद्र गुन सील को सौं आदर उदारताई देवता द्वार की।
काम की नगीनी कमला-सी सुगदैनी पियप्यारी रिझवैनी सुरनैनी मारवार की ।।५३।।

[1] रच्यौ है विरचि नित्र—भा०, रचि रचि रचि नित्र—मो० । [2] रचि—मो०, रचिनि—भा० ।

कुरु-देश।

नखसिख नेह भरी मदन तरगनि सों अग अग देव रग रग रीझि रहिये।
साचें भरि काढी मानो नाचें दृग खजन सु देखें बिरहागिनि की आचें पें न[१] सहिये।
सोहै महासुन्दरी विमोहै मन मुनिन के को है ऐसी दूसरी[२] सलोनी नारि लहिये।
गोरी सी किसोरी चितवनि चित चोरी[३] करें कोरी[४] कुरु देश की कुरगनैंनी कहिये ॥५४

[१] नहिं—भा० मो०। [२] सुन्दरि—ब्र०। [३]बीच चोरी—भा० मो०। [४] भोरी—भा०

करवीर-वधू

नासिका कीर[१] लकीर सी भौंहनि तीर से छाँडति[२] है पिकबैंनी।
भौंर अभीरनि भीतर भीतर भीर सुभाव उभी रस दैंनी[३]।
धीरज देव अधीरज होत चितौनि चितौति अधीरज पैंनी।
पीर हरैं करवीर की कामिनि छीरज से मुख नीरजनैंनी ॥५५॥

[१] कोर—सा०। [२] तीर सी तानि—भा०। [३] भीतर भीर सुभाइ भरी सु उभय स
दैंनी—भा०।

पर्वत-वधू।

पकज से नैंन[१] बैंन मधुर मयक जैसे[२] अधरनि धरी धीर[३] सुधा स(?)त की।
देव कोई वाके जोग भोगवे[४] अखण्ड सुख भौंहनि प्रकासी जोति कासी करवत की।
सील के सुभाइनि सों महा सुखदायनि सों कहूँ काहू कबहूँ करत गरबत की।
इदिरा सरुप इन्दुवदनी अनूप रूप जोवन उज्यारी पियप्यारी परबत की ॥५६

[१] सैंन—मो०। [२] मधुर पियूप जैसे—भा० मो०, मधुर रस, पकजसे—सा०। [३] धर
धर—भा० मो० ब्र०। [४] भोग मैं—सा०।

भुटन्त-वधू

चेटक सी चाल चटकीलो रग अगनि को[१] चोट सी चलावैं डीठि पोही प्रेम तत की[२]।
चुम्बन की हौंसैं उपजावति हँसत मुख[३] सारो सी पढति बैंन दारो दुति दन्त की।
मोहै देव देवतन मोहै मुनिहू को मन कन्त को अखड धन[४] मोही गतिकन्त की।
घन वन झारनि मैं सघन पहारनि मैं दामिनि सी देखियत कामिनि भुटन्त की ॥५७॥

[१] मैं—ग० सा०। [२] गति है मनग की—भा० [३] मयक मुखी—भा०, हँसत मुखी—
मो०। [४] अतर धन—ग० सा०।

काश्मीर-वधू।

जोबन के रग भरे[१] ईंगुर मे अगनि पैं एडिन लौ आगी[२] छाजैं छविन की भीर[३] की।
उचके उचौहैं कुच भये[४] भलकति भीनो झिलमिली ओढनी किनारीदार चीर की।
गुलगुले गोरे गोल[५] कोमल कपोल सुधा बिंदु[६] बोल इन्दुमुखी नासिका ज्यों कीर की।
देव दुति लहरात छूटे छहरात केस बोरी जैसे[७] केसरि किसोरी कासमीर की ॥५८॥

[१] भरी— ग० सा०। [२] छवि—भा०, अग—सा०। [३] केसन के भीर—भा० मो०।
[४] भये—ग०, भार—भा०। [५] गोरे गोरे—भा०। [६] सुधाबिम्ब—भा० मो०। [७] बोरी
जैसी—भा० मो०।

सौवीर-वधू ।

अम्भोनिधि कीसी सुता सोंनि[1] अभाजन पर दभाति[2] अदभादित दुति है सरीर की ।
आरम्भित जोबन निदर्श[3] करै रम्भा रति रम्भोरु मुगधीर सुरटे गुन भीर की ।
चन्द से बदन मन्द हाँसी की अमद छवि[4] स्याम[5] मरगन्द बास चन्दन न चीर की ।
काम रूप मन्दिर सी[6] देव काम कन्दर सी इन्दिरा को मन्दिर सु सुन्दरी सुबीर की ॥४६॥

[1] अम्भोनिधि की सुता सी सोहति—व०, अभोविधि रामुता सी—भा० सा० । [2] दभा भाजन—भा०, दभोजन—सो० । [3] निरम—ग० सा० । [4] अमन्द बिम्ब—भा० । [5] स्याम—भा० सा० । [6] काम रूप मन्दिर सी—भा० सा० ।

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलासे कवि देव कृते जाति गुण देश भेदादि नायिका वर्णन नाम पञ्चमो विलास ।

काल-भेद ।

आठ अवस्था भेद करि होत आठ विधि बाम ।
बरनी ता सयोग तें आठ भाँति की बाम ॥ १ ॥
प्रथम कहो स्वाधीनपति कलहन्तरिता होइ ।
अभिसारिका बखानिये विप्रलब्धिका सोइ ॥ २ ॥
खण्डिता उत्कण्ठिता वासकसज्जा बाम ।
प्रोषितपतिका नायिका आठौ बिधि अभिराम ॥ ३ ॥

स्वाधीनपतिका-लक्षण ।

मनसा बाचा कमना जाके पति आधीन ।
सो कामिनि स्वाधीनपति पति बस करन प्रवीन ॥ ४ ॥

उदाहरण ।

जागो हँसि एक बार एक बात कहिबे को होसन सरति कहो को न दृगवार है ।
गूँदे मुकताइनि सुदाम करि राख्यो हरि हार न उदास कहो एतो भार भार है ।
देव अब आप पूजी तू जो मैं अदूजी बसी[1] दूजी निज भूरिहू नै[2] दरन गुमार है ।
पीठ परि राखी अँगियानि भरि राखी हियरा सो धरि राखी करि राखी कंठ मार है ॥५॥

[1] देव अब आप पूजी तुव अंग जो कौं मेरी मटू—सा०, अदूजी रही—ग० । [2] बार-हून—सो० ।

रूप चुबै चौरि बचन नूपुर बाँक से पायन नीर बधू के ।
सगन रस मनो निचुरै जिय सरस धर मग मे पग दूके[1] ।
दृगु मे आनन मे स्रमबिंदुनि देव सुबिंद सरै सुग पूरे[2] ।
सो लसि सोतिन की अँखियानि मे लागि उठी मनो आगि की लूके[3] ॥ ६ ॥

[1] पग दूके—सा० । [2] सुभावन पूरे—ग० । [3] लूरे—व० । भा० सो० प्रतियों म उपर्युक्त छन्द त्रुटित है।

कलहन्तरिता-लक्षण ।

प्रेम अधीरन कोप जुग नयन दिय सजोग ।
कलहन्तरिता है दुखी गये नै[1] किया वियोग ॥ ७ ॥

[१] सहनै—भा० ।

उदाहरण ।

सखी के सँकोच[१] गुरु सोच मृगलोचनी रिसानी पिय सों जू उन नैंक हँसि छुयो[२] गात ।
देव वे सुभाइ[३] मुसक्याइ[४] उठि गये इहाँ सिसकि सिसकि निसि खोई रोइ पायो प्रात[५] ।
को जानै री बीर बिनु[६] बिरही बिरह बिथा हाइ हाइ करि पछिताइ[७] न कछू सुहात ।
बडे बडे नैननि तें आँसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आज[८] ओरो सो बिलानो जात ॥८॥

[१] सखिन के सोच—भा० मा० । [२] छियो—भा० मा० । [३] सहज सुभाइ—भा० ।
[४] मुसकाइ—सा० । [५] खोयो पायो परभात—भा०, सु रोइ रोइ पायो प्रात—सा० ।
[६] कौन जानै बीर बिनु—भा० मा०, जानै को बीर बिनु—सा० । [७] इहाँ इक रीति पछताय—सा० । [८] देव गोरो मुख भारो भोरा—भा० ।

अभिसारिका लक्षण ।

आपुहि तें जो उठि[१] चलै तिय पिय के सकेत ।
निसि दिन तिमिर प्रकाश कछु गनै न सगम हेत ॥ ९ ॥

[१] उठि जा—भा० मो० ।

उदाहरण ।

सूझत न गात बीति आई[१] अधरात अरु[२] सोए सब गुरुजन जानि कै बगर के ।
छिपि कै छबीली अभिसार को किवार खोलै सुनिग सुगन्ध चहूँ चन्दन अगर के ।
देव कहै भौंर गुंजि आए कुंज कुंजन ते[३] पूछि पूछि पाछे परे पाहरू डगर के ।
देखता कि दामिनी मसाल किधौं[४] जोति ज्वाल[५] भिगरे मचत जागे सिगरे नगर के ॥१०॥

[१] आयो—भा० मा० । [२] लखि—भा० मा० । [३] देव भ्रमि भौंर गुंजि आए कुंज कुंजन तें—ग०, देव कहै भौंर दौरि अई गुंजि कुंजन ते—मा० । [४] है कि—भा० मा० ।
[५] जाति जाल—भा० ।

विप्रलब्धा लक्षण ।

आपुहि तें सकेत बदि बालि पठावै धाम ।
मिलहि न जहि रतिसदन पति विप्रलब्ध सा बाम ॥ ११ ॥

उदाहरण ।

गर पटु डारि[१] करै केतो मनुहारि दूतिकानि पग पारि[२] प्रति पूरन पकि रही ।
नौनी नव नारि नयी नेह निरधारि लाज काजहि[३] बिसारि रूप छबि सो छकि रही ।
मिले न मुरारि आपुहि तें अभिसारि भेष भूषन सँभारि सून कुंज में[४] जकि रही ।
मोचि दृग बारि साचि सोचति बिचारि देव चितै चहूँ पारि घरी चारि लौं चकि रही ॥१२॥

[१] रारि—भा० । [२] परी—मा० । [३] नव धारि लाज कीजहू—भा० मा० । [४] कुंजन में—भा० ।

खण्डिता-लक्षण ।

बासर करै निसि जाइ कहूँ[१] प्रात मिलै पति आइ ।
नारि खण्डिता भौनि के चिह्न लखे बिलखाइ ॥ १३ ॥

¹ और कहूँ—ब्र०, बैरनि समान कहूँ—भा०, बैरिनि समाय कहूँ—मा०।

उदाहरण।

आजु गोपाल जू बाल बधू सँग नूतन नेहनि कुंज बसे निसि।
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरी¹ पराग रही पिसि।
चोज के चन्दन खोर खुले जहाँ ओढ़ि उराज रहे उर मे मिसि।
बोलत बात रसाल मे जात सु आये इतौन चितौन चहूँ दिसि ॥ १४ ॥

¹ पाग के पेंच—ब्र०। भा० मो० प्रतियो में यह छन्द त्रुटित है तथा ब्र० प्रति में अगले छन्द के पश्चात् है।

गात तें गिरत¹ फूल पलट दुकूल कहूँ भाग² जाग आली आज काहू बड़भाग के³।
अंजन अधर उर बीच नखरेख लाल जावक तिलक भाल लाग्यो दुति दाग के⁴।
भौंहें अलसाहैं पग पीक⁵ पग पीक रग रानि जग रात नैन भींजे अनुराग के⁶।
लालन लजात मे जम्हात बिहँसात प्रात आए अलसात आली⁷ देत पेंच पाग के ॥१५॥

¹ भरत—भा० मो० ब्र०। ² अनुराग उन—भा० मो०। ³ भाग इन बड़भाग के—भा० मो०। ⁴ मधि माँग—भा० मो०। ⁵ अलसाहैं रसमाहैं—भा० मो०। ⁶ रति मैन मदन सुहाग के—भा० मो०। ⁷ आए आली मेरे गृह—भा० मो० आली उठि आए द्वारि—भा० मो०।

उत्कण्ठिता-लक्षण।

पति आवन की रति मदन जाके होत अवार।
सो उत्कंठित जो करै बहु बिधि मान बिचार ॥१६॥

उदाहरण।

सरी दुपहरी हरी भरी फरी¹ कुंज मंजु गुंज अलि पुंजन की देव हियो हरि जानि।
सीरे नद नीर तरु सीतल गहीर छाँह सोवैं पर पथिक पुकारैं पिकी² करि जानि।
रैन में³ सिंगारी भोरी को री कुसिलाता सुर पंकज में पाँय धरा धीरज सो धरि जानि।
सोहैं धाम स्याम सग⁴ हेरनि हथेरी ओट ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवनि उतरि जानि ॥१७॥

¹ करी—भा० मो०, भा० में ऊपर से संशोधन है 'फरी'। ² सिक—भा०। ³ रस या—भा०। ⁴ घनस्याम सग—मो०।

वासकसज्जा-लक्षण।

पति आवन को रति मदन जानै निहचै होइ।
सेज बेष भूषन रचै¹ वासकसज्जा सोइ ॥१८॥

¹ सजै—मो०।

उदाहरण।

सुरत सँजोइ साजि सिंगार सजे सुचि बार सुगन्ध सुबे¹ बसि कै।
चुनि चूनरी लाल सरी पहिरी करि देव सुरंग रह्यो लसि कै²।

पिय भटिव का उमगी[2] छतिया सु छिपावनि हरि हिया[3] हसि कै।
अँगिया की तनी खुलि जाति घनी सुबनी फिरि बाँधति है कसि कै ॥१९॥

[1] कच गूदि सुबासन सा—ग०। [2] पहिरी गहिरी रग चूनरी लाल सु बान का बस रह्यो लसिकै—ग०। [3] उमही—भा०। [4] नील तिथा—ग०।

प्रोषितपतिका-लक्षण।

पति विदेश क्याहूँ गया आगम जाधि दिठाय[1]।
प्रोषितपतिका गैनि दिन विरह दसा अकुलाय[2] ॥२०॥

[1] देवाय—ग०। [2] बिलखाय—ग० मा०।

उदाहरण।

वालम बिरह जिनि जान्यो न जनम भरि बरि बरि उठै ज्यो ज्यो बरसै बरफराति।
बीजन डुलावति सखीजन त्यो[1] सीतहू म सीति क सराप तन तापनि तरफराति।
देव कहैं स्वासनही अँसुवा सुखात मुख निकसै न बात ऐसी सिसकी सरफराति।
लौटि लौटि परत करौट खट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यो सेन पै[2] फरफराति ॥२१॥

[1] सखी ज्यो त्यो नित—ब्र०। [2] परी—सा०।

प्रवत्स्यत्पतिका-लक्षण।

नारि प्रवत्सतभर्तिका[1] नवमी कहत[2] बखानि।
वाल भेद नौ विधि कहत एक देस मन मानि[3] ॥२२॥

[1] प्रवेस्यति भर्तिका—ब्र०। [2] करत—भा० मा०। [3] काम भेद म हाग यह समुझौ सुकवि सुजान—ब्र०।

उदाहरण।

कल न परत कहूँ ललन चलन कह्यो विरह दवा सा दह दहकै दहकि दहकि।
लागि रही हिलकी हलक सूखि हाते हिया देव कहै गरो भर्यो आवत गहकि गहकि।
दीरघ उसास लै लै ससिमुखी सिसकति सुरप[1] सलोना तक लहकै लहकि लहकि।
मानत न बरज्यो सुधारिज स नैननि त वारि का प्रवाह कह्यो आवा बहकि बहकि ॥२३॥

[1] आवत टहक टहक—सा० आवत बहक बहक—ग०। [2] सुरप—भा० मा०।

आगतपतिका-लक्षण।

कही प्रवत्सतभर्तिका ज्याहीं नवमी नारि।
आगतपतिका त्यो सुना दसमी कहत विचारि ॥२४॥

उदाहरण।

आवन सुन्यो है मनभावन को भामिनि त्यो नैनन अनन्द[1] आँसू ढरकि ढरकि उठ।
देव दृग दाऊ दौरि जात द्वार[2] देहरी लौं केहरी सी साँसे खरी खरकि खरकि उठै[3]।
टहलै करनि टहरै न हाथ पाइ रंगमहलै निहारि[4] तनी तरकि तरकि उठै।
सरकि सरकि सारी दरकि आँगी औचक उचाहै कुच फरकि फरकि उठै[5] ॥२५॥

[1] आँखिन अनन्द—मा०। [2] पौर—मा०। [3] रोम रासमुखी क सु मरकि मरकि उठै—ग०। [4] बिलोरि—भा० मो० ब्र०। [5] औचक उचाह कुच फरकि फरकि आगी दरकि

दरकि आंगी मारी मसकि मसकि उठै—मा०।

वयक्रम-भेद।

वय वयक्रम भेद करि तीन भाँति की होइ।
मुग्धा मध्या प्रगल्भा[1] बरनत हैं कवि लोइ[2] ॥ २६ ॥

[1] मध्य प्रगल्भ कहि—मा०। [2] सब कोइ—मा० मो०, मुग्धा तिय की अंग दुति दिन दिन दूनी होइ—ब्र०।

मुग्धा-लक्षण।

लरिकापन सम्पूरि कै उमगै[1] जोवन जोति।
मुग्धा तिय की अंग दुति दिन दिन दूनी होति ॥ २७ ॥

[1] उलहै—गा० मा०। ब्र० प्रति म यह दोहा सुन्नि है।

उदाहरण।

जानि परयो जोबन जनायो है मनोज गुरु[1] जगमगी जोति अंग बाढ़ति निते निते।
हरु[2] हँसि हरि हरि हियो हरि जु को हिया हरति हरिन नैनी हितु सा हितै हितै।
सौंही दिन चारि ते नीकी चितवनि प्यारी देव यह भरि दृग[3] देखति जितै जितै।
आछी उनमीत नीत सुभग सरोजन की लरन ललाइयन लागन[4] निते निते ॥ २८ ॥

[1] आज—मा०, गुरु—ब्र०। [2] हरि—मा०। [3] दृग भरि—मा०। [4] ललाईमति लागति—मा०, 'ति' पार्श्व पर—मा० तरल तरुनी मति लोगति—ब्र०।

उमडि[1] उरोज गिरि हरिद्वार[2] हिये तें गयो जिहि सागर गहीर नाभि भपिकै।
ऐसी सरनाई आई ता सुर सरिगिनि सो[3] मिसुता ज्यो सुरसुता[4] मिलि चली चपिकै।
ताम तम वेस सुर सोम मिले[5] परसुता[6] सबंस सुजान दीनो देव जपि जपि कै।
मै हूँ[7] ऐसे ठौर ठाढ़ा काम पुरोहित पति दीनो[8] मन मानिक निनव सकलपि कै ॥ २९ ॥

[1] उमगि—मा०। [2] हरद्वार—मा०। [3] ता मर तरगन सो—मा०, तासु रवि रगनि सो—ब्र०। [4] सुरसन—मा० मो०। [5] तामैं मुह सोभा कहै केस मिले—मा० मो०। [6] पर्व सुर्ने—ब्र०। [7] मारु—मा०, महू—मो० हौहू—मा०। [8] मांग्यो—गा०, पुर होत पेनि दीना—मो०।

औरन जो गोनो होत निरह का औनो[1] होत तुमही अगौना दृग दरनि दुराई यह।
एरी मृगनावनी मक,चनि ही नानानजि गोनो नी सुघर दह गोचनि सुगाई यह।
आली इन कौने को[2] छियरो नाह कौने कौन कौने धौं निगाई निठ ऐसी बिसुनाई यह।
जीसो करि जोतू मनु[3] नीको करि देव पीको लीका करि गासो धरि राखो ही ढ़नाई[4] यह ॥३०॥

[1] गोनो—गा० मा०। [2] आयो इन कौन को—मा०। [3] जोर मन—गा० मा०। [4] उगाई—गा० मो०।

मध्या-लक्षण।

लरिकापन जोबन जहाँ दोऊ होत समान।
लाज काम सम मध्यमा ताही[1] कहत सुजान[2] ॥ ३१ ॥

[1] नारी—मो०। [2] सोई मध्या नायिका बरनत सुकवि सुजान—गा० मा०।

उदाहरण।

माखन मास मलीन मैं मुदरि मदिर तैं निकसी बनि[1] ज्यों ससि।
देव जू देखि छकै छवि[2] छैल रह्यो न गयो हरि हारि हियो[3] बसि।
लागि सकोच कह्यो सब ऊपर रोसी य भाँति रह्यो ब्रज मैं बसि।
दीठ बचाय नवाय कै सीस नचाइ कै नैन रचाइ गई हँसि[4] ॥ ३२ ॥

[1] बिन—मो०। [2] देखि छक्यो छवि देवजू—ग०। [3] हियें—मा०। [4] भूल सी मालति है अब लौं लरचाय कैं नैन नचाइ चली हँसि—ग० मा०। ब्र० प्रति मे यही पाठ हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे 'द्वितिय पाठ' के रूप म दिया है।

प्रगल्भा-लक्षण।

लरिकापन तजि जहँ रहै तन जोबन भरपूर।
कहै प्रगल्भा नायिका जग म जीवनमूर ॥३३॥

मा० प्रति मे यह दोहा त्रुटित है।

उदाहरण।

सारे की सुबास आसपास भरि भौंर[1] रह्यो भरत उसास बास बासन[2] बसात है।
रुकत भनित[3] अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित मिले[4] मनित सुहात हैं।
कटल हलत सुर सदल झलमलत झूलत दुकूल भुजमूल सरसात हैं।
बरन बिहार कहि[5] देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात हैं ॥३४॥

[1] भौर—मा०। [2] बासन—मा०। [3] कनित—मा०। [4] नूपुरन मिले मनि—मा०। [5] कहैं—ग०। भा० मो० प्रतियो मे यह छन्द त्रुटित है। ब्र० प्रति मे यह भूल से मध्या नायिका शीर्षक के अन्तर्गत छन्द सख्या ३२ के बाद आया है।

रेसमी मतूल[1] माल लाल पट लीपे लेप भीतरे भित[2] सीत रैनि की न भौन भाँई सी।
भीति नग हीरन गहीरनि की कांतिनि मा रगमगे[3] रवन पति दस छवि छाई सी।
जगमगी सेज रँगमगे देव देवरानि अग[4] जोति सम्पति जौ अगनि जराई[5] सी।
उरु मे निदान ही मयूख मनि मानिकनि अगनित चामीकर जगित लचाई सी ॥३५॥

[1] अतूल—ब्र०। [2] लिपटे महल भीतरेनि—मा०। [3] जगमग—ब्र०। [4] अनग—मो०। [5] जराई—ब्र०। यह छन्द मा० प्रति मे त्रुटित है तथा ग० प्रति म यह हाशिये पर दूसरे हस्तलेख मे है।

मत्यनि सग उरगहना मुसकनि सिखा जानि।
सुभग चेष्टा प्रगल्भनि तिहैं सदा सुखदानि[1] ॥३६॥

[1] प्रगल्भ तिय तीनि सदा सुखदानि—मा०।

उदाहरण।

वे दिन नाहिं भटू[1] भय के जब भीतै भई[2] भुरि कै भिरई हौ।
चाप दै दै चित म रग को दिन रातिन देव दुरे दिरई हौ।
ढीठ[3] भई इत मोहन[4] स्याम के बाम कला निधि[5] ज्यौं निरई हौ।
जानहि सबी उर आनहु जू अब तो हरि सों सिगरी निरई हौ[6] ॥३७॥

[1] भगे—सा०। [2] बातैं नई—भा०, भातैं नई—मो०। [3] दीठैं—सा०। [4] सोवन—भा० मो०। [5] लिसि—भा० मो०। [6] बिखई बिपई हो—भा० मो०।

शिक्षा।

बारी हौं बैस बड़ी चतुरै हौ बड़ो गुन देव बढ़ीयै बड़ाई।
सुंदरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ सील भरी रस रूप सनाई।
राजवधू बनि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई।
नैंसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै भरै चिकनाई ॥३८॥

भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है।

सुभग-चेष्टा।

ओझिल ह्वै आई झुकि उझकि झरोखा रूप झर सी झलकि गई झलकन झाँई की[1]।
पैने अनियारे पै सहज कजरारे दृग चोट सी चलाई चितवनि चपलाई की।
कौन जानै को हौ उड़ि लागी डीठि माहीं उर रहे अवरोही देव[2] निधि हौं निकाई की।
अब लगि आँखिन की पूतरी कसौटिन में लागी रहे लीक वाकी सोने सी गुराई की ॥३९॥

[1] झलक निकाई सी—सा०। [2] कोही—मो०, कोई—भा०।

वाम वहिक्रम[1] भेद करि भेद भेद प्रति भेद।
होत अनेक प्रकार तें सुनत हरत[2] श्रुति भेद ॥४०॥

[1] ठाम वय क्रम—भा०। [2] रहत—सा०।

तासु ग्रन्थ विस्तार भय कहे न मैं समुझाय।
वरने भाव विलास में लक्षन भेद सुभाय ॥४१॥

भा० मो० प्रतियों में यह दोहा त्रुटित है।

प्रकृति-भेद।

प्रकृति भेद करि नायिका त्रिविध[1] कहत कवि लोइ।
तातें सो कफ पित्त अरु बात प्रकृति तिय होइ ॥४२॥

[1] विविध—प्र० सा०।

कफप्रकृति लक्षण।

सो कामिनि कफ प्रकृति जो रूप सील गुनवन्त।
नेह चीकने वचन चित नैन केस नख दन्त ॥४३॥

उदाहरण।

सील सलीन[1] सलोनी सलज्ज सुभाइनि सज्जनता सरसाती।
नेह भरे कच लोचन देह सुधा मधु तें बनियाँ अधिकाती।
दामिनि सी नख दसन दीपति देखत कामिनी को न लजाती[2]।
देव जू वा सुखदाइनि को मुख देखतहूँ अँखियाँ न अघाती[3] ॥४४॥

[1] सुसील—ग० ब०। [2] दसन की दुति देखत हूँ अँखियाँ न अघाई—भा०। [3] अन्तर के अनुराग जिते गुनि ऊपर ही सब देत दिखाई—भा०।

पित्तप्रकृति लक्षण।

जाल दन्त नग नैन[1] तन पृथु कुच क्रेस अगाल।
छमा क्रोध छिन मे[2] दुवो पित्त प्रकृति सो बाल ॥४७॥

[1] जाल नैन नग दन—मा०। [2] दिन मे—भा० मा०।

उदाहरण।

लाल लसै[1] नग दन्त कपोल प्रवाल मे[2] ओठनु गॅचि लचावति।
भौंहनि भाइ सुभाइ बनाइ कै बातनही मन गान नचावति।
आँचरहीं चुरचीन बजाइ कै गाइ कै प्यार को प्रेम पचावति।
रूमि रहै कबहूँ रिस कै कबहूँ रमना रस रंग रचावति[3] ॥४६॥

[1] लाल लसै—भा०। [2] सु वारिज—भा०। [3] मचावति—मा०।

वातप्रकृति-लक्षण।

रूखे तन मन वचन कच धूसर[1] चंचल चित्त।
भूरि बहु भाजन गमन वातुल तिय रति मित्त[2] ॥४७॥

[1] कच दूसर—भा० मा० व०। [2] वात प्रकृति तिय मित्त—व०।

उदाहरण।

गाय रुखाई भरी अँखियाँ रस रागै नहीं मखियानि सो दीठै[1]।
भाजन भूरि भरी मदन ज्वर[2] भूरे स बागनि बानि अनीठै।
चंचल चित उरी मद सो छिन एक न छाती ते छाड़ति ईठै।
काम की धाम अधाम नहीं दिन राति रही रतिरंग उनीठै ॥४८॥

[1] सी टूटै—मा०। [2] मद भूभर—भा० मा०।

सत्त्व-भेद।

सुर किन्नर अरु जक्ष नर कहि पिसाच अरु नाग।
सत्त्वभेद सो नायिका बरनहु खर कपि काग[1] ॥४६॥

[1] नाग—भा०।

तिनके लच्छन भेद सब जानहु नाम[1] समान।
ते प्रसिद्ध संसार मे जानि सुभाइ प्रमान ॥५०॥

[1] नीम—मा० नीर—भा०।

देवसत्त्व-उदाहरण।

राम की कुमारी सी परम सुकुमारी[1] यह जारी है कुमारी महा भाग वा जनक के।
सरज सरीर सुकुताई की सुधारी सी सुमति सी सयानी बैन बीना की भनक के।
सुरी[2] असुरी कि बनदेवी रसी देसी देव देवी ते अगन[3] गुनगन है गना के।
चनक उनक तन तनक तनक तन[4] भनक मनक पग खनक कनक के ॥५१॥

[1] सुघराई—भा० व०। [2] एहा—भा० व० प्रति मे पहले एहा पाठ था परन्तु उस पर लाल हरताल लगाकर 'सी' पाठ बनाया है। [3] आगम—मा०। [4] मन—भा० मा०। मनक बर्के—मा०।

मनुष्यसत्त्व-उदाहरण।

आई बरसानें ते बुलाई वृषभान सुता निरखि प्रभानि प्रभा भानु की अथै गई।
चक चकवानि कें चुकाय चक चोटनि सों चौंकत चकोर चकचौंधी सी चकै¹ गई।
देव नन्दनन्दन के नैननि अनन्दमई² नन्द जू के मन्दिरनि³ चन्द मई छै गई।
कञ्जनि कलिनमई कुञ्जनि अलिनमई गोकुल की गलिनि नलिनमई⁴ कै गई ॥ ५२ ॥

¹ सी चितै—भा०। ² नद नदन नैननि अनन्द मई भई—भा०, नद जू के नद जू के नद जू के नैनन—ग०। ³ मदिर नै—मो०। ⁴ अलिनमई—भा०, ब्र० प्रति मे पहले "अलिन" पाठ था परन्तु इस पर लाल हरताल फेरकर उसी हस्तलेख मे नलिन पाठ—संशोधन हुआ है।

गन्धर्वसत्त्व-उदाहरण।

सुन्दरि मंदिर तें न कढ़ी कहूँ नैननि तें नहि नाच उमाची¹।
काहू सिखाई न सीखी² कहूँ सखियानि सों सीख सुभाइन साँची।
देव जू देखे सुने नहि स्याम पढ़े बिन प्रेम की पद्धति बाँची।
आनद तें अनुराग भरी बनकुञ्ज में जाइ अकेलिये नाची ॥ ५३ ॥

¹ हुमाची—ब्र०। ² सीख—भा० मो०।

पक्षिसत्त्व-उदाहरण।

चञ्चल नैन बड़ी¹ बरुनी कुटिलैं भृकुटी लुलितैं लटकारी²।
मोहनी सी मुसकानि³ मनोहर चेटक सी बतियाँ सुखकारी।
देव सपक्षन बात बिचक्षन⁴ रंगी न अक्षन नारि निहारी।
बासव लक्षन कें⁵ लखि लच्छन रूप बिलच्छन लच्छनवारी ॥ ५४ ॥

¹ बड़ी—भा०। ² लटकारी—भा० ब्र०। ³ मुसकानि—ग०। ⁴ चार बिचक्षन—भा०, बिलक्षन—मो०, ब्र० प्रति मे पहले "बिलक्षन" पाठ था फिर इस पर हरताल फेरकर उसी हस्तलेख मे "बिचक्षन" पाठ—संशोधन है। ⁵ नन्द सों—भा० मो०।

पिशाचसत्त्व-उदाहरण।

अन्तर सोवनि नाहिं अरोनिय डोलनि पै नहि¹ बोलनि टेरे।
देखिये देव जितै तित ठौर ही ठाढ़ी रहै घर बाहिर घेरे।
केलिन रूप करै पलटै मन मानुहैं² सूनल सोन बसेर।
नेह भरी नव बाल दिखावति बाम कें कौतिक बाम सबेर ॥ ५५ ॥

¹ डोलनियैं नहि—भा० मो०, ब्र० प्रति मे पहले 'ये' पाठ था, हरताल की सहायता से इसे "पै" बनाया गया है। ² करै मन मानुहै आमुहै—भा० ब्र०।

नागसत्त्व-उदाहरण।

बसाहूँ अयानि नहीं रति रजनि सन अनन्त बिलास सिराई¹।
पानरी सोन² भरी सो भरी सी नटी सी नचाइ कटी गुन गाई।
आदि सी ओरिन³ ते उरगैं कहूँ मान मिरैहूं न जात लराई।
पन्न रिझै अरिरें⁴ नग सबनि ज्यौं⁵ उरगेरिन ने बिस भाई ॥५६॥

[१] विलास चिलौई—भा० मो०। [२] सैन—भा०। [३] चटी सी—व्र०। [४] आगिली सी आँखिन—"ली" पर हरताल—व्र०, आगिली आँखिन—भा०। [५] जुपिये—व्र०। [६] मननि क्यों—मा०, मतन त्यों—मों०।

खरसत्त्व-उदाहरण।

काम के काज न लागति लाज बुरे सुर बोलति डोलति दौरी।
रूखिय खात नहीं अनखात भएँ दिन राति रही परि टौरी[१]।
लातन दाँतन घातन हूरति[२] केलि कठोर करै इक ठौरी।
देखि दँतूसर[३] मसर मे भुज घूरि भरे तन धूसर धौरी॥५७॥

[१] रहौ खरि ठौरी—ग० मा०। [२] घात कहैं रति—ब्र०। [३] दलूसर—भा० मो०। केवल ग० सा० प्रतियों में चरणों का क्रम १-३-२-४ है। भा० प्रति में छन्द त्रुटित है।

कपिसत्त्व-उदाहरण।

न्यारे मैं न्याइ[१] अन्याइ करै बरजै क्यों हूँ पत्याइ नहीं अनुकूलेहू[२]।
औचक चौंकि चलै उछनै छल छिद्रनि लोक छतै प्रतिकूलेहू।
धीर धिरानि न पीर पिराति थिराति नहीं दिन गतिन ऊलेहू।
भूरी सी भूरि भरी उमराई मौ[३] राई भरी यो भुराई न भूलेहू॥५८॥

[१] न्याय मैं न्याय—ग०। [२] अनुभूलेहू—ग०। [३] भरावभराई सा—सा० मो०।

काकसत्त्व-उदाहरण।

व्याकुल सी कुल सील उमेडि कै[१] है उमड़ी मडराइ दिखावै।
चचलचित्त चितौति चहूँ दिसि[२] एकौ घरी घर चैन न पावै।
औचक चौंकनि बातन ही निज बातनि घातनि[३] बात चुकावै।
काक लौं[४] काक कुबाक सुनाइ कै साधुनि[५] के गुन दोष बतावै॥५९॥

[१] उमेटि कै—व्र०, उमेठि कै—भा०। [२] चितै दसहूँ दिसि—मा०, चितौ चितहूँ दिसि—मो०। [३] घातनि बातनि—ग० मा०। [४] काग लौ—ग०। [५] सापनि—व्र० भा० मो०।

आठ भेद करि नायिका बरनि कही इहि भाँति।
कागर बरनी जानि सो सकल रूप गुन काँति॥६०॥

इति श्री नृप भोगीलाल हित रस विलास कवि देव कृते काल भेदवहिक्रम भेद सत्त्व भेद नायिका वर्णन नाम षष्ठमो विलास।

संयोग दस हाव वियोग दस दसा।
इहि विधि बरनहुँ नायिका आठो अग विभेद।
आदि अत सुख[१] की प्रकृति जाहि बखानत बेद[२]॥१॥

[१] आदि पुरुष सुख—ग० मा०। [२] भेद—मो०।

सो मोहनि नायक सहित प्रकृति पुरुष[१] सयोग।
तन मन बचन अनन्त[२] विधि बरनत बरनत लोग॥२॥

[१] प्रति पुरुष—भा०। [२] अनन्द—मो०।

तातें पिय संजोग में उपजत हैं दस हाव।
अरु वियोग में दस दसा[1] दारुन विरह सुभाव ॥३॥

[1] मद की दसा—मो०।

हाव-नाम।

लीला और विलास भनि औ विच्छित्त[1] विन्नोक।
विभ्रम किलकिंचित बहुरि[2] मोट्टाइत विब्बोक ॥४॥

[1] विक्षिप्त—ग० मा०। [2] अहुरि—मो०।

कह्यो कुट्टमित अरु विहृत[1] ललित कह्यो[2] दस हाव।
तिय के पिय संजोग में उपजत सहज सुभाव ॥५॥

[1] विहृति—ब्र०। [2] कहो—ग० मा०।

हाव-लक्षण।

कपट भेष भाषानुकृति[1] लीला में रस हास।
सरसभाव तन मन वचन रचि को रचत विलास ॥६॥

[1] वस्तानि हरि—मो०, भाषनि कै—भा०।

लघु मंडन विच्छित्त[1] में मन अभिमान विसेष।
विभ्रम सो जु प्रमाद तें[2] उलटे भूषन भेष ॥७॥

[1] विक्षिप्त—ग० मा०। [2] प्रमादतें—भा० मो०, ब्र० प्रति स पहले "प्रमाद" पाठ था परन्तु हस्तान्तर की सहायता से "प्रमाद" पाठ-संशोधन उसी हस्तलेख में हुआ है।

किलकिंचित दुखचार भय मुदमद[1] रस रिस मान।
मिसें कपट मोट्टाइत मन वचन आन तन आन[2] ॥८॥

[1] मुदमुद—मो०। [2] मन वच आनन आनि—भा०, मनहु वचन आन तन आन—मा०, मन वचन पै न तन आन—ग०।

मन में सुख संकट कपट प्रगट कुट्टमित हाव।
पिय सदोष बिब्बोक बहु दृग भौंहनि के भाव ॥९॥
अपनी सौं मिस लाज छल विहृत आन तन आन[1]।
ललित सरस रचना ललित बरनत सुकवि सुजान ॥१०॥

[1] विनय आन तन आन—भा० मो०, हाव विहृति पहिचानि—ब्र०।

लीला-उदाहरण।

राजपौरिया को रूप राधे को बनाइ लाई गोरी मथुरा तें मथुरन की गलानि में।
टेरि कह्यो कान्ह सों चलो जू चले चाहे तुम[1] काके कहे लूटन सुने हो दधि दान में।
संग के न जाने गये उगर डराने देव स्याम ससवाने[2] से पकरि कर[3] पानि में।
छूटि गयो छलसों छबीली[4] की बिलोकनि में ढीली भई[5] भौंह वा लजीली मुसकानि में ॥११॥

[1] तुमैं—भा०। [2] कान्ह ससवाने—मो० ब्र०, कान्ह सकुचाने—भा०। [3] गहे—ब्र० भा० मो०। [4] छल छैल यार—ग०। [5] परी—भा० मो०।

विलास-उदाहरण।

सहर सहर सौंधो सीतल समीर डोलै घहर घहर घनघोरि[1] कै घहरिया।
झहर झहर झुकि झीनी झर लायो देव[2] छहर छहर छोटी बुंदनि छहरिया।
हहर हहर हँसि हँसि कै[3] हिंडोरे चढ़ै थहर थहर तन कोमल थहरिया।
फहर फहर होत प्रीतम को पीत पट लहर लहर होत प्यारी की लहरिया ॥१२॥

[1] घनघोरि—ग०। [2] चीर लाग्यो देह—मा०। [3] हँसि हँसि कै—भा० मो०।

आली भुलावति झूक दै दै झुकि जानि कटी भननाति झकोरें।
चंचल अंचल बीच चलाचल बेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरें।
या बिधि झूलत देखि गयो लवते कवि देव सनेह के जोरें।
झूलत है हियरा हरि को हिय माँझ तिहारे हरा के हिंडोरें ॥ १३ ॥

भा० मो० प्रतियों में यह छन्द त्रुटित है।

विच्छित्ति-उदाहरण।

छूटे छवानि लौं केस बिराजत बार बड़े तमनार हने मे।
लोचन कंज मे खंजन से दुखभंजन देव न[1] जे कहने से।
कुन्दन सो[2] तन जोबन जोति जवाहर मे पिय के लहने मे।
रंग भरे तेरे अंग वहू[3] बिलसै बिनही गहने गहने मे ॥ १४ ॥

[1] देखत—भा०, देखत—मो०। [2] कुंजनसी—मा० मा०। [3] वधू—ब्र०, भटू—भा०।

विभ्रम-उदाहरण।

आई उठि सेज न सुजान संग जागी निसि नींद न दिनहि लागी नींद न परति है[1]।
देव सुनै बोल न बुलाये बिन बोलि उठै बौरई मैं[2] औरई की औरई धरति है।
हाँसी[3] मिस गोड़ गोड़ मौतै उरहनो दै दै झूठे उरहनो देखे छतियाँ बरति है।
जनक न लागत अनोखी कुलदेव सोखी उलटे बसन पैन्हि ऊलट करति है ॥१५॥

[1] नींद नहि लागी अब नींदन परति है—ब्र०, नींद नहीं लागी निसि नींद न परनि है—ग०, नींद निदनहि लागी नींद न परति है—भा०। [2] ठौंरई मैं—मा०, औरई मैं—ग०। [3] दासी—भा०।

किलकिंचित-उदाहरण।

धाम धाई धाई धाम आई नव बाम मिल सखी[1] मिस देव स्याम मानि रँगराति है।
औचाहो[2] गैल कै[3] निसक भरि अंक प्यारी पारी[4] परजंक सो ससक[5] अकुलाति है।
गालनि मे इतराति[6] बातनि मे सतराति भौंहनि हँसाति अँखियानि मे रिसाति है।
भारे कर भुरी उर बाम जुर भुरी[7] तन लाज पुरहरी रस घुरी दुरी[8] जाति है ॥ १६ ॥

[1] सीसी—भा० मो०। [2] औचवही—ग० गा०। [3] औच कै—भा० मो०। [4] पाटी—भा० मो०। [5] *परजंक मांस मवि*—भा० मो०। [6] दुतिराति—भा० मो०। *ब्र० प्रति* मे दूसरे हस्तलेख मे "दुतिराति' पाठ संशोधित है। [7] भुर भुरी—ब्र०। [8] *रस गीरी* घुरी—गा०।

मोट्टाइत-उदाहरण।

मोहनी हा तुमही बृज भूपर रूप रह्यो मन ऊपर चाख्यो।
चाह सों सैननी सैन गखी तुम्हैं[1] देख्यो नहीं मुख रचन गाख्यो।
बातम त्या न बिलोकनी बोलनी अन्तर आवनी ना करि जाख्यो।
जान्या परै न बिराग सुहाग[2] निहारो अहो[3] अनुराग अनाख्यो॥ १७॥

[1] मलीन सा—ग० मा०। [2] सुहाग बिराग—ब्र०। [3] भटू—भा० मनो० मा०।

बिब्बोक-उदाहरण।

बाम तमाम कहू निसि कान्ह की देव बसे घन सा मन जाटैं।
लोचन कापक पक्ष[1] परे इन आवत भोरही भौंहनि ओटैं[2]।
नैन तुरंग नचाइ[3] अचान गए[4] करि तीखी कटाक्ष की चोटैं।
मान दिमान के गाँव गई लुटि प्रीतम मोह की प्रेम की पोटैं[5]॥ १८॥

[1] लाग के कोए कटाक्ष—मा०, लक्ष—मा०। [2] लोचन कोर कटाछ कजाक परे इन आवत भौंहनि ओटैं—ग०। [3] तरग निचाइ—मा०। [4] अचान कए—भा०। [5] मानहु मान के गाँव ही लुटिगे प्रीतम मोह के प्रेम की पोटैं—भा० मोटैं—ग० मा०।

कुट्टमित-उदाहरण।

छतिया छुवत छवि औरै होति आनन की चदन मिलाय मनो कमरि टरति है।
मुख की रुखाई पै रुखाई[1] कछु बैनन की नैनन की चिकनाई चौगुनि धरति है[2]।
नासिका मरोरि मुख मोरि नेकु नाहीं करि चाहि चित प्रीतम की बाहीं पकरति है[3]।
रूप सुखसागर मे बूडति सी तान तिया उमगि सुजानहि भुजान मे भरति है[4]॥ १९॥

[1] सुखाई—ग०। [2] रुखाई मांह काटि छवि छाई तन अधरा रस नैनन रसाइय धरति है—मा०, नैनन निकाई चिकनाइए धरति है—ब्र०। [3] करै चहचही चैन चित बाहीं पकरति है—ग०। [4] सुजान पै भुजानहि भरति है—ग०। भा० मो० प्रतियों मे यह छन्द त्रुटित है।

बिहृत-उदाहरण।

बंसीबट के तट निकट जमुना जल मे[1] गैननि कुवरि राधा सखिन के पुंज मे।
रसिक कन्हाई आइ बाँसुरी बजाई धुनि सुनि कै[2] रही न मनि गनि मन लुंज मे।
चलि न सकति वृन्दावन की गलिन बीच बिरन[3] नलिन नैनी अलिन की गुंज मे।
देव दुरि जाय अनुराग मुसुकि मुखी मुसुकिन बकुल कदंब कुल कुंज मे॥ २०॥

[1] बंसी बट जमुना जी तट के निकट कहूँ—भा०। [2] सुनि धुनि कै—भा० मा०।
[3] सजन—भा०, सिरन—मा०, कोकिल—ब्र०।

ललित-उदाहरण।

चाँदिनी महल बैठी चाँदिनी के कौतुक को चाँदिनी सी राधा छिटी[1] चाँदिनी बिगारतें।
चन्द की कला सी देव दासी सँग फूल से दुकूल पैन्हे फूलनि की मालतें।
छूटत फुहारे ये अमल जल झलकत चमकें चँदोवा मनि मानिक मसालतें।
बीच[2] जरतारनि की हीरनि के हारनि की जगमगी जोतिनि की मोतिन की झालरें॥ २१॥

[1] छबि—ग० । [2] वीजि—मा० । [3] मुक्ता सुधारस रा माह मन भावरै—मा० ।

हाव भाव सजोग मैं उपजत और अनेक ।
तिन मैं सूक्षम सार महि दस विधि बरनत एक ॥२२॥

[1] शृंगार में—ग० ।

इहि विधि दसौं प्रकार के हाव हेल सजोग ।
अब दम्पति की दस दसा बरनौं बीच[1] वियोग ॥२३॥

[1] विहित—भा०, विचित—मा० प्र० ।

पिय वियोग मैं दस दसा होइ दम्पती माहि ।
जिनत तिनके तननि मैं एकौ पल कल नाहि ॥२४॥

दस दशा-नाम ।

प्रथम कह्यौ[1] अभिलाष अरु चिन्ता सुमिरन होइ ।
तातें बरनौं गुनकथन फिरि उद्वेग सु होइ[2] ॥२५॥

[1] कही प्रथम—ग० मा० । [2] कहाइ—ग० मा० ।

प्रलाप अरु उन्माद कहि व्याधि जड़त्व[1] बखानि ।
मरन कहत दसई दसा कविकोविद जिय जानि ॥२६॥

[1] अरु जड़ता जु बखान—प्र० जड़ता व्याधि—भा० ।

तिनके-लक्षण ।

इच्छा जो पिय संग की सो अभिलाष प्रमान ।
पिय चिन्तन चिन्ता कहै[1] पिय सुमिरन को ध्यान ॥२७॥

[1] करै—प्र० ।

पिय गुन बरनन गुणकथन अरु पिय विरह जलग ।
भली वस्तु नागा लगै सो कहिय उद्वेग ॥२८॥
बिरहिनि बौरी ह्वै बकै सो प्रलाप पहिचानि ।
करत कहत जानै न कछू[1] सो उन्माद बखानि ॥२९॥

[1] जो जैन कछु—मा० ।

पिय बिरहज्वर व्याधि कहि जड़ता जड़ ह्वै जोइ ।
मरन मूरछा एक ही बिरह दसा दस भोइ[1] ॥३०॥

[1] मरन मोन एवं बिरह कही दसा दस भोइ—मा० ।

अभिलाष भेद ।

श्रवनोत्कण्ठा दरसन लाज प्रेम करि भाय ।
हान परमपर पाँच विधि दम्पति के अभिलाष ॥३१॥

अभिलाष-उदाहरण ।

काई अचानक आइ कहै[1] मनमोहन की बतियाँ अति मीठी ।
देव तिन्है सुनि सुन्दर को हरि देखन की मनु देन बसीठी ।
एक ही बार चकया उचक्यो[2] चित औगिनि लागी गयी मन गीठी ।
[illegible] ॥३२॥

¹ आनि कह्यो—भा०। ² नचवयो—ब्र०। ³ रूपही नैननि—भा०। ⁴ उमीठी—भा० ब्र०, बतानि उमीठी—ग०।

उत्कंठाभिलाष-उदाहरण।

मोहन रूप चढ़्यो चित मै छिन भोजन भूषन भाँति न भावनि।
देखन को तिन हीं छिन सीन मलीन सों देव न जी की जनावनि।
भूलि गयो गुड़ियान को खेल झरोखनि झाँकनि धाम गँवावनि¹।
बात गनै न अबार सबार कि बारक बार² किवार लौं आवनि॥३३॥

¹ भाँति कै ढंग बिनावनि—भा०। ² सु बारक बार—ग० भा०।

दर्शनाभिलाष-उदाहरण।

कान्ह कढ़े वृषभान के द्वार ह्वै खेलन खोरि सिधावरि धा की¹।
भीतर भौन तें सामुहै नार की बाल बिलोकि बिलोकनि बाँकी।
हेरी न देव सुखेरी घने दुख चेरी ह्वै जाती चितौनहि ताकी²।
पौरि लौं जाइ फिरी अकुलाइ अटा चढ़ि घाट झरोखा ह्वै झाँकी॥३४॥

¹ ताकी—ब्र०। ² चेरी को पूछनि बात पिया की—भा० ब्र०।

लज्जाभिलाष-उदाहरण।

मूरति जो मनमोहन की मनमोहनी कै थिर ह्वै¹ थिरकी सी।
देव गुपाल को बोलु सुनै छतिया सियरानि सुधा² छिरकी सी।
नीरे झरोखा ह्वै झाँकि सकै नहिं नैननि लाज घटा घिरकी सी।
पूरन प्रीति हियै हिरकी³ खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी सी॥३५॥

¹ मन ह्वै—भा० मो० ब्र०। ² सियरानि सुधा छतिया—ग० भा०। ³ हरि की—ब्र०।

प्रेमाभिलाष-उदाहरण।

बाँसी बिसै वृषभानसुता पै हौं जानति कान्ह कियो¹ कछु टोना।
राह² कह्यो बरसाने तें री नंदगाँव चल्यो अब स्याम सलोना।
गैलनि हीं रि अचानक चौंकि चितै चहुँ देव दियो³ दृग कोना।
मूल उठ्यो उनमूलि⁴ गयो मन भूलि गयो सब खेल खिलोना॥३६॥

¹ जियो—भा०। ² कान्ह—ग०। ³ दिख्यो—भा०। ⁴ तन हरि—भा०।

चिन्ता-भेद।

दम्पति कें अभिलाष तें चिन्ता बढ़ै अपार।
गुप्त अगुप्त सकल अरु बिकल चारि प्रकार¹॥३७॥

¹ गुप्त सकल अरु कह्यो बिकल चारि प्रकार—भा०।

गुप्तचिन्ता-उदाहरण।

मूँदि है नैन लखै न लखै अब पैयै कहाँ¹ जब चाहन हेरो।
कान करै नहिं कान लवैव बिकान² सखी अकुलान घनेरो।
लाजहि लाय मिलै उन पै इन मोहि मिलै सखी³ मेदन मेरो।

मटौ मनोरथ हौं इनको तो मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो ॥३८॥

[1] पैयै कही—भा० व्र०। [2] सबैव बिकान—भा० मो० व्र०। [3] हिन—ग०।

अगुप्तचिन्ता-उदाहरण।

चित[1] कोटि कला उलटै-पुलटै पलही पल ज्यों मृग बागरि के।
बहु तर्क बिलास चढ़ै चित वाम[2] पै देव सरूप उजागरि[3] के।
गति वक्र निसगही नाच करै गुन डोरि गहे गुनआगरि[4] के।
नव नट्ट लख्यो नटनागर सो दोउ नैन भये नट नागरि[5] के ॥३६॥

[1] ०—भा० मो०, बरि—ग०, रोरि—सा०। [2] बाल—भा०, ग० प्रति में दूसरे हस्त-लेख में संशोधन 'बाल'।[3] उजागर—व्र०। [4] गुन आगर—व्र०। [5] नगनागर—व्र०।

सकल्पचिन्ता-उदाहरण।

कछु और उपाय करै जनि री इतन दुख सो मुख सो मरिबो।
फिरि अन्तर सै बिन कन्त बसन्त सु आवत जीवतुहि जरिबो[1]।
बन बौरन बौरि मै जाऊँगी देव सुनै धुनि कोकिल की डरिबो।
जल डोलिहै और अबीर भरी सु हहा करि बीर[2] कहा करिबो ॥४०॥

[1] जीवत ही जरिबो—सा०। [2] बौर—भा०।

विकल्पचिन्ता-उदाहरण।

सारि[1] रों खेलत आवानि न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों।
देव गुपालहिं देखतिय न तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों।
बापुरी मंजुल आंब की बालि सु भाल सी ह्वै उर मैं अरती क्यों।
कोमल कूकि कै[2] कैलिया कूर[3] करेजन की किरचे करती क्यों ॥४१॥

[1] पौरि—व्र० मो० प्रति में पहले 'पोरि' पाठ था परन्तु "प" की टेढ़ी रेखा पर हर-ताल लगाकर "पौरि" पाठ—संशोधन हुआ है। [2] कोमल बालि कै—भा० मो० व्र०।
[3] कोकिल कूर—मो० व्र०।

स्मरण-भेद।

स्वेद स्तम्भ रोमांच सुरभंग कम्प वैवर्न।
अश्रु प्रलय सुमिरन त्रिपथ सात्विक आठौ बर्न ॥ ४२ ॥

स्वेद स्मरण-उदाहरण।

ईंगुर सो मिलि जात पसीजत अंग सुरंगन चोलनि[1] पै।
कवि देव कछू पुलकै पुलकै भलकै[2] उर प्रेम कलोलनि पै।
हँसि बोले न बाल बिलोकै न आनन भौरे[3] नहीं दृग[4] डोलनि पै।
ललकैं अँखियाँ पलकैं न लगैं[5] भलकै जलबुंद[6] कपोलनि पै ॥ ४३ ॥

[1] बोलनि—सा०। [2] उरकै—भा० मो०। [3] रोकै—ग०। [4] डग—सा०। [5] लुलैं—ग० सा०, न लगै पलकैं—व्र०। ६ श्रमबिंदु—ग०।

नायिका त्रपा की ओर दियें[2] अधमुद्रित लोचन कोर समावति।
आसन बाँधि उसास भरै जब गनिका देव कहा अवराधति।
भूलि गो भोग कहा लखि जोग वियोग सियौं यह जोगहि साधति ॥ ८८ ॥

[1] उमग—ब्र०। [2] दिये—भा०, दीठ दिये—ब्र०।

रोमाञ्च स्मरण-उदाहरण।

हरषि हरषि हिय मन्द विहँसनि निय बरषि बरषि रस रात्रै चित चोज हैं।
मुरनि मुरनि स्यामा स्याम[1] सुमिरनि देव पुलकि पुलकि उर उठत उरोज हैं।
फरकि फरकि बाम बाहु फुरहुरी नैनि सरकि सरकि सुनैं मैन सर सोज हैं।
छलकि छलकि छवि छलकनि पलकनि ललकि ललकि मूँदे लोचन सरोज हैं ॥ ८५ ॥

[1] स्याम स्याम—भा० मो० ब्र०।

सुरभंग स्मरण-उदाहरण।

धरि बैठी ध्यान करि बैठी गूढ़ ज्ञान जानि जिय ज्ञान मोह माह[1] सो हिय मदन है।
मूँदि मूँदि लोचन निरौंनि नींद मोचन क मोचन[2] सकोच सोच सकरे[3] बदन है।
भूली भूख प्यास त्रास हास तें उदास देव देखि दासी दास आस पास तें रदन[4] है।
कौन जानै मौन धरि क्यों है अवराधे जब राधे मुख आधे आधे आखर कढ़त है ॥ ८६ ॥

[1] ०—ना० गा० मो०, मोह माह—ब्र०। [2] सु मोचन—ब्र०। [3] सकरें—ना० सकरी—भा०। [4] उगन—ना०, "ठगन" पर १—२ संख्या डाल कर "रदन"—ब्र० मो०।

कंप स्मरण-उदाहरण।

प्रेम के प्रकार आसपास की पड़ोसनि या पूछि पूछि आनी पछतानी गई अलिका।
कैसी है कुँवरि[1] बाला कहिये कहा भयो[2] काहू कछू कैसो कै कुबोल बोल्यो बलिका।
गोरे न[3] सिरामा नगि स्याम सुमिरत काहि[4] बोलति विलोकति न पोटति न पलिका।
काँपि लागि गोरे भरहरे दृग आगे देव काँपि काँपि उठै कुच कोर की सी कलिका ॥ ८७ ॥

[1] कैसी है कुँवर—ना०। [2] कहा कहिये सु कैसी भई—गा०। [3] मावनें—ना०।
[4] राहू—गा०, कहि—भा०, गहि—ना०।

वैवर्ण्य स्मरण-उदाहरण।

मोहन की मूरति सों मोही जग मोहनी[1] सु मोहि मोहि महा मोह सों हिय मढ़ादयन।
भौर भरे[2] भीतर सरीर फरकन ऐसी अधखुली अँखियानि उरमा बढ़ादयन।
आनन की आन उर आननी न आन आन[3] बरनि न जानही मवासही पढ़ादयन।
लोनो[4] मुख मढ़र पै पढ़ुर[5] प्रकास प्यारी[6] जैसे चंद मढ़र पै चंदन चढ़ादयन ॥ ८८ ॥

[1] मन मोहनी सु—भा०। [2] भौर भौर—भा० मो० ब्र०। [3] आनी नन आनी आन—भा० मो० ब्र०। [4] लानो—भा०, लोनो—मो०, लोन्हो—ना० गा० ब्र० प्रति में पहले "लोन" पाठ था परन्तु बाद पर लाल हरताल फेर कर "लोन" पाठ—संशोधन हुआ है। [5] कुढ़र—हरताल फेरकर 'पढ़र'—ब्र०, पढन—भा०। [6] देत—भा०, करि—ब्र०।

अश्रु स्मरण-उदाहरण।

आई नही तन मे तरुनाई भई नहि स्याम के सग सजोगिनि[१]।
कौने सिखाई सखीधौ कहा सुमिरै धरि ध्यान जनौ जुग जोगिनि।
भोजन बास न हास हुलास[२] उसास भरै मनौ दीरघ रोगिनि[३]।
आँखिन तै अँसुवा नहि सूखत एकही बार ह्वै बैठी वियोगिनि॥ ४९॥

[१] सजोगनि—ब्र०। [२] बिलास—ग० सा०। [३] डोरे सु लाल वही गर सेलि है छाडि दिये जग के सब भोगनि—भा०।

प्रलय स्मरण-उदाहरण।

सूधेहू न खेल खेलि जानतिही काल्हिहू लौ काहे की[१] सयानी यानी बोलति है तूतरी।
आपु ही तें आजुही सयान मन सीखो सखी सारदा कि राधा के असीस सीस ऊतरी।
अधमुँदी अँखियनि[२] खोलति न बोलति न डोलति न साँस चित चल्यो[३]अद्भूत री।
कीने हरि मित्र लीने विरह दसा चरित्र बैठी है विचित्र[४] रूप चित्र की सी पूतरी॥५०॥

[१] खेलि एलि जानति ही कान्ह कुल जानति—सा०। [२] नयननि—भा०। [३] चाल्यो—भा० ब्र०। [४] पवित्र—सा०।

साधारण स्मरण-उदाहरण।

रजित महावर सो कज से चरन मजु गूजरी बजनि अजौ काननि जगी रहै।
अचर उचोहैं कुच सकुच सु लक लचो[१] कचन सी देह दुति देव[२] उमगी रहै।
भूलती न भावती की भाति रति रभा की सी सूधी सी सुधानिधि सी सौधें सो पगी रहै।
आँखिन न देखै तो लौ आँखिन न लागै पल बडी बडी आँखिनि की आँखिन[३] लगी रहै॥५१॥

[१] खीन लचकीली लक—अ०, सकुच लची सी जात—ब्र०, सकुच नची—मो०।
[२] देह—मो०। [३] आँखे ही—ब्र०।

घाधरा घनेरो लाँबी लटै लटे लाँक पर[१] काकरेजी सारी खुली अधखुली टाड वह।
गोरी[२] गजगौनी दिन दूनी दुति होनी देव लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड वह।
चचल चितौनि चित चुभी[३] चित चारवारी मार वार बेसरि[४] औ केसरि की आड वह।
गोरे गोरे गोलनि की हँसि हँसि बोलनि की[५] कोमल कपोलन की जी मैं गडी गाड वह॥५२॥

[१] लक पातरे पै—भा० मो० ब्र०। [२] लोनी—भा० मो० ब्र०। [३] चुभि रही—भा० मो० ब्र०। [४] चित चोटी वाली मोट वाली बेसरि—भा०। [५] हँसि हँसि बोलनि की गोरे गोरे गोलनि की—सा०, मृदु हँसि बोलनि की—भा० मो० ब्र०।

गुण कथन-लक्षण।

सुमिरि परसपर दम्पति रहति सरस रस पागि।
बिरह मथन[१] मन गुन कथन बहु बरनन अनुरागि॥ ५३॥

[१] कथन—भा० मो० ब्र०।

गुणकथन-भेद।

हरष ईर्षा होइ अरु वहियतु चित्त विमोह।
अपम्मार[१] अरु गुनकथन चारि भाँति करि टोह[२]॥५४॥

[1] असमार—भा० मो०। [2] कहिवोद—भा०।

हर्ष-गुणकथन-उदाहरण।

देव मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद बिन्दु कै भाख्यों।
कंचुकी मे चुपर्यो करि चोवा[1] लगाय लयो उर सो अभिलाख्यों।
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवन्त सिंगार कै चाख्यो।
सांवरे स्याम को सांवरो रूप मे नैननि मे कजरा करि राख्यो॥ ५५॥

[1] कचुकी मे चोवा लै मैं चुपर्यो—भा०

ईर्षा-गुणकथन-उदाहरण।

कैसिहू कोउ करै उपहास पै[1] नीके हौं नाचनि[2] नेह नटू हौं।
औगुन हाइ रिची गुन देव करी गुनजाल[3] लपेटि[4] लटू हौं।
चातक लौं घनस्याम को रूप अघानि नहीं दिन रात रटू[5] हौं।
दूसरे काज न[6] लोक की लाज भई बृजराज की भाट भटू हौं॥५६॥

[1] हों—भा० मो० ब्र०। [2] वाचनि—भा०। [3] गुनलाल—ब्र०। [4] लखोटी—ब्र०, मनोटि—भा०। [5] नटू—भा० मो०, ब्र० प्रति मे पहले के "नटू" पाठ पर हरताल फेर कर "रटू" पाठ संशोधन हुआ है। [6] कानन—ब्र०।

विमोह-गुणकथन-उदाहरण।

ग्वालि गई इक ह्यां रि उहां मथि रोकि सुतौ[1] मिसु कै दधि दान को
वै तो भटू वह भेंटी भुजा भरि नाको निकासि कछू पहचानि को।
आई निछावरि कै मन मानिक गोरस दै रस लै[2] अधरानि को।
वाही दिना तैं हिय मे गडो वह डीठ बडो बडरी[3] अँखियानि को॥ ५७॥

[1] भरि कहीं मगि रोकी सुनौ—भा०। [2] रस मे—मो०। [3] बडो री बडी—भा०, ब्र० प्रति मे पहले के "बडो री बडी" पाठ पर हरताल फेरकर "बडो बडरी" पाठ संशोधन हुआ है।

अपस्मार-गुणकथन-उदाहरण।

ना तिन टरत टारें आंखिन लगत पल आंखिन लगे री स्याममुन्दर सलोन मे।
देखि देखि आनन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचोन मे।
एरी कहु को हौ हौं कहां हौ कहा करति हा कैसे वन कुज देव देखियत भौन मे।
राधे हौ मदन वैठी कहती हौ कान्ह कान्ह हा हा कहि कान्ह के कहां हैं को हैं कौन मे[1]॥ ५८॥

[1] हा हा कैसे हैं कोहैं कौन मे—भा०, हा हा कान्ह कैसे हैं कहां हैं कोहै कौन मे—ब्र० मो०।

उद्वेग-लक्षण।

रूपनि करि करि गुन कथन भरि भरि रस आवेग।
पूरन प्रेम वियोग तें प्रगटै उर उद्वेग॥५६॥

उद्वेग-भेद।

भली वस्तु लागा लगै काहू भांति न ओत[१]।
त्रिविधि[२] उद्वेग सु वस्तु अरु देस काल करि होत ॥६०॥

[१] न सोत—ग०, ना श्रोत—सा०। [२] त्रै—भा०।

वस्तु-उद्वेग-उदाहरण

वेप भये[१] विप भावै न भूपन भूप न भोजन कौं कछु ईछी।
मीच[२] की साध न सोवे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी[३]।
चन्दन त्यो चितयो नहिं जात चुभी चित माँहि चितौनि तिरीछी।
फूल ज्यो सूल सिलाय सम सेज[४] बिछौननि बीच[५] बिछी मनु बीछी ॥६१॥

[१] भनो—ब्र०। [२] मीठे—सा०। [३] देव जू देखे करै वधु सो मधु दूध सुधा निधि माखन छीछी—ग०। [४] सलाक सी सेज—सा०। [५] माँभ—ग० सा०।

देश-उद्वेग-उदाहरण।

घोर लगे घर बाहरिहू डर नूल पलास लगैं पजरे से[१]।
रगिन भीतिन भीत लगैं लखि रग मही रन रग ढरे से[२]।
धूम घटागरु धूपनि की[३] निकसे नव जालनि व्याल भरे से।
ये गिरिकन्दर से मनि मन्दिर आज अहो उजरे उजरे से ॥६२॥

[१] जरैं पजरे मे प० ग०, लसै उजरे से—भा० मो०। [२] महीतरल रग ढरे से—भा०, मही तल रग ढरे मे— [३] धूम जटागरु धूमन के—भा० मो० ब्र०, धूम जठागरु धूपनि की—सा०।

कालोद्वेग-उदाहरण।

कन्त बिनु वासर बसन्त लागे अन्तक से तीर ऐसे त्रिविधि समीर लागे लहकन।
सान धर सार से चन्दन घनसार लागे खेद लाग खरे मृगमेद लागे महकन।
फाँसी से फुलेल लागे गाँसी से गुलाब अरु[१] गाज अरगजा लागे[२] चोवा लागे चहकन।
अग अग आगि[३] ऐसे लागे है केसरि नीर[४] चीर लागे जरन अबीर लागे लहकन ॥६३॥

[१] दव—ग०। [२] गुलाब गाज ऐसे अरगजा—भा० मो० अग अतर अरगनि लागे—ब्र०। [३] आंच—ग०। [४] लागे नीर केसरि के—ब्र०।

प्रताप-लक्षण।

दाहनि के उद्वेगराम ह्वै बढै[१] विरह सन्ताप।
उ कठिन चित प्रेम पिय पेगी प्रगट प्रलाप ॥६४॥

[१] उद्वेग हू बैठि—भा० मो० ब्र०।

प्रलाप-भेद।

सात भांति बकु बाद सा होत ज्ञान बैराग।
उपदेस प्रेम मदाय कहूँ भ्रमनि आप[१] बड भाग ॥६५॥

[१] भ्रम तिरचै—ग०, भवन श्रवन—सा०।

ज्ञानप्रलाप-उदाहरण ।

देखे अनदेखे दुखदाई भयो सुखदानि[1] सूखत न आँसू सुख सोइबो हरे पर्यो ।
पानी पान भोजन सुजन गुरजन भूले देव दुरजन लोग तरत खरे[2] पर्यो ।
लाग्यो कौन पाप पल एरी न परत कल दूरि गयो गेह नयो नेह नियरे पर्यो[3] ।
होनो जो अजान तो न जानतो[4] इतोक बिथा मेरे[5] जिय जानि तेरो जानिबो गरे पर्यो ॥६६॥

[1] सुखदाई भयो दुखदाई—प्र० । [2] लरज तरे—मा० । [3] दूरि गो गहन यों सुनह नियरे पर्यो—भा०, दूरि गयो गहन यों नेह नियरे पर्यो—मो० । [4] हो ती जो अजान ना न जानती—भा० मो० । [5] एरे—ग० मा० ।

वैराग्यप्रलाप-उदाहरण ।

तेरो कह्यो करि करि जीव रह्यो जरि जरि हारी पाँय परि परि तो न कीन्ही तैं सम्हार[1] ।
ललन विलोकि देव[2] पल न लगाये तब यों[3] कल न दीनी तैं छलन उछलनहार ।
ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई आप बिधि बूड्यो ब्याधि बाधा सिंधु निराधार ।
ऐरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीने अब एकै बार दै कै तोहि मूँदि मारों एकबार[4] ॥६७॥

[1] कीन्ही सम्हार—भा० मो०, कीन्ही तैं सम्हार—"तैं" हाशिये पर—प्र० । [2] बिलोकिबे को—मा० । [3] देव यों—प्र० । [4] तोहि मारो दैकै तोहि एक बार—प्र० ।

बोर्‌यो बस बिरद मैं[1] बौरी भई बरजति मेरे बार बार बार[2] बीर कोऊ पैठो जिनि[3] ।
तुम सिगरी सयानी[4] बिगरी अकेली हौंही गोहन में छाड्यो मोसों भौंहनि अमैठो जिनि ।
कुलटा कलंकिनि हौं कायर कुमति कूर काहू के न काम की निकाम योंही ऐंठो जिन ।
देव तहाँ बैठियतु जहाँ बुद्धि बैठी हौं तो बैठी हौं बिकल कोऊ मोहि मिलि बैठो जिनि ॥६८॥

[1] बोर्‌यो है बसत बिरही मैं—मा० । [2] नुदिन—ग० मा० । [3] कोऊ पास पैठो जनि—ग०, बैठो जिनि—प्र० । [4] तुमही सयानी बीर—भा०, तुम सब सयानी है—प्र० ।

उपदेशप्रलाप-उदाहरण ।

प्रेम की पीर न जानी तैं बीर जु छैल कटाछहुँ सों कहूँ छ्वैहै[1] ।
देव तुही असिहै हँसिहै बनि बावरी ह्वै रस रंगि है रुवैहै[2] ।
आई तो सीख सिखावन को पै सखी सुनि आपनीयो मति ख्वैहै ।
मोही सों मोही सो मोही कहै अबै[3] नेक मैं मोही सी मोही सो ह्वै है ॥६९॥

[1]कवि छ्वैहै—मा० । [2]रह ही रस चैहै—भा०, रस है रग चैहै—मो०, रग है रग च्वैहै—प्र०, रस रसी सी ह्वैहै—मा०, सो रवि सूचि रिसैहै—ग० । [3]फिर—ग० ।

प्रेमप्रलाप-उदाहरण ।

कान्हमई वृषभानसुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी ।
जानै को देव बिकानी सी डोलै लगै गुरलोगन देखि अनैसी ।
ज्यों ज्यों सखी बहरावति[1] बातनि त्यों त्यों बकै वह बावरी ऐसी ।
राधिका प्यारी हमारी सों तू कहि काल्हि की बेनु बजाई मैं कैसी ॥७०॥

[1]गुनगावती—मा० ।

संशयप्रलाप-उदाहरण।

मोही मैं वे[1] किधौ हौं उनही मैं कि हौ अरु वे इक संग बसेई[2]।
बाहरि भीतर मोही मैं देख्यौ दसौ दिसहू मैं चितौति ठएई[3]।
काहे की लाज लजाए री[4] को अब गोकुल गेह सनेह पगेई।
देख्यौ सुन्यौ नहि दूसरो देव जितै जित[5] जाऊँ तितै तित वेई[6]॥७

[1]सबै—भा० मो०ब्र०, ब्र० प्रति में दूसरी हस्तलिपि में "सेवे"। [2]लसेई—भा
[3]भीतर हीतर हू दिहरी तर देखी सु ठौर ठएई—भा० मो० ब्र०। [4]लजाय पर
ब्र०। [5]जित तितै—भा० ब्र०। [6]चितवेई—भा० मो० ब्र०।

विभ्रमप्रलाप-उदाहरण।

आजु भले गहि पाये गुपाल गुहौ[1] गहि लाल तुम्हैं गुन जालहि[2]।
होन न देऊँ कहूँ चलि चाल बसाऊँ हिये में मिलाई के मालहि।
बोलत काहे न बोल रसाल हौ जानति भाग भरे निज भालहि[3]।
सींचत नैन बिसालनि के जल बाल सु भेटति बाल तमालहि[4]॥७२॥

[1]गही—ब्र०। [2]गुन लालहि—भा० ब्र०। [3]निज बालहि—भा० मो०। [4]
मालहि—मो०।

निश्चय प्रलाप-उदाहरण।

काहू की कोई कहावति हौ[1] नहि जाति न पाति न जातै रसौंगी।
मेरोई हास करौ किनि लोग हौं को कहि देवजू काहू हँसौंगी।
गोकुल चन्द की चेरी चकोरी हौ मन्द हँसी मृदु फन्द फँसौंगी।
मेरी न बात चलौ बलि कोई मैं बौरिमे ह्वै[2] बृज बीच बसौंगी[3]॥७३॥

[1]कहा बनि हौं—भा० मो०। [2]बावरी ह्वै—ग०। [3]मेरे खियाल परौ न कोई व
कुजन मे गृह जाइ बसौंगी—भा०, संग सखीन सों साँची सुनै नहि साँवरे के अँग
बसौंगी—ब्र०।

उन्माद-लक्षण।

प्रेम बिकल थकि थकै[1] बाढ़ै बिरह विषाद।
बिन बिचार आचार जहँ सो प्रगटै उन्माद॥३८॥

[1]उठै—भा०।

उन्माद-भेद।

मद बिमोह अरु बिसमरन कहि बिच्छेप बिछोह[1]।
पाँच भाँति उन्माद ये[2] जहा भूरि भ्रम मोह॥३५॥

[1]बिछोह बिच्छेप—भा०। [2]कहि—भा० मो०।

मद-उन्माद उदाहरण।

धुनि धुनि सीस धुनि सुनि बासुरी[1] की देव चुनि चुनि चित जु करत चित चारी सी।
दिन दिन[2] दूने दुख सूने में मचल सुख लून बिन ज्ञान कढ़ी[3] मोह की कुठारी[4] सी।
रचि रचि रग सों उधरि नची अग अग को करे सु काज[5] रोर लाज गहि डारी सी[6]।
धावरी ह्वै दौरै न[7] गम्हारनि न बौरै[8] बृज बीथनि में डोलै भ्रम भोलै[9] मतवारी सी

[1]मुरली—मा०। [2]दुनि दुनि—ग० मा० मो०, टनि टनि—भा०। [3]कटी भा० ब्र०, नव म्यान कढी—ग०। [4]कुल्हारी—ग०। [5]सुजान—ग०। [6]लाजहि बिडारी सी—भा०, लाज गनि डारी सी—ग०। [7]बावरी लौं डोलै ना—ग० मा०। [8]निचोरै—ग०, न नोरै—मा०। [9]बोरै—ग०।

मोह-उन्माद-उदाहरण।

जबतें कुंवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहूँ[1] सुजस कहानी सी।
तबही तें देव देखी[2] देवता सी हँसनि सी खीभनि सी रीभन सी[3] रूसति रिसानी सी।
छाही सी छलि सी छीड[4] लीनी सी छकी सी छीन जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी।
बीधी सी बँधी सी विष बूडी सी[5] विमोहनि सी बैठी वह[6] बकति बिलोकनि बिकानी सी॥७७॥

[1] वाके कहूँ कान परी—मा०, वाके कान परी कहूँ—ब्र० मा०। [2] देखी—भा०। [3] रीभन सी रीभन सी—भा० मो० ब्र०। [4] छीनि—भा० मो० ब्र०। [5] बूडन—भा० मो, बूडन—हस्तलेख "बूडी सी"—ब्र०। [6] बाल—भा०।

विस्मरण उन्माद-उदाहरण।

मोहनलाल लगे कहूँ बाल वियोग की ज्वालनि सो तन डाढनि।
लागि गई अँगियाँ चितचोरन भागि गई गुरु लोग की गाढनि।
और की और कहै सुनै देव महा दुचिताई सखीनि के बाढनि।
नाम लिये मुख और चितै रहै सौंचि सरीर में घूंघट काढनि॥७८॥

विक्षेपोन्माद-उदाहरण।

चलि चलि सोसो कहै चलि चलि होति बिन बिचलि बिचलि चलि परनि उचकि चकि[1]।
रूसि रूसि हँसि हँसि खीभि खीभि आवै[2] खरी रीभि रीभि जाइ छोह[3] छोहि छवि छवि छकि।
याहि तकि तकि[4] चित किनहि पठायो[5] आजु देव कहे रहै कौन विथा सो थियकि थकि।
तिनही बिचार कै वचन तिन बूझै वीच वहकि वहकि बिन काज उठै चकि चकि॥७९॥

[1] थियकि थकि—भा० मो० ब्र०। [2] खीजि खीजि आवै—भा० ब्र० रहै—ग०। [3] मोहि छोहि—ग०। [4] तकि तकि काहि—ग०। [5] किन हिय ठाया—भा० मा०।

बिछोह उन्माद-उदाहरण।

आर पार अपनि विथा में बूडि बूडि जात पी की सुधि आय जी की सुधि खोड खोट देति।
बोर भरी बूडनि निमोह भरी मोहि माहि छोह भरी छिनि पै करोट[1] गोड गोड देति।
बडी बडी बार लगि बडी बडी आँखिन तें[2] बडे बडे अँसुवा हिये मे मोड[3]मोड देति।
बाल तिन बासर बिरह बैठी बार बार बपु मे विषम[4]विष बीज बोइ बोइ देति॥८०॥

[1] छिनि पै छरी सी—भा०, छिनि पै छवीली—ब्र०। [2] बडी बडी आँखिन तें बडी बडी बार लग—मा०। [3] हिय मे समोय—मा०। [4] विरह—ग० मा०

व्याधि-लक्षण।

और प्रकार उनमाद तें अन्तर उपजै आधि[1]।
जर भोजन सुर सयन बिनु बाढति बपु मे व्याधि॥८१॥

[1] व्याधि—भा०।

व्याधि-भेद ।

तीन भाँति की व्याधि सो प्रथम होइ सन्ताप ।
दूजो कहियतु ताप तें तीजो पश्चाताप ॥ ८२ ॥

सन्ताप व्याधि-उदाहरण ।

हाहा हौं करति मेरो कह्यो कर मेरी बीर पवन अवन थमैं[1] धीर न धरति धाम ।
देव घनस्याम बिनु जोबन दवा सों जरैं ग्रीषम मही सी हौं जरीये जाति आठो जाम ।
आयो बैगी मधु वधु कीनो कौन व्याधिन को काल भई कोकिला छपा कर न होतु छाम ।
नाही को कँपाउ बस[2] करे जिन बालम के रे जनि[3] कँपावे मो करेजनि कुटिल काम ॥८३॥

[1] धावै—भा०, धँसै—ग० । [2] ताही को कँपावन बस—भा०, ताही को कपाट बस—मो० । [3] अरे जनि—भा० ।

ताप व्याधि-उदाहरण ।

साँझ को सो चंद भोर को सो करि राख्यो मुख भोर की सी काँति भाँति साँझ की सी भई आनि[1] ।
साँझ भोर को सो नभ देखिये मलीन मन साँझ भोर चकवा चकोर की सी हित हानि[2] ।
कैसे करि कोसो कामा कहो कैसो करो देव कीनो रिपु कैसी के सुवेसी की सु ऐसी बानि ।
कैसी लाज कैसो काज कैसे धौ सखी समाज कैसो घर कैसो वर कैसो डर कैसी कानि ॥ ८४ ॥

[1] साँझ की सी अब भई आनि—भा० कौन बाति साँझ की भई है आनि—'कौन हाशिये पर—ब्र०, साँझ कैसी भोर भोई आनि—ग० । [2] चकवाक की सी भई हित हानि—सा० ।

पश्चाताप व्याधि-उदाहरण ।

सूधेंही[1] सिखाइ कै सखीनि समुझाई होती देव स्याम सुदर के सौहैं समहाती क्यों ।
बिचरि बिचारे बादि बैरी होते वधु कंत[2] बिरह की वेदन बिकल बिलखाती क्यों ।
जगमगी जोन्ह[3] ज्वाल जालन[4] सो जारती न अमजाई जामिनि जुगत[5] सम जाती क्यों ।
करैनिहाई कवैनिया की बाल ऐसी कूकैं सुनि कैल की सी कलिका कुँवरि कुँभिलाती क्यों ॥८५॥

[1] सूधे ह्वै—ग० सा० । [2] बिचरि बिचारे बीच बैरीन मुकुत होतो—भा० मा० ब्र० । [3] जोन—ब्र०, जोनि—भा० । [4] आरन—भा० मा० ब्र० । [5] जुगत—मो० जुगन—भा० ब्र० । केवल मा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-४-२ है ।

जड़ता-लक्षण ।

व्यापि बढ़त जहँ विथा बिन भोजन बिन नीर ।
निस दिन छिन छिन छीन ह्वै जड़ ह्वै रहत सरीर ॥ ८६ ॥

उदाहरण ।

कमल मुनैन जागे जतने[1] सुनैन तुम तब तें सुनै न स्यामा[2] सखिन के सोगन ।
लागो न जल अन्न नयन पलक परी कान परे देव गुन[3] मन चित चोगन ।
मारगोहैं[4] रूप रमि रह्यो धारे रोम रोम छैन छैदै[5] छाती मैं कटाछनि के छोगन ।
लाग्योई रहत बाहि मोलन निहारे नह अद्भुत भूत जनि पाँचो भूत भोगन ॥ ८७ ॥

[1] जियन—भा० मो० ब्र०, जतनै—मा० । [2] स्याम—ब्र० । [3] देव गन—भा० मो०

अ०, देव गुरु—मा० । [4] गावरे के—ब्र० । [5] छेद—भा० मो० ब्र० ।

मरण-लक्षण ।

दसम[1] अवस्था मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात ।
नीरस जानि न[2] बरनिये जीवन जनि मरमात ॥ ८८ ॥

[1] दसई—भा० ब्र० । [2] मरन न नीरस—ग० मा० ।

उदाहरण ।

केलि के बगीचा लौं अकेली अकुलाइ आई नागरि नवेली बेलि[1] हेरत हहरि परी ।
कुंज पुंज तीर तहाँ गुंजत भँवर भीर सुगंद[2] समीर सीरे नीर की लहरि परी ।
देव नेहि बात सुहि मार लाई मालिनी सुजान को बिरह बिष ब्याल की लहरि परी ।
छोह भरी छरी सी छबीली छिति माँह फूल छरी के छुवत फूल छरी सी छहरि परी ॥ ८९ ॥

[1] छुटिन—मो०, मेरी—ब्र० । [2] सीतल—ग०, सुत—मा० ।

देव जिन्हैं मिलि[1] कै रस हास प्रछन्न प्रकास निसा सुख सोई ।
भूरि के भाव समूरि के हावनि पूरि के प्रेम सदा सुख भोई[2] ।
ते बिछुरे दिन एक कहा कहौ बूडि बियोग समुद्र समोई ।
भोगी भुवाल के देखे बिना दुख देखे अलेखे दसा दस होई ॥ ९० ॥

[1] निन्हैं मिलि—ब्र० । जिन्हैं—तिन—मा० । [2] मोई—ब्र० ।

इति श्री रस विलासे भोगीलाल नृप हेतवे देवदत्त कृते सकल वियोग दशा वर्णन नाम सप्तमो विलास ।

नायिका-भेदांतर ।

कहे नायिका भेद सब आठ अंग के भाइ ।
अब भेदांतर कहत हौं सब प्राचीन सुभाइ ॥ १ ॥
बैस सरि नवला नवल तरुनि नवल अनंग ।
मुग्धा पाँच प्रकार कहि अरु मदजलनि रंग ॥ २ ॥
प्रगट यौवना अरु प्रगट मदना बचना[1] ढीठ ।
गुप्त विचित्रा चारि बिधि मध्या निज पिय ईठ ॥ ३ ॥

[1] मदना बदना—मा० ब्र० ।

चित्र[1] प्रकास प्रवीन रति लब्ध वल्लभा नारि ।
सविभ्रमा प्रौढ़ा कही चारि भाँति निरधारि ॥ ४ ॥

[1] रित—मा० ।

भाँति भाँति बरनी प्रथम सुघर सुकीया नारि ।
सो भेदांतर सौं कही तेरह भाँति बिचारि ॥ ५ ॥

मुग्धा-भेद । वय सधि उदाहरण ।

सैसो निसि छोर भोर जोबन को भोर नभ ओर से सरोज नैन सोवत[1] जगाइ कै ।
सैसव सिरेरि मन मैन मैं मिले न रत चतुर[2] दुगचल देवावलि[3] दिखाइ कै ।
पगन मैं पिरी जैस उपरी परति दीठि नाहीं करी नाह[4] टग साग्र सगाइ कै ।

जैसे पट कोट ओट पेखनो प्रगट तानि अतर कपट गीत गाइये सगाइ कै ॥ ६ ॥

[१] सोचत—सा० । [२] अचल—ब्र० । [३] सु देखत—सा० । [४] कहै नेह—ग० ।

नवयौवना-उदाहरण ।

घूघट की घरिया मैं ताय धर्यो मोन सो उघरि आयो लोनो मुख ओप अनुराग सी ।
अति ही अनूप रस रूप उमडे से बडे नैन गडे जात चित चेटक सराग सी ।
जोवन की बनक कनक मनि मोतिन सा तनक तनक पूरी पानिप तराग सी[१] ।
गोरे तन सेत सारी नियरे निहारि देव पियरे[२] पुहुप दल ऊपर पराग सी ।७।

[१] तनक कनक पुरि यानप तराग सी— सा० । [२] चपक—ग० ।

नवला-उदाहरण ।

जानि पर्यो जोवन जनायो है मनोज ज्वर जगमगी जोति अग बाढत नितै नितै ।
हरे हँसि[१] हेरि हरि लियो हरि जू को हियो हेरति हरिन नैनी हितू सा हितै हितै ।
सीखी दिन चारिक तें तीखी चितवनि प्यारी देव कहै भरि दृग[२] देखति जितै जितै ।
आछी उनमील नील सुभग सरोजन की तरल तनाइयत तोरन[३] तितै तितै ॥८॥

[१] हेरि हँसि—सा०, हरे हरे—ब्र० । [२] दृग भरि—ब्र० । [३] तोरति—ब्र० ।

नवल अनगा-उदाहरण ।

गौने के चार चली दुलही गुरु लोगनि[१] भूपन भेप बनाये ।
सील[२] सयान सिखायो सखीन[३] सबै सुख सासुरेहू के सुनाये ।
बोलिये बोल सदा हँसि[४] कोमल जे मनभावन के मन भाये ।
यो सुनि ओछे उरोजन पै अनुराग के अकुर से उठि आये ॥६॥

[१] गुरु नारिन—ग० । [२] सीख—ब्र० । [३] सबै सिखयेऽ—ग० । [४] अति—ग० सा० ।

रँग लाल जरी पट घूँघट ओट लसै मुकतालर की लरक्यो[१] ।
प्रभात प्रभाकर मडल मैं विधु मडल बिंब सुधाधर को[२] ।
रदपाँति चुनी चमकै हँसि बोलन देव कछू अधरा फरक्यो ।
मनो कातिक पून्यो की राति सुधाधर मध्य सुधा धरि कै ढरक्यो ॥१०॥

[१] को फरक्यो—ग० । [२] बिंदु सुधा ढरक्या—ब्र० सा० ।

सलज्जरति-उदाहरण ।

देव कहै सावत[१] निसक अक भरी परजक मैं मयक मुखी सुषमा मचनि है ।
सग न घिरति अग अग अँगिराति रँगराति न निराति नियराति न चलनि है ।
कोरे कर भारनि[२] उघारनि न अचर निहारति न रच परपचनि पचनि है ।
भौंहनि नचति बतियान बिरचति अँखियान मैं हँसति[३] मखियानि मनुचति है ॥११॥

[१] सोचत—ब्र० सा० । [२] जानिन—ब्र० । [३] रचति—ब्र० सा० ।

शिक्षा उदाहरण ।

औरन को गौनो होत विरह का औनो[१] होत तुमही अगौनो दुख[२] देखन दिखाई यह ।
एहो मृगलोचनी सकोचनि ही सोनो तजि गोने की गुपर[३] दइ सोचन सुनाई यह ।

आवो इन कोने को छिपो न कोने कोने कोने धौं सिखाई विष ऐसी विमुखाई यह।
जी को करि जोर[4] मन नीको करि देव पी को ही को करि राखौ धरि राखो ही रखाई
यह ॥१२॥

[1] गौनो—ग० मा०। [2] होन—ग०। [3] सिखारि—मा०। [4] जोनु—व्र०।

सुरत-उदाहरण।

बैरिनि मेरी किनै गईं वे वर छाँडि उन्हैं किनि देखन तू दै।
यों कहि कै उतरी परजंक पै[1] पूरि रहीं दृग वारि की बूँदै।
जोरन देइ नहीं मुख सों मुख छोरन देइ[2] न नीवी की फूँदै।
देव सँकोचन सोचन सी मृगलोचनी लाज के लोचन[3] मूँदै ॥१३॥

[1] मैं—मा०, तें—ग०। [2] देनि—ग०। [3] लोचन लाज के—ग०।

सुरतान्त-उदाहरण।

मनभावन के ढिग तें उठि भामिनि भोरही भूषन हाथ लिये।
रँग भौन के भीतर भाजि परी भय भार भरी अति लाज हिये।
सजनी जन तें दुरि कै कवि देव निहारनि[1] हार विहार किये।
निय वार हिआर सँवारहि कै[2] निरवारनि[3] वार केवार दिये ॥१४॥

[1] निहारनि—व्र०। [2] सँवारनि ही—मा०, सँवारहि की—व्र०। [3] निरवारहि—
ग०।

धाय धरा गजही के[1] कहे ही सिराय गयी उनकी रुचि रेख्यो।
ते निरदै हिरदै[2] कर दै मोहि ओट[3] भई चित चोट न पेख्यो[4]।
जाय भई बस बन सिसासी के कीनो किसै विसवास बिसेख्यो।
काह किये[5] सखियाँ दुखदाइन हौं न इन्हैं अँखियाँ भरि देख्यो ॥१५॥

[1] धाय वसीधर ही के—ग०, धाय धरा बस ही के—मा०। [2] ०—ग० मा०।
[3] चोट—मा०। [4] चित चोटन सो नहि पेख्यो—ग० मा०। [5] कोहे को ये—ग०।

मुग्धा मान-उदाहरण।

एकही रैनि मिली पिय को निय दूसरे द्यौस सखी सरको है।
त्यों उन[1] आनन आन लगे रहैं सौतिन के ढिग को ढरको है।
लाज सखी मृगलोचनि को चित सोच सँकोच भये सरको है।
आँखिन तें निसरे अँसुवा रिसके अधरा निसरे फरको है ॥१६॥

[1] सो उन—मा०। केवल मा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

मध्या-भेद। आरूढ़यौवना-उदाहरण।

अंग अंग महा कोमल कर चरन नरन गुरन भग भग अमलनिको।
सौंस को सरद ससि अधर सु अधरान्यो आरसिन पूनो की प्रभा अनमननि को।
सहजसुगंध सों सदध मधुकर कहीं की गनैं सुगध और सोधे समननि को।
जोतिन के जूर दर दीरनि दुरूर देख्यो हँसन समूह जाल फूले कमलनि को ॥१७॥

आठ हूनी अन्तर ...... करो[1] सूरो गुलाबनि।

कंचुकी छोरी[1] उतै उपटैबे को इंगुर से अंग[2] की सुखदायनि।
देव सरूप की रासि निहारति पाँय ते सीस लौं सीस न पाँयनि।
ह्वै रही ठौरही ठाढ़ी ठगी सी हँसै कर ठोढ़ी दिये ठकुरायनि ॥१८॥

[1] वधू—ब्र०। [2] खोलि—ट० सा०। [3] रंग—ब्र०।

प्रगल्भवचना-उदाहरण।

हौं गहि आनी[1] अचान इतै छत तें रहौ[2] जानति जाहि न वैसी।
देखति हौं उन कुंज मैं कान्ह सों आइ मिलाई तुही जिय जैसी।
छाँह छुवौ नहिं स्याम सलोने की लाज की बात न होने की ऐसी।
कोमा कहा कहि तोसो उतै रहि रोस कह्यो कहा तू कहि वैसी[3] ॥१९॥

[1] गई आनी—सा०। [2] तेरे हौं—सा०। [3] रहि तू कहि क्या न कही फिरि वैसी—ग०।

प्रगटमदना उदाहरण।

होरी मे आजु भिजै रँग गोरी के[1] आपनो प्यो अपने बस कै लै।
यों कहि देव सखी गहि गोरी को लाई है गोकुल गाँव की गैलै।
लाज की गारी सुनी कबहूँ न सु गावत[2] लाग लगावत छैलै।
खेलत फागु नई दुलही दृग[3] आँसुन लीनि उमामन लैलै ॥२०॥

[1] सु—ग०। [2] जु गावत—ग०। [3] उर—ग०।

सुरतिविचित्रा-उदाहरण।

साँस लेति हँसति रिसाति मृदु बोलति वलैया लेति लाज उर आनि पर गई है।
घूँघट उघारि मुख दपन न देति रदनै रद कंकन की कानि[1] परि गई है।
देव सुखदानि सुखदाइनि को सगु देखि सौति दुखदाइन क हानि परि गई है।
तानि पट होऊ दुहु पानि परवीन रस पानिप निहारिबे की बानि परि गई है ॥२१॥

[1] खानि—सा०

मध्या सुरत-उदाहरण।

कत के मन इवत नरै रति ओठनि दत नग मुख मोरै।
कचुकी छोरनि छाती दई भुकि भाँकि भुकै निभरै झकझोरै।
गातनि मैं ग्रँगिरानि घनी रिस बातनि मैं रग रग निचोरै।
नीवी गसे उकसै नहि देव हँसे सतराइ गसे तन नारै ॥२२॥

मध्या सुरतांत-उदाहरण।

आरस उनीदी[1] बार बाँधनि दुहू कर्रान उम्रत उरोज नगरेरे नेह रंगियाँ।
कचुकी कसति उससनि औ हँसनि लखि नीवी अधखुली त्या लजाती लोल ग्रँगियाँ।
अंग[2] ग्रँगिरात हरखत परसत मोती[3] दूगनि अधर देखे गौतिहूँ विसंगियाँ।
बाल के निधारे तें निरखि हार सेज को बिहान भयो बालम विहान भई सगियाँ ॥२३॥

[1] उनींधी—सा०। [2] ओंठी—सा०। [3] हरखत मोती हरखत—सा०

प्रौढा-भेद विभ्रमप्रकास-उदाहरण।

कुंज मैं ह्वै गई साँझ दुहू को चलै चरचा रस की रतियाँ की।
देव घटा जल बूँद लगी बरसावन सावन की रतिया की।
प्यारी के अंक निसंक ह्वै सोए पिया तऊ देह डुली न तिया की[1]।
चंपक बेली सी बाँहनि सों रही[2] नाह पै छाइ कै छतिया की॥२४॥

[1] पिया न डरै न हलो सुतिया की—सा०, पिया ने छुई रला बतिया की—प्र०
[2] लागी—ग०।

रतिकोविदा उदाहरण।

नैनी अनखानि न अनंग भरी आँखिन अनोखी अनखीली रोस ओले से करति है।
रोवनि रिसानि हँसि हँसि मुसकानि मुरि मुरि मुरझाति[1] मनुहरति हरति[2] है।
एकै एक अंक देनि[3] सखनि मयंक मुखी लंक लहकाय परजंक पै परति है।
प्यावै डीठ ईठ वा अनूठो रस ओठन को भैंठे मदि नाचन सराचन मरति है॥२५॥

[1] बिरुझाति—सा०। [2] मनु हरति हरनि है—ग०। [3] पीने अंक अंक देन—ग०, देखि—प्र०।

वशवल्लभा-उदाहरण।

चिबुक उचाइ चारु पाछति कपालनि अँगोछनि अलिक दोऊ[1] अलक दुधाही के।
ललन मा लाल भरकावनि तिलक मोती नथ के निहारे न थके छवि छुधाही के[2]।
मदन मनाय भुजमूलनि समेटि[3] भुज भेंटत उठाय धर भोग वसुधाही के।
सुंदर मधार[4] ब्रज जीवन अधार देव राधे ते अधार गाते अधर सुधाही के॥२६॥

[1] अँगोछन अलक दाऊ—प्र० सा०। [2] नैन न थके सुधा ही के—सा०। [3] उठाय—प्र० गा०। [4] मदाही—प्र०, मदार—सा०।

सविभ्रमा उदाहरण।

दुहू मुख चंद ओर चितवैं चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितैबे ललचात है।
हाँसन हँसत बिनु हाँसी बिहँसन मिले गातनि मैं गात बात बातनि बिलात है[1]।
प्यारी तन प्यारो पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नवहू न अनखात है।
देखि न सकत देखि देखिन थकत देव देखिबे की घात देखि देखिन अघात है॥२७॥

[1] अघात है—ग०।

सुरत उदाहरण।

गोधे की सुगंध आसपास भरि भौन रह्यो[1] भरत उसास बास बासन बसात है।
कंकन झनकि[2] अगनित रव किंकिनी के नूपुर रनित[3] मिले मनिन सुहात है।
कुंदन कला मुख मंदन सरसलात भूलत दुकूल भुजमूल भहरात है।
करत बिहार करै देव बार बार बार छूटि छूटि जात हार टूटि टूटि जात है॥२८॥

[1] भौन राख्यो—सा०। [2] भनक—सा०। [3] रनक—सा०।

सुरतान्त उदाहरण।

मोती गिरराति हिय जानि कै प्रभात डिग डोलै करि पीतम के गात उरझाने के।

उतरत सेज तें[१] सखीन सुखदेनी थाँभी वेनी लाँबी लखे[२] लाज मरे[३] कुल फनि के।
दासी देवता सी पग दंपति के दाबि चली[४] दाबे पग बसन दबाइ गुलफनि के।
लाल की चरन सेव आये दास देव रँगमगी अंग जेब जगमगी जुलफनि के ॥२६॥

[१] उत्तम सेज तें—ग्र०, उत्तम सेज लै—सा०। [२] खुले—ग्र०। [३] मारे—सा०। [४] चलै—ग्र०।

मध्या-भेद।

मध्या अरु प्रौढा द्वो तीनि भाँति करि मानि।
धीरा और अधीर कहि धीराधीरा जानि ॥३०॥
धीरा देइ उराहनो मध्य अधीरा गारि।
रोदन गारि उराहनो धीराधीरा नारि ॥३१॥
धीरा प्रौढ़ उदास रति तरजन करै अधीर।
रति उदास वरजन[१] करै प्रौढा धीराधीर ॥३२॥

[१] तरजन—सा०।

मध्या धीरा-उदाहरण।

केसरि सो उबटे सब अंग बडे मुकतान सो माँग सवारी।
चारु सु चंपक हार हिये उर[१] आछे उरोजन की छवि न्यारी।
हाथ सों हाथ गहे कवि देव सु साथ तिहारेई नाथ[२] निहारी।
हाहा हमारी सौ साँची कहौ वह को हुती[३] छोहरी छोवर वारी ॥३३॥

[१] गरे अरु—ग०। [२] तिहारे हौ आजु—ग०। [३] कौन ही—ग०।

मध्या अधीरा-उदाहरण।

तन मन ओट पट घूँघट कपट खोलि उर सों लगाय इनम पै अरसात हौं।
थाकी अपनाइ अपने से हौं उपाय करि भय अपने न सपनेहु न थिरात हौं।
कैधौ केहि गैल छैल छतिया छिपाई जाके बिरह बौराने देव बोलत न बात हौ।
प्यारे परजंकहू मे मो मुख मयंकहू मे[२] साँसे लै ससंक अंकहू मे अकुलात हौ ॥३४॥

[१] घूँघट के तन तन—ग०। [२] मो मुख मयंकहू म प्यारे परजंकहू मे—ग०।

मध्या धीराधीरा-उदाहरण।

रावरे पायन ओट[१] लसै पग गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की भलकै छलकै छवि घाघरे घूम घुमारे।
आहु जु आहु[२] दुहाहु न मोहू सों देव जू चंद दुरै न अँध्यारे।
देखौं हौं कौन सी छैल छिपाइ तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे ॥३५॥

[१] पाय अनोठ—ग्र० सा०। [२] जाहु जु जाहु—सा०।

प्रौढ़ा धीरा-उदाहरण।

धोखेहू जो कहै कटु बोल तो कटाऊँ जीभ छार[१] डारौं आँखिन की आँसू फलकनि पै।
कौन कहै कैसी सौति सों तो ठकुराइनि लिखी है वृज बालनि के भाल फलकनि पै।
हूँ रहौ नजीकी हौं न जीकी दुचिताई गहौं पी की प्रान प्यारी कहौं नीकी ललकनि पै।

दूजो नहि देव देव पूजो राधिका के पग पलकन ल्याऊँ धरि ध्यान[२] पलकनि पै ॥३६॥

[१] भार—मा०। [२] ध्याऊँ—मा०, लावौं—ग०।

प्रौढ़ा अधीरा-उदाहरण।

आजु गुपाल जू बाल वधू संग नूतन नूतनि कुंज बसे निसि।
जागर हौंन उजागर नैननि पाग पै पीरी पराग रही[१] घिसि।
चोज के चदन खोज खुले जहँ ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि।
बोलत बोल लजात में जात सों आये इतौन चितौन चहूँ दिसि ॥३७॥

[१] परी—ग०।

प्रौढ़ा धीराधीरा-उदाहरण।

ओट दई उघटै अनओट के ओट के ओट रहे भपनेहू।
खेलन हू न डुलै[१] तजि लाज खुलै न फुलेलन के चपनेहू।
ते अँग माँहि[२] मिले हिय मैं तुम ही न हिरानी[३] अयानपनेहू।
देव तुम्हें अपनाइ थकी तुम पै न भये अपने सपनेहू ॥३८॥

[१] दुरै—ग०। [२] माँभ—मा०, भीजि—ग०। [३] गहिरानी—ब्र०।

ज्येष्ठा-कनिष्ठा-लक्षण।

गर्ई हरई ए मवै पी के लघु गुरु प्यार।
कहत ज्येष्ठा कनिष्ठा[१] तिनसों सुमति उदार ॥३९॥

[१] कहत सु जेष्ठ कनिष्ठ तिय—मा०।

उदाहरण।

खेलत आँखि मिहीचनी खेल सु देव गुपाल जू भाँति भली को।
आपनीये भँगियाँ मिहचाय कहै उनसों छपि जान गली को।
भेटन धोखे नवोढ़[१] वधूहि डिगें डिग ढूढत गूढ़ थली को[२]।
नाँउ लले ललिता को लला गहि ल्याये तहाँ वृषभान लली को ॥४०॥

[१] भेंटन खोटन धोखे—ब्र०। [२] ढूट थली—मा० ब्र०।

परकीया-भेद।

कही अनूढा ऊढ़ फिरि परकीया द्वै भाँति[१]।
तिनमें एक अनूढ अरु ऊढा कही छै जाति[२] ॥४१॥

[१] जानि—मा०। [२] भाँति—मा०।

गुप्ता और विदग्ध तिय और लक्षिता जानि।
कुलटा मुदिता अनुसयन[१] भेद छयो पहिचानि ॥४२॥

[१] अनुसया—मा०।

अनूढ़ा-उदाहरण।

बाल सतान मे बाल[१] को बोल सुन्यो कहुँ मग गोन के टेरत।
माहू कही हरि राधा यही कहि देव जू देगी इतै मुख फेरत[२]।
है तबतें पल एक नहीं कल लागन सी अभिलाषन घेरत[३]।

वाही निकुंजहि नंदकुमार परीक मैं बार हजारक हेरत ॥४३॥

[1] लाल लतान मैं बाल—ब्र०, बाल लतान मे लाल—सा०। [2] मुख फेरति—ब्र मुख केरति—सा०। [3] बेरति—ब्र०।

ऊढ़ा-उदाहरण।

उठी अकुलाय सुनी जब नेकु[1] कला परवीन लला बृजराज।
बिसारि दई कहि[2] देव तुम्हे अवलोकत ही जब लोक की लाज।
इतै पर और चवाव चल्यो बरजे गरजे गुरु लोक समाज।
कहा लगि लाल कछू कहिये इतनी सहिये सब रावरे काज ॥४४॥

[1] बीन—सा०। [2] कवि—सा०। केवल सा० प्रति में चरणों का क्रम १-३-२-४ है।

गुप्ता-उदाहरण।

बार बुहारन[1] भोरही हौं पठई मति हीन मतै को लोगायनि।
घेरि के बार उघारत ही अलि मोर चकोर कठोर कुदायनि।
देव कहा कहौं देह दसा यह हौ सकुचौं कुल लोग हँसायनि।
सासुरे को उपहास करो[2] बिसवास करो तुम[3] सासु गुसायनि ॥४५॥

[1] उहारन—सा०। [2] करै—ग०। [3] जिन—ब्र०।

विदग्धा-लक्षण।

कहत विदग्धा दुविधि[1] कवि बाक विदग्धा एक।
क्रिया विदग्धा दूसरी जानौ बुद्धि विवेक ॥४६॥

[1] विविध—ग०।

वाक्‌विदग्धा-उदाहरण।

वृन्दाबन चारन को चलत सवारे गोप खोलत केवार टेरि गैयन[1] के गहगहे।
जात बछरा लै लोग[2] खरिक दुहाय दधि मथती लोगाई गीत गावती वहवहे।
सेज पै अकेले आली नींद न परति मोहि फूलत गुलाब देव सेवती महमहे।
काहू सों कहौ न भौन भीतर बगीचा बीच आवैगो इहाँ सों फूल पावैगो पहपहे[3] ॥४७॥

[1] गोपिन के—ग०। [2] गोप—ग०। [3] लहलहे—ग०।

क्रियाविदग्धा-उदाहरण।

पूरब प्रीत कै गौन गुमानिनि नंद के मंदिर मे ठहराई।
गावती काम के मंत्र मनो गन जंत्रन तंत्रन[1] सो गहराई।
देव खेलार कलानि सों बुद्धि लला को सबै अबला बहराई।
आपने ऊँचे अटा चढ़ि बाल अकेली ह्वै लाल गुडी लहराई ॥४८॥

[1] मंत्रन—सा०।

लक्षिता-उदाहरण।

आई हौ भोर भली भई देव बसंत निशा बसि बीच बगीचे।
मूहे की सारी सलौट लगै मुख चंद हँसै[1] मुसकानि मरीचे।
पाँय सोहाग की लूटि जहाँ[2] खिन आँखिन[3] प्रेम सुधा रस सींचै।[4]

रोगी के रेख सु देखि परै मो छिपावति क्यों कुच कंचुकी[5] बीचै ॥४९॥

[1] लसै—ग०। [2] सहा—व्र०, तहाँ—ग०। [3] छिन ही छिन—सा०। [4] गनि—ग०।
[5] कंचुकी—सा०।

कुलटा-उदाहरण।

लाज की गाँठि गई छुटिकै नहि गाँठि तें काहू छूटै न छुटायें[1]।
आठहू याम[2] उतै उठि धावति साठौ घरी सु टई है सुठायें।
ठान कुठान अठान, ठनी-ठहकीलो[3] रहै गुरु लोग रुठायें।
ऍठनि ओठ उठी अँगिया[4] अठिलानी फिरै[5] भुजमूल उठाय ॥५०॥

[1] भूठे न भुठाये—ग०। [2] धाम—व्र०। [3] ठहकीली—व्र०। ठटकीली—सा०।
[4] अँखियाँ—ग०। [5] करै—व्र०।

मुदिता उदाहरण।

आरस सों रस सों अँगिरात दसौ अँगुरी कर अंजन[1] बाढी।
तोरति त्यौंरी मरोरति भौंहनि मोरति नाक त्रिया मनो वाढी।
नीबीं को नाम न राखति सूधे कसैं उकसाइ[2] कसैं फिरि गाढी।
घूघट टारि[3] उघारि भुजातल कंचुकी के बद बाँधति ठाढी[4] ॥५१॥

[1] अंजुलि—ग० सा०। [2] कसेहू कसाय—ग०। [3] डारि—ग०। [4] गाढ़ी—सा०।

अनुशयना-उदाहरण।

फागु सो द्यौस सुहाग सी संपति राग सी रीझ रिझावै सदा मुनि[1]।
तैसियै जोवन अंग[2] नयो रस रंग तरंग उठै तन ता सुनि।
खोसि हियौ[3] सब सेलतो दब बने नहि लाज बनै नहि मासुनि।
आवत चैन तुही क्यों बहू बहरावति मो टहरावनि[4] आँसुनि ॥५२॥

[1] सुनि—व्र०। [2] रंग—ग०। [3] खालि हियाँ—ग०। [4] टहरावनि—व्र०।

इहि विधि मुदिया परकिया बरनि कही गुनवंत।
सामान्या पहिले कही जानहु ताहि अगंत ॥५३॥
जानि कर्म वय भेद जे अरु भेदातर होत।
तिनहू अनरभेद तें ते सब भेदनि गोत[1] ॥५४॥

[1] भेदनि सोत—व्र०।

[1] ये सब सामान्या सहित दुखित अन्य संभोग।
उक्ति गर्विता मानवती त्रिविध कहत कवि लोग[1] ॥५५॥

[1] बरनि सुनाऊँ भेद सब न्यारे न्यारे। लोग—सा०।

उक्तिगर्विता आठ विधि आठो अंग गन्वं।
कहे नायिका भेद में जोबनादि अंग सबं ॥५६॥

अन्यसंभोगदुखिता-उदाहरण।

कालिह की साँझ उठ्यो कर माँझ न दंब गयो नतनें उर मान्यों।
... भर्मी भई न्याम, निहारै ओ ... जो कदली ... ॥

वचक विब्रनि चचु चुभावत कुज के पिंजर मे गहि माल्यो[१]।
हौं सु कहूँ नहि राखि सकी सो कहूँ सुनि तेही परोसिनि पाल्यो ॥५७॥

[१] घाल्यो—सा०।

यौवनगर्विता-उदाहरण।

जोवन लौं जुवतीन को जीवन जानत हौ पै कहा मुख भाखो।
ताहू को सर्वस है पिय प्यारो सु न्यारो रहै न यहै अभिलाखो।
आपने आनन[१] को रस प्याइ कै लाल को रूप सुधा रस चाखो।
लाजहि को परिहार करो हरि हार करो हियरा पर राखो ॥५८॥

[१] आनद—प्र०।

रूपगर्विता-उदाहरण।

देखुरी दर्पन दौरि इतै रचि मेरे सिंगार[१] बिगार्‌यो है तै हरि[२]।
कचनहू रुचि रच[३] रुचै नहि मोतिन की लरि मो तिनकी सरि[४]।
देव रहै दवि सी छवि छाती की बोझ मरौ[५] मनिमाल बृथा धरि।
भाल मृगम्मद बिंदु बनाइ कै इंदु सो मोहि गुबिंद गये करि ॥५९॥

[१] रचो आनन मेरो—ग०। [२] ये हरि—ग०। [३] कचन को रग चीर—ग०। [४] मोतिन की लरि मो तन केसरि—ग०। [५] कोऊ मरो—ग०।

प्रेमगर्विता उदाहरण।

आजु गई हुती कुजन लौं वरसै उत बुद घने घन घोरत।
देव कहै हरि भीजत देखि अचानक आइ गये चित चोरत[१]।
पोटि[२] भटू तट ओट कुटी के लपेटि पटी सो कटी पट छोरत।
चौगुनो रग चढ़्यो[३] चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत ॥६०॥

[१] मुख मोरत—ग०। [२] ओढ़ि—प्र० सा०। [३] चढ़ै—ग० सा०।

गुणगर्विता उदाहरण।

आंखिन मे पुनरी ह्वै[१] रहै हियरा मे हरा ह्वै सबै सुख लूटै।
अगन सग बसै अँगराग[२] ह्वै जीव तें[३] जीवन मूरि न फूटै[४]।
देव जू प्यारे के न्यारे न री गुन[५] मो मन मानिक तें नहि टूटै।
और तिया सो ततो बतिया करै मो छतिया मो छिनो जब छूटै ॥६१॥

[१] कजरा ह्वै—सा०। [२] अनुराग—ग०। [३] जीवत—ग०। [४] टूटे—ग०। [५] अरी गुन—सा०।

कुलगर्विता-उदाहरण।

पूछो बडे बबा नद को बस जसोमति माय को मायको सूझन।
बोनत बातै बडी[१] वन मे मन मे वृषभानु बबा सों अरूझन[२]।
देव दबी हम नेह के नाते नतो पुरिखा इन बातन जूझत।
जीभ सम्हारि न काढ़त गारि सु ग्वालि गँवारि हमैं हरि बूझन ॥६२॥

[१] सढो—प्र०। [२] अनूमत—ग०, अबूमत—प्र० सा०

शीलगर्विता-उदाहरण।

गोत गुमान उतै इत प्रीति सु चादरि सी अँखियानि पै खैंची।
टूटै न कानि दुहू सुखदानि की देव सु हौं दुहू ओर तें ऐंची[1]।
शील लटो तब हौं पलटो प्रगटो सु निरंतर अंतर बैंची।
या मन मेरे अनेरे[2] दलाल ह्वै हौं नंदलाल के हाथ लै बेंची॥६३॥

[1] दुहू ओरन पेंची—मा०, दुहू औरति पेंची—व्र०। [2] सलोने—व्र० सा०।

वैभवगर्विता-उदाहरण।

जोरि भली सजनी जन बीजन[1] रीझन रीझ रिझावन की रिधि।
भाषन भूषन[2] भेष विसेष सु[3] भोजन पान सुगंधन की निधि।
देव सभाजन साज समाजन[4] साजन राज समाजन की सिधि।
सासते को उपभोग सभोगनि[5] भौन मैं राख्यो लोभाय[6] भली विधि॥६४॥

[1] सजनी जन बीजन—मा०। [2] भूषन भाषन—ग०। [3] विसेष न—मा०। [4] साजन भाजन—ग०। [5] सुभामिनि—ग०। [6] भुलाय—व्र०।

भूषनगर्विता-उदाहरण।

लाल लसै विलसै जिय मे हुलसै हियरा[1] कुच बीच कनोरै।
कठलगे मनि कठ को मानिक[2] सीस को फूल दुकूलनि खोलै[3]।
भाल को बिंदु सोहाग को कंकन बीर की हीर विलास कपोलै[4]।
मोती भयो नथ मे न यम्है दुरको सो लग्यो अधरा पर डोलै[5]॥६५॥

[1] हिय मैं—ग०। [2] कठुला मनि कठ ह्वै—ग०। [3] दुकूल अमोल—ग०। [4] कपोल विलोलै—ग०। [5] मोती भयो मोसुर की सो लग्यो अधरा अधरा पर डोलै—मा० व्र० प्रति मे चरणो का क्रम १-२-४-३ है।

मध्या प्रौढा मावती त्यहि धीरादिक भेद।
मुग्धा लाज प्रधान तिय मानस मे लघु खेद॥६६॥
उदाहरण सबके कहे सुकिया नारि प्रसग।
अब बरनत हौं नायक नर्म सचिव विट सग[1]॥६७॥

[1] परकीया गनिका बहुरि देस नारि बहु रग—मा०।

ज्यों ही एती नायिका त्यो ही नायक चारि।
कहि अनुकूल सु दक्ष अरु[1] सठ अरु[2] धृष्ट विचारि॥६८॥

[1] दक्षन चतुर—व्र०। [2] फिर—सा०।

एक नारि अनुकूल अरु सकल नारि सम दक्ष।
सापराध सठ सो छिप्यो उघर्यो धृष्ट समक्ष॥६९॥

अनुकूल-उदाहरण।

पीछे पीछे डोलत है सामुहे ह्वै बोलत है खोलत है घूंघट सो प्रानन पुनीत है।
पग पग मग मैं बिछाय प्रेम पावड़े से पोगेहू न भूले देखा देखी मैं पुनीत[1] है।

देव सखियानि की सिराईं अँखियानि सब निस दिन देखि अनदेखेन दुखोत है[१]।
इंदुवदनी के नीके इंदु से वदन श्रमबिंदुन गोविंद अरविंदन सुखोत है ॥७०॥

[१] दुखोत—ब्र०, सुखोत—मा०। [२] देखि देखि निसदिन अनदेखन दुखोत है—ग०।

दक्षिण-उदाहरण।

बोलि बोलि भीतर तें खोलि खोलि घूंघटन मन के मलोल लाल, मेटत फिरत है।
बेसरि गुलाल[१] मुख माडे बिनु छाँडे तहाँ आडे, उर आनंद समेटत फिरत है।
नीवी गुन तोरत है कचुकी विछोरत है चचन लै कुचन लपेटत[२] फिरत है।
फाम मिस देव अनुराग भरि भौन[३] रह्यो भुजा भरि भामिनीनु भेंटत फिरत है ॥७१॥

[१] गुलाव—ग० सा०। [२] चपेटत—ग०। [३] अनुराग भरी हिये हरी भौन भौन—मा०,
अनुराग भरि राग करि भौन भौन—ग०।

सठ-उदाहरण।

नीरथ चरन सोन अरुन[१] दुकूल देव रग की रतन काञ्ची सेव-वधु[२] थल है।
माया की अवधि हास मोहे मनु मथुरा सु देख्यो मैं न कासी को प्रकासु मो अमलु है।
सोम मनिकरनी की सोहति[३] त्रिभाग बेनी रावं अब अतिकं ना द्वारिकाहू पल है।
तो सुरतरंगिनी के सग अपराधु कैसो अद्भुत भर्‌यो नैन पुष्कर में जलु है ॥७२॥

[१] आनन—मा०। [२] मोरवध—ग०। [३] मोहति—ब्र० सा०।

धृष्ट-उदाहरण।

आये हौ भामिनि भेंटि कुरो[१] लगि फूल धरे अनुकूल उदारे।
बेसरि जानि[२] तुम्हैं जु सुहागिनि आसव लै मुख सों मुख डारे।
कीन्ही सनाथ हौ नाथ मया करि वे इत को उतको न बिचारे[३]।
होय अनाथ नुगी[४] तुम लौं अवला नन को अब[५] लानन मारे ॥७३॥

[१] करै—मा०। [२] जाति—ग०। [३] मो बिनु को इतनी जु विचारे—ग०। [४] सनी—ब्र०
मा०। [५] जब—ब्र० मा०।

नम सचिव।

नम सचिव तिनको मया ताहू त्रिविधि बखान।
पीठ मर्द[१] विट दूसरो और विदूषक जान ॥७४॥
पीठ मर्द अति ईठ चित विट बस चतुर[१] बसीठ।
उपहासी सो विदूषक मान मनावन ढीठ[२] ॥७५॥

[१] गन चतुर—ग०। [२] विदूषकहि स्यानिम भवत ढीठ—ग०।

पीठमर्द-उदाहरण।

ईंगुर सो रग गडिन बीच भरी अँगुरी अति कोमलताइनि।
वदन विंदु मना दमरे नग देर चुनी चमरे ज्यो सुभाइनि।
यदा नन्दकुमार निहारि गये वहै ब्रज की ठकुराइनि।
नूपुर सिंजित[१] मंजु मनोहर जावक रंजित कंज से पाइनि ॥७६॥

[१] मजत—मा०।

विट-उदाहरण।

बैठी कहा धरि मौन भटू रँग भौन तुम्हें बिनु लागत सूनो।
चातक लौं तुमही मरि[1] देव चकोर भयो चिनगी करि चूनो।
सांझ सोहाग की सांझ उदो[2] करि सौति सरोजन को बन[3] लूनो।
पावस तें उठि[4] कीजिये चैत अमावस तें उठि कीजिये पूनो ॥७७॥

[1] रटि—ब्र० मा०। [2] नदो—मा०। [3] बल—मा०। [4] त्वलि—ब्र० मा०।

विदूषक-उदाहरण।

मामो कह्यो सु भनी करी[1] भामिनी भावते सों न कह्यो परिहैगो।
ऐसी उसास लै ऐसा कुबोल जु ऐसे कह्यो सु लह्यो[2] परिहैगो।
देव न मानति है मृगनयनी पै आजु की रैन रह्यो परिहैगो।
पारिहौगो सखियान निखैं अँखियान प्रवाह बह्यो[3] परिहैगो ॥७८॥

[1] कह्यो—ब्र०। [2] सु कह्यो—ब्र०। [3] बह्यो—ब्र०।

७८ से ८४ संख्या के छन्द ग० प्रति में त्रुटित हैं।

मानमोचन-उपाय।

साम दाम अरु भेद अरु[1] प्रनति उपेक्षा भाइ।
अरु प्रसंग विभ्रम ये मोचन मान उपाइ ॥७९॥

[1] पुनि—मा०।

तिनके लक्षण।

साम छिमापन सो कह्यो दानादिक सो दान।
भेद सखी ममता मिले प्रनति नम्रता जान[1] ॥८०॥

[1] मान—ब्र०।

वचन अन्यथा अर्थ जहँ सो उत्प्रेक्षा रीति।
सो प्रसंग विभ्रम[1] जहँ अकस्मात सुख भीति ॥८१॥

[1] विभ्रम—ब्र०।

साम उदाहरण।

आपनोई अपमान कियो पछितायबे को मतिमान मँगाई।
लै मिलई मिस सों कुमती[1] करि पाइ परेहू न प्रीति जगाई।
केतिक कीनिक बातें करी[2] कवि देव तऊ नहिं प्रेम पगाई।
आजु अचानक आइ लला डरवाइ कै[3] कामिनी कंठ लगाई ॥८२॥

[1] सुमती—मा०। [2] केतिक कौन बुलावे कही—मा०। [3] उर चाँपि कै—मा०।

दर्शन।

चित्र स्वप्न प्रत्यक्ष करि तिनके दर्शन तीनि।
तीन भाँति तिनके श्रवन देस काल मतीन[1] ॥८३॥

[1] गभीन—ब्र०।

चित्रदर्शन-उदाहरण ।

न्योते गई वृषभान लली ललिता के जहाँ पति प्रीति[१] पढी है ।
भीँति मे प्रीतम देखे लिखे नवला के हिये नव लाज बढी है।
आँखिन भीजी-सी अग पसीजी-सी छोभन छीजी-सी मोह मढी है ।
चौंकी चकी ससकी न सकी चितै मित्र की मूरति चित्र[२] चढी है ।।८४।।

[१] नव प्रीति—सा० । [२] चित्त—ग० सा० ।

स्वप्न-दर्शन-उदाहरण ।

धाइ कै अक मे सोई निसक ह्वै पक्ज-सी अँखियानि झकाझकी[१] ।
त्यों सपने मे लखे अपने प्रिय प्रेमपने छवि ही की छकाछकी ।
ठाढे ही ठाढे भरी भुज गाढे[२] सु बाढी दुहू के हिये म सकामकी ।
देव जगी रतियाहू गई[३] न तिया की गई छतिया की धकाधकी ।।८५।।

[१] छकाछकी—ग० । [२] वाट परी भुज ठाढे—ब्र०, भरी भुज ठाढे—सा० । [३] जा
—ग० ।

प्रत्यक्ष दर्शन-उदाहरण ।

माथे मनोहर मोर लसै पहिरे हिय में गहिरे रँग हारनि ।
कुडल मडित गोल कपोल सुधा सम बोल[१] विलोल निहारनि ।
सोहति री कटि पीत पटी मन मोहति मद महा पग धारनि ।
सुन्दर नन्द कुमार के ऊपर वारिये कोटिक काम कुमारनि ।।८६।।

[१] चोल—सा०

देसश्रवण-उदाहरण ।

साँवरो सुन्दर रूप अनूप विसाल रसाल बडे बडे नैन री ।
या बन आवत गैयन[१] ले नित देव दिखैयन को सुख दैन री ।
मैं हूँ सुनी सो कहा कहौं लाज की बात कहूँ सखि तू कहिये न री ।
या जग वचक देखे बिना दुखिया अँखियानि न रचक चैन री ।।८७।।

[१] गोपनि—सा० ।

कालश्रवण-उदाहरण ।

बरजो जननी गरजौ गुरु बधु सो हौं कछुवै न बिसेखिहौंगी[१] ।
कल लोग रिसाहु सरोक हँसौ किन पै न[२] कछू लगि लेखिहौंगी[३] ।
नित ही इन आवति है सखि स्याम प्रभात समै पल[४] पेखिहौंगी[५] ।
कबहूँ तो कहूँ अब देव उन्हें अपनी अँखिया भरि देखिहौंगी[६] ।।८८।।

[१] बिसेखि सहौंगी—ब्र० । [२] प्रेम—सा० [३] लेखि सहौंगी—ब्र० । [४] पग—सा०, छबि
—ग० । [५] पेखि गहौंगी—ब्र० । [६] देखि रहौंगी—ब्र० ।

रचनाश्रवण-उदाहरण ।

आवत है घनस्याम बने इत अबर मे चपला की मरीचि है।
मोहत मोरपखा धरे सीस गरे बनमाल मनोहर बीचि है।

पानिप रूप अनूप प्रवाह हिया भरिकैं अँखियान उलीचिहै।
जोबन कीव सुधा[१] बरसाइ के यौवन की वसुधा सब सींचिहै ॥८९॥

[१] जोवन की वरसा—ब्र०।

यहि विधि दरसन श्रवन करि सुमिरे विधि हरि रुद्र।
पार लहनि को बरनि के या साहित्य समुद्र[१] ॥९०॥

[१] या विधि सप्त समुद्र—सा०।

अपनी बुद्धि समान मैं वरनि कह्यो रस सार।
रस विलास रस रूप नृप भोगीलाल उदार ॥९१॥

जोगीदास नंदन भुवाल भोगीलाल को विसाल जल जाल है प्रताप अति अनंदर।
दीनन दरिद्र दाव दावानल वान नीर नीर झरनि[१] पूरे भिक्षुक छहर[२] कदर
मानौ मनमय मन मयन सुरूप मानिनीनु मानि सिंधु को मथान[३] मुदित मंदर।
देवतमहू नयो न साह सुलतान ज्यों सराहे सुलतान सुलतानपुर पुरंदर ॥९२॥

[१] वारि झरनि—ब्र०, नीव झरनि—सा०। [२] छनि—ब्र०। [३] प्रथान—ब्र०।

सनन[१] बसंत पावैं चहूँ ओर चैत नाचैं होरी लगी बैरिन के भौन[२] भये भसमी।
वाढ़ी अखतीज सी अमाढ़ी अनबीज खेत दान दरसावनी सरस राखी रसमी।
दीपमाला साधुन असाधुन अमावस सु मानति सराध बैरी बधु ह्वै निन्तसमी।
जियो जुग जोगीदास जू को लाल भोगीलाल जाके द्वार सदाही विराजै विजै दसमी[३] ॥९३॥

[१] संतत—सा०। [२] वैरिहू के मान—सा०। [३] द्वार राजति सदाही विजै दसमी—ब्र०।

संवत सत्रह से वरष और चौरासी[१] जान।
रस विलास दसमी विजय पूरन सकल वखान ॥९४॥

[१] तिरासी—गं० सा०।

इति श्री नृप भोगीलाल हित बानी देव प्रकास रस विलास श्रृंगार रस नायिका नायक हाव भाव दशा दूती देश वर्णनो नाम अष्टमो विलासः।

सुमिल विनोद

भूमिका

देवकृत अनुपलब्ध कृतियों के साथ "सुमिल विनोद" का नामोल्लेख बहुत पुराने समय से होता आ रहा है। कहा जाता है कि आज से प्रायः सौ वर्ष पूर्व मिश्रबंधुओं के सम्बन्धी, गंधौली, जिला सीतापुर, के प्रसिद्ध काव्यरसिक श्री ब्रजराज जी ने इस ग्रंथ को स्वयं कहीं देखा था। मिश्रबंधुओं ने "मिश्रबंधु विनोद" में (पृष्ठ ५६७ पर) स्वर्गीय पंडित कृष्ण बिहारी जी मिश्र ने "देव और बिहारी" में (पृष्ठ १६ पर) तथा देव काव्य के आधुनिक व्याख्याता डॉ० नगेन्द्र जी ने 'शिवसिंह सरोज' के साक्ष्य पर अपने शोध-ग्रंथ "देव और उनकी कविता" में (पृष्ठ ३६ पर) "सुमिल विनोद" का उल्लेख किया है। फिर भी इस कृति की कोई हस्तलिखित प्रति आधुनिक समय में देखने में नहीं आयी थी।

सौभाग्य से इन पंक्तियों के लेखक को "सुमिल विनोद" की एक प्रति का विवरण नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, के तत्वावधान में संचालित "मध्य प्रदेश की खोज रिपोर्ट" की अद्यावधि अप्रकाशित पांडुलिपि में देखने को मिला। रिपोर्ट में इस ग्रंथ का नाम "सुमिल विनोद" दिया गया है।

सभा की ओर से जिन महानुभाव ने यह प्रति देखी थी तथा उसमें विवरण लिया था, वह भी उस समय सभा में ही थे। उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि किसी को इस प्रति का मिलना तो दूर रहा, इसके दर्शन का पाना भी दुष्कर कार्य है। बाद में प्रति के लिये यत्न करने पर इन सज्जन का कथन ही सत्य प्रमाणित हुआ। इस घटना के प्रायः एक-दो माह के भीतर, एक सर्वथा अपरिचित सज्जन मेरे पास आए, जो देव के पाठ पर कार्य करने को इच्छुक थे। अपनी उपयोगी सूचना लेकर चलते समय एक पत्र वह मुझे देते गये कि कदाचित् इसमें निहित सूचना मेरे किसी उपयोग की हो। पत्र बीकानेर के श्री अगरचन्द जी नाहटा का था, तथा उसमें नाहटा जी के अभय जैन ग्रंथालय में विद्यमान देवकृत ग्रंथों की हस्तलिखित प्रतियों की सूची थी। सूची में "सुमिल विनोद" नाम था। कहना न होगा कि "सुमिल विनोद" की इसी प्रति का उपयोग इस ग्रंथ के पाठ-संपादन में किया गया है।

ग्रंथ की प्रामाणिकता

कवि देव द्वारा 'सुमिल विनोद' की रचना होने का प्रथम प्रमाण है कि इस ग्रंथ के विभिन्न विनोद संज्ञक अध्यायों के अंत में देव का नाम रचयिता के रूप में आता है। वास्तव

मे इस कवि ने अपने ग्रथो की प्रामाणिकता की समस्या स्वय ही बहुत कुछ सुलझा दी है क्योंकि इसके प्राय प्रत्येक ग्रथ मे इसी कवि के किसी न किसी अन्य ग्रथ के समान छद अवश्य मिलते हैं। इसी प्रकार "सुमिल विनोद" में तथा देवकृत "प्रेम चन्द्रिका", "सुखसागर तरग" एव "भवानी विलास" मे समान छद मिलने से भी "सुमिल विनोद" देव की ही रचना प्रमाणित होती है। "सुमिल विनोद" मे तथा इन उपरोक्त ग्रथो मे उदाहरण छदो के अतिरिक्त लक्षण दोहे भी समान मिलने के कारण इस ग्रथ की प्रामाणिकता असदिग्ध हो जाती है। इस ग्रथ मे समान लक्षण दोहो तथा उदाहरण छदो के अतिरिक्त देवकृत अनेक छद ऐसे भी हैं जो देव के अन्य ग्रथो मे नही मिलते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि "सुमिल विनोद" कवि के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कवि की ही विभिन्न रचनाओ से तैयार सकलन न होकर स्वय कवि द्वारा प्रणीत स्वतन्त्र ग्रथ है।

ग्रंथ-परिचय

"सुमिल विनोद' का आकार मध्यम कोटि का है, अर्थात् यह "रस-विलास', "सुख-सागर तरग" अथवा "भाव-विलास' के समान न बृहत् है, न "देवचरित्र" अथवा "देवशतक" के समान सक्षिप्त। इसमे कुल ८ अध्याय हैं, अध्यायों का नाम अन्य ग्रथो के समान "विलास" न होकर "विनोद' है। सपूर्ण ग्रथ मे कुल २७६ छद हैं। उपलब्ध प्रतियो मे अतिम "अष्टम विनोद' मे केवल ११ ही छद मिलते है। यही पर प्रतियाँ खडित है तथा नवरसो मे शृगार के विस्तृत वर्णन के अतिरिक्त शान्त तथा वीर रसों का ही वर्णन यहाँतक हुआ है अत यह अनुमान किया जा सकता है कि इस स्थल के आगे भी कम से कम दस-पद्रह छद और रहे होंगे।

"सुमिल विनोद" का मुख्य विषय रस-निरूपण है, यद्यपि नवरसो मे शृगार-रस का वर्णन विस्तार से किया गया है। इसी के अतर्गत नायक नायिका भेद का विवेचन प्रधान रूप से हुआ है। कवि ने ग्रथ के अन्तिम भाग, केवल "अष्टम विनोद", मे वीर आदि शृगारेतर रसों का भी वर्णन सक्षेप मे किया है।

आश्रयदाता

देव कवि की यह कृति हिमातुल्ला खान नामक किसी धनपति अथवा राजा को समर्पित है। यह हिमातुल्ला खान कौन थे, कहाँ के शासक अथवा निवासी थे अथवा उनका समय क्या था ?—अतस्साक्ष्य इस सम्बन्ध म मौन है तथा इतिहास के विस्तृत गभीर सागर से, सकेत-सूचिका के सर्वथा अभाव मे, इन सूचनाओ का प्राप्त करना सरल कार्य नही है। फिर भी आशा है कि भविष्य मे इनके चरित्र, निवास-स्थान आदि पर अधिक प्रकाश पड सकेगा।

सम्पादन-सामग्री की बहिरंग परीक्षा

"सुमिल विनोद" की केवल दो हस्तलिखित प्रतियाँ देखने मे आयी हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

१ अ०—अभय जैन भडार, बीकानेर, राजस्थान, की प्रति। इस प्रति के अन्त मे प्रतिलिपि-सवत् नही है तथापि जिस "प्रेमतरग चद्रिका" की प्रति के साथ यह प्रति जिल्दबन्द है

उसकी पुष्पिका इस प्रकार है "श्रावण वुद ३० हरियाली को सम्पूर्ण लिखी गई सवत् १६४४।" इन दोना प्रतियो का कागज भी पुराना, हाथ का बना तथा मटमैला है। "सुमिल विनोद" की अन्तिम पुष्पिका से यह ज्ञात होता है कि किन्ही धननाथ जोगी ने प्रतिलिपि तैयार की थी। श्री नाहटा जी के सग्रह की "सुजान-विनोद" की प्रति भी इन्ही धननाथ जोगी द्वारा सवत् १६४६ मे प्रतिलिपि हुई थी। "सुमिल विनोद" की इस प्रति का आकार लगभग आठ इच तथा बारह इच है। प्रति अपनी चौडाई मे लिखी है। लेखन-कार्य मे काली-लाल स्याही का उपयोग हुआ है। प्रति मे कुल ४१ पत्र तथा प्रति पृष्ठ पर १६ पक्तियाँ हैं।

स्वीकृत पाठ ८ ११ के पश्चात् इस प्रति मे ढाई पक्ति पाठ और था किन्तु इस पर नया सादा महीन कागज ऊपर से लगाकर लाल स्याही से पुष्पिका लिख दी गई है जो इस प्रकार है—"इति श्री विनोद हेतवे कवि-देव विरचिते सुमिल विनोदे अष्ट सम्पूर्ण—

लिप्य धननाथ जोगी की जै पूरम देवास ॥

अनुमान है कि कागज के नीचे का पाठ किसी छन्द का अश न होकर 'सुमिल विनोद' की दूसरी प्रति, खो० प्रति मे विद्यमान " ११ यह कवित्त प्रेम-तरग चद्रिका म लिखे हैं यामे इहा नही लिखे हैं" पाठ ही था एव प्रतिलिपिकार अथवा प्रति के स्वामी ने अपनी प्रति का खण्डित रूप आवृत करने के हेतु इसे कागज से ढँक कर ऊपर मे पुष्पिका लिख दी है।

सामान्य रूप मे अ० प्रति का पाठ शुद्ध एव विश्वसनीय है। २ खो० अर्थात् नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्पादित "मध्य प्रदेश की खोज रिपोर्ट" मे प्राप्त "सुमिल विनोद' की प्रति का उल्लेख—

इस प्रति के सम्बन्ध मे उपलब्ध सूचनाएँ उपरोक्त खोज रिपोर्ट के अनुसार इस प्रकार हैं —

'ग्रथ-नाम 'सुविमल विनोद'—मिल का कागज—पत्र १६—आकार ८ इच, ६ इच—प्रति पृष्ठ पक्तियाँ २०—ग्रथ का आकार ४८० अनुष्टुप—कागज नवीन—सजिल्द—लिपिकाल १६४७ विक्रमी—ग्रथ स्वामी प० महेशप्रसाद पाण्डेय, ग्राम पोस्ट निपनिया, रीवाँ, मध्य प्रदेश।"

ध्यान देने योग्य तथ्य है कि यद्यपि विवरण मे ग्रथ-नाम "सुविमल विनोद" है तथापि इस प्रति म विनोद के अन्त की पुष्पिका मे ग्रथ-नाम "सुमिल विनोद" ही मिलता है "इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे····· सप्तम विनोद ।" अ० प्रति के समान इस प्रति मे भी अन्तिम अश त्रुटित है—८ ११ के पश्चात् इस प्रति मे भी पाठ नहीं मिलता है। अष्टम विनोद के ८, ९, १०, ११ सख्या के छद अ० प्रति मे पूर्ण हैं किन्तु ये ही छद इस प्रति मे इस रूप मे हैं "याही भौन भीतर [८] मोहि तुम्हैं अन्तर [९] गनिन विगारि साज [१०] जो न जी मैं प्रेम [११] यह कवित्त प्रेम-तरग चद्रिका मे लिखे हैं यामे इहा लिखे नहीं है।"

वास्तव मे उपरोक्त सभी छद "प्रेम चद्रिका" मे भी मिलते हैं, निपनिया के इस सग्रह मे "अप्टयाम" के अतिरिक्त "प्रेम चद्रिका" की भी प्रति है अत ऐसा अनुमान होता है कि इस प्रति अथवा इसकी आदर्श प्रति के प्रतिलिपिकार ने कदाचित् शीघ्रता मे होने तथा "प्रेम चद्रिका" की सलग्न पोथी मे ये समान छद विद्यमान होने के कारण यहाँ उन छदो का केवल प्रतीक लिख दिया है। इस सम्भावना पर इस कारण भी विश्वास होता है क्योकि अ० प्रति मे भी अनेक स्थलो पर सम्पूर्ण छद के स्थान पर केवल उसका प्रतीक मात्र मिलता है तथा इसका उल्लेख भी कर दिया गया है कि यह छद "प्रेम चद्रिका" मे है। उदाहरण के लिए ऐसे दो स्थल ४ १५ तथा ४ १७ हैं। इस प्रकार के स्थलो पर विस्तार से विचार हम आगे करेंगे।

> "प्रेम चद्रिका" की प्रति से इस प्रति का सम्बन्ध इस प्रति का विवरण लेनेवाले सभा के प्रतिनिधि के निम्नलिखित नोट से भी पुष्ट होता है, " ''कही-कही ग्रथ का नाम "सुबिमल विनोद" के बजाय "प्रेम चद्रिका" लिखा है—' इति श्री देवकृते प्रेम-चद्रिकाया प्रेमवर्णनो नाम प्रथम प्रकाश ।"

इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका से प्रतिलिपि सवत् तथा प्रतिलिपिकार का नाम इस प्रकार स्पष्ट होता है—

> "इति श्री देव कवि रचिते सुमिल विनोद ग्रथम सभादी नगमत १८ सवत् १९४७ के मिती दुती भाद्रवदि [१] का लिखा लाला कुजविहारी।।"

खेद है कि खो० प्रति सुलभ न हो सकी अत इस प्रति का उपयोग इस सम्पादन-कार्य मे नही किया जा सका है।

सम्पादन सामग्री की अन्तरंग परीक्षा

प्रतियों का सम्बन्ध—"सुमिल विनोद" की उपरोक्त दोनो प्रतियो की तुलना इनमे से दूसरी प्रति के अनुपलब्ध होने के कारण सम्भव नही है तथापि सुलभ सामग्री के आधार पर ही इन दोनो प्रतियो के परस्पर सम्बन्ध पर नीचे विचार किया जा रहा है।

दोनो ही प्रतियाँ अपूर्ण हैं तथा दोनो ही प्रति एक ही स्थल ८ ११ पर खण्डित होती हैं। अ० प्रति सम्भवत १९४४ की है तथा खो० प्रति निश्चित रूप से सवत् १९४७ की है, अत दोनो ही प्रतियाँ सम्भवत एक समान आदर्श की दो प्रतिलिपियाँ हैं। सवत् १९४७ की खो० प्रति से सवत् १९४४ की अ० प्रति का प्रतिलिपि होना तो सम्भव नही है परन्तु यह अवश्य सम्भव है कि अ० प्रति मे खो० प्रति की प्रतिलिपि हुई हो। एक अन्य सहायक प्रमाण के द्वारा भी इन दोनो प्रतियो का पारस्परिक सम्बन्ध प्रमाणित होता है।

बहुधा एक सग्रह मे विद्यमान हस्तलिखित ग्रथो का दूसरे सग्रह मे भी प्राप्त होना इन दोनो सग्रहों की प्रतियों के परस्पर प्रतिलिपि-सम्बन्ध से सम्बन्धित होने की सम्भावना की ओर निर्देश करता है। विशाल सग्रहो की अपेक्षा छोटे सग्रहो के सम्बन्ध मे यह सम्भावना अधिक सगत है। "सुमिल विनोद" की इन दोनो प्रतियो का सग्रह ऐसी ही सम्भावना को पुष्ट करता है। कहना न होगा कि इन दोनो ही सग्रहो के ग्रथो मे देवकृत केवल "प्रेम चद्रिका" तथा "सुमिल विनोद" की प्रतियाँ हैं। रीवाँ के सग्रह मे "अप्टयाम" की भी प्रति है किन्तु अभय जैन

भण्डार मे नही है, अभय जैन भण्डार मे "सुजान विनोद" की भी प्रति है किन्तु निपनिया मे इस ग्रथ के होने का उल्लेख खोज रिपोर्ट मे नही है। दोनो सग्रहो मे समान ग्रथो की उपस्थिति के सहायक प्रमाण के आधार पर भी हमारा मत है कि "सुमिल विनोद" की इन दोनो प्रतियो मे परस्पर प्रतिलिपि सम्बन्ध है तथा तिथियो के आधार पर खो० प्रति अ० प्रति की प्रतिलिपि है।

सम्पादन सिद्धान्त—किसी भी काव्य-कृति का पाठ-सम्पादन उसकी केवल एक प्रति मे उपलब्ध पाठ के आधार पर करना प्राय कठिन होता है। अधिक से अधिक सतर्क होने पर भी यदि सम्पादित पाठ मे कुछ न्यूनताएँ रह ही जायँ तो इसमे आश्चर्य नही है। कम से कम सम्पादक का उत्तरदायित्व तो ऐसे सम्पादन मे अत्यधिक बढ जाता है—परोक्ष रूप से वह सम्पादित पाठ के प्रत्येक शब्द के लिए उत्तरदायी होता है।

ऊपर के विवरण से यह प्रकट है कि "सुमिल विनोद" के पाठ-सम्पादन के लिए केवल एक हस्तलिखित प्रति का पाठ उपलब्ध किया जा सका है। फिर भी, केवल एक प्रति के आधार पर इस ग्रथ का पाठ-सम्पादन सन्तोषजनक रूप मे होना सम्भव हुआ है। किसी रचना का पाठ-सम्पादन केवल एक प्रति के आधार पर करते समय उस प्रति मे विद्यमान पाठ-विकृतियो का निवारण करना सम्पादक का प्रथम दायित्व होता है। वास्तव मे इन पाठ-विकृतियो का निवारण करना ही पाठ-सम्पादन की वैज्ञानिक विधि का प्रथम लक्ष्य है। इस मार्ग का अनुसरण करते हुए मूल पाठ के अपने गन्तव्य तक पहुँच सकना तो सम्पादन की आदर्श स्थिति है ही, रचना के प्राप्त रूप से पाठ-विकृतियो को विलग कर शुद्ध पाठ के एक सोपान के निकटतर पहुँचना भी सामान्य उपलब्धि नही है। अत केवल एक प्रति मे प्राप्त "सुमिल विनोद" के पाठ से पाठ-विकृतियो को पृथक् कर रखने मे भी हमने अपना लक्ष्य अशत सिद्ध माना है। पर हम इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हैं। केवल एक प्रति के आधार पर देव की इस कृति का सम्पादन करना इस कारण भी अपेक्षाकृत सरल है क्योंकि इस ग्रथ मे तथा देवकृत अन्य ग्रथों मे समान छन्द बहुतायत से मिलते हैं। इस प्रकार इस ग्रथ की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों के रूप मे मुख्य सम्पादन-सामग्री का अभाव होने पर भी देवकृत अन्य ग्रथों मे प्राप्त समान पाठ का उपयोग सहायक सामग्री के रूप मे किया गया है।

सहायक सम्पादन-सामग्री के रूप मे देवकृत अन्य ग्रथों मे प्राप्त समान छदों के पाठ का उपयोग सतर्कता से किया गया है। ऐसे ग्रथो के सम्पादन मे, जिनकी हस्तलिखित प्रतियाँ आवश्यक सख्या मे प्राप्त हुई है, हम देवकृत अन्य कृतियो मे प्राप्त समान छदो के पाठ पर बहुत कम आश्रित रहे हैं। इसका कारण स्पष्ट है। हम समझते हैं कि जब कवि अपने एक ग्रथ का छद अपने दूसरे ग्रथ मे भरती करता है तो बहुत सम्भव है कि वह छद के पाठ मे भी कुछ सशोधन-परिवर्तन करता हो। कम से कम इस सम्भावना को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। दो भिन्न कृतियो मे विद्यमान समान छदों के पाठ का इस प्रकार अवैज्ञानिक रीति से परस्पर मिश्रण कर देने पर कवि द्वारा इस पाठ-सशोधन का अध्ययन करना सर्वथा असम्भव होगा, अत हमने ऐसा पाठ-मिश्रण कही भी नहीं होने दिया है। "सुमिल विनोद" के सम्पादन मे तथा देव की उन कृतियो के सम्पादन मे जिनकी केवल एक ही हस्तलिखित प्रति मिली है, केवल उसी

स्थल पर अन्य ग्रंथ मे प्राप्त छद के पाठ से सहायता ली गई है जहाँ उपलब्ध प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। हमने ऐसे स्थलों पर अपनी ओर से पाठ-सशोधित करने की अपेक्षा कविकृत किसी अन्य ग्रंथ मे विद्यमान उसी छद का सगत पाठ स्वीकृत करना उचित समझा है। केवल इन्ही थोडे से स्थलो पर सम्पादित कृति के मूल मे कवि द्वारा पाठ-सशोधन किये जाने की सम्भावना और भी कम है इसलिए कवि द्वारा पाठ सशोधन की सम्भावना के उपरोक्त प्रश्न पर भी निर्भीक होकर अन्य ग्रंथो से पाठ साभार स्वीकृत किया जा सकता है।

"सुमिल विनोद" की अ० प्रति के पाठ मे केवल उन्ही स्थलो पर पाठ सशोधन किया गया है जहाँ अ० प्रति का पाठ निश्चित रूप से अशुद्ध था। इन पाठ-सशोधनो की दो कोटियाँ हैं। प्रथम, ऐसे पाठ सशोधन जो अन्य ग्रंथो मे छद के प्राप्त पाठ द्वारा पुष्ट हैं। इस प्रकार के पाठ-सशोधन के साथ इतर ग्रंथ का उल्लेख किया गया है।

समान छदो का तुलनात्मक पाठ पाठातर के रूप मे नही दिया गया है, क्योकि यह पृथक् अध्ययन का विस्तृत विषय है।

अ० प्रति के पाठ मे प्राप्त अपूर्ण छंद

अ० प्रति की परीक्षा करते हुए हमने ऊपर देखा है कि प्रतिलिपिकार ने प्रति के पाठ मे कुछ स्थलो पर छद का पूरा पाठ न देकर प्रारंभिक दो-तीन शब्द प्रतीक-स्वरूप दे दिये है। उदाहरण के लिये अ० प्रति मे ४ ७ पर "आली झुलावति' छद के सपूर्ण पाठ के स्थान पर केवल छद का सकेत इस प्रकार मिलता है, "आली झुलावति झूलनि सो इत्यादि।" अधिकतर ऐसे स्थलो पर अपूर्ण छद के साथ उस ग्रंथ का नाम भी उल्लिखित है जिस ग्रंथ मे छद का सपूर्ण पाठ मिलता है, जैसे ४ १५ पर "जागत जागत खीन" छद का सकेत इतर ग्रंथ के उल्लेख सहित इस प्रकार है—"ध्यान को विरह निवेदन प्रेम तरग चद्रिका मे है। जागत जागत खीन।" अथवा ४ १७ पर "जे विनु देखे" छद का सकेत "वदहरण (?) चन्द्रिकाम्या ए बिनु।" कहना न होगा कि अन्य ग्रंथों मे इन छदो के मिलने का अ० प्रति मे प्राप्त यह उल्लेख सर्वदा सही निकला है, जैसे उपरोक्त दोनों स्थलो पर "जागत जागत खीन" छद अन्यत्र केवल "प्रेम चद्रिका" ग्रंथ मे ही २ ३७ पर तथा "जे बिनु" छद भी अन्यत्र केवल उसी ग्रंथ मे २ ३८ पर मिलता है।

केवल एक स्थल ५ ६ पर ग्रंथ का उल्लेख अशुद्ध है। इस छद का सकेत अ० प्रति मे इस प्रकार है, "अथ वासक सज्जा अष्टयाम मैं। देव सखी इक लीने फुलेल।" किन्तु यह छद "अष्टयाम" मे नही, अन्यत्र केवल "सुखसागर तरग" मे छद सख्या ६३२ पर आया है।

इन छदो के अपूर्ण होने का क्या कारण है? क्या स्वय कवि ने इन छदो का पाठ सपूर्ण न देकर उनके प्रतीक मात्र दे दिये हैं? ये छद प्रतिलिपिकार द्वारा प्रक्षिप्त हैं? अथवा प्रतिलिपिकार ने ही शीघ्रता के कारण इस रूप मे सक्षेप किया है? इन छदो के सम्बन्ध मे ये प्रश्न विचारणीय हैं।

इनमे से प्रथम, कवि द्वारा सपूर्ण छद के स्थान पर प्रथम छद दिये जाने की सभावना उचित नही है। सामान्यतया कोई भी कवि मूल ग्रंथ मे छदो का सक्षेप इस रूप मे नहीं करेगा क्योकि इससे पाठक तक अपनी रचना पहुँचाने का उसका प्राथमिक उद्देश्य ही बाधित होना है। उसे यदि

सक्षप ही अभीष्ट होगा तो वह विषय-विवेचन मे कही सक्षेप करेगा, विवेच्य प्रसग को इधर-उधर से काट-छाट कर नष्ट-भ्रष्ट नही करेगा। ग्रथ के आकार को सक्षिप्त करने की यह प्रवृति लेखक की नहीं, पूर्णतया प्रतिलिपिकार की है।

प्रतिलिपिकार द्वारा इन छदों के प्रक्षिप्त होने की सम्भावना भी इसलिए अमान्य है क्योंकि इस प्रति मे इन छदो का केवल प्रतीक मात्र मिलता है। पाठ-वृद्धि के रूप म प्रक्षेप करने पर प्रतिलिपिकार का उद्देश्य रचना के कथ्य मे पाठ-परिवर्धन करना होता है अत यदि ये छद प्रतिलिपिकार द्वारा ग्रथ मे सम्मिलित की गई पाठ-वृद्धि होते तो स्वभावत वह सपूर्ण छद देता, छद का केवल प्रतीक नही। छद का प्रतीक देने से कवि के समान प्रतिलिपिकार का अभीष्ट भी सिद्ध नहीं होता है।

उपर्युक्त सभावनाओं मे अन्तिम, प्रतिलिपिकार द्वारा शीघ्रता के कारण सपूर्ण छद के स्थान पर केवल प्रतीक रखने की सभावना हमे सगत प्रतीत होती है तथा प्रतिलिपिकार द्वारा ऐसा किया जाने का कारण भी स्पष्ट है। इन विवेच्य छदो मे अधिकतर छद ऐसे हैं जो अन्यत्र "प्रेम चद्रिका" मे भी, अथवा केवल "प्रेम चद्रिका" मे ही आए हैं। प्रतिलिपिकार के पास "प्रेम चद्रिका" की प्रति विद्यमान थी तथा इस प्रति मे इन छदो का पूर्ण पाठ भी था अत उसने यहां उन छदो का पाठ पूरा-पूरा न देकर केवल उनका प्रतीक लिख लेना पर्याप्त समझा। ध्यान रहे कि यदि प्रतिलिपिकार का उद्देश्य केवल सक्षेप करना ही होता तो इस प्रति मे अनेक ऐसे छद भी अपूर्ण मिलते जो इस प्रति मे तथा "प्रेम चद्रिका" मे समान होने के अतिरिक्त "सुखसागर तरग", "सुजान विनोद" एव "भवानी विलास" मे समान हैं। "सुमिल विनोद" मे तथा इन अन्तिम तीन ग्रथो मे अनेक छद समान मिलते है किन्तु सक्षेप केवल उन्ही छन्दो का हुआ है जो "प्रेम चद्रिका" मे तथा इस प्रति मे समान हैं।

ऊपर केवल एक स्थल ५ : ६ पर "अष्टयाम" मे पूर्ण छन्द मिलने का अशुद्ध उल्लेख केवल प्रतिलिपिकार के भ्रम के कारण हुआ है। "अष्टयाम" के चतुर्थ पहर मे एकाधिक छन्दो मे "सुमिल विनोद" के इस छन्द के समान, सखियो द्वारा नायिका के शृगार का वर्णन है अत सम्भव है कि प्रतिलिपिकार को दोनो छन्द समान होने का मिथ्या भ्रम हुआ हो। "सुमिल विनोद" का छन्द इस प्रकार है—

"देव सखी इक लीन्हे फुलेल सुचोवा के चोरनि मेर्के निचोरैं।
एकै लिये कगही इक दर्पन केरी लिये इक बीजन ढोरैं॥" आदि

इससे तुलना के लिये "अष्टयाम" से केवल एक स्थल उदाहरणस्वरूप दिया जाता है—

"चोवा सों चुपरि केस केसरि सुरग अग केसर उबटि अन्हवाई है सुनाय सों।
अतर निचोरि आछे अम्बर सौं पोछी ओछी छतिया अगोछि हसि हसि रग भाय सों।"
—'अष्टयाम'—४ ६

"अष्टयाम" की प्रतिलिपि "सुमिल विनोद" की प्रतिलिपि के साथ बीकानेर के सग्रह मे नही है। श्री माल्टा जी के कथनानुसार यह प्रति उन्हें जयपुर से प्राप्त हुई है। हमारा अनुमान है कि जयपुर मे "सुमिल विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति भी अवश्य रही होगी।

रीवाँ के संग्रह में तो "सुमिल विनोद" के साथ "अष्टयाम" की प्रति है ही। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रतिलिपिकार ने "अष्टयाम" की प्रति भी अपने पास होने के कारण, उसमें तथा "सुमिल विनोद" में एक छंद भ्रमवश समान जानकर यहाँ इस छंद का भी केवल प्रतीक लिख दिया है।

इन छंद-प्रतीकों पर भी क्रमानुसार छंद-संख्या पड़ी है, इससे भी यही प्रमाणित होता है कि ये छन्द मूल-ग्रंथ के हैं। केवल एक स्थल पर छन्द-प्रतीक पर छन्द संख्या नहीं पड़ी है पर इसे हम प्रमादवश छूटा हुआ मान लेते हैं।

खेद है कि इन त्रुटित छंदों का पाठ "सुमिल विनोद" की किसी उपलब्ध प्रति से प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, है परन्तु सौभाग्य से इन छंदों में से अधिकतर छंद देवकृत अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं अतः हमने इन इतर ग्रंथों से ऐसे छंदों का पाठ स्वीकार करना इस ग्रंथ की पूर्णता के विचार से आवश्यक समझा है। यदि "सुमिल विनोद" की ही किसी प्रति से यह पाठ लिया जाता तो अत्युत्तम होता क्योंकि "सुमिल विनोद" तथा देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त समान छंदों की तुलना से यह प्रकट होता है कि कवि ने अन्य ग्रंथों की अपेक्षा "सुमिल विनोद" के पाठ में यत्र-तत्र संशोधन-परिवर्तन किया है, अतः सम्भव है कि उसने इन छंदों के पाठ में भी इसी प्रकार कुछ परिवर्तन किया हो। फिर भी हमने प्रति अपूर्ण होने के कारण इन स्थलों पर पाठ भी खंडित छोड़ देने की अपेक्षा अन्य ग्रंथों से पाठ साभार स्वीकृत करना श्रेयस्कर माना है। हम इस तथ्य से आश्वस्त हैं कि ये छंद संख्या में केवल छः हैं अतः इनमें किये हुए कवि कृत पाठ-परिवर्तन और भी कम रहे होंगे।

"सुमिल विनोद" के सम्पादित पाठ में ऐसे स्थलों पर अन्य ग्रंथों से प्राप्त पाठ का उल्लेख उस ग्रंथ तथा उसमें इस छंद के स्थल-निर्देश सहित कर दिया गया है। ये पाठ अ० प्रति में प्राप्त छंद प्रतीक से पृथक् कोष्ठकों में दिये गये हैं। "सुमिल विनोद" में इन स्थलों की सूची, छंद-प्रतीक तथा स्वीकृत पाठ के स्रोत का विवरण इस प्रकार है —

१—सुमिल विनोद ४ ७ "आली झुलावति"—"सुजान विनोद" ७ २५ से,
२— „ „ ४ १५ "जागत जागत मीन"—'प्रेम चंद्रिका" २ २० से,
३— „ „ ४ १७ "जे बिनु देखे"—"प्रेम चंद्रिका" २ ३८ से,
४— „ „ ५ ९ "देव सखी इक"—"सुखसागर तरंग" ६ ३२ से,
५— „ „ ५ २६ "सूझत न गात"—"सुजान विनोद" ४ ३२ से,
६— „ „ ५ ४४ "लागत समीर लं"—"सुजान विनोद" ५ ४४ से

ऐसे पाठ-संशोधन जो देवकृत अन्य ग्रंथों में प्राप्त उसी छंद के पाठ द्वारा पुष्ट हैं

१ : ४ स्थायी भाव—

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह छिन मानि।
आहचरज बैराग्य ये नवरस थाई जानि॥

उत्साह वीररस के स्थायी भाव के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ उत्साह के अर्थ में ही "उछाह" शब्द प्रयुक्त हुआ है किन्तु अ० प्रति में "अरु उछाह" के स्थान पर "उतसाय" पाठ

है। प्रसग की दृष्टि से असगत होने के अतिरिक्त इस पाठ में दो मात्राएँ न्यून होने के कारण दोहे के चरण की गति भी दूषित होती है। "काव्य रसायन" में ३ १४ पर यह दोहा मिलता है तथा इसमें भी "अरु उछाह" पाठ मिलता है। अत यहाँ "अरु उछाह" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : ७

अर्थ धर्म तें होत अरु होत अर्थ तें काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिंगार सुखधाम॥

दोहे मे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चतुर्वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध वर्णित है। कवि ने इसी भाव को "भाव विलास" मे १ २ पर इस प्रकार प्रकट किया है—"अरथ धर्म तें होई अरु काम अरथ तें जानु।" अ० प्रति में "अर्थ धर्म तें…" पाठ के स्थान पर "अर्थ दया तें…" पाठ मिलता है। जीवन की धर्म-अर्थादि चार अभिलाष्य वस्तुओं म "दया की गणना नहीं होती है अत अ० प्रति मे प्राप्त "दया" पाठ असगत है। इसके स्थान पर "भाव विलास" मे प्राप्त इस दोहे के पाठ से "धर्म" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : १३

रति पूरन सिंगार सो मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक सचारिन सहित झलकावति हैं हाव॥

"…झलकावति हैं हाव" के स्थान पर अ० प्रति मे पाठ है "झलकावति दस हाव। स्मरण रहे कि नायिका के हृदय मे मिलन तथा सभोग की इच्छा के कुछ-कुछ प्रकट होने को हाव कहते हैं, अत "हाव" के प्रसग मे सख्यावाची "दस" शब्द यहाँ प्रयुक्त होना सर्वथा अनुचित है।" "भवानी विलास" मे १ १८ पर इस दोहे मे भी "…झलकावत हैं हाव" पाठ है अत यहाँ अ० प्रति के "दस" पाठ के स्थान पर "हैं" पाठ स्वीकृत हुआ है।

१ : २४ प्रथम दो चरण—

छीजत रग पसीजत अग तरगित रोम हियो अभिलाषै।
मोह मढे मग मैं न बढै पग बोल बढै न पढै सुर भाखै॥

इस छद मे कवि ने पूर्व गणित सात्विकादि अष्ट सचारियो के उदाहरण प्रस्तुत किये है। प्रथम चरण मे वैवर्ण्य, स्वेद तथा रोमाच सात्विक अनुभावो का एवं द्वितीय चरण मे केवल स्वरभग का उदाहरण है। द्वितीय चरण मे "…बोल बढै न पढै सुर भाखै" के स्थान पर अ० प्रति मे कदाचित् "स" मे "म" का भ्रम होने से पाठ है "…बोल बढै न पढै मुर भाखै।" बोल न फूटने तथा कठावरोध होने के प्रसग मे "मुर" की अपेक्षा "सुर" पाठ सगत प्रतीत होता है अत "सुधासागर तरग"—१०६ पर इस छद मे प्राप्त "सुर" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

१ : २५ सचारी भाव। प्रथम-द्वितीय तथा पचम-षष्ठम चरण—

है निर्वेद गिलानी सक असुया मद श्रम कहु।
आलस चिंता दैन्य मोह सुमिरन धीरज लहु।
अवबोध गोप अवहित्थ मति त्रास व्याधि उन्माद मृति।
बोधिषि विमर्श उग्रता तैंतीसो साधत प्रकृति।"

द्वितीय चरण के "दैन्य मोह" पाठ के स्थान पर कदाचित् प्रतिलिपिकार के मस्तिष्क मे "मोह" की प्रतिध्वनि होने के कारण पाठ है "द्रोह मोह"। "द्रोह" सचारी-नाम के रूप मे निरर्थक तथा असगत है। "प्रेम तरग" १ ६ पर इस चरण का पाठ इस प्रकार है,"आरस दैन्यरु मोह चित सस्मृति धृति हूँ श्रम।" इस पाठ मे प्राप्त "दैन्यरु" शब्द के सकेत पर यहाँ "द्रोह" के स्थान पर "दैन्य" शब्द रखा गया है।

इसी प्रकार अ० प्रति मे प्रथम चरण के "नास व्याधि" के स्थान पर "ग्रास व्याधि" पाठ है। सचारी-नाम के रूप मे "ग्रास" पाठ भी असगत है अत इसके स्थान पर "प्रेम तरग" मे प्राप्त "नास" सचारी नाम यहाँ रखा गया है।

१ : २६

"बोली न आँखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे कटाछनि कै रही।
डोली न आँखिन आँखि लगाइ अचानक आँखिन को सरु कै रही।
एहो बडी बडी आँखिनवारी निहारि की आँखिन मैं थरु कै रही।
नासिन आँखिन तें निकर्‌यो अब प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही॥"

प्रियतम से उसकी आँख लगी तो लज्जित होकर उसने अपन नेत्र झुका नही लिये वरन् वह कुछ ढिठाई से उसकी आँखो मे ही देखती रही। कदाचित् अपनी इसी प्रगल्भता से उसने अपन प्रिय की आँखो को जीत लिया। यहाँ "सरु कै रही" सर करने या विजित करने के अर्थ म, मुहावरे क रूप मे आया है। अ० प्रति मे इसके स्थान पर "सह कै रही" पाठ मिलता है। यहाँ 'सह" को 'शह' का रूपान्तर मानना अनुचित होगा क्योकि प्रथम तो मुहावरा "शह करना न होकर "शह देना" है और दूसरे "शह देने से यहाँ विजित करने के अभीष्ट भाव से भिन्न, परास्त करने का भाव प्रकट होता है। "सुखसागर तरग' म छद-सख्या ११६ पर इसी छद के पाठ म "सर कै रही" पाठ तथा छद-सख्या ३८८ पर इसी छद के पाठ मे "सठ कै रही" पाठ मिलता है। "सठ' पाठ असगत है तथा लिपिभ्रम से सम्भव है। इसी प्रकार अ० प्रति मे "सह पाठ भी दृष्टि-भ्रम मे सम्भव है। अत उपरोक्त स्थल पर "सरु' पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "निहारि की आँखिन मैं घर कै रही।' "घर कै रही" पाठ निरर्थक न होने पर भी यहाँ असगत है। तृतीय चरण का भाव है कि "यह बडी-बडी आँखोवाली नायिका का रूप-सौन्दर्य ऐसा है कि जिसकी भी दृष्टि उस पर पडती है उसी की आँखो मे वह थिरकती रह जाती है।" कहना न होगा कि "निहारि की आँखिन मैं" का अर्थ "निहारने-वाले अथवा दर्शक की आँखो मे' है। प्रत्येक दर्शक की आँखो मे उसका घर कर लेना शब्दार्थ की दृष्टि से भले ही सार्थक हो परन्तु अगले चरण के "प्यारे की आँखिन मैं घरु कै रही" पाठ से यह पाठ असगत सिद्ध होता है। अर्थ के विचार से भी "घर" पाठ असगत है। यदि वह सभी सामान्य दर्शको के हृदय मे घर कर लेती है तथा उन्ही के समान अपने प्रिय की आँखो मे भी घर कर लेती है तो इससे उसके सौन्दर्य का कोई विशेष चमत्कार तथा उसके प्रियतम का विशेष महत्त्व प्रकट नही होता। कवि तो कहना चाहता है कि बडी-बडी आँखोवाली सुन्दरी नायिका दर्शको की आँखो मे तो थिरकती ही रहती है किन्तु घर करती है केवल अपने प्रियतम की आँखो

में इस विचार से अ० प्रति में प्राप्त तृतीय चरण का "निहारि की आँखिन में घर कै रही" पाठ असंगत है। सम्भव है कि "घर कै" में दृष्टि-भ्रम से, अथवा अगले चरण के "घर कैं" पाठ पर भूल से दृष्टि पड़ने से इस प्रति में यहाँ "घर कै रही" पाठ आ गया हो। "सुखसागर तरंग" में भी उपर्युक्त दोनों स्थलों पर इस छंद के पाठ में "घर कैं" पाठ आया है अतः यहाँ "घर कैं रही" पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : ५

हौन वियोग सयोग तें मान प्रवास सयोग।
एहि विधि मध्य वियोग के हौन सिंगार सयोग॥

विप्रलंभ शृंगार के भेदों के अन्तर्गत मान हेतुक वियोग तथा प्रवास हेतुक वियोग की गणना की जाती है। विप्रलंभ शृंगार के भेद होने के कारण ये दोनों ही हृदय की विरह-प्रधान स्थिति का द्योतन करते हैं अतः यहाँ "···मान प्रवास सयोग" शब्दावली उचित ही प्रयुक्त हुई है। अ० प्रति में इस स्थल पर पाठ है

"···मान प्रवास सजोग।" यह पाठ मान-प्रवास के सन्दर्भ में अनुचित होने के अतिरिक्त अगले चरण का तुकान्त "···हौन सिंगार सयोग" होने के कारण अनुपयुक्त भी है। "भवानी विलास" में २ : ४ पर इसी दोहे में "मान प्रवास सयोग" पाठ मिलता है अतः यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : १६ प्रथम-द्वितीय चरण—

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भाखैं सखी वाक्य।
देखे अनुकूल कहूँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन हूँ आवत तनच्छन सुहाग तहाँ सुख दै सिखावत दिखावत है ईठई।

अपने लक्षण के अनुरूप, अनुकूल पति अपनी पत्नी को सर्वदा अपने सम्मुख रखता है किन्तु दक्षिण पति अन्य नायिकाओं में अनुराग रखने पर भी नायिका के सम्मुख उसका प्रिय बन कर प्रकट होता है, उसे अपनत्व की शिक्षा देता है तथा उसके प्रति अपना अपनत्व प्रदर्शित कर नायिका को सुख प्रदान करता है। "ईठई" यहाँ "अपनत्व, स्नेह" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति में "सुख दै सिखावत" पाठ के स्थान पर "सुख दै दिखावत" पाठ-विकृति मिलती है। यह विकृति लेखन-प्रमाद से निकटवर्ती शब्दों में 'ख' वर्ण के आधिक्य के कारण सम्भव है। "सुखसागर तरंग" में छंद-संख्या ८११ पर इस छंद में "सुख दै सिखावत···" पाठ मिलता है अतः यहाँ यही पाठ स्वीकृत हुआ है।

२ : २६ ऊढ़ा उदाहरण—

दीरघ बन निसि कर मैं डर मैं न कहूँ भरमैं भटकी सी।
धीर उसाहन पांइ परैं करने न परैं डरैं डटकी सी।
गापति देह सनेह निराट कहै मति कोउ कहूँ अटकी सी।
ऊँच अराम चढ़ै उतरैं सु करै नित-राति कला नट की सी।

छंद के दूसरे चरण का अर्थ होगा कि नायिका रस्ते पर अपने पैर मन्द-मन्द, इस चतुरता

से रखती है कि वह रस्से पर से गिरने नही पाती, ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह आकाश मे लटकी है। द्वितीय चरण का उपरोक्त पाठ "प्रेम चद्रिका" मे ३ ४१ तथा "सुखसागर तरग" मे ७७८ पर इस छद के पाठ मे भी मिलता है। इस पाठ के स्थान पर अ० प्रति मे पाठ है "दौरि उपाइ झपाइ धरै'''।" यह पाठ प्रसग की दृष्टि से असगत है। अत उपरोक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त सगत पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार इस छद के तृतीय चरण का "निराट" शब्द किसी वस्तु की सहायता लिये बिना, अकेले, निरवलम्ब अपनी देह सतुलित रखने के अर्थ मे सर्वथा उपयुक्त है। "प्रेम चद्रिका" तथा "सुखसागर तरग" मे इस छद के पाठ मे यहाँ "निराट" पाठ मिलता भी है किन्तु अ० प्रति मे "निराट" के स्थान पर कदाचित् लेखन-प्रमाद से "निराति" पाठ है। यह पाठ प्रसग की दृष्टि से निरर्थक है अत इसके स्थान पर भी उपरोक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त "निराट" पाठ यहाँ स्वीकृत माना गया है।

३ : ४ पद्मिनि-लक्षण—

हस भेष भाषा गमन लघु भोजन मृदु हास।
सती सत्यरुचि सील सुचि पदमिनि पद्म सुवास।।

अर्थात् ऐसी नायिका जिसका वेश हस के समान श्वेत हो, जिसकी वाणी भी हस के समान सुमधुर हो, वह पद्मिनी नायिका कहलाती है। अ० प्रति मे "भाषा" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "भूषा" पाठ है जो असगत है अत यहाँ "भवानी विलास" मे २ २२ पर प्राप्त "भाषा" सगत पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ६ शंखिनी उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण—

पातरे लक नचै से सचै कर पल्लव बेली ज्यो बाल बनी ये।
कोकिल कूकनि पौन की झूकनि झूमति सी गति घूम घनी ये।।

जैसे वाटिका की छोटी लतिका वायु का तीव्र झोंका आने पर उसके साथ बह नही जाती, धरती के साथ जडो से बधी होने के कारण उसका ऊर्ध्व भाग झूमकर जैसे नाच उठता है उसी प्रकार यह क्षीण कटिवाली नायिका भी अपनी पतली कटि पर झुककर जैसे नाच-नाच जाती है। ध्यान रहे कि यहाँ प्रसग नायिका के नाचने का है, 'पातरे लक नचै" मे "पर" अधिकरण कारक चिह्न लुप्त है, "स्वय" लक के नाचने पर नही—यदि ऐसा होता तो पाठ "पातरो लक" होता। नृत्य करती हुई नायिका की हथेलियाँ भी मुद्राओं को प्रकट करने के हेतु तीव्र वायु-दोलन मे वन-बेलि के पत्तो की भाँति झुक-झुक जाती हैं। इसी कारण कवि ने कहा है कि 'बेली ज्यो बाल बनी ये"।

प्रथम चरण का सामान्य रूप से यही पाठ "सुखसागर तरग" मे ३५१ पर तथा "भवानी विलास' मे २ २६ पर मिलता है। किन्तु अ० प्रति मे चरण का पाठ इस प्रकार है— 'पातरे लक नचै सि सचै पल्लव बैरि ज्यों बाल बनी ये।" इस पाठ मे "बैरि ज्यो" पाठ सर्वथा असगत है, इस पाठ को स्वीकार करने पर छद मे बेलि-बाला का रूपक ही छिन्न-भिन्न हो जाता है अत यहाँ उपर्युक्त दोनो ग्रथो मे प्राप्त "'''नचै से सचै'''बेली ज्यो''" पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ११ हस्तिनि उदाहरण । तृतीय चतुर्थ चरण—

दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम अपार समुद्र मैं सोऊ।
काम की सागरि नागरि के उर गागरि से उचके कुच दोऊ॥

काम की सागर इस नागरी के वक्षस्थल पर उन्नत दोनों कुच गागरियों के समान हैं जिन्हें अपने वक्ष पर लगाकर वह प्रियतम के अपार प्रेम-समुद्र को तैर कर पार कर सकती है। जल पर तैरने के लिए गागरी जैसी वस्तुओं का उपयोग सर्वप्रसिद्ध है।

अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है "दै छतिया पर पायरेई तरग अपार । इस पाठ की गति अशुद्ध है तथा इसकी सार्थकता भी संदिग्ध है अत यह पाठ अस्वीकृत तथा इसके स्थान पर "भवानी विलास" मे २ ३२ पर प्राप्त "दै छतिया पर पार परै पिय प्रेम अपार " पाठ स्वीकृत माना गया है।

३ : २३ सुरतान्त । तृतीय-चतुर्थ चरण—

गाहक हौ जीके जु कहा कहौं नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह।
अवहूँ उपाधि तजौ आधिक जियत पर वाधिक बधिक तेरो हा धिक हँसनि यह॥

सुरति मे अपनी दुर्दशा होने के कारण बेचारी नायिका यहाँ आने पर पश्चात्ताप करती हुई कठोर नायक से कहती है, "हम तुम्हे अच्छे नायक क्या कह, तुम तो हमारी जान के ही ग्राहक मालूम देते हो। मैं नाहक ही अपनी लाजभरी सुषमा का परित्याग कर यहाँ आयी।" नायक की क्रूरता पर पुन आक्षेप करती हुई वह कहती है कि "सुरति म मेरा प्राणान्त नहीं हो गया, मैं अधमरी होकर भी जीवित हूँ, इसलिए भला हो यदि तुम अपनी "वधिक' उपाधि त्याग दो। तुम्हे लज्जा नहीं आती ? तुम हँस रहे हो ?"

"भवानी विलास' मे ५ २१ पर तृतीय चरण का उपरोक्त पाठ ही मिलता है किन्तु अ० प्रति मे "गाहक हौ जी के जु" स्थान पर पाठ है "गाहक जो जाके जू ··।' इस पाठ का "जाके" शब्द प्रस्तुत प्रसग मे असगत है। "जाके" का सम्बन्ध "लाज की लसनि" से जोड कर नायक को नवेली नायिका की लाजभरी सौन्दर्य सुषमा का ग्राहक बताना भी असगत लगता है क्योंकि इस व्याख्या को स्वीकार करने पर "कहा कहौ नीके नाह' पद सन्दर्भ से उच्छिन्न हो जाता है। "लाज भरी लसनि' का ग्राहक होने के कारण नायक को "नीके नाह" न कहना अधिक उपयुक्त नहीं लगता है। नायक को "नीके नाह' न कहने तथा अगले चरण की " 'आधिक जियत पर बाधिक बधिक ··" आदि शब्दावली से यही प्रकट होता है कि नायिका क्रूर नायक को "जी' का ही ग्राहक समझती है।

"जीके' ध्वनि इसी चरण म आगे चलकर "नीके' शब्द पर प्रतिध्वनित भी होती है। सम्भव है कि अ० प्रति मे सामान्य लेखक प्रमाद से "जी" की मात्रा छूट गई हो। जो भी हो, प्रसग पर ध्यान रखते हुए "भवानी विलास' मे प्राप्त "जीके' सगत पाठ उपर्युक्त स्थान पर स्वीकृत हुआ है।

३ : २७ प्रगट मदना उदाहरण । प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय चरण—

नन्द जू के यार देव आये वृषभान द्वार गोहैं पौरि दौरि गयी रह्यो रग वाल सो।
पाइ गही पाइ दस्यो चाहे गति आइ पै मड़्यो न परै घूघट गड़्यो न परै पाग सो।
मदन सदेह जाग्यो मदन मदन जाग्यो पाग्यो पग पूरयो मन माग्यो आइ त्याग सो॥

द्वितीय चरण मे नायिका की उतावली तथा प्रिय-दर्शन की उसकी उत्कट अभिलाषा किन्तु शीघ्रता, सकोच के कारण उसकी परवशता, सिर पर घूँघट डालने मे उसकी असमर्थता से तथा घर से बाहर पैर रखने मे उसकी पराधीनता से प्रकट होती है। अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है "प्रेम पैठ्यो नव वधू घूट···।" कहना न होगा कि यह पाठ असगत है तथा एक वर्ण की पाठ-वृद्धि होने के कारण इस पाठ की गति भी अशुद्ध है, इसलिए इसके स्थान पर "सुख-सागर तरग" मे ४०२ पर प्राप्त "पै मढ्यो न परै घूँघट" पाठ स्वीकृत हुआ है।

इसी प्रकार छद के तृतीय चरण का पाठ अ० प्रति मे है "मदन सदेस जाग्यो"। नायिका के हृदय मे कामदेव का सन्देश जाग्रत होने की अपेक्षा स्वय कामदेव का और वह भी शरीरी होकर जागना हमे ऊपर वर्णित नायिका की उतावली के साथ अधिक सगत लगता है अत उपरोक्त स्थल पर भी "सुखसागर तरग" मे प्राप्त "मदन सदेह जाग्यो" पाठ स्वीकृत हुआ है।

३ : ३० मध्या की सुरत । प्रथम-तृतीय चरण—

वातनि मैं चूकति अचूक चित कूकति विभूकति औ झूकति सी लूकति लसति सी।
मोरति मरोरति बिथोरति औ जोरति सी तोरति निहोरति सकोरति ससति सी॥

छद मे सुरति के समय नायिका की अनेक कायिक चेष्टाओ का वर्णन है। अ० प्रति मे प्रथम चरण मे "झूकति" के स्थान पर "रुकति" पाठ मिलता है। यहाँ जितनी भी चेष्टाओ का वर्णन है वे प्राय एक-दूसरे से बहुत भिन्न नही है, जैसे मोडने-मरोडने, बियोरने-तोड़ने अथवा सिकुडने-ससाने की क्रियाएँ। इसी प्रकार प्रथम चरण मे बिभुकने और भुकने की क्रिया मे भी विशेष अन्तर नही है क्योकि "विभुकने" का अर्थ "टेढा होना" है ("नेह उरभे से नैन देखिबे को विरुभे से बिभुकी सी भौहे उभके से डर जात है"—केशव), तथा "भूकने" से भी तात्पर्य स्पष्टत "भुकने" से है। नायिका के अन्य कार्यो मे भी समानता होने के कारण "बिभुकने" के साथ "भूकनि" क्रियापद ही सगत है, रोकने के अर्थ मे (?) "रुकति" क्रियापद नही। "विभूकति औ भूकति" पाठ अनुप्रास-पुष्ट है तथा सम्पूर्ण छद मे प्रयुक्त प्राय अन्य सभी क्रियाओं के अकर्मक रूप के समान "भूकति" भी क्रिया का अकर्मक रूप है परन्तु "रुकनि" पाठ मे ये दोनो विशेषताएँ नही है इस कारण अ० प्रति मे प्राप्त "रुकति" पाठ के स्थान पर "सुख-सागर तरग" मे छद सख्या ४६६ पर प्राप्त "भूकनि" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है। सम्भव है अ० प्रति का "रुकनि" पाठ "भूकनि" के 'भ' वर्ण के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण हुआ हो।

तृतीय चरण मे अ० प्रति मे "मोरति-मरोरति" के स्थान पर पाठ है "मोरन मरोरति"। यह पाठ-विकृति भी 'त' मे 'न' का भ्रम होने से अथवा लेखन-प्रमाद से सम्भव है। "मोरनि मरोरति" पाठ इस प्रसग मे असगत तथा निरर्थक है अत "सुखसागर तरग" मे इसी छद के पाठ मे प्राप्त "मोरति मरोरति" पाठ भी यहाँ स्वीकृत हुआ है।

२ : ३२ प्रथम-द्वितीय चरण—

"घाइल करत वर मादल मृगनि दृग कुटिल कटाक्ष मर भृकुटी धनुर के।
कज कर मजु रव करन अनूप पग भू पर धरत बजे नूपुर झनक के॥"

अ० प्रति मे प्रथम चरण मे लेखन-प्रमाद से "घाइल करत" के स्थान पर विकृत पाठ है "पाइल करत," प्रसग-अनुसार पाठ "घाइल करत" ही होना चाहिए। इसी प्रकार अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है "कज वर मजु रव" तथा " 'बजे नूपुर कनक के"। इनम से प्रथम पाठ "कज वर" असगत है। कवि का भाव है कि नायिका के कमल के समान सुदर हाथों म पडे *कगन हस्त-सचालन मे मधुर-स्वर कर उठते है। "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने* मे आपत्ति इसलिये है क्योंकि "कज" इस प्रसग मे "कर" का विशेषण है, "कर" के स्थान पर "वर" पाठ स्वीकृत करने पर "कज" की स्थिति सदिग्ध हो जाती है—"कज" फिर किसके लिये प्रयुक्त माना जाए? इसी प्रकार "नूपुर कनक के" पाठ भी अनुचित है। चरण का भाव इस प्रकार है कि "नायिका के सुन्दर पैरो मे पडे नूपुर धरती पर पैर *रखते ही झनक कर बज* उठे।" किन्तु अ० प्रति मे प्राप्त पाठ के अनुसार चरण का भावार्थ इस प्रकार होगा—"नायिका के सुन्दर पैरो म पडे सुवर्ण के नूपुर धरती पर पैर रखते ही बज उठे।" यहाँ पर "कनक" पाठ अस्वीकृत माना गया है क्योंकि छद के चतुर्थ चरण के अत म भी यही शब्द आया है "तनक-तनक वपु सुघर कनक के।" *पैरो के नूपुर का सुवर्ण-निर्मित होना इसलिये भी कम सभव है क्योंकि पैरो* म सुवर्णाभूषण प्राय नही पहने जाते हैं। "कनक" पाठ-विकृति "झनक" पाठ से 'झ' के प्राचीन रूपान्तर मे भ्रम होने के कारण सभव है।

उपरोक्त तीनो स्थलो पर स्वीकृत पाठ "गुलसागर तरग" मे छद-सख्या ३६६ पर इस छद के पाठ मे भी मिलते हैं।

४ : १४ : १

"हरि मूरति को धरि ध्यान रही रति पूरति प्रेम हिलोरन हो।"

अ० प्रति मे "प" मे "म" का भ्रम होने से पाठ है "रति-मूरति " इससे पहले ही "हरि *मूरति" पाठ आ चुका है तथा अर्थ के विचार से भी यहाँ "मूरति' पाठ असगत है अत इसके* स्थान पर सयोजित करने के अर्थ मे "पूरति" पाठ स्वीकृत किया गया है।

"भवानी विलास' मे ८ २४ पर तथा "गुलसागर तरग' म ५४६ पर भी इस छद म "पूरति" पाठ ही मिलता है।

४ : ३० : १ दशम दशा उदाहरण—

"तूँ अभिलाख गलित भई हरि को धरि ध्यान कहैं गुन गोरे।"

कवि ने छद मे कृष्ण विरह से उत्पन्न नायिका की मरणासन्न अवस्था का कारुणिक चित्रण किया है। नायिका के कुटुम्ब की स्त्रियो को नायिका के जीवित बच जाने की आशा है। कर-परगो से ही उसने पानी-पान-भोजन सबका परित्याग कर दिया था, किंतु आज आकाश मे चद्रमा के निकलते ही सपुष्टित कमल के समान श्रीरहित नायिका को देखकर वे अब नायिका के विषय मे पुन चिंतित हो गई हैं। "तूँ अभिलाख गलित भई' मे यही भाव है। अ० प्रति मे दृष्टि-भ्रम से "तूँ" के स्थान पर "ढूँ' पाठ है। 'ढूँ अभिलाख' पाठ असगत है अत अ० प्रति

के पाठ के स्थान पर "ह्वै" पाठ-सशोधन किया गया है। "सुखसागर तरग" मे भी स
६१४ पर इसी छद के पाठ मे "ह्वै" पाठ मिलता है।

५ : १२ उत्का उदाहरण—

पलँ पल पूछति विपल दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी।
जीभ मैं जलप देव देखिवे की तलप सु भूतल परी है पै सुहाति न तल परी।
रसिक रसिकलाल कलानिधि मिलै तौलौं क्लानिधि मुख चितवाई की चल परी
केलि के महल कलभाखिनि अकेली सकलप विकलप ही मैं क्योहू न कल परी

अ० प्रति मे अन्तिम चरण का पाठ है "सक कलप विकल "तकल परी।" विसं
विधि चैन न मिलने के अर्थ मे "क्योहू न कल परी" पाठ यहाँ उचित है तथा इसी पाठ मे
मे "त" का भ्रम होने के कारण "तकल" विकल पाठ सभव है। दूसरा पाठान्तर विचार
है। अ० प्रति के "सक कलप विकल' पाठ मे ऊपर स्वीकृत पाठ के समान आठ वर्ण है
अ० प्रति के पाठ की गति भी सतर्क होकर पढते हुए शुद्ध की जा सकती है। इस पाठ के स
चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"उस मधुर भाषिणी नायिका के हृदय मे अपने नायक
आने पर विभिन्न शकाए उठती हैं। वह इन शकाओ का ध्यान आने पर कलपती है, वि
होती है—उसे किसी विधि भी चैन नही मिलता।" इस पर भी अ० प्रति मे प्राप्त यह
निम्नलिखित विश्लेषण को ध्यान मे रखते हुए अस्वीकृत हुआ है। इस प्रसग मे "सक"
किसी प्रकार उचित माना जा सकता है किन्तु "कलप विकल" पाठ की सगति सदिग्ध है—
कारणो से। प्रथम तो यह है कि ये दोनो ही शब्द यदि समानार्थी नही हैं तो प्राय एक ही
की व्यजना अवश्य करते है। दूसरे "क्योहू" शब्द जो इन्ही शब्दो से सम्बद्ध है, स्पष्ट स
करता है कि इन दो शब्दो के द्वारा व्यजना एक भाव की नही, बल्कि दो भावो की हं
चाहिए—तभी तो कवि कहता है कि "क्योहू न न तो इस प्रकार, न उस प्रकार, वि
विधि भी उसके हृदय को शान्ति नही मिलती। इस कारण अ० प्रति के "सक कलप विक
के स्थान पर यहाँ "सकलप विकलप" पाठ स्वीकार किया गया है। यह सकल्प विकल्प एकाधि
वस्तुओ को लेकर सभव है। कमलनयन नायक के केलि-कुज मे न आने पर नायिका व
उसकी और अधिक प्रतीक्षा करे अथवा वह अपने घर वापस लौट जाए अथवा यह स्वय
नायक के पास जाए। इनमे से एक का सकल्प करना, फिर उसे त्याग देना उसके हृदय
व्याकुलता की वृद्धि करता है।

उपरोक्त दोनो ही पाठ "सुखसागर तरग" मे छद सख्या ६३९ पर मिलते हैं एव य
स्वीकृत हुए हैं।

५ : १६ सखी सो

"गोरिन की गुन गर्व सु सर्वसु ग्वारि गंवायन हारि लगी तू।
बानन यो घर जान पने उतपातन की विधि मैं न नसी तू।
ल्याइ भुलाइ गु मेरिय भूल चली अपने गुन मेलि गसी तू।
देव जू मीत अमीत सुनै नहिं होति सुनी भई सौति गसी तू॥"

छद का उपरोक्त पाठ "सुखसागर तरग" मे सख्या ६५७ पर भी प्राप्त है किन्तु अ

प्रति में प्रथम चरण का पाठ है " "सु सर्व सुखारि गवावत हारि लखो तू।" तथा द्वितीय चरण में "उतपातन" के स्थान पर पाठ है "उतपानन"। हम पहले प्रथम चरण के पाठ पर विचार करेंगे। यदि "सुखारि" का सम्बन्ध "सुखारा" शब्द से माना जाए तो "सुखारि" का अर्थ होगा "सुख देने वाला"। (हेतु विचार हिये जग के मग त्यागि लखूं निज रूप सुखारा।"—हिन्दी-शब्द सागर) तब चरण का अर्थ इस प्रकार होगा—"गुण गौरी नायिका अर्थात् विवाहित स्त्री का गर्व ही सब को सुखदायी लगता है किन्तु री सखी, तू मुझे यहाँ लाकर इस गर्व रूपी लाख रुपये के हार को ही गवा रही है।" इस व्याख्या पर निम्नलिखित आपत्तियाँ हैं। प्रथम तो "सुख देने वाले" के अर्थ में "सुखारि" शब्द का "सुखारा' से निर्मित होना निश्चित नहीं है, "सुखार" शब्द का पुलिंग विशेषण के रूप में यहाँ प्रयुक्त होना और भी सदेह-पूर्ण है। दूसरी आपत्ति साधारण होते हुए भी इस चरण के दूसरे पाठान्तर से तुलना किये जाने पर महत्त्वपूर्ण है। यह आपत्ति "हारि" के इकारात रूप होने पर है। "हार' मे "हारि" सामान्य तथा सामान्यतया प्रतिलिपि होते हुए भी सम्भव है। और यहाँ तो पहले ही "सुखारि' या "सुखारि" आ चुका है अत इनके अनुप्राम पर "हार" से "हारि" होना भी सम्भव है। फिर भी हम इस प्रश्न को उठाना इसलिये आवश्यक समझते हैं क्योंकि अ० प्रति के अतिरिक्त "सुखसागर तरग' में सख्या ६५७ पर इसी छद के पाठ में भी "हारि" पाठ ही मिलता है इसलिये 'हारि' केवल रूपान्तर न होकर कुछ और ही है। लाख रुपये के हार के अर्थ में यहाँ पाठ 'हार" होना चाहिये, "हारि" नहीं।

यों "हार" या "हारि" का विश्लेषण करना महत्त्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता किन्तु इन शब्दों को दूसरे पाठ के "गवावत" के साथ रखकर विचार करने पर सर्वथा भिन्न अर्थ का उद्घाटन होता है। यह कहना अनावश्यक है कि यहाँ "गँवा देने वाली" के अर्थ में "गवावन हारि' प्रयोग सर्वथा उचित तथा प्रसगसगत है। "गवावन हारि" के प्रसग में सखी के लिए "ग्वालिन" "गवारिन" के अर्थ में 'ग्वारि" पाठ भी उचित है। यहाँ लखी का सम्बन्ध "हार' में कदापि नहीं है। "लखी' तो "देखने", 'पाने' के अर्थ में "तू" के साथ सम्बद्ध है। इस पाठ के अनुसार चरण का अर्थ होगा—"गुण गौरी स्त्रियों के लिए उनका अपना गर्व ही सर्वस्व होता है किन्तु ए सखी, तू ग्वालिन गवारिन है, तू उसका महत्त्व नहीं जानती। मुझे यहाँ कुसमागर ले आने के कारण तो मुझे तू मेरे इस सर्वस्व को भी गवा देने वाली दिखाई देती है।" "सुग्वारि' से "सुखारि' तथा "गवावन" से 'गवावत" पाठ-विकृति प्रतिलिपि के समय सामान्य दृष्टि-भ्रम से सम्भव है। उपरोक्त व्याख्या को विचारगत करते हुए, अ० प्रति में प्राप्त चरण के पाठ को अमान्य तथा "सुखसागर तरग' में प्राप्त इस चरण के पाठ को स्वीकृत माना गया है।

द्वितीय चरण में "उतपातन" के स्थान पर अ० प्रति में "उतपानन" पाठ है। 'उतपानन' पाठ अर्थहीन है तथा "उतपातन" से सामान्य दृष्टि भ्रम से सभव है अत इस पाठ के स्थान पर "सुखसागर तरग" में उपर्युल्लिखित स्थल से इस छद का "उतपातन" पाठ यहाँ स्वीकृत हुआ है।

६ : ४३ : २

पट पीत उतारि उढाइ दियो पट लाल जरी अगोछा दै।

अ० प्रति मे "पट पीत" के स्थान पर लेखन-प्रमाद से "पठ पीत" पाठ है। "पीले वस्त्र" के अर्थ मे 'पठ पीत' की अपेक्षा "पट पीत" पाठ सगत होने के कारण यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरग" म छद सख्या ४६४ पर इस छद के पाठ मे भी प्राप्त होता है।

६ : ४४ तृतीय-चतुर्थ चरण—

"सग ही सग बसौ उनके अग अग वे देव तिहारे लुरीये।
साथ मैं राखिये नाथ उन्हैं हम हाथ मैं चाहती चारि चुरीयै॥"

अ० प्रति मे तृतीय चरण मे "तिहारे" के स्थान पर "त" मे "न" का भ्रम होने के कारण पाठ है "निहारे"। कृष्ण के सुन्दर अग-प्रत्यगो को "देखकर" कृष्ण के प्रति प्रेम प्रकट करने के अर्थ मे भी "निहारे" पाठ इसलिए अशुद्ध माना गया है क्योकि इस अर्थ मे पाठ का रूप "निहारे" न होकर "निहारि" होना चाहिए था। इसी कारण अ० प्रति मे इस पाठान्तर का कारण प्रतिलिपिकार द्वारा सचेष्ट पाठ विकृति न मानकर केवल लेखन-प्रमाद माना गया है। ऊपर के प्रसग मे "तिहारे" पाठ ही सगत है अतः यहाँ स्वीकृत हुआ है।

यह पाठ "सुखसागर तरग" मे सख्या ४६७ पर इस छद के पाठ मे भी मिलता है।

६ : ५३

सखी सों मानवती की उक्ति।

"प्रेम पढाइ बढाइ के बधुनि दोनो बढाइ चढाइ किये कर।
सो अभिलाष्यो न काहू सो भाख्यो इलाज सो लाज सो राख्यो हिये पर।
सांझ सखीन के मांझ हिरान्यो बिरानो भयो अब जान्यो मुझे वर।
कीजो परोसु खरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर॥"

पत्नी कदाचित् अपने पति के स्वभाव से पहले से ही भली-भाँति परिचित थी इसलिये उसने देख-सुनकर, अच्छे पडोसवाला घर लिया परन्तु नायक पति अपने व्यवहार से बाज क्यो आने लगा। पडोस के घर की किसी सुन्दरी स्त्री पर मोहित होने पर उसने पहले उस स्त्री के घरवालो से घनिष्ठता बढाई, उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित किया और इस प्रकार उन्हें अपने वश मे कर लिया।

अ० प्रति मे प्रथम चरण का पाठ है "प्रेम बढाइ बढाइ क बधुनि···कपै कर।" यहाँ 'बढाइ बढाइ' की पुनरुक्ति अनावश्यक है—आगे भी देखें "बढाइ चढाइ" है। वास्तव मे उस घर के लोगों से अपनत्व बढाने के दो रूप हैं—उनमे प्रेम-भाव बढाना तथा इस प्रेम-भाव को उन पर सचेष्ट रूप से प्रकट भी करना। यही सचेष्ट रूप से उन पर प्रेम-भाव प्रकट करने या उसे उन पर आरोपित करने का भाव "प्रेम पढाइ" से प्रकट होता है। अ० प्रति मे "कपै" पाठ मूल मे था, हरताल की सहायता से तथा उसी कलम से 'कपै' से "किये" पाठ बनाया गया है। "कपै" पाठ प्रसग के विचार से निरर्थक तथा "किये" पाठ, कुटुम्बियो को अपने हाथ मे, मुट्ठी मे अथवा वश मे करने के अर्थ मे सर्वथा उचित है। सभव है कि प्रतिलिपिकार ने पहले "थे" मे "पे" का भ्रम होने के कारण "किये" के स्थान पर "कपै" पाठ दिया हो किन्तु बाद मे इस अशुद्धि को हरताल की सहायता से दूर किया हो।

अ० प्रति मे अन्तिम चरण मे 'परोमु" के स्थान पर "वरोमु" पाठ मिलता है। यह पाठ भी असंगत है। अच्छे, खरे अथवा परखे हुए के अर्थ में भी "खरो" शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है क्योंकि आगे इसी अर्थ मे "खरो" शब्द आया है। वास्तव मे "खरोमु" पाठ-विकृति प्रमादवश "परोमु" मे अथवा दूसरे "खरो" के पडोस के कारण हुई है।

इन स्वीकृत पाठों मे "किये कर" पाठ के अतिरिक्त अन्य दोनो पाठ "सुखसागर तरंग" मे ५१८ संख्या पर इस छद के स्वीकृत पाठ मे भी मिलते हैं। इस ग्रंथ मे 'किये कर" के स्थान पर "कै मोकर" पाठ है।

७ : ११ : ३ शठ उदाहरण—

"पूरी करी इतहूँ उन प्रीति भले खुलि खेलत बेलत पापर।"

यहाँ "भले खुलि खेलत" तथा "बेलत पापर" दोनों ही का प्रयोग मुहावरों के रूप मे हुआ है। "पापड बेलने" मुहावरे का अर्थ "हिन्दी शब्द-सागर" मे दिया है "(१) कठोर परिश्रम करना। भारी प्रयास करना। बडी मेहनत करना। जैसे, आपने कितने कहा था कि इस काम मे आप इतने पापड बेलें ? (२) कठिनाई या दुःख मे दिन काटना।" 'पापड बेलने" का अर्थ बोलचाल की भाषा मे कोष्ठ मे दिए अर्थों से भिन्न है। इस मुहावरे का अर्थ है ऐसा कर्म करना जिससे निकट के लोगों को दुःख तथा कष्ट हो। इस छद मे भी "पापड बेलत" से यही भाव प्रकट होता है। अ० प्रति मे "ब" मे "ख" का भ्रम होने से पाठ है "भले खुलि खेलत खेलत पापर।" "खेलत" शब्द की आवृत्ति यहाँ निरर्थक है। "सुखसागर तरंग" मे संख्या ८१८ पर इस छद के पाठ मे भी "खुलि खेलत बेलत पापर' पाठ मिलता है।

विशेष पाठ-संशोधन

१ : १७ दर्शन उदाहरण—

"को हो कहाँ को कहा कहिये री भली भई हो हूँ गहे नहिं ओट सी।"

अ० प्रति मे पाठ है "के हो कहाँ को···" पर प्रश्नकर्ता के "तुम कौन हो ?" प्रश्न का ब्रजभाषा मे शुद्ध रूप होगा "को हो···" कदाचित् अ० प्रति मे मात्रा की खडी रेखा प्रमादवश छूट गई है अतः यहाँ "के हो" के स्थान पर 'को हो" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

१ : २२

"सात्विक भाव सु आठ के सचारी चित माहि।
कहो आठ तैंतीस अरु ग्रहहि रसनि रसराहि॥"

स्वेद स्तम्भादि सात्विक अनुभावों की संख्या आठ तथा निर्वेदादि संचारियों की संख्या तैंतीस प्रसिद्ध है। किन्तु "कहो आठ तैंतीस" के स्थान पर अ० प्रति मे 'त' मे 'व' का भ्रम होने के कारण पाठ है "कह्यो आठवें तीस अरु···" सात्विक अनुभावों तथा संचारियों की संख्या क्रमशः आठ तथा तैंतीस होने के कारण संपादक ने "आठ तैंतीस" पाठ-संशोधन अपनी ओर से किया है।

१ : २५

"लाज चपलता हर्ष वेग जडता अभिमानो।
दुग्व उत्कठा नीद भूल सुप पुनि परिमानो।"

सचारी नामो के प्रसग मे भा० प्रति का "भूख सुखु" पाठ निरर्थक है। कवि ने अपने अन्य लक्षण ग्रथो मे जिन सचारियो का नामोल्लेख किया है उनमे से केवल अपस्मृति तथा सुपुप्ति ऐसे हैं जो उपरोक्त छप्पय मे नही आये हैं। यहाँ अपस्मृति से कवि का आशय अन्य पूर्ववर्ती-परवर्ती कवियो द्वारा मान्य अपस्मार नामक सचारी भाव से है अथवा उसने विस्मृति के अर्थ मे अपस्मृति का उल्लेख किया है, यह कहना कठिन है। देव की निम्नलिखित रचनाओ मे ये दोनो ही सचारी नाम मिलते हैं। "विस्मृति सुमृति नीद उन्माद सुपुप्ति सुबोध ··"

"भवानी विलास" १ ३५, "विषाद उत्कठा उपसुमृनि सुमृति हैं"—"कुशल विलास ·" १ ४४, "अरु नीद अपस्मृति सुपन अवबोध क्रोध ··" "प्रेमतरग" १ ६।

इन सकेतो के आधार पर भा० प्रति के "भूख' पाठ की सहायता से इसके स्थान पर अपस्मृति के पर्याय रूप मे "भूल" तथा "सुख" के स्थान पर सुपुप्ति के अर्थ मे "सुप" पाठ सपादक ने विशेष रूप से सशोधित किया है।

२ · ६ द्वितीय-तृतीय चरण—

"झारति चीर अबीर भरे गहि राखे उसारि सखीन के कोछै।
ऊँची उसासनि ऐंचि हियो उचि औचक ही उचके कुच ओछैं।।"

अ० प्रति मे तृतीय चरण का पाठ है " 'उचके कुच कोछै।" कुचो के लिए 'कोछैं" शब्द यहाँ निरर्थक प्रतीत होता है। उन्नत-उरोजा के लिए इस शब्द की अपेक्षा "ओछैं' शब्द अधिक सगत है। द्वितीय चरण का तुकान्त भी "सखीन के कोछैं" से होने के कारण तृतीय चरण के अन्त मे इसी शब्द का प्रयुक्त होना असगत है। सभवत द्वितीय चरण के अन्त मे विद्यमान "कोछैं" शब्द भ्रमवश तृतीय चरण के अत मे भी प्रतिलिपि होते समय आ गया है अथवा "कुच" के अनुप्रास पर सचेष्ट या निश्चेष्ट रूप मे "कोछैं" पाठ हुआ है। प्रसग पर विचार करते हुए "कुच कोछैं" के स्थान पर "कुच ओछैं" पाठ सशोधन विशेष रूप से किया गया है।

३ २४ मध्या उदाहरण। प्रथम-द्वितीय चरण—

"बैरिनि या अनखेरु करे रहो पीठि दिये रहो डीठि अमैठी।
आठहू जामे जिठानी भई रहो आठहू अग अठा हठि ऐंठी।।"

अ० प्रति मे द्वितीय चरण का पाठ है " ' जिठानी भई रहै।" प्रथम तथा द्वितीय चरण मे "रहो ' प्रेरणार्थक रूप म मिलते हैं अत इस स्थान पर भी "रहो" पाठ-सशोधन विशेष रूप से किया गया है।

५ ५

'प्रिय आगम बीतत गमो उत्कठित चित चीन।
खडित यार गु गडिता प्रातहि आवै मीत।।'

"पति के शरीर पर अन्य स्त्री द्वारा किये हुए सभोग चिह्न को देखकर जो ईर्ष्या मे जल उठे उस नायिका को खडिता कहते हैं।" यद्यपि दोहे म वर्णित खडिता नायिका का लक्षण

पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, फिर भी दोहे के दूसरे चरण का अर्थ इस प्रकार करना उचित होगा "जिसका प्रियतम अन्य स्त्री द्वारा खंडित होकर अर्थात् उनके संभोग चिह्नों सहित प्रातःकाल पर वापस आए वह नायिका खंडिता कहलाती है।" अ० प्रति में "खंडित बार' के स्थान पर पाठ है "खडिम बार"। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से सर्वथा असगत है। 'सबार" शब्द को प्रात काल के अर्थ में व्यवहृत मानना भी आगे समानार्थी शब्द "प्रातहिं" होने के कारण सभव नहीं है। इस दृष्टि से अ० प्रति में प्राप्त "खडित बार" के स्थान पर "खडित बार' पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

५ : २४

"आवन की मनक अचानक ही कान परी आए मुनि देव सबही के सुख साज सों।
औधि गुन बांधी देह अचल सनेह नाधी आनद की आधी मन गयो उडि बाज सों॥
पौरि ही तें "दौरि दुहूँ भुजन" मैं अक भरि भेंटनो जा प्यारो जो समेटतो समाज सो।
वारिधि विरह बडवागिनि की लपट बरि जाती अबलाजु अब लाज के जहाज सों।'

अ० प्रति में तृतीय चरण का पाठ है "दौरि कै दुहूँ भुजन अक भरि ·" इस पाठ की गति अशुद्ध होने के कारण सामान्य पाठ-परिवर्तन से इसे इस प्रकार शुद्ध किया गया है "···दौरि दुहूँ भुजन मैं अक भरि '"

६ : १० मान भेद दोहा।

"पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुरु मान।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन ता लघु जानि॥"

गुरु, मध्यम तथा लघु, मान के इन तीनो भेदो मे अन्तिम लघु मान केवल पर-स्त्री देखने मात्र के कारण होता है। अ० प्रति मे "दरसन ता लघु जानि" के स्थान पर पाठ है "दरसन लघिम सुजानि।" कहना न होगा कि अ० प्रति का पाठ निरर्थक है अत उपरोक्त स्थल पर "लघिम" के स्थान पर "ता लघु" पाठ-निर्माण सपादक की ओर से हुआ है।

६ : ३८ : ४

"कौने विधि कुबिजा पै पौढिबे को बन आवै खाट काटि देत हैं कि गाडो खोदि लेत हैं।"

गोपियाँ कृष्ण के अतरग सखा उद्धव से प्रश्न कर रही हैं कि कुब्जा की पीठ मे तो कूबड है, फिर उसके साथ कृष्ण का समागम किस प्रकार होता होगा? क्या कृष्ण कुब्जा के कूबड के लिए अपनी खाट के बीच का भाग काट देते हैं अथवा फिर भूमि पर रति करते समय धरती मे गढ़ा खोद लेते हैं? यहाँ "गढे" के अर्थ मे ही "गाडो' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

अ० प्रति मे इस चरण का पाठ है "खाट काढ़ि देत हैं गाडो खोदि लेत हैं'। खाट काढ देने अर्थात् फेंक देने से कुबडी कुब्जा के साथ कृष्ण का समागम सभव नहीं हो सकता है। प्रसग के अनुसार, बीच से खाट काट देना ही, जिसमे कुब्जा का कूबड समा सके, सगत है। "काढ़ि' पाठ विकृति "काट" से लेखक प्रमाद द्वारा भी सभव है अत अ० प्रति मे प्राप्त "काढ़ि" पाठ के स्थान पर 'काटि" पाठ-संशोधन विशेष रूप से किया गया है।

आलोच्य पाठ-विकृतियों की सूची

ऐसे पाठ-सशोधन जो देवकृत अन्य ग्रथो मे प्राप्त उसी छद के पाठ द्वारा पुष्ट हैं—

स्थल सकेत	सशोधित पाठ	प्रति का पाठ	विकृति का कारण-भूत प्रमाद	प्रति का पाठ अस्वीकृत करने का कारण
१ ४	अरु उछाह	उतसव	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ ७	धर्म	दया	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ १३	हैं	दस	प्रक्षेप	प्रसग असगत
१ २४	मुख	सुख	म स	अर्थ असगत
१ २५	दैन्य, श्वास	द्रोह, ग्रास	प्रमाद	अर्थ असगत
१ २६	सरु कै, थरु कै	सह कै, घरु कै	रु ह तथा थ घ	अर्थ असगत
२ ५	ससोग	सजोग	दृष्टि-भ्रम	प्रसग असगत
२ १६	सिखावत	विखावत	लेखन-प्रमाद	निरर्थक
२ २६	धीर उपाइन पाइ धरैं, निरात	दौरि उपाइ झपाइ धरैं, निराति	प्रक्षेप	प्रमग असगत तथा निरर्थक
३ ४	भाषा	भूपा		अर्थ असगत
३ ६	नचै से लचै, बेली ज्यो	नचै सि लचै, बैरि ज्यों	लेखन प्रमाद	अर्थ असगत
३ ११	पार परै पिय प्रेम	पर पाँयरेई तरग	प्रक्षेप	अर्थ असगत
३ १३	हौ जीवे जु	जो जाने जू	लेखन-प्रमाद	प्रसग असगत
३ २७	मढ्यो न परै घूंघट सदेह	प्रेम पैठ्यो नववधू घूंट, सदेम	प्रक्षेप	प्रसग असगन
३ ३०	झूकति, मोरति	रुकनि, मोरन	झ र, ति न	प्रसग असगन
३ ३२	घाइल करत, वर, झनव	पाइल करत, वर; वनव	घ प, व ब, झ य	प्रमग असगन
४ १४ १	पूरति	मूरति	प म	प्रमग असगत
४ ३० १	ह्वै अभिलाप	द्वै अभिलाप	ह्वै द्व	अर्थ असगन
५ १२	सकलप विकलप, न कल	सक कलप विकल, तकल	न त	प्रमग असगत
५ १६	गु गवंगु गुवारि गवावन हारि, उनपातन	गु गवं सु गारि गवावन,हारि, उगानन	लिपि-भ्रम	अर्थ असगत

६:४४	निहारे	निहारे	त न	प्रसग असगत
६.५३	पढाद, त्रिये, परोसु	बढाइ, कँपैं, परोसु	लिपिभ्रम	प्रसग असगत
७:११.३	बेलन पापर	बेलन पापर	व ब	अर्थ असगत

विशेष पाठ-सशोधन

१:१७	को हौ	के हौ		अशुद्ध रूप
१:२२	आठ तैंतीस	आठवें तीस	लेखन-प्रमाद	प्रसग असगत
१:२५	भूत सुप	भूत सुतु	त व	प्रसग असगत
२.६	उचके कुच ओठं	उचके कुच कोठं	लिपिभ्रम	प्रसग असगत
३:२४	रहौ	रहै	लेखन-प्रमाद	अशुद्ध रूप
५:५	खडित वार	खडिम वार	लेखन-प्रमाद	अर्थ असगत
५:२४	दौरि दुहूँ भुजन	दौरि कै दुहूँ भुजन	प्रक्षेप	पाठ-वृद्धि
६:१०	ता लघु जानि	लघिम सुजानि	प्रक्षेप	निरर्थक
६:३८ ४	काटि	काढि	ट ढ	प्रसग असगत

सुमिल विनोद

साहित्य सुमिल विनोद लखि कीनो सुमिल विनोद।
लहि सुमति सुख पाइ जेहि जस रस को आमोद ॥१॥
पहिले सुमिल विनोद मैं बरन्यो रस सुख सार।
नवरस नाम। सब सुखदाइक नायका नायक रस सिंगार ॥२॥

सिंगार हास्य अरु करुन रस रौद्र वीर भयमान।
स्थायी भाव। वीभत्साद्भुत सान्त ये नवरस कहत प्रमान ॥३॥

रति हाँसी अरु सोक रिस अरु उछाह[1] छिन मानि।
आश्चरज वैराग्य ये नवरस थाई जानि ॥४॥

भाव सहित सिंगार मैं नवरस सदा अवन्न।
ज्यौं कचन मनि कनक को वाही मैं नवरत्न ॥५॥
निर्मल स्याम सिंगार हरि देव अकास अनन्त।
उडि-उडि खग ज्यों और रस निवस न पावत अत ॥६॥
अर्थ धर्म[1] ते होत धन होत अर्थ ते काम।
ताते सुख सुख को सदा रस सिंगार सुखधाम ॥७॥

१ उत्साह—अ०।

१ दया—अ०।

नोट 'भाव विलास' में इस दोहे का पाठ इस प्रकार है—
"अरथ धर्म तें होइ अरु काम अरथ तें जानु।
तातें सुख सुख को सदा रस शृंगार निदानु॥" १ २

ताही रस सिंगार को अंकुर प्रेम अनूप।
भुक्ति मुक्ति को द्वार है प्रेमानंद स्वरूप॥८॥
बाँच्यो जग राँच्यो विषै साँच्यो माच्यो रूप।
पाँच्यो बस आँच्यो सह्यो नाच्यो प्रेम अनूप॥९॥
प्रेम सार सिंगार रस ताको सुखद विचार।
सुख संपति जग-जगमगै दंपति रूप अपार॥१०॥
देव सबै सुखदायक लायक संपति सर्व सु दंपति जोरी।
दंपति दीपति प्रेम प्रतीति प्रतीति की रीति सनेह निचोरी।
प्रीति जहाँ रस रीति विचार विचार की बानी सुधारस बोरी।
बानी को सार बखान्यो सिंगार सिंगार को सार किसोर किसोरी॥११॥

शृंगार रस लक्षण।
दंपति प्रेमांकुर प्रथम सो रति रस थिति भाव।
ताहि विभाव बढ़ावही प्रगट करै अनुभाव॥१२॥
रति पूरन सिंगार सो मिलि विभाव अनुभाव।
सात्विक संचारिनि झलकि झलकावति हैं[1] हाव॥१३॥

[1] दस—अ०।

रस भाव लक्षण।
मन वच कर्म विलास मैं उपजत प्रेम सुभाव।
रस अंकुर आवन उलहि सो कहिये रस भाव॥१४॥

शृंगार स्थायी भाव रति लक्षण।
प्रीतम जन को देखि सुनि आन भाँति चित होइ।
थाई भाव सिंगार को सुकवि कहत रति सोइ॥१५॥

श्रवण उदाहरण।
सुनि देव अनूप कला ब्रजभूप की रूपकथा अकुलान लगी।
पहिचानन प्रीति अचान लगी कछु देखिबे को ललचान लगी।
भरि भाइन भौंह कमान चढ़ाइ कै तानन लोचन बान लगी।
कहुँ कान्ह कहानी सी कान परी तब तें तन प्रान बिकान लगी॥१६॥

दर्शन उदाहरण।
को हौ[1] कहाँ तो कहा कहिये री भली भई हौंहूँ गई नहिं ओट सी।
देव अचान अचान सौं आयो चलाइ गयो दृग खंजन जोट सी।

लगर की इक बार छुटी जु छुटी छवि रूपछटानि की पोट सी।
तीखी चितौनि छुरी सी चलाइ छरी चष चोटैं करी चप चोट सी ॥१७॥

[1] कै हौ—अ०।

शृंगार विभाव लक्षण।

आलम्बन अवलम्बि कै रति बढ़ि होत सिंगार।
उद्दीपन दीपति करै ससि सुगन्ध सुरतार ॥१८॥

आलम्बन उदाहरण।

बैरी वह वा दिन अचानक पर्‌यो री चित वनवारी वानक बन्यो हो जाल वन को।
कहत न आवत कहै बिनु बनै न सो तू जानै सब जी की पहिचानै प्रेमपन को।
भूलत न वाकी कहै बोलनि बिलोकनि हँसनि चारु चलनि चलाए नैन तन को।
कैसी करौं देव बुद्धि गाँठिहू की छोरे लेत चोर लेत चपनि मरोरे तन मन को ॥१९॥

उद्दीपन उदाहरण।

चंदन हूँ चंद हूँ सा चंदन सी चाँदनी सा चाँदी से चदोवा हूँ सा धीर धरकन री।
फूली भरी मल्लिन हूँ मालती की बल्लिन इलायची लवंग जग अंग फरकन री।
बीना कर बानी सुनि प्रेम की कहानी कौन दसा हौं न जानौं स्वाँस पौन सरकन री।
बड़ी अँखियानि सखियानि तैं दिखायो देव सोई अब मेरी अँखियानि खरकन री ॥२०॥
सुनि कै धुनि चातक मोरन की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
कवि देव नई उनई जु घटा बन भूमि भई दल दूबनि सों।
रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर की झूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागनि मैं सखि रागत राग अचूकनि सों ॥२१॥

शृंगार सात्विक संचारी।

सात्विक भाव सु अंग के संचारी चित माहिं।
कहौ आठ तैंतीस[1] अरु रसहि सकति सरसाहिं ॥२२॥

[1] आठवें तीस—अ०।

सात्विकादि अष्टनाम।

स्तंभ स्वेद रोमांच अरु अंग कंप सुर भंग।
विवरन और मूरछा ये सात्विक रस अंग ॥२३॥

उदाहरण।

छीजत रंग पसीजत अंग उसासनि रोम हियो अनियारै।
मोह मई मग मैं न कहै पग बात कहै न परै सुर[1] भारै।
रूप की सपनि कपनि छाती सु दसनि ओर रहै नहिं गारै।
ऊँचो उसास उठै उमहींगी सही अँसुवानि बड़ी बड़ी ओरै ॥२४॥

[1] सुर—अ०।

संचारी भाव।

है निर्वेद गिलानि संक असूया मद श्रम कहु।
आलस चिंता दैन्य[1] मोह सुमिरन धीरज रहु।

लाज चपलता हर्ष वेग जडता अभिमानो।
दुख उत्कठा नीद भूल सुप[२] पुनि परिमानो।
अववोध क्रोध अवहित्थ मति त्रास[३] व्याधि उन्माद मृति।
चौविधि वितर्क उग्रता तेंतीसो मानस प्रवृति ॥२५॥

[१] द्रोह—अ०। [२] भूख मुग्‍ु—अ०। [३] ग्रास—अ०।

उदाहरण।

दीन दुखी मद आरस नीद जो सुपनेऊ सुबुद्धि वकी सी।
ईर्षा रोष सहर्ष सचित चली चल चाह भगर्व थकी सी।
धीरज ध्यान विराग सम्हारन लाजुन्माद सुबोध छकी सी।
मोह मलिन विथा डरु मीच धो वर्कस त्रास वितर्क जकी सी ॥२६॥
वढि विभाव अनुभाव कढि सात्विक सचारीन।
फलकि[१] होत रतिभाव तें पूरन रेस परवीन ॥२७॥

[१] कलकि—अ०।

तोर्‍यो कुलनेम गुन जोर्‍यो पिय प्रेमगुन हेमगुन रूप हेरि गोहन गिरत हैं।
लाज को अमोल इन हिये हरि लियो देव साभ भए हसत रिसाहु तो भिरत हैं।
लो इन तिहारे अब लोइन निहारे नाहि चोरी करि घूंघट वे घर मैं घिरत हैं।
अलिन निगूढ गूढ[१] गलिन मैं ढूंढि मुग चद के उज्यारे प्यारे ढूंढत फिरत हैं ॥२८॥

[१] गुरू गलिन—अ०।

वोली न आंखिन तानि कहूँ पट ओट तिरीछे क्टाछनि कै रही।
डोली न आंखिन आंखि लगाइ अचानक आंखिन को सह[१] कै रही।
ऐहो वडी वडी आंखिनवारी निहारि की आंखिन मैं घर कै[२] रही।
ना खिन आंखिन ते निकर्‍यो अब प्यारे की आंखिन मैं घर कै रही ॥२९॥

[१] सह—अ०। [२] घर कै—अ०।

नीठि कहूँ मिलि ईठ करी ठिक दर्पन देखत वैठी सयानी।
टाढग ढीठ वसीठ भए उठि कै उनकी चितकी पहिचानी।
पीठ की ओर मरोरि करी ठग डीठि सो डीठि लगाइ लजानी।
देव सखी ढिग तें दुरि कै दृग ही दुरि कै मुरि कै मुसक्यानी ॥३०॥
एहि विधि रति थिति भाव वढ़ि पूरन होत सिंगार।
मिलि विभाव अनुभाव हूँ सात्विक होत सचार ॥३१॥

इति श्री परम सुजान श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे देवदत्त कवि-विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस स्वरूप वर्णनं नाम प्रथम विनोदः॥

भाव सहित सिंगार को जो कहियत आधार।
सो हैं नाइक नाइका तासो करत विचार ॥१॥
रस सिंगार के भेद द्वै है वियोग सयोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास तें द्वै द्वै दुहूँ प्रयोग ॥२॥

शृंगार भेद।

सो पूरब अनुराग अरु मान प्रवास वियोग।
वियोग[1] चौबिधि जानिए आनद एक सयोग ॥३॥

[1] योग-सु—अ०।

प्रथम होत दरसनि तें पूर्वानुराग वियोग।
जहाँ विरह की दस दसा ता पाछे सयोग ॥४॥
होत वियोग सयोग तें मान प्रवास स सोग[1]।
एहि विधि मध्य वियोग के होत सिंगार सयोग ॥५॥

[1] सजोग—अ०।

प्रच्छन्न वियोग उदाहरण।

होरी को हेरि किसोरी रही दुरि देव सु रंगनि अंग अगोठे।
भाजनि चीर अबीर भरे गहि राखे उभारि सखीन के कोठे।
ऊँची उसाससनि ऐंचि हियो उचि औचक ही उचकै कुच ओठे[1]।
चंचल नैनी दृगंचल मोरि कै अंचल सों अँसुवा गहि पोंछै ॥६॥

[1] कुच कोठे—अ०।

प्रकास वियोग उदाहरण।

देव वियोगिनि के बध के हित देखत ही मधु के दिन दोनिन।
सूखि गई सुमुखी इक ईंध बिना उनपान बिजान सु को जिन।
प्रानपती बिनु प्रान उदास सु रावनि मारि गनी सुर पोकिन।
हाँकत ही कलकंठ चिनौन सु भावनि हों दिन जात करोरिन ॥७॥

प्रच्छन्न संयोग उदाहरण।

जानै न कोई जनायो न काहू सों जानि गए जिय मैं जन ही जन।
मोरनी नाच मरोरनी भौंह हिलोरनी मोरनो हो तन ही तन।
आनद लूटि कै ओट दै बैठी हो देव मनो बिजुरी घन ही घन।
भोर तें भौन के कोन रहे मुसकानी हो मौन गहे मन ही मन ॥८॥

प्रकास संयोग उदाहरण।

प्रीतम मीत को पीत पटा पहिरे गहिरे रंग ओर उजारी।
देव जू नैननि बैननि मैं तन मैं मन मैं तुमही नित न्यारी।
कैहो महा दुख कैहो कहा न जु पैहो सिखावन हारि न मानी।
सेजनी हौ मिलि कै तिन सों तिन मोतिन के अँगुरानि को प्यारी ॥९॥

पावक सुद्ध सिंगार को सुद्ध स्वकीया नारि।
प्रथम प्रेम वस मग कै बरै पर दिन चारि ॥१०॥

स्वकीयादि नायिका भेद।

अपनी सुकिया जानिये परनारी परकीय।
सामान्या सोइ मानिए धन दै आवत तीय ॥११॥

ब्याही कुल आचार सो सुद्ध सुकीया वाम।
सुख सेवा सतान हित जस रस निर्मल नाम ॥१२॥

स्वकीया के मुख्य गौण भेद।

भोग भामिनी दूसरी स्वकिया भूपति भौन।
अरु सनेहनिधि तीसरी सुकिया सुभग सलोन ॥१३॥
पतिव्रता पहिली तहाँ पति अनुकूल सो ईठ।
भोग स्वकीया दच्छपति तीजी पति सठ ढीठ ॥१४॥
यह विचार राजान को त्रिविधि स्वकीया नारि।
कुल प्रभुता प्रभु मित्रता पातर नेह निहारि ॥१५॥

शुद्ध स्वकीया उदाहरण।

देवी दिव्य दीपति दिपति दिन राति देव सपति सुहाति जोति जगरमगर की।
पुन्यपन पीन परवीन पतिव्रत लीन जानत गली न द्वार दूसरी डगर की।
नागरी अनूप रूप जोवन उजागरी सबल गुन आगरी बसाई है अगर की।
गृह की गुसाइनि सुभाइनि सुसील सुखदाइनि लला की ठकुराइनि नगर की ॥१६॥

द्वितीय राजपत्नी उदाहरण।

पांइ धरै कर दाबि हियो रहै देवर के डर नेवर दाबै।
देखि रहै ननदै मन दै सुनि सासुनि बैन उसास न आवै।
प्रान बसे पति प्रान के प्रान मैं भूषन भोजन पान न भावै।
आयु के अर्पन दर्पन से हिय प्रीतम को प्रतिबिम्ब दिखावै ॥१७॥

तीसरी राजपत्नी उदाहरण।

सो तिनहूँ सामने सुहाति अति सौतिन हूँ जो तिन निहारे रूप जोतिन जकत है।
सिगरो महल जाकी प्रीति की टहल करै प्रीति की प्रतीति ही सो प्रीतम तकत है।
काहू सो ईरषा न हरत विरोध क्रोध रोध पथगामीन मनोरथ थकत है।
सजन नयन कज मुख मजु भाविन को आँखिन की ओट कोऊ राखि न सकत है ॥१८॥

अथ तिहूँ मध्य पति अनुकूल दच्छ सठ भावते सखी वाक्य।

देखे अनुकूल कहूँ दूलह हिये की फूल उलही अनूप रूप लही दुलही ठई।
दच्छिन हूँ आवत ततच्छन गुप्तात तहाँ सुख दै सिखावन[1] दिखावत है ईठई।
ऐसी गति जहाँ तहाँ को हम कहा किये खुलावत की बार द्वार बारन बसीठई।
देव कहूँ साधु कहूँ अगम अगाध सठ डीठई सुभावन सो रागत है ईठई ॥१९॥

[1] देखि आवन—अ०।

तैंसिये मालती मल्लि मलैजनि त्यों गुर बल्लिन होन विसेख्यो।
केतकी हेन न नूत सों नेह कदब न कुद न लौंग सों लेख्यो।
मौरसिरी हूँ रच्यो कचनार न बैर कनेरन हूँ सो न देख्यो।
भौंर को और सुभाव न देव भयो मानति रैनि पुरैनि परेख्यो ॥२०॥

[illegible]

परकीया लक्षण।

सुनि प्रीति विपरीत करि परकीया परतीत।
गुहवति सेवति विपति करि उपपति प्रेम अभीत॥२४॥

परकीया भेद।

तामें परऊढ़ा कहत और अनूढ़ा नारि।
मात पिता आधीन जो तरुनि सु बाल कुमारि॥२५॥

ऊढ़ा उदाहरण।

दीरघ बंस लिये कर मैं डरमैं न कहूँ भरमैं भटकी सी।
धीर उपाइन पाइँ[1] धरैं धरतें न परै सरकै सटकी सी॥
सासनि देह सनेह निराट[2] कहै मनि कोउ कहूँ अटकी सी।
ऊँचे अकास चढ़े उतरे सु करै दिन राति कला नट की सी॥२६॥

[1] दौरि उपाइ कपाइ—अ०। [2] निराति—अ०।

प्रेम चरचा है कुल नेम अरचा है नित और अर पाहै मैन पाहै निरधारी को।
छाड्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक न अलोक नर नारी को।
घाम तप मेह न निहारे दुख देह हू को प्रीतम सनेह डर मन न अभारी को।
भूलेहू न भोग बड़ी बिपति वियोग बिथा जोगहू तें कठिन संजोग परनारी को॥२७॥

ऊढ़ा को पछितायबो।

बीसो बिसे रस सागरी सोरन गोधन ही हारे गहि अँधी।
हेरि मिल्यो मन बैरी हरै तजि लाजनिहूँ बिन नाम सिँधी।
देव जू बानि परी गुनबारि गए गुनखानि कहा विधि बैंधी।
गारी चढ़े गुरजानिन मैं बहुर्यो कबहूँ नहीं मन मति सैंधी॥२८॥

ऊढ़ा को सदेश।

गागरी गोरि मगोरि हूँ गिरि गोरि सगाइ गिरायो गरो कोउ।
... ... ॥२९॥

अन्यथा परकीया को उदाहरण।

भावनि भरोसा गुरुनारि भभरति पद नारियारि करतार मन मगाई सी।
सरद के बादर मैं दामिनि मनाकरी सी मनाकर मन लिग आँखि आनति जुन्हाई सी।
हीरा मान अटिन करी पद गोरी छवि हाकर की छोर छविपुंज छलकाई सी।
देव दुति मदन बिराजन बदन आभा मन की हरन हिरमदर दुराई सी॥३०॥

उदाहरण ।

जोवन की झाई लरिकाई मैं दिखाई अग सुवरन रूप रग ओपनि चढाये तें ।
दून्यो दिन दीपति नदीपति ज्यो पून्यो देह सरद के मेह दुति नेह उवटाये तें ।
देव गुन गाइये नगर मैं वगर वैठे अगर वपूर वास बाढे ज्यो बढाये तें ।
इदु ज्यो मुखारविंदु विंदु विंदु वाढत त्यो घटत है लक विंदु विंदुहि घटाये तें ॥१८॥

नववधू लक्षण ।

तज्यो खेल गुडियान को चितवनि चित गडि जाति ।
नवल वधू नव देह की वातनि मैं मडि जाति ॥१६॥

उदाहरण ।

दूलहै निहारि फूलो फूलहै हिये मैं हिय भूलहै अन्तक वक रचना विरच की ।
लोइन चपल कुल लोइन चंपत चोप कोइन चढावै ओप को इन सुरचु की ।
देव दुलही न सुलखी न रुचि खेलहिं सो खीन होति सीख लै सखीन परपचु की ।
कचन कली से[१] कुच रचक उचोहै चित सोचि रहे सकुचि सकोचि रही कचुकी ॥२०॥

१ सी—अ० ।

नवल अनगा उदाहरण ।

भाल पर भागु लाल वेंदी मैं सुहाग देव भृकुटी अराग अनुराग हुलस्यो परै ।
सखिन कै सग मैं सुहाग राग रग रुचि रग भरे अगनि अनग उघस्यो परै ।
तन मैं सुभाउ दोउ तुलि के रहे हैं पग डुलि के परै न पैन खुलि के हस्यो परै ।
आनन्द सुगध तें सुगध जैसे फूलनि तें फूल से दुकूलनि तें रूप निकस्यो परै ॥२१॥

प्रथम प्रसग ।

आमोद विनोद इदु वदनी गुविंद गोद उदित उदार मोद आनी आदरीक लौं ।
पी की सुख सेज स्वाद सखी सुग पाइ ओट गई सुख औसर तें सरव सरीक लौं ।
अवर उचकि कर कोरें कुच कोर लागि औचक उचकि परी छवि की छरीक लौं ।
देव देखो वावरी सुहाग की विभावरी मैं डावरी डरनि भई धावरी धरीक लौं ॥१२॥

सुरतांत ।

हिरदै कठोर ऐसे निरदै निठुर तेरे सिर दै गई ये फानि फासी की फगनि यह ।
सोच न सकोच तुम्हें लोचन न सोहैं होत कैसी उत्साह डारी केस की कसनि यह ।
गाहक हौ जीवे[१] जु कहा कहौं नीके नाह नाहक गमाइ आई लाज की लसनि यह ।
अवहूँ उपाधि तजौ आधिक जियत पर वाधिक बधिक तेरी हा धिक हँसनि यह ॥२३॥

१ गाहक जो जावे जू—अ० ।

मध्या उदाहरण ।

वैरिनि या अनखैम करे रहो पीठि दिये रहो डीठि अमैठी ।
आठहू जाम जिठानी भई रहो[१] आठहू अग अठा रुठि ऐंठी ।

प्यारे की ओर चितौनि न देति सरीकिनि ह्वै दृग मैं दुरि बैठी।
देव जू कोटि इलाज कियेहू हौं देखति लाज हिये हू मैं पैठी ॥२४॥

[1] रहै—अ०।

मध्याभेद।

प्रगट यौवना अरु प्रगट मदना प्रगलभ बैन।
सुरति विचित्रा चारि विधि मध्या लाज समैन ॥२५॥

प्रगट यौवना उदाहरण।

को है वह देखि महा मोहनी को भेख धरें नगमिन देव-देवता को अवरेख सो।
डगमगे पग मग रूप रगमगे अंग जगमगे जोवन को जागत विसेख सो।
या मुख मयंक जीत्यो लंक मृगराज हू को मृगदृग देखे दृग लग्यो न निमेख सो।
मंद मृदु हास सोभा सुन्दर विलास आसपास तें प्रकास को परत परिवेस सो ॥२६॥

प्रगट मदना उदाहरण।

नंद जू के वार देव आए वृषभान द्वार सौंही पौरि दौरि सखी कह्यो वर वाम सों।
धाइ गही धाइ देख्यो चाहै चलि धाइ पै मढ्यो न परै घूंघट[1] कढ्यो न परै धाम सों।
मदन सदेह[2] जाग्यो सदन सदेह लाग्यो पाग्यो पन पूर्‌यो मन लाग्यो जाइ स्याम सों।
त्रिकुटी चढाइ को लौं भृकुटी मराइ गहैं लागि रही लोइन लराई लाज काम सों ॥२७॥

[1] प्रेम पैठ्यो नववधू घूंट—अ०। [2] सदेस—अ०।

प्रगलभ वचना उदाहरण।

लागी प्रेम डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढि आई नेह सों निहोरि जोरि आनी मन मानती।
उत तो उताल देव आपु नंद लाल इत सौंह भई बाल नव लाल मुख मानती[1]।
कान्ह कह्यो टेरि कै कहाँ तें आई को हौ तुम लागती हमारे जानि कोई पनिवानती।
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरि जू चलेई जाहु हमैं तुम जानत तुम्हेंहूँ हम जानती ॥२८॥

[1] मुख सानती—अ०।

विचित्र सुरता उदाहरण।

ह्वै रहे अचल दुति दीपक समीप घेर आगेही तें जीने मुखचंद की उज्यारी कै।
पिंजरनि मंजु रव सार्‌यो सुक चार्‌यो ओर केकी कुल कोकिल कपोत किलकारी कै।
अंग अंग नाचत अनंग रंगभूमि नची भृकुटी नटी लै संग नैन नृत्यकारी कै।
चित्रनि चतुर मित्र सुरत विचित्र चितै चातुरी चरित्र चित्र मोहै चित्रमारी कै ॥२९॥

अथ मध्या की सुरत।

बातनि मैं चूकनि अचूक चित कूकनि विभूकनि औ भूकनि[1] सी लूकनि लसनि सों।
डोलनि अडोल मन खोलति न बोलनि किलोल दृग लोल तनु तोलति त्रसनि सों।
मोरनि[2] मरोरनि बिथोरनि औ जोरनि सों तोरनि निहोरनि सकोरनि मसनि सों।
गोवनि सतावति न दूमनि[3] न तूमनि सी रोवनि रिसानि रमस्मनि हँसनि सों ॥३०॥

[1] रूकनि—अ०। [2] मोरनि—अ०। [3] रूमनि—अ०।

प्रौढ़ा चतुर्विधि लक्षण।

लब्धापति रतिकोविदा वस बल्लभ सविलास।
चौविधि प्रौढा सुरति सुख सम्मुख मोहन हास ॥३१॥

उदाहरण।

घाइल करत[1] कर साइल मृगनि दृग कुटिल कटाछ सर भृकुटी धनुक के।
कंज कर[2] मंजु रव कंकन अनूप पग भू पर धरत बजे नूपुर झनक[3] के।
देव सोधि सुधारी अगाध सुधा सिंधु सुद्ध सुधा सी सुधाई बैन सुधा की बनक के।
बदन सुधाधर सुधाधरै अधर कुच तनक तनक वपु सुधर कनक के ॥३२॥

[1] पाइल करत–अ०। [2] वर–अ०। [3] कनक–अ०।

रति कोविदा उदाहरण।

आरंभन थंभन सदंभ परिरंभ कुच हनन सरंभ अरु चुंबन घनेरेई।
सोखन विमोहन बसीकरन सी करन डाटन उचाटन सु चाटु चित चेरेई।
रीति रति प्रीति अनरीति विपरीत अति भीति हार जीतिहू रहति हिय हेरेई।
भौर ज्यों सुवास बिसवास बस बस्यो रसमस्यो निसि वासर विलास बस तेरेई ॥३३॥

वशवल्लभा उदाहरण।

कंचन किनारी जरतारी के पटबरानि छाति छहराति छिति छवि की पहल सी।
चमकत चामीकर रचित चवारो चार्यो ओर कोर कोर वर तोरन तहल सी।
जगमगी सेज पै सुहाग रगमगे दोऊ दंपति को देखे देव संपति सहल सी।
सुख की टहल मुकुताहल महल बीच केसर कपूर कीच चंदन चहल सी ॥३४॥

हुलास भरे भौंहनि विलास भरे भाल मृदुहास भरे अधर सुधारस धुरे परें।
अंग-अंग आतुरी महातुरी नचावै मैन बैन कर सैन चित चातुरी चुरे परें।
सुखद सुभाव देव कोमल विभाव हाव भावनि मैं लाल चलि लालच लुरे परें।
सोचनिहीं सोचे चित चोर मृग लोचन पै लाज भरे लोचन सकोचन मुरे परें ॥३५॥

प्रौढ़ा को सुरत।

दोऊ रति पंडित अखंडित करत काम स्याम स्यामा मंडित कला बुहू पुरनि की।
चूकि चूकि चकनि अचूक उचकनि चौकि चारुताई मोनिन के चौकन पुरनि की।
गंभीर सुरत परिरंभ सभरं न देव कौन गनै रति दंभ रंभारु पुरनि की।
किंकिनी समाजनि की गाजनि मधुर सुर भाजनि बिराजनि अनूप नूपुरनि की ॥३६॥

प्रौढ़ा सुरतांत।

जागे सब जामिनि जम्हात जोर जोवन के जोरि गात अंगिरात भुज कोरी कोरी लै।
सोधे की सुवास आसपास तें मधुप पुंज गुंजि गुंजि भामरैं भरत संग भौंरी लै।
भीतरे भवन देहरी तरे न पाउ धरे झाकत गहेलो द्वार केरी गृह पौरी लै।
नायिका सुघर वर नायक प्रपंच पंच गायक रच्यो री गुनि दौरी कर चौरी लै ॥३७॥

प्रौढ़ा को सुहाग-शिक्षा ।

मदन सदन सुख सनमुख नूपुरनिनाद रस निदरि अनादर अरेरि मारु ।
देव हसि हरे हरे हेरि हरुई सु करि गरुई गिरा सो गुन गान न गरेरि मारु ।
तामरस मुख पै तर्‌योननि तमकि तौलौ तरल चितौनि तीखे चलनि तरेरि मारु ।
बालम की गोद चढ़ै कोद को विनोद मोद सुमननि मानि दुसमननि दरेरि मारु ॥३८॥

सखी की सिच्छा ।

जो रस माने सु रोस करै रस मैं हसि रोस करे मटको मति ।
देव मिही गुन प्रेम को तागु पुह्यो मन मानिक सो भटको मति ।
है सुख की अँखियानि लै पै सखियानि की बातनि सा अटको मति ।
द्वै दिन पी के सुहाग सो फूलिकै भाग सो भूलि भटू मटको मति ॥३९॥

जाके सुहाग को भाग भर्‌यो अनुराग भर्‌यो जग मैं जस गैयें ।
रोसहु मैं रिस मैं सुनिहारे समै असमै बस मैं हरि हैं यें ।
देव जु सौतिन सो चलि पूछिये सो तिनको सपनेहु न पैयें ।
तासो रिसात लजैये जु क्यो नहिं जाके रिसात रसानल जैयें ॥४०॥

इति तृतीय विनोद ।

इनहों के भेदान्तर ।

दसा अवस्था हाव दस जद्यपि सकल तियानि ।
तदपि सुकवि भ्रम तें कहत मुग्ध मध्य प्रौढानि ॥१॥
मुग्धनि पूर्वनुराग मैं कह्यो दसा दस भाति ।
अरु मध्यनि की अवस्था भेद कहौं दस कानि ॥२॥

हाव भाव प्रौढानि मैं सहज निरंतर होत ।
चेष्टा मुग्धा मध्य मैं भय लज्जा रस पोत ॥३॥
मुग्धा नवल किसोर के प्रथम पूर्वअनुराग ।
मिलन हेत हिय दुहुनि के विरह दसा दस भाग ॥४॥

दस दसा नाम ।

होय प्रथम अभिलाष अरु चिंता सुमिरन भागु ।
अरु गुनकथा उद्वेग दुग तब प्रलाप चितु रागु ॥५॥
होत व्याधि उन्माद हैं जड़ता मरन निदान ।
विरह दसा दस प्रगट ए पूर्वनुराग प्रमान ॥६॥

पूर्वनुराग उदाहरण ।

आली भुनावति भूकनि सा इत्यादि ॥७॥

"आली भुनावति भूकनि सो भुकि जाति कटी भननानि भकोरे ।
घघन अघर वीघ घनाघन बेनी बटी सु गटी चित चोरे ।

या विधि झूलत देखि गयो तब तें कवि देव सनेह के जोरे।
झूलत है हियरा हरि को हिय माह तिहारे हरा के हिंडोरे ॥"
—सुजान विनोद, ७:२५

मिलनेच्छाभिलाप उदाहरण ।

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाइ गहाइये तौ ।
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बडे खन लौं उर लाइये तौ ।
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताइये तौ ।
घनस्यामहि नेक्हु एक घरी कहु ह्या लगि जो करि पाइये तौ ॥८॥

प्रेम कहानिन सो पहिले हरि काननि आनि समीप किये तैं ।
छाडि सकोचन लोचन लालची लोचत ही रहै सोच लिये तैं ।
देवजु दूरि तें दौरि दुराइ कै मोहन मोहिं दिखाइ दिये तैं ।
वारिज से बिकसे मुख वै निकसे इत ह्वै निकसे न हिये तैं ॥९॥

चिंता उदाहरण ।

छ्वैवे के छोभन छीजत ही[१] छतिया सु छिपाइ करै बहुतेरे ।
जीवित नाथ सो जीव सनाथ सो साजति लाज के साज घनेरे।
तेरो कछू न लगै बिलगै जिन देव अज्यो जिय जान जियेरे ।
पा परि देव रह्यो मरि रे मति मेरो कह्यो करि रे मन मेरे ॥१०॥

[१] छाजत ही—अ० ।

विरह निवेदन नायिका सों ।

आँखिन देख्यो नही दुख जो कहु काननि जो न सुनी दुचिताई ।
देव कहा कहौं देह दहै सोइ नेह नयो कै अनोखो मिताई ।
भोजन पान कहा सुख सोइबो सैन घरीक न रैनि रिताई ।
चंद्रिका मंदिर चंद्र मैं चित्त दै चैत की राति अचेत बिताई ॥११॥

ध्यान लक्षण ।

चिंता बढि चित बिकल ह्वै करै मित्र को ध्यान ।
आठो सात्विक भाव तहं होत तत्व बिज्ञान ॥१२॥

उदाहरण ।

राधिका कान्ह को ध्यान धरै तब कान्ह ह्वै राधिका के गुन गावै ।
त्यो[१] अँसुवा बरसै बरसाने को पानी निसै निसि राधिकै ध्यावै ।
राधे ह्वै जाइ तेही छिन देव सु प्रेम की पाती लै छाती लगावै ।
आपु त आपुही मैं उरझै सुरझै बिरझै समुझै समुझावै ॥१३॥

[१] तो—अ० ।

हरि मूरनि को धरि ध्यान रही रति पूरनि[१] प्रेम हिलोरन ही।
ब्रज चंद जू को चित सुंदर आनन चंद चितै चितचोरन ही॥
कवि देव रही रस घूमि घनी हिये हेरि हनी दृग कोरनि ही।
सुकुमारि सु मारि सु मार करी मरुरी मरैं मार मरोरन ही॥१४॥

[१] मूरनि—अ०।

ध्यान को विरह निवेदन 'प्रेम तरंग चंद्रिका' में है।
जागत जागत खीन॥१५॥

"जागत जागत खीन भई अब लागत मग सखीन को भारो।
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सो बसिबो बिसो बीस बिमारो॥
प्यो सुधि द्यौस गँवावति देव जू जामिनि जाम मनो जुग चारो।
नीरज नैनी निहारिए नैनन धीरज राखन ध्यान निहारो॥"
—प्रेम-चंद्रिका, २ ३७

गुण कथन।

सुमिरि परसपर दपतो रहत सरस रस पागि।
विरह मथन पिय गुन कथन बरनत अति अनुरागि॥१६॥

यथा हरण। चंद्रिकाम्या 'ए बिनु'॥१७॥
जे बिनु देखे गये दिन बीति न को पछिताउ अरो हिय हैए।
देव जू देखि उन्हैं हौं दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए।
देखे बिना दिख साधन ही मरि देखुरी देखन हीं न अघैए।
देखन देखत देखन ही रही आपनी देहौ न देखन पैए॥'
—प्रेम-चंद्रिका, २ ३८

उद्वेग लक्षण।

बरनि बरनि गुन मित्र के बाढत बिरह अवेग।
भली वस्तु नागा लगैं प्रगट होइ उद्वेग॥१८॥

उदाहरण।

रंग भौन भीतर उसीतर अतर रंग रावटी उसीरन तें दाउस दह्यो परै।
झझरी झरोखा भाँति भाँतिन दुगनि देव द्वार देहरीनि देखि देह री दह्यो परै॥
कूकि कोकिला कुल करत बन आकुल निकुंज मंजु गुंज अलि पुंज उमह्यो परै।
गोवैं पग धीरज बिलोरैं पै गंभीर धीर रानी हरी कोरैं हरि मोरैं न रह्यो परै॥१९॥

जीरे गुर नीके बाहू आनन नजीके जा निहारे जाय तापन नजीरे जरि जायगी।
नीर बिन मीन ज्यों समीर बिन दीन जन दुखी देखिबे की भूरि भूख भरि जायगी॥
देव घनसार सपुरैनि को बिछायें सीपि मेरहू तुसार ज्यों पुरैनि परि जायगी।
राजकीट मैनी मृदु मंजरी सहज मार भार मारुत के उरझि कै सु मरि जायगी॥२०॥

प्रलाप लक्षण।

दपति के उद्वेग हू बाढ़ै विरह अलाप।
चित उतकठा प्रेम पिय पेर्‍यो प्रगट प्रलाप ॥२१॥

उदाहरण।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल जाति न बात कह्यो करै।
देव नयो हिय नेह लगाइ विदेह की आँचनि देह दह्यो करै॥
जीभ अजान न जानत ज्यान जु आप अयान के ध्यान रह्यो करै।
काहे को मेरी कहावत मेरो जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै ॥२२॥

नाखिन टरत टारे आँखि न लगत पल आँखिन लगेरी स्याम सुदर सलोन से।
देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचौन से॥
एरी कहि कोहौ हौं कहा हौ कहा कहति हौं कैसे वन कुज देव देखियत भौन से।
राधे हौ सदन बैठी कहती हौ कान्ह कान्ह हाहा कहि कान्ह वे कहाँ हैं कोहैं[१] कौन से॥ २३॥

[१] कैसे—हाशिये पर दूसरे हस्ताक्षर में—अ०।

सखी को वाक्य।

मैं न कही री कहा भयो तोहि कहूँ मति मानिक सों मन खोलै।
आई गमाइ कमाइ कहा कहौं बातन ही उतपातन तोलै॥
बाहिर पौरि न दीजिये पाँउ री बाउरी होइ सु डावरी डोलै।
तेरी बलाइ बकै री बलाइ ल्यो चूमति तो मुख तू मति बोलै ॥२४॥

अथोन्माद लक्षण।

प्रेम बिकल बकि-बकि थकी बाढ्यो बिरह बिषाद।
बिन विचार जो कछु करै ताहि कहौ उन्माद ॥२५॥

उदाहरण।

आन की कहति आन आनति न आन आन कान आनै अनाकानी करै ध्यान ताहू को।
बावरी भयानी की सुभाउ री न जानी जाति बासर बिभावरी सुभावै कौन जाहू को॥
कहि कहि उठति कहाँ है री कहाँ है कान्ह दौरि-दौरि भेंटै देव सेवक सभाहू को।
मानति न काहू उर आनति न काहू जिय जानति न काहू पहिचानति न काहू को ॥२६॥

ये अपनी करनी निनि देखत देव कहा न बनाइ कछू मैं।
पाइल ह्वै कर गाइल ज्यों मृग त्यों उतही उतराइल घूमैं॥
मेटिवे को तन ताप दुहूँ भुज भेंटिवे को झपटै झुकि झूमैं।
चित्र के मदिर मित्र तुम्है लखि चित्र की मूरति को मुख चूमैं ॥२७॥

व्याधि ज्वरादि विकार उदाहरण।

फूल से फैलि परे सब अग दुकूलनि मैं दुति दौरि दुरी-सी।
आँसुन के जल पूरति साँसनि माँ गनि लाज इजाज सुरी सी॥

देव जू देखिये दौरि दसा ब्रज पौरि पै रौरि कथा बिथुरी सी।
हेम की बेलि भई हिमरासि घरी पल घाम मैं जाति घुरी सी ॥२८॥

दसम दसा लक्षण।

दसम दसा सो मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात।
ताहू तो विधि वरनिये जामैं रस न नसात ॥२६॥

उदाहरण।

ह्वै[1] अभिलाष संचित भइ हरि को धरि ध्यान कहैं गुन गोतें।
पानी न पान न पौन हूँ चैन भई वकि बावरी कालि परो तें ॥
आरति सौं न सम्हारति आजु भई अरविंद ज्यो इदु उदोतें।
केलि के भौन सहेलिनि की हिलकी सुनि कै किलकी सव सौतें ॥३०॥

[1] द्वै—अ०।

कान न सुनति आन आनन चितौति कहूँ आनन अनूप रूप छवि की छुधा भरे।
लोचन कमल कुम्हिलाने कुल कमला के बिलखि बिलाने बिरहागि वसुधा भरे ॥
डीठि विष डासी ह्वै बिसासी विषधर स्याम सेवत सुधाही देव दूभर दुधा भरे।
ज्याइ लीजे जाइ प्याइ पीतम सुधाधर सो सुने हैं तिहारे अधराधर सुधा भरे ॥३१॥

आए अचान सुने पति प्रान भयो सुख प्रान गयो दुख भारी।
त्यो सुखदाइक को मुख देखि जगी नवला नव लाज सम्हारी ॥
मोह समुद्र मैं बूडति ही गहि बाँह हियो भरि नाह निकारी।
राहु के आनन तें निकसी बिकसी मनो देव ससी की उज्यारी ॥३२॥

एहि विधि मुग्ध वधूनि मैं विरह पूर्व अनुराग।
अभिलापादिक दस दसा तव सयोग सुहाग ॥३३॥

इति चतुर्थ विनोद।

अथ मध्या विषय दशा वर्णनम्।

मुग्धनि पूर्वनुराग मैं कही दसा दस भाँति।
अव मध्यनि की अवस्था भेद कहौं दस काति ॥१॥

अवस्था नाम।

स्वाधीना वासकवती उत्का खडित वार।
विप्रलब्ध कलहतरति गतपति कृत अभिसार ॥२॥
आठ अवस्था भेद ये वरनत मत प्राचीन।
पिय विदेस गमनागमन जुत दस कहत नवीन ॥३॥

क्रम तें लक्षण।

सो कहिये स्वाधीनपति जाके पति आधीन।
वासकसज्जा सेज को साजै वार प्रवीन ॥४॥

प्रिय आगम वीतत समौ उत्कंठित चित चीत ।
खंडित वार[1] मु खंडिता प्रातहिं आवै मीत ॥५॥

१ खंडिस वार—अ० ।

विप्रलब्ध पति मिली नहीं जिहिं संकेत बुलाइ ।
कलहंतरिता कलह करि पति सों फिरि पछिताइ ॥६॥
अभिसारिक पिय गृह चलै समै समान सरूप ।
प्रोपितपति परदेस पति दै गयो अवधि अनूप ॥७॥

स्वाधीनपतिका उदाहरण ।

जाकी सबै बिनु मोल की चेरी सु बोलनि कै बल मोल लियो तैं ।
साधन जो दिख साधन को सु महा धन लै भरि राख्यो हियो तैं ॥
जोरे रहै दृग तो दृग देव जू दर्पन को प्रतिबिंब कियो तैं ।
जो मधुराधर आनन सो मधुराधर आनन ओठ पियो तैं ॥८॥

जो मधुराधर आनन मैं ।
अथ वासकसज्जा अष्टयाम मैं ।
देव सखी एव लीने फुलेल इति ॥६॥
देव सखी इक लीन्हें फुलेल सु चोवा के चोरनि येकै निचोरै ।
"देव सखी इक लीन्हे फुलेल सु चोवा के चोरनि येकै निचोरै ॥
येकै लिये कगही इक दर्पन चेरी लिये इक बीजन डोरै ।
चौरी पैं चद्रमुखी बिनु कंचुकी अंचर मैं उचकैं कुच कोरै ।
बारन गौनी बधू बडी बार की बैठी वडे वड़े बारनि छोरै ॥
—सुखसागर तरंग, ६३२

सेज के[1] समीप दीप दीपति जगमगाति दीपनि मैं चंद रचि चंद मुख चंद की ।
भीति छिति छातिन छहरि उठै सोंधो मंद पौन मैं लहरि मालती कै मकरंद की ॥
नागरि नवीनैं परवीनैं कर बीनैं देव गान रंग लीनें उर उमंग अनंद की ।
कान लगी आवनि धनी के धन ध्यान लगी प्रान लगी प्रीति प्रानप्यारे नंद नंद की ॥१०॥

१ सेज की—अ० ।

उत्का उदाहरण ।

आए न दवे गु आन दगा भई आनंद गाहग की मति मूंदी ।
राजनंनी उठी अकुलाइ धरे अंगुरी पर अंजन बूंदी ।
पौरि लौं दौरि कै देखो री देखो यहै कर दाँतें रहै पट फूंदी ।
आनी अगोछन अंग छुटी गज मोतिन मग छुटी अधगूंदी ॥११॥
पलै पल पूछनि विपन्न दृग मृगनैनी आए न कमलनैन आई ए अलपरी ।
जीभ मैं जलप देव देखिबे की तरप सु भूतन परी है पै सुहाति न तन परी ।
रंगित रंगिन तार कलानिधि मिलै तौनो कलानिधि मुख चितचाई की चलपरी ।
केलि के मदन कलभामिनि ओनी मनकरप विकलप[1] ही मैं कहूं न कल[2] परी ।

१ मन करप विकल—अ० । २ तरन—अ० ।

खडिता उदाहरण।

साझ ससी ह्वै कै हसि विहसि कुमुदिनी के रहै चलि नीके नलिनी के उर मूल तें।
कीनी निर्हचित हौं दुरत चित चिता मेटि देव सेवकिनि के सदाही अनुकूल तें।
सिसिर मयक सो ससक पकजनि जानि रजनी गमाइ भले भली भई भूल तें।
लाल लाल अम्बर उदित वाल भानु हेरि भोर विनु लाइन कमल के से फूल तें ॥१३॥

मध्या धीरा खडिता को व्यग्य वचन।

है परमेसुर ते पतिनी को सदा पति नीको जु लोक लहावै।
देव जू दोस कहा कहिये दुख औ सुख औ सहिये जु सहावै।
दूरिहू ते रहिये कर जोरि निहोरि पगौ गहिये जु गहावै।
काहे को रारि बढाइ वृथा कुल नारि चढाइ कुनारि कहावै ॥१४॥

विप्रलब्धा उदाहरण।

निपट निठुर हठि कठिन वसीठी के पढाइ नव लग्यो आई गई दिन दूक ह्वै।
लै गई भुलाइ गुरु वधु ते दुराइ चित वातनि चुराइ कीनी चातुरी अचूक ह्वै।
वै उत मिले न मिले पचसर ताने सरदेव परपच रही पूछति कचूक ह्वै।
केलि वन कुज तें अकेली उठि चलि रूठि नागिनि लौं फूकि मदनागिनि की ऊक ह्वै ॥१५॥

सखी सों।

गौरिन को गुन गर्व सु सर्वसु ग्वारि गँवावन हारि[1] लखी तू।
बातन यो घर जात पने उतपातन[2] की विधि मैं न नखी तू।
ल्याइ भुलाइ सु मेरिय भूल चली अपने मुख मेलि मखी तू।
देव जू मीत अमीत सुने नहिं होति सुनी भई सौनि सखी तू ॥१६॥

[1] सु सर्वसु खारि गवावत हारि—अ०। [2] उतपातन—अ०।

कलहतरिता उदाहरण।

मेरे मन तेरे गुन औगुन घनेरे कहा औगुन गनाऊ गुन गाऊ गहि बीन को।
देख्यो सीख्यो देव तू दिखायेहू सिखाये विनु तोही को दिखावै को सिखावै परवीन को।
तब क्यों रिसान्यो अब पीछे पछितान्यो तै न जान्यो जड जीव या बिचारे दुख दीन को।
तेरो कै पत्यारो प्यारो प्रीतम मैं न्यारो कियो प्रानधन जीवन उज्यारो जुवतीन को ॥१७॥

प्रेम पयोधि पर्यो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहि रे मन।
कोप तरगन सो वहि रे पछिताइ पुकारत क्यों वहिरे मन।
देव जू लाज जहाज तें कूदि भज्यो मुख मूदि अजौं रहि रे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही यह तेरी अनीति तुही गहि रे मन ॥१८॥

प्रोषितपतिका भेद।

चलनहार परदेस पिय अरु पिय आवनहार।
अरु विदेस पति तीनि ये गनपति भेद विचार ॥१९॥

देव कहा कहौ देखत ही बनै सुंदरताई को मंदिर सो है।
चौकनी चौकनि चालि चितौनि बराबर बारन गौन को को है॥३६॥

विच्छित उदाहरण।

भूषन भेष बिसेष बनावैं न देखत देख महासुख दैनी।
चारु चितौनि बिलोचन बाननि सान चढाइ करी अति पैनी।
देव दिपै दुति मोतिन तें अति जोवन जोतिन सो जग जैनी।
मोहन के मन रंजन को करै अंजन दै दृग खंजन नैनी॥३७॥

विभ्रम उदाहरण।

सोवत तें उठि आई प्रभात प्रभा तकि प्रीतम पेम सो पागे।
देव इतो इतराति अहो इत राति लसै अखियां निसि जागे।
लक लटे उलटे पट भूषन ऊलटि और छुटि लट आगे।
रूप को मूल अनूप दुकूलनि भूल भई सु भलै अति लागे॥३८॥

किलकिंचित उदाहरण।

देव इती अनरीति अनीति की प्रीति की बातन ही पहिचानती।
आवती हौं जु बुलाए बिना अनबोले तें बोल कुबोल बखानती।
खेल मैं को गनै छोटो बडो अरु क्यो हू गडो करत भौंहनि तानती।
रोवति सी हसती सी रिसाती खिस्याती कहे पर मान सु ठानती॥३९॥

मोट्टाइत उदाहरण।

भाग बडोई बडो अनुराग सुहाग बडो जग जानत जैसो।
तापर तूठी सी रूठी रहो अहो तूठी न रूठी न मूठी मैं है सो।
देव जू प्रीति की रीति न बैरु न प्रीतिन बैरु कहो मतु तैसो[१]।
मेरो अयान सयान तिहारो कि मान बिना अपराध सु कैसो॥४०॥

[१] तुम तैसो—अ०।

कुट्टमित उदाहरण।

स्वारथ ही के हितू हित ही के हितारथ ही जिय जीवन जीवे।
लगरु अग ही अग मिले रति सग सरै सिसरै सुख फीरे।
हानि गनै न मिटै दुखदानिहू जानि लुटावत सोर करी लीवे।
देव जू देखे महा सुखदानि हमैं दुख दै सुख पावत नीवे॥४१॥

बिब्बोक उदाहरण।

आए हैं पैन्हि प्रभातहिं प्रीतम मौति की मोहन माल गढाई।
देव निहारि सु दूरही तें बर नारि सगोन सो रारि बढाई।
टेढी करी भृकुटी त्रिकुटी भरि डीठि छुटी दृग मान चढाई।
प्यो हियो रोपि निगानो नगच्छ्रल कोपि ज्यों काम कमान चढाई॥४२॥

विहृत उदाहरण।

प्यो सुखदैन सौं बोली न बैन गई करि कै कर सैन सहेली।
ताहि निहारि कै लाज निवाहति चाहत चित्त कियो रम बेली।
काम कमान सी भौहैं चढाइ कै बान से नैन नचाइ नवेली।
देव सु दामिनि सी दुरि दौरि कै भामिनि भौन के कोन अकेली ॥४३॥

ललित उदाहरण।

लागत समीर लक ॥४४॥

"लागत समीर लक लहकै समूल अग फूल से दुकूलनि सुगध बिथुर्‌यो परै।
इदु सो बदन मदहासी सुधाबिंदु अरविंद ज्यो मुदित मकरदनि मुर्‌यो परै।
ललित लिलार श्रम झलक अलक भार मग मैं धरत पग जावक घुर्‌यो परै।
देव मनि नूपुर पदम पद दू पर ह्वै भू पर अनूप रग रूप निचुर्‌यो परै॥"

—सुजान विनोद, ५ ४४

गोरे गोरे गात नवजोवन जगमगात उदित अनूप रुचि रूप छवि सा लसो।
पेखनो सो पेखत विलास हास देव दुति देखत उठत हिये होत अति हौल सो।
नख सिख खोजत मनोज के विसिख खोज ओज चित चोजनि को नेह नित नौल सो।
झीने झिलमिले पट घूघट मैं झलकति ललित लुनाई सो कलित मुख कौल सो ॥४५॥
जगमगी जोतिनि जराऊ मनि मोतिन की चद्रमुख मडल पै मडित किनारी सी।
बेंदी वर बीरनि गहीरनि की देव झूम झूमका झमक झमकन भीर भारी सी।
अग अग उमड्यो परत रूप रग नव जोवन अनूप की तरग चटकारी सी।
आगे आगे मनिन तें जगर मगर होत सखिन सजोए पीछे आवनि दिवारी सी ॥८६॥

इति श्री सुमिल विनोदे पचम विनोद ।

अथ वियोग शृगार विषय मानप्रकास करुणात्मक वर्णन—

पिय को दच्छिन वाम लगि तिय हिय मान सदेह।
पूरन मान बखानिये पति सठ धृष्ट सनेह ॥१॥
ज्येष्ठा और कनिष्ठका दुखित अन्य सभोग।
विप्रलब्ध हू खडिता मान बखानत लोग ॥२॥
मुग्धा मध्या प्रौढ तिय ऊढा और अनूढ।
क्रम तें इनको मानविधि बरनन गूढ अगूढ ॥३॥
गुरु मध्यम लघु मानि पति गुरु मध्यम लघु दोप।
धीर अधीरा मध्यमा धीरादिक वय पोप ॥४॥
गुरु मध्यम लघु भेद मे अरु धीरादिक भाइ।
मान अवस्था तियनि की सूछम सहज सुभाइ ॥५॥
स्वकिया सर्वसु मान है परकीया बस प्रेम।
गमुभन रसिक सुनार ज्यो कस्यो कसौटी हेम ॥६॥

क्रम तें लक्षण।

अधिक नेह पिय जेष्ठ तिय ऊन सनेह कनिष्ट।
नेह निबाहे चातुरी रहै दुहू को इष्ट ॥७॥
दासी सखी की दूति सो गुपित करे पति नेह।
दुखित अन्य सभोग लखि होत मान सदेह ॥८॥
सौतिन के सपति सुने रूप सील गुन सर्व।
करति मान को अग लै प्रेम रूप को गर्व ॥९॥
पति पर परतिय चिह्न लखि करति तिया गुर मान।
मध्यम ता मुख नाम सुनि दरसन ता लघु जानि[१] ॥१०॥

[१] लघिम सुजानि—अ०।

साम दाम नति गुरु छुटे मध्यम सो गहि पाइ।
लघु छूटे पति प्रेम गति कथा कुतूहल भाइ ॥११॥
गुरु मध्यम लघु मान को मुग्धा सूछम भाव।
अरु धीरादिक भाव नौ मध्या प्रौढ सुभाव ॥१२॥
प्रौढा धीरा कोप करि कोप अधीर अधीर।
धीरा धीरा मध्य रय रोदन वचन गहीर ॥१३॥
मध्या धीरा व्यग रस सो अधीर अव्यगि।
धीराधीरा लच्छना लच्छित दोऊ इगि ॥१४॥

क्रम तें उदाहरण। ज्येष्ठा कनिष्ठा उदाहरण।

खेलत आस मिहीचिनि खेल मिहीचत आरि बतावै न वाहू।
दूसरी की पट लेत उठाइ छिपावै मिलै छतिया छतियाहू।
देव इतै कर दावत याहि कहै उत बाहू सो ढूढन जाहू।
पूछि कछू मति वाहू सो पूमत भूठे ही भूमत चूमत वाहू ॥१५॥

अन्य सभोग दु:खिता उदाहरण।

देव को बावरी पावरी होइ कहा पकरैबो जु पै मरिबे ही को।
जानि के कौन मरै बिनु मीच मरैहू न काम कछू सरिबेही को।
खेलो हसो गुनिकै सलु सोई इलाज करै सु करो लरिबेही को।
जापै मया करै ताही को भाग जो लाइक होइ मया करिबे ही को ॥१६॥

प्रेम-गर्विता उदाहरण।

राग रगीले गो री कहिये कत रागहि के मृग रावरे हैहो।
देव दबे रहो देखे बिना द्रिगमाधुरी ही दुग बावरे ह्वैहो।
घेर घरै घर पानिन के घर ही घर टोनन हायरे ह्वैहो।
पोर पनी घनपोर गुनै घनस्याम घरीक मैं पावरे ह्वैहो ॥१७॥

रूपगर्विता उदाहरण।

भूलें मति वधु है मदध मधुकरनि को तो मैं तो वधु मुख सुगध सरसाते हौ।
रहिरे कमल जल गहिरे गुमान तजि गहि रे चरन सोभा सबही सुहाते हौ।
वृन्दावन चद देव भए तौ अनद करौ चदमुखी मोहू सौ अकह कहि तातें हौ।
एरे मुख मेरे की बराबरी करत हिमकर भोर होत ही हमारी तेंरी बातें हौ ॥१८॥

मान उदाहरण। मुग्धा को मान उदाहरण।

ओठनि तें उठि बैठि कधानि पै अंठि मुर्‌यो न कहूँ मुख मोरन।
देव कटाछनि तें कढि कोप लिलार चढ्यो बढि भौंह मरोरन।
अक मैं आई मयक मुखी लई लाल को वक चितै दृग कोरन।
आसुनि बूड्यो उसास उड्यो किधौं मान गयो हिलकी को हिलोरन ॥१६॥

मुग्धा की सखी।

सुदर जोवन रूप अनूप निहारत काहि न लागत नीको।
देव जू दोस कहा मुख देख्यो परोस पछावर की रमनी को।
पै इनही को सुभाव अनैसो हिये घरि राखती धोखो धनी को।
आसुनि बूद दुहू दृग कोरनि धाम गड्यो धन ज्यों निघनी को ॥२०॥

अथ प्रौढा को गुरु मान।

प्रीतम आए प्रभात प्रभा तकि रग रगे बहु सग किये तें।
दूरि तें आवन देखि हसी ढिग तें उकसी न बिराग लिये तें।
धावें मनाइ परे पिय पाइ मनोहर भाल गमाइ दिये तें।
नेकु मुर्‌यो बहुर्‌यो बिहस्यो मुख मान तरु निकस्यो न हिये तें ॥२१॥

मध्यमान उदाहरण।

दपति सोवत है सुख सेज महा सुख सा मुख सों मुख मौननि।
ताही को नाम लै टेरि उठे सपने पिय जाक बसे रग भौननि।
लौटि परी सुनि प्यारी करौट लै सूगत आठ उसास के पौननि।
नेकु गिरे न फिरे बरुनीन रहे असुवा थमिकै दृग कोननि ॥२२॥

लघु मान यथा।

ऊचे अटा चढि प्यारी परोस की लोइन लाल उर्न लहराये।
देव सु देखत देखि दुखी भई आपु सों देखि हिये हहराए।
न्यारी ह्वै प्यारी परी उठि सेज दुहू दृग तें असुवा ढहराए।
हांसी के कारन दास भए हरवाइ लला तरवा सहराए ॥२३॥

धीरादि दोहा।

मान मर्म सुकियानि के व्यग वचन परधान।
गवन सच्छना लच्छिय वाचकहू परमान ॥२४॥

तिनके ब्यौरो

व्यंग सुचेष्टा धीर तिय वच अव्यंग अधीर।
व्यंग लच्छना कर्म रुख प्रगट सुधीरा धीर ॥२५॥
प्रौढ धीर गुरु मानिनी सादर धीर उदास।
साम दाम पति सा प्रनति मानैं जानैं दास ॥२६॥
प्रौढा धीरा धीर को व्यंग वाक्य रुख जानि।
केवल वाच्यहि पुरुष सो प्रौढ अधीरा मानि ॥२७॥
व्यंग वचन पति सो कहै मध्या धीरा नारि।
धीराधीरा[1] करि रुदन अधीर नेह निरवारि ॥२८॥

[1] धीराधीर—अ०।

वाच्य व्यंग लक्षणा के लक्षण।

वाचक सूधे शब्द मैं वाच्यक अर्थ सुभाव।
झलकत व्यंजक शब्द मैं व्यंग्य अर्थ को भाव ॥२९॥
वाच्यक व्यंजक शब्द हू वाच्य व्यंग के बीच।
लच्छ अर्थ लाच्छनिक मैं प्रगटै लौटि नगीच ॥३०॥
अभिधा सूधी बात है लौटि लच्छना फेर।
तातपर्ज धुनि व्यंजना तिहू वृत्ति को हेरु ॥३१॥

अथ वाचक शब्द अर्थ की वृत्ति अभिधा के स्थान।

अभिधा सूधी बात कै जाति कर्म गुन नाम।
सम्मुख वचननि बूझिये अरु निज सञ्ञा नाम ॥३२॥
रूढि प्रयोजन कछु करै वाच्य अर्थ की भूल।
लच्छ लौटि प्रगटत निकट होत व्यंग को मूल ॥३३॥

अथ लच्छना के स्थान।

स्वपर अर्थ सारोप अरु कहिये अध्यवसान।
सदृश भाव विपरीतिता आक्षेपक अनुमान ॥३४॥
कारज कारनहू कहौ सकल लच्छना द्यु।
पुनि सञ्ञा गुर चेष्टा पुनि तातपर्जहू विगु ॥३५॥

इन तिहू शब्द को प्रस्तार है। अथ अभिधा के स्थान ॥१॥ अथ लच्छना के स्थान ॥२॥ अथ व्यंजना के स्थान ॥३॥ जाति वर्णन ॥१॥ सदृश भाव वर्णन ॥१॥ ध्वनि विचार ॥१॥ कर्म वर्णन ॥२॥ विपरीत भाव वर्णन ॥२॥ सञ्ञा विचार ॥२॥ गुण वर्णन ॥३॥ कार्य कारण भाव वर्णन ॥३॥ स्वर विचार ॥३॥ सञ्ञा नाम वर्णन ॥४॥ आक्षेप गुणनाम ॥४॥ चेष्टा विचार ॥४॥ तात्पर्ज ॥५॥३६॥

मध्या धीरा उदाहरन।

आजु हौं नाथ सनाथ करी इन आइ कियो चित तें हित भारो।
देव सुखी चित ह्वै थिर ह्वै रहे भागवती जेहि नैकु निहारो।
धन्य अवास निवास कियो जिन अंग सुवास सुवासनि भारो।
सीखनि नें गुरु बधुनि को मन लेन है मोल सुगध निहारो[1] ॥३७॥

[1] तेहारो–अ०।

सोलह सहस्र ब्रजनारी सब सों कहत जाने हौ निकट ज्हा जितके सकेत हैं।
केहि विधि दपनि परसपर लेत रस दासी पटरानी पर कैसे सुख लेत हैं।
तुम तो सखा हौ ब्रज साची कहौ ऊधो मोसो काम के उमाहे राम कैसे रस लेत हैं।
कौने विधि कुबिजा पै पौटिवे को बन आवै खाट काटि[1] देत हैं कि खाडा[2] खोदि लेत हैं ॥३८॥

[1] काढ़ि–अ०। [2] कि खाटो–मूल में, उसी हस्ताक्षर से 'कि खाटो' का 'कि खाडो' बनाया गया है–अ०।

सादृश्यरूप लक्षणा स्वर विकार व्यग। मध्या अधीरा उदाहरण।

सोवतहू नहि भूलें तुम्हें सपनेहू में बाके वियोग कराहौ।
जागत में दिनराति कहा कहौ वाही के ध्यान न सूझत राहौ।
देवजू और को ओर कहा तुम नो हरि वाके हिये के हग हौ।
सो बडभागिनि सा अनुरागिनि सोइ सुहागिनि जाहि सराहौ ॥३९॥

विपरीत लक्षण रूप में ध्वनि व्यग। अथ मध्या धीराधीरा उदाहरण।

देव कहू बरसैं गरजैं कहूँ पार न बार कहू उमडेई।
सीतल साझ प्रभात के भानु में जानि महा तप तेज मडेई।
भागु बडो जग जानिये ताही को जाके रहौ प्रभु प्रीति गडेई।
बूड बडो लघु लोगनि ही कैं बडे सब बातनि सान बडेई ॥४०॥

अभिधा ध्वनि व्यग। प्रौढा धीरा उदाहरण।

मौन घरे रगभौन में भामती भोर ही आवत भौंहनि ऐंठी।
दूरि ते आदर दै उठि पीठि दै दासी सा रोत कै डीठि अमैठी।
स्वावन को पग दाबन को कह्यो सुदरि मान कै मदिर पैठी।
चित्त चलैं न हलैं महलैं न कहू टहलैं टहलैं करैं बैठी ॥४१॥

प्रौढ़ा सों नायक की उक्ति नायिका की प्रत्युक्ति।

कैसे रूठि बैठी कब रूठी सों रुठाई रिहि भूठी मति कहो मानाधारी दिखत हौ।
माना यह सीजें सब दीजें दइवन कगो सब लै रहौ न गुरुदेव सिरवत हौ।
नाथ आप तप नेहु पगे तो हिये कराहि ता बचन सीत जल बूद छिरकत हौ।
हाथ डारि गोधि देउ हाथ थिर राख्यो नाथ सीन्हो है नो नाथ सो परई दिखत हौ ॥४२॥

कोप व्यग गुरुमान प्रौढा अधीरा उदाहरण।

गुरु गेह सिंगारनि सार भने पर धाय दै छरि दगू तन दै।
पट[1] पीत उतारि उझार दियो पर सार करी अपनापन दै।

अब दास पराए उदास ह्वै आए जू दाहिनो पीपर को बन दै।
तबही बिनु मोल बिकाने है देव सु बोलत मोल लिये मन दै।।४३।।

[१] पठ–अ०।

अभिधा आदर अनादर व्यंग मध्यम मान प्रौढा धीराधीरा उदाहरण।

माथे महावर पाइ को देखि महावर पाइ सुढार ढुरीये।
ओठनि पै बनिकै अखिया अखिया उन ओठन पीक घुरीये।
सग ही सग बसौ उनके अग अग वे देव तिहारे[१] लुरीये।
साथ मैं राखिये नाथ उन्हैं हम हाथ मैं चाहती चारि चुरीये।।४४।।

[१] निहारे–अ०।

मानवती के वाक्य नायक सो।

अजन अधर पीक पलक कपोल लीक सेंदुर झलक सीक भाल भरमीले से।
एहो बलबीर बलि गई बलबीर की सौं बोलत विचल बोल साचे सकुचीले से।
देव हित बधनि पढाइ परवधनि सुगधनि बमाई प्रेम बधन तें ढीले से।
ढीले ढले पेंचनि छबीले छकि छाके लाल लोइन लजीले ए रसीले रस गीले से।।४५।।

निर्मल आरसी हौं ही तिहारी सिपारसी जाके हौ ताहू बुलाऊ।
देव दोऊ मिलि रूप अनूप निहारिये मो मैं महा सुख पाऊ।
भाल भए, रगि लोइन लाल सु आजिवेहू को कपूर मगाऊ।
प्रेम पियूख पियो जिनको तिन ही तिन आखिन को अन्हवाऊ।।४६।।

हौ तुम तो जुतही जु तही तुम वे इतही हित ही नित तेरे।
है बहिवेई को वे इनहो उनही के बसे सहवास बसेरे।
मो दृग की पुतरी तुम स्याम तहा अभिराम तिन्हैं तुम हेरे।
दच्छिन वाम मिले रहो देव सु दच्छिन वाम दोऊ दृग मेरे।।४७।।

प्रौढ़ा मानवतीन की उक्ति।

सेवक जानि कै सेव कराइये देर ही आतम देव बिहारी।
दूरि ही तैं कर जोरे रहौं बरजौ न कछू बर कुज बिहारी।
लायक हौं न कहो हिय लाइ बुलाइ कहो सु करौं हितकारी।
पाइ कहो सुख पाइ कहो पिय पाइ कहौं उनही की निहारी।।४८।।

रागनि जीव सदा रटि पीव सो जागत पीर पपीहा कहा को।
देखि समुद्र कहै दुरत दुद समुद सुधाजल बुद जहां को।
देव जू वाम दुधा बकरी औ करी परि एक घरी सो न हारो।
प्रेम घटा घुमड़े घनस्याम तिनै उमड़े फिरौ भागु तहा को।।४९।।

टेरि कहौं हमनो जियरा हरि हेरि निहारेई हाथ हरायो।
सो तुम सै अनतै कहू हार्‌यो निहारि कै हारि को नाउ धरायो।
ताहू की नीर तुम्हैं न तऊ अब लोगनि मैं अवनीर लरायो।
देव सुभाय सुभाव तज्यो न सुभाव भज्यो दुग दांग परायो।।५०।।

अथ सखीन की सिच्छा मानिनी सों।

न्यारो न कीजिये प्यारो धनी न सदा घन काहू के भौन भर्यो रहै।
देव सु धन्य घरी घर ज्यों मुख आस्विन को सिन आइ अर्यो रहै।
तासों न कीजै अमानपनो अपनो मन को पन क्यो न पर्यो रहै।
मादो नदी पिय को अनुराग सराहिये माग सुहाग धर्यो रहै ॥५१॥
भूलेहू सो न गमाइये हाथ तें जो गुन पाइये साथ किये के।
देव तहा मुख मोरिये क्यों मुख जाइ सबै जग माहि जिये के।
आपु तें डोलि के बोलि बसाइये वारक खोलि किवार हिये के।
... ... ॥५२॥

सखी सों मानवती की उक्ति।

प्रेम पढाइ[1] बढाइ के बधुनि दीनी बढाइ चढाइ कियें[2] बर।
सो अभिलास्यो न काहू सों भाख्यो इलाज सों लाज सों राख्यो हिये पर।
साझ सखीन के माझ हिरान्यो बिरानो भयो अब जान्यो मुझे वर।
कीनो परोसु[3] सरो सुनि देख्यो सु देव परो सु परोसिन के घर ॥५३॥

[1] बढाइ—अ०। [2] कप—मूल मे, हरताल की सहायता मे 'किये'—अ०। [3] गरोसु—अ०।

एहि विधि मानवतीन के धीरादिक बहु भाइ।
लघु गुर मध्यम मानहू व्यंग लच्छ अधिकाई ॥५३॥

इति षष्ठम विनोद।

प्रोषितपतिक बधून मैं बरन्यो बिरह प्रवास।
करुणातम करुणा मिल्यो सो सिंगाराभास ॥१॥

करुणात्मक उदाहरण।

सूर न पावत मो पदवी मुनि पूरन हौं सुमिरे अबहू।
अगनगारो तें जाने कहा रन रंग नगारो बजावनहू।
देव कहै सनमनिन सों जु सुहाग सती सो न कीजो अहू।
नाविक दै निकसे पग पै मर पावक दै निकसे न कहू ॥२॥
पतिनायक स्वकियानि को उपपति परकीयानि।
सामान्या बनितानि को नायक बैसिक जानि ॥३॥

लक्षण।

शुद्ध इष्ट अरु चतुर पति गुप्त सु प्रगट अनिष्ट।
पति चौविधि अनुकूल अरु अम दच्छिन सठ धृष्ट ॥४॥
एक नारि अनुकूल व्रत सकल तिया सम दच्छ।
सब भूठी अनुकूलता लपट धृष्ट समच्छ ॥५॥
पति अनुकूल सु दच्छिनो उपपति सब कहूँ दच्छ।
बैसिक धृष्ट सु सम अधम प्रकृति देव नर रच्छ ॥६॥

अथ अनुकूल पति मुग्धा स्वीया।

राज करो हित काज न बूझन लाज अकाजनि को घर घेरेई।
तू पट घूघट ओट किये न निहारति मारत मार दरेरेई।
नाह के नाते न हाते करो हित लोग सबै दुलही कहि टेरेई।
ऊलहै प्रेम दोऊ अनुकूल है दूलहै तो तिन तूल है तेरेई॥७॥

मध्या अनुकूल उदाहरण।

लाजि मरौं गुरु लोगनि मैं इनके मन मैं सुनि आवति है घिनि।
देव कहा कहौं सेवक ह्वै रहै कैसेहूँ कोई चवाव करो किनि॥
चौर डुलावत दाबत पाँव बिसासिनि ठाढ़ी हँसैये सवासिनि।
देखो वधू वर जोरी घनी बरजेहू मैं ता बरजोरी करो जिनि॥८॥

प्रौढ़ा अनुकूल उदाहरण।

होत न उदास यह जाको रति दास कहैं जान्यो देवता सु भरतार भरती रहै।
प्रेम के प्रकास छिनु छाँड़त न पासु निसिवासर निवास बिसवास डरती रहै॥
एते दुख जासु कैसे नीद परै तासु आसपास सब बैरी सो उसास भरती रहै।
कैसा रंग रास कैसो संग को विलास जहाँ ननद सो सासु उपहास करती रहै॥९॥

अथ दक्षिण उदाहरण।

चोरी कै राखी चुराइ घने दिन वा चितचोर दुहूनि सो ह्वै कै।
होरी के औसर गोरी गुमानिनि आनि भिटाइ हियो हि छ्वै कै॥
आपुस मैं मनिमाल दै लाल दई बदलाई मिलाइनि ह्वै कै।
सौति दोऊ पिय प्रीति उमाहिनी पाहुनी ह्वै मिलि साहुनी ह्वै कै॥१०॥

शठ उदाहरण।

लाज तिहारी हौं आवनि पै बलिहारी हौ देव बने कहौ कापर।
पैय कहा तुमसो बहु नायक लायक हाइ कृपा करौ तापर॥
पूरी करी इनहूँ उन प्रीति भले खुलि खेलन खेलत[1] पापर।
धन्य सुहाग घनी तुम सो धनि ताही को भागु दया करो जापर॥११॥

[1] खेलन—अ०।

धृष्ट उदाहरण।

चोर हौ कि चार जोर हौ जु निसिचारक हूँ साधन विचार हार हीरनि हिरैबे की।
आवन सवारही गुनावत सिंगार उठि धावत कि बार तजि बार उन जैबे की॥
अंग पापन्त तैसे पायन देव डा आय पा परत बलिहारी बिरमैबे की[1]।
ऐसे अनुमान कुमारति का मारे मार मारी हौं सिंगार तुम्हैं होत मार रैबे की॥१२॥

[1] चरण का पाठ—अंग पार परत बलि गई बिरमैबे की—अ०।

॥अथ सखा। नर्म सचिव।

हितकारी बाना चातुर सेवक होय जो ढीठ।
पीठमर्द विट चेट अरु विदूषको सु बसीठ॥१३॥

चारिहूँ को उदाहरण।

प्रान पियारे सो रूठि रहौ अपनी मति तूठि कै आपु लजौगी।
आपुही आपु मनाइ कै माजनै सेज के माजन ही को सजौगी॥
भोजन पान बिसारि कै भामिनि मान तें जोजन[१] एक भजौगी।
कानिही देखि विदूषक को मुख मान कहा अभिमान तजौगी॥१४॥

[१] मानन जोजन—प्र०।

नायक की दूती।

अहे कहे क्यो न वह कौन सी कुरगनैनी कामिनि कहो है कुलकानि मैं।
लाज को जहाज गुन जोवन गरब भर्यो कौन कौन बूड्यो सोभा सिंधु मुखदानि मैं॥
ऐंठि अठि बैठति अमैठि भृकुटी कुटिल सूधी ह्वै रहोगी वा सुधानिधि सी बानि मैं।
देव दुनि फूल्यो चदहू को न गुमान रह्यो मान रहै कैसे मृदु मद मुसकानि मैं॥१५॥

नायिका की सुहित सखी उदाहरण।

मान करि बैठी मनभावन सो मौन धरि नोखी नई मानिनि मिलावो मन त्यो नहीं।
कैसी ह्वै सुघर घर घरिनी निहारि देखौ घरी घरी रूसनो करनि कोई यो नहीं॥
जीवहू को जीवन जनम जगमग्यो जासो ऐसी जीवनेसु बिनु जनमन त्यो नहीं।
ताहि मुख सृष्टि सो बिहारि पति करो नहीं दया देव दृष्टि सो निहारियत क्यो नहीं॥१६॥

मान मोचन उदाहरण।

हारी मनाइ मनावनहारि पै पीठि दै प्यारी न डीठि उदासी।
देव कहैं पिय प्यारे की ओर चितै दृग कोर मिली मृदु हासी॥
मैन के मग मिले उठि नैन सु दैन मिलैबे की साह निरासी।
जोवन जोर अकोरलिये तन जाइ मिल्यो मन मान नवासी॥१७॥
घूंघट घाट चलैबे की बाट चल्यो दल भामिनि भीरु अमीर सो।
चोट करी भृकुटी भट पै त्रिकुटी तट पै वर जोवन वीर सो॥
पार भयो उर भेदि पिया बढि सौतिन को तन प्रान अधीर सो।
मैन के मग दिमान को देखि गयो छुटि मान कमान को तीर सो॥१८॥

संयोग शृंगार उदाहरण।

मूरति सिंगार रति रामा सग स्यामा चैन पूनो की त्रियामा ससि ज्यो निहारियत है।
तीर तीर तरुनि अनत तारिका सी देव दिव्य दारिका सी दीपो देखि हारियत है॥
एरी उठि गैल ऐन पारी छवि छैल या बदन दुति बसुधा सुधा सुधारियत है।
रंगिर रमाल नव लाल अग अग पर अग वारे कोटिक अनग वारियत है॥१९॥

मूरति रति सिंगार की दपति नवल सरूप।
जगमगात जग मैं सुभग जागत जगत अनूप॥२०॥

इति श्री हिमातुल्ला खान विनोद हेतवे कवि देव विरचिते सुमिल विनोदे सिंगार रस निरूपण नाम सप्तम विनोदः।

८ उत्साह वर्धनो वीर रस उदाहरण।

धनवत सोई धन सोई सपूत लसै जस भूप अथाइन मैं।
कर ऊँचोई जाको करोरनि बीच रहै रनदान के दाइन मैं॥
कुल जाके समीप सोई कुलदीप महीपति देव सुभाइनि मैं।
धन जाको बसै मुख भूसुर के मन जाको बसै प्रभु पाइनि मैं॥१॥

शात रस।

अग नग नाग नर किन्नर असुर सुर प्रेत पसु पच्छी कोटि कीटनि कढ्यो फिरै।
माया गुन तत्व उपजत बिन सत सत्व काल की कला को ख्याल खाल मैं मढ्यो फिरै।
आपुही भखत भख आपु आपुही अलख देव कहूँ मूढ कहूँ पडित पढ्यो फिरै।
आपुही हृय्यार आपु मारत मरत आपु आपुही कहार आपु पालकी चढ्यो फिरै॥२

बधु को बधु हितू को हितू सुत बामनि जे धन धाम भरे पर्यो।
लाखन लोग लगे अभिलाखन लाखनि भाखनि भेप भरे पर्यो॥
बूढो भयो बढितें ते गयो अब बैठि परो बढि तेज तरे पर्यो।
श्री महाराज गरीबनिवाज हौ आजु तिहारेई आनि गरे पर्यो॥३॥

भोग भुलाइ सजोग डुलाइ कै जोग लै लै सुनि लोग लरेई।
भूपति यो धन भार भडार गए गडि दाम सु धाम धरेई॥
देव कहै दिन चारि के ख्याल मैं खेलि गए खल खोइ खरेई।
काहू के सग कछू न गयो सब सेंत मरे अकसेत मरेई॥४॥

अग मैं अजूत सब जग मैं सजूत देव एकै सूत मोतिन पुह्यो है वेह वेह मैं।
गहिरो गुनन गहिवे को निरगुनि गह्यो परत न गह्यो गहि रह्यो गेह गेह मैं।
हार्यो हेरि हेरि चुनि हार्यो फेरि फेरि सुनि हार्यो टेरि टेरि सु निहार्यो नेह नेह मैं।
मोखन सिरावत भिरावत सदेह मैं रहे तो देह देह मैं लहै तो देह देह मैं॥५

माया गुन बधन अचानक ही आनि जुर्यो जाको नाउ ठाउ रूप रेख गुन सूनतो।
गगन मैं तारो ज्यो उज्यारो ह्वै अध्यारो होत ताको कौन गौन भयो हेत ऐसो तूनतो॥
आवत बढ्यो न जग जातहू घट्यो न कछू देव को विलास देव एसोई अनून तो।
एकै सो तरग नच्यो बीच गयो बीच ही ते आगेहू कछू न ऐसे आगेहू कछू नतो॥६॥

कथा मैं न कथा मैं न तीरथ कै पथ मैं न पाथ मैं न गाथ मैं न साधी की बसीति मैं।
जटा मैं न मुडा न तिलक त्रिपुडा न नदी कूप कुडन न न्हान दान रीति मैं॥
पीठ मठ मडल न कुडन कमडल मैं मन्त्र दड मैं न देव धौहरे की भीति मैं।
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो पेखिये प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं॥७॥

याही भौन भीतर रह्यो न हौं न जानो जय कौन कौ ढूंढै कौन कौन भाँति लीने जानि।
इत मैं निहारे सुरो जित मैं निहारे गुन जिन मैं विहारे पै न परे प्यारे पहिचानि।
देव जू सु गहि गहि गहिबे की गाँठे अब मौहै क्यो न रागो कोई भौहै क्यो न तानि तानि।
कैसी साज कैसो राज कैसे धौ गयो समाज कैसो घर कैसो पर कैसो डर कैसो कानि॥८॥

माहि तुम्हें अतर गनैं न गुरजन तुम मेरे हौ तुम्हारिये तऊ न बिचरत हौ।
धूरि रहे या तन मैं मन मैं न आवत हौ पच पूछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ ॥
ऊँचे चढ़ि रोइ कोइ देत न दिखाई देव गातन की ओट बैठे बातनि गिलत हौ।
ऐसे निरमोही महामोही मैं रहत अरु मोही तें निवरि नेकु मोही न मिलत हौ ॥६॥
सौंचन बिसारि लाज काज डर डारि मिली मोहि मिलो लार इहराए इहरत नाहिं।
धन ऐसा पानरी बिचारी चग लहरनि पाहन पवन लहराए लहरत नाहिं ॥
हिरि गिरि फूलनि फुलेल वासु फैलो देव तेन को तिनादे महकारो महकत नाहिं।
जौलौं लौं न जायो अनजाने रही तौ ही लौं सु अब मेरो मन बहराए बहरत नाहिं ॥१०॥
मान जौ मैं प्रेम तब कीजै ब्रत नेम जब कजमुर भूले तब सजम बिसेखिये।
आस नही पी की तब आसनहौं बाँधियतु सासन कै सासन को मूँदि पनि पेखिये ॥
जब तें मिला लौं सब स्याम मई धाम मई बाहिर हू भीतर न दूजो देव देखिये।
जोग करि मिलौं जो बियोग होइ बालम सों ह्या न हरि होइ तब ध्यान धरि देखिये ॥११॥

[इति सुमिल विनोद]